गरुड़-पुराण

(द्वितीय खण्ड)

सम्पादक—

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के
प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक

संस्कृति-संस्थान

ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली

-प्रदेश)

प्रथम संस्करण) १९६८ (मूल्य ७ रु०

दो शब्द

'गरुड़-पुराण' की विशेषताओं पर इसकी भूमिका और उपसंहार में ावश्यक विवेचना की जा चुकी है। एक सामान्य हिन्दू-धर्म अनुयायी की दृष्टि मरणोत्तर कर्मकाण्ड का महत्त्व बहुत अधिक है—इतना अधिक है कि उसका ायोजन पूर्ण नियमानुकूल और परम्परा के अनुसार करने के लिए वह प्रायः पने लिए बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ पैदा कर लेता है। अनेक स्थानों में और नेक जातियों में दाह-संस्कार, तीजा, एकादशा, त्रयोदशा (तेरहवीं) आदि के म पर और महाब्राह्मण को शैयादानादि करने के रूप में, और फिर समस्त ्नि-भाइयों को भोज देने की प्रथा का पालन करके इतना व्यय-भार उठाना है कि अनेक गरीबों की उससे कमर ही टूट जाती है और उसका कुपरिणाम उनको बरसों तक भोगना पड़ता है। पाठकों ने ऐसे-ऐसे मृतक-भोजों का भी वर्णन सुना होगा जिनमें ५-५ हजार तक लोग भोजन करते हैं। अगर इससे चौथाई भी भार किसी साधारण आर्थिक अवस्था वाले पर पड़ जाय तो उसको कैसी सांघातिक चोट लगेगी इसे भुक्तभोगी सहज ही में जान सकते हैं।

जन-साधारण की दृष्टि में 'गरुड़-पुराण' का महत्त्व इसी कारण अधिक है क्योंकि इसमें और्ध्व दैहिक कर्मों का विवेचन किया गया है और लोग उसे श्रद्धापूर्वक सुनते और मानते हैं। इस समय यद्यपि देश-काल के प्रभाव से लोगों ; विचारों में अनेक नवीन परिवर्तन हो रहे हैं, तो भी हिन्दू-समाज में, विशेष- ा ग्रामीण-जनता में ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलेंगे जो इन प्रथाओं का उल्लंघन रने का साहस कर सकें। इस कारण सब लोग अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार उन कर्मकाण्डों की पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं, जिनका निर्देश 'गरुड़ पुराण' में किया गया है।

हिन्दू-धर्म में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बड़े अटल और निश्चयात्मक रूप से प्रतिपादन किया गया है और सच पूछा जाय तो वर्तमान समय में धर्म का जो रूप हमारे देश के विद्वानों और उच्च श्रेणी के व्यक्तियों में भी प्रचलित है उसका आधार पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही है। उसी के प्रभाव से हिन्दू जनता में यह भाव फैला हुआ है कि हम जैसा भला-बुरा काम करेंगे उसका वैसा ही

परिणाम हमको आगामी जन्म में भोगना पड़ेगा। यह प्रभाव चाहे विभिन्न व्यक्तियों में न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है फिर भी बहुसंख्यक लोग इसके कारण किसी दुष्कर्म को करते हुए कुछ सङ्कोच करते हैं इसमें सन्देह नहीं। यह तो स्वार्थी और मूढ़ लोगों ने मनमानी कल्पनायें और अतिरञ्जित बातें करके इसके स्वरूप को बिगाड़ रखा है, अन्यथा यह 'पुनर्जन्म तथा कर्मफल' का सिद्धान्त नैतिकता तथा सच्चरित्रता की रक्षा के लिए एक अमूल्य और अमोघ उपाय ही है।

पर हम यह कह देना भी आवश्यक समझते हैं कि इस विषय में अन्ध-श्रद्धा से काम लेना कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता। यह समझ लेना कि 'गरुड़ पुराण' में जिन क्रिया-कर्म के विषय में जो कुछ लिखा गया है उसको अक्षरशः सत्य मान कर पूर्ण रूप से तदनुकूल आचरण करने से ही सद्गति प्राप्त हो सकेगी, हानिकारक है। ऐसे प्रसङ्गों में जन-साधारण की श्रद्धा-भक्ति को बढ़ाने की दृष्टि से बहुत सी बातों को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाता है और अधिकाधिक दान देने की भी विशेष रूप से प्रेरणा की जाती है। ऐसे विषय में देश-काल और अपनी परिस्थिति का ध्यान रखकर ही कार्य करना चाहिए। धर्म-शास्त्रों में ही जगह जगह यह स्पष्ट रूप से कह दिया गया है कि वास्तविक फल शुद्ध भावना और सात्विक कर्मों का होता है। बाह्य क्रियाएं और दान-दक्षिणा आदि सदैव अपनी सामर्थ्य और साधनों के अनुसार ही करना चाहिये जिससे बाद में किसी प्रकार की असुविधा सहन न करनी पड़े।

धर्म की गति सूक्ष्म कही गई है। जो लोग समझते हैं कि सत्-कर्म और परमार्थ के पथ पर चले बिना भी केवल कर्मकाण्डों के द्वारा परलोक में कल्याण हो सकता है, वे भूल करते हैं। अपनी श्रद्धा और परम्परा के अनुसार उपयोगी प्रथाओं का पालन करना उचित है पर उससे भी अधिक आवश्यक सत्कर्म, सदाचार, परोपकार आदि आत्म-कल्याण करने वाले गुणों की तरफ ध्यान देना है। 'गरुड़ पुराण' में यह कहा गया है कि 'ज्ञानी और सत्यव्रती व्यक्ति बिना और्ध्वदैहिक कर्मकाण्ड के भी परलोक में उच्चगति प्राप्त करते हैं।' इसलिये लौकिक प्रथाओं के साथ ही आत्मिक गुणों का धारण और पालन करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

श्री गरुड़पुराण (द्वितीय खण्ड) की

विषय—सूची

श्री गरुड़पुराण (उत्तरार्ध)

(प्रेतकल्प)

—०※०—

श्रीगरुड महापुराणम्

(द्वितीय खण्ड)

९३—राजवंश वर्णन

शतानीको ह्यश्वमेधदत्तश्चाप्यधिसोमकः ।
कृष्णोऽनिरुद्धश्चाप्युष्णस्ततश्चित्ररथो नृपः ॥१
शुचिद्रथो वृष्णिमांश्च सुषेणश्च सुनीथकः ।
नृचक्षुश्च मुखाबाणो मेधावी च नृपञ्जयः ॥२
पारिप्लवश्च सुनयो मेधावी च नृपञ्जयः ।
हरिस्तिग्मो बृहद्रथः शतानीकः सुदानकः ॥३
उदानोऽह्निनरश्चैव दण्डपाणिर्निमित्तकः ।
क्षेमकश्च ततः शूद्रः पिता पूर्वस्ततः सुतः ॥४
बृहद्बलास्तु कथ्यन्ते नृपाश्चेक्ष्वाकुवंशजाः ।
बृहद्बलादुरुक्षयो वत्सव्यूहस्ततः परः ॥५
बृहदश्वो भानुरथः प्रतीव्यश्च प्रतीतकः ।
मनुदेवः सुनक्षत्रः किन्नरश्चान्तरिक्षकः ॥६
सुपर्णः कृतजिच्चैव बृहद् भ्राजश्च धार्मिकः ।
कृतञ्जयो धनञ्जयः सञ्जयः शाक्य एव च ॥७
शुद्धोदनो बाहुलश्च सेनजित्क्षुद्रकस्तथा ।
समित्रः कुड़वश्चातः सुमित्रो मागधान् शृणु ॥८

श्री हरि ने कहा—शतानीक-अश्वमेध दत्त—अधिसोमक-कृष्ण-अनिरुद्ध-उष्ण और इसके पश्चात् चित्ररथ नृप हुए ।।१।। शुचिद्रथ—वृष्णिमान्—सुषेण—सुनीथक—नृचक्षु—सुखावाण—मेधावी—नृपञ्जय—पारिप्लव—सुनय—मेधावी-नृपञ्जय—हरि—तिग्म—बृहद्रथ-शतानीक-सुदानक-उदान- अह्निनर दण्डपाणि—निमित्तक—क्षेमक—इसके अनन्तर शूद्र पिता पूर्व इसके उपरान्त सुत ये सब हुए थे ।।२।३।४।। ये इक्ष्वाकु के वंश में जन्म लेने वाले नृप बृहद्बल कहे जाते हैं। वृन्द्वन से उरक्षय इससे वत्सव्यूह हुआ था ।।५।। बृहदश्व-भानुरथ प्रतीव्य—प्रतीनक—मनुदेव—सुनक्षत्र—किन्नर—अन्तरिक्ष—सुपर्ण—कृतजित् और धर्मनिष्ठ बृहद्भाज-कृतञ्जय—धनञ्जय—सञ्जय—शाक्य—शुद्धोदन—बाहुल—सनजित्—क्षुद्रक-समित्र-कुडव और इससे सुमित्र ये सब हुए थे । अब मागधों का श्रवण करो ।।६।७।८।।

जरासन्ध सहदेव सोमापिश्च श्रुतश्रवाः ।
अयुतायुर्निरमित्र स्वक्षेत्रा बहुकर्मक ।।९

श्रुतञ्जय सेनजिच्च भूरिश्चैव शुचिस्तथा ।
क्षेम्यश्च सुव्रतो धर्म श्मश्रु मा दृढसेनकः ।।१०

सुमति सुबलो नीतो सत्यजिद्विश्वजित्तथा ।
इपुञ्जयश्च इत्येत नृपा बार्हद्रथा स्मृता. ।।११

अधर्मिष्ठाश्च शूद्राश्च भविष्यन्ति नृपास्तत ।
स्वर्गादिकृद्धि भगवान्साक्षान्नारायणोऽव्यय ।।१२

नैमित्तिक प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लय ।
याति भू प्रलयस्चाम्बु आपस्तजसि पावक ।।१३
वायो वायुश्च वियति आकाश यात्यहङ्कृतो ।
अहबुद्धो मतिर्जीवे जीवोऽव्यक्ते तदात्मनि ।।१४
आत्मा परश्वरो विष्णुरेका नारायणो नर ।
अविनाश्यपर सर्व जगत्सर्गादि नाहि हि ।।१५
नृपादयो गता नाशमत पाप विवर्जयेत् ।
धर्म कुर्य्यात्स्थिर येन पाप हित्वा हरि व्रजेत् ।।१६

मगध देश में होने वाले नृपतियों में जरासन्ध—सहदेव—सोमापि—श्रुतश्रवा—अयुतायु—निरमित्र—स्वक्षेत्र—बहुकर्मक—श्रुतञ्जय—सेनजित्—भूरि—शुचि—क्षेम्य—सुव्रत—धर्म—श्मश्रुम—दृढसेनक—सुमति—सुबल—नीत—सत्यजित्—विश्वजित्—इष्टुञ्जय—ये सब नृप बार्हद्रथ कहे गये हैं ।।९।१०।११।। इसके उपरान्त सब अधार्मिष्ठ और शूद्र नृपति होंगे । स्वर्ग आदि के प्रदान करने वाले अव्यय साक्षात् भगवान् नारायण ही होते हैं ।। १२ ।। तीन प्रकार का लय होता है जिनके नाम नैमित्तिक—प्राकृतिक और आत्यन्तिक होते हैं । यह भूमि जल में लय को प्राप्त हो जाती है । जल तेज में और वह तत्त्व तेज अर्थात् पावक वायु में तथा वायु आकाश में लय होता है । वह आकाश अहङ्कार में, अहङ्कार बुद्धि में, बुद्धि जीव में, जीव अव्यक्त में और यह अव्यक्त आत्मा मे लय होता है ।।१३।।१४।। आत्मा ही पर ईश्वर विष्णु एक है—वह ही नारायण नर और विनाश रहित है । अन्य यह समस्त जगत् और सर्ग आदि नाशवान् है ।। १५ ।। जितने भी बड़े २ महान् नृप आदि इस मही मण्डल पर हो गये हैं वे सभी नाश को प्राप्त हो गये हैं और यहाँ स्थायी रूप से किसी की भी स्थिति नहीं हो सकी है । अतः सबका निष्कर्ष यही है कि पाप कर्मों से बचे रहो और धर्म के कर्म करो जिससे स्थिर होते हुए सम्पूर्ण पापों का नाश कर भगवान् श्री हरि के सान्निध्य में पहुंच जाओ ।।१६।।

६४—रामायण-सार

रामायणमतो वक्ष्ये श्रुतं पापविनाशनम् ।
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ।।१
मरीचेः कश्यपस्तस्माद्रविस्तस्मान्मनुः स्मृतः ।
मनोरिक्ष्वाकुरस्याभूद्वंशे राजा रघुः स्मृतः ।।२
रघोरजस्ततो जातो राजा दशरथो बली ।
तस्य पुत्रास्तु चत्वारो महाबलपराक्रमाः ।।३
कौशल्यायामभूद्रामो भरतः कैकयीसुतः ।
सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां बभूवतुः ।।४
रामो भक्तः पितुर्मातुर्विश्वामित्रादवाप्तवान् ।
अस्त्रग्रामं ततो यक्षीं ताड़कां प्रजघान ह ।।५

विश्वामित्रस्य यज्ञे वै सुबाहुं न्यवधीद्बली ।
जनकस्य क्रतुं गत्वा उपयेमेऽथ जानकीम् ॥६
उर्मिला लक्ष्मणो वीरो भरतो माण्डवीं सुताम् ।
शत्रुघ्नो वै कीर्त्तिमती कुशध्वजसुते उभे ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—इसलिये अब हम सम्पूर्ण पापों के विनाश करने वाली रामायण का वर्णन करते हैं। भगवान् विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा हुए थे और मरीचि उनके पुत्र हुए थे ॥१॥ मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। उससे रवि की उत्पत्ति हुई और रवि से मनु का जन्म हुआ था। मनु से इक्ष्वाकु पैदा हुए थे और फिर इसके वंश में रघु नाम वाला महान् प्रतापी राजा हुआ था ॥२॥ रघु से अज की उत्पत्ति हुई और फिर अज महाराज के दशरथ नाम वाले नृप ने जन्म ग्रहण किया था। यह बहुत ही बलवान् हुए थे। महाराज दशरथ के महान् बल और पराक्रम वाले चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे ॥३॥ दशरथ महाराज की सबसे बड़ी पत्नी कौशल्या के उदर से श्रीराम का जन्म हुआ था और कैकेयी के पुत्र का नाम भरत था। लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन दो पुत्रों ने सुमित्रा ने जन्म लिया था ॥४॥ श्रीराम अपने माता-पिता के परम भक्त थे। श्रीराम ने महर्षि विश्वामित्र से सम्पूर्ण अस्त्रों की विद्या को प्राप्त किया था। वहाँ विश्वामित्र के आश्रम में ही यक्षी ताड़का का वध किया था ॥५॥ विश्वामित्र के यज्ञ में बलशाली श्रीराम ने सुबाहु का वध किया था। इसके पश्चात् महाराजा जनक की यज्ञशाला में पहुँच कर धनुर्भङ्ग करके जानकी के साथ विवाह किया था ॥६॥ वीरवर लक्ष्मण ने उर्मिला का—भरत ने सुता माण्डवी का—शत्रुघ्न ने कीर्त्तिमती का पाणि ग्रहण किया था। ये दोनों कुशध्वज की पुत्री थीं ॥७॥

पित्रादिभिरयोध्यायां गत्वा रामादयः स्थिताः ।
युधाजित मातुलश्च शत्रुघ्नभरतौ गतौ ॥८
गतयोर्नृपवर्य्योऽसौ राज्यं दातुं समुद्यतः ।
रामाय तत्सुपुत्राय कैकेय्या प्रार्थितं तदा ॥
चतुर्दश समा वासो वने रामस्य वाञ्छितः ॥९

रामः पितुर्हितार्थश्च लक्ष्मणेन च सीतया ।
राज्यञ्च तृणवत्त्यक्त्वा शृङ्गवेरपुरं गतः ॥१०
रथं त्यक्त्वा प्रयागञ्च चित्रकूटगिरिं गतः ।
रामस्य तु वियोगेन राजा स्वर्गं समाश्रितः ॥११
संस्कृत्य भरतश्चागाद्राममाह बलान्वितः ।
अयोध्यां तु समागत्य राज्यं कुरु महामते ॥१२
स नैच्छत्पादुके दत्त्वा राज्याय भरताय तु ।
विसर्जितोऽथ भरतो रामराज्यमपालयत् ॥१३
नन्दिग्रामे स्थितो भक्तो ह्ययोध्यां नाविशद् व्रती ।
रामोऽपि चित्रकूटाच्च अत्रेराश्रममाययौ ॥१४

अयोध्या में आकर श्रीराम आदि सब भाई अपने माता–पिता के साथ स्थित रहे थे। भरत और शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित के पास चले गये थे ॥ ८ ॥ इन दोनों भाइयों के ननसाल चले जाने के बाद नृप श्रेष्ठ दशरथ ने श्रीराम को राज्याभिषिक्त करने का विचार किया था। उसके अति सत्पुत्र राम के लिए कैकेयी ने चौदह वर्ष पर्यन्त वन में निवास कराने का वरदान राजा से माँग कर वचन ले लिया था ॥९॥ श्रीराम ने अपने पिता के हित के लिए अपनी पत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ अयोध्या के महान् विशाल राज्य वैभव को एक तिनके की भाँति त्याग कर वनवास को प्रस्थान कर दिया और शृङ्ग-वेर पुर में चले गये थे ॥ १० ॥ मार्ग में रथ का त्याग कर वह प्रयाग और चित्रकूट गिरि पर चले गये थे। प्राणाधिक प्रिय श्रीराम जैसे पुत्र के वियोग से महाराज दशरथ ने पार्थिव शरीर का त्याग कर स्वर्ग का प्रस्थान कर दिया था ॥११॥ भरत ने ननसाल से आकर पिता का दाह-संस्कार आदि सम्पूर्ण कर्म किया और बल—दल सहित वन में श्रीराम के समीप पहुँच कर उनसे प्रार्थना की कि आप वापिस अयोध्या जाकर अपना राज्य-शासन स्वीकार करें ॥ १२ ॥ श्रीराम ने पिता के वचनों का पूर्ण पालन करने के विचार से इस प्रार्थना को स्वीकृत नहीं किया था और राज्यशासन पर रखने के लिए अपनी चरण—पादुकाएँ प्रदान कर भरत को विदा कर दिया था कि अपने प्रतिनिधि

क स्वरूप में तब तक वह राज्य का पालन करे ॥१३॥ भरत ने नन्दग्राम जैसा पूर्ण व्रत का पालन किया था। उसने अयोध्या म प्रवेश नहीं किया था और नन्दि ग्राम मे स्थित होकर रहने लग थे। श्रीराम भी इसके अनन्तर चित्रकूट स अत्रि मुनि क आश्रम मे पहुँच गये थे ॥१४॥

नत्वा सुतीक्ष्ण चागस्त्य दण्डकारण्यमागत ।
तत्र शूर्पणख्या नाम राक्षसी चात्तुमागता ॥१५
निकृत्य कर्णौ नासे च रामेणाथापराहिता ।
तत्प्रेरित खरश्चागाद् दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥१६
चतुर्दशसहस्रेण रक्षसा तु बलेन च ।
रामोऽपि प्रेषयामास बाणैर्यमपुरञ्च तान् ॥१७
राक्षस्या प्रेरितोऽस्यागाद्रावणो हरणाय हि ।
मृगरूप स मारीच कृत्वाग्रेऽस्थ त्रिदण्डधृक् ॥१८
सीतया प्रेरितो रामा मारीच निजधान ह ।
म्रियमाण स च प्राह हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१६
सीतोक्तो लक्ष्मणोऽप्यागाद्रामश्चानु ददर्श तम् ।
उवाच राक्षसी माया नून सीता हृतेति मा ॥२०
रावणोऽन्तरमासाद्य अङ्केनादाय जानकीम् ।
जटायुप विनिर्भिद्य ययौ लङ्का ततो बली ॥२१

वहाँ पर सुतीक्ष्ण और अगस्त्य मुनि को प्रणाम करके फिर दण्डकारण्य नामक वन में आगये थे। वहा पर शूर्पणखा नाम वाली एक राक्षसी इनको खाने के लिए आ गई थी ॥१५॥ उसके दानो कान और नाक काटकर भगवान् श्रीराम ने उसे अपराहित कर दिया था। उसने जाकर अपने दुःख और इस कुरूपता के अपमान का रोना भाई खर तथा दूषण के सामने किया तो उससे प्रेरित होकर वे खर-दूषण और त्रिशिरा चौदह हजार राक्षसों की सेना लेकर इनसे युद्ध करने को वहाँ आगये थे। श्रीराम ने अपने अमोघ बाणो से सभी को मार कर यमपुर भेज दिया था। १६।१७॥ फिर उस शूर्पणखा राक्षसी ने जग-ज्जननी जानकी की सुन्दरता बतलाते हुए अपने अपमानित होने की बात रावण

से आकर कही थी और रावण ने सीता के हरण के लिए मारीच को मृग का रूप बनाकर आगे कर दिया और वह एक तीन दण्ड धारी संन्यासी का रूप धारण कर यहाँ आ गया था ।।१८। सीता ने सोने के मृग की छाला प्राप्त करने को राम को प्रेरित कर उसे मारने को भेज दिया था और ईश्वर राम ने मारीच का वध किया था। मरते समय मारीच ने "हा सीते! हा लक्ष्मण!" ये शब्द मुँह से निकाले थे। इन शब्दों को सुनकर जानकी ने लक्ष्मण को भी राम को देखने के लिए पीछे से भेज दिया था। लक्ष्मण को पीछे से आया हुआ श्रीराम ने देखकर कहा—निश्चय ही राक्षसों की माया के द्वारा सीता का हरण होगया है।। १६।२० ।। इसी अन्तर में रावण ने जानकी को गोद में उठाकर हरण किया था। मार्ग में वह बलवान् राक्षस रावण जटायु का भेदन कर जानकी को लङ्कापुरी में ले पहुँचा था ।।२१।।

> अशोकवृक्षच्छायायां रक्षितां तामधारयत् ।
> आगत्य रामः शून्याञ्च पर्णशालां ददर्श ह ।।२२
> शोकं कृत्वा जानक्या मार्गणं कृतवान्प्रभुः ।
> जटायुषञ्च संस्कृत्य तदुक्तो दक्षिणां दिशम् ।।२३
> गत्वा सख्यं ततश्चक्रे सुग्रीवेण च राघवः ।
> सप्त तालान्विनिर्भिद्य शरेणानतपर्वणा ।।२४
> बालिनञ्च विनिर्भिद्य किष्किन्धायां हरीश्वरम् ।
> सुग्रीवं कृतवान्राम ऋष्यमूके स्वयं स्थितः ।।२५
> सुग्रीवः प्रेषयामास वानरान्पर्वतोपमान् ।
> सीताया मार्गणं कर्त्तुं पूर्वाद्यैः सुमहाबलान् ।।२६
> प्रतीचीमुत्तरां प्राचीं दिशं गत्वा समागताः ।
> दक्षिणान्तु दिश ये च मार्गयन्तोऽथ जानकीम् ।।२७
> वनानि पर्वतान्द्वीपान्नदीनां पुलिनानि च ।
> जानकीन्ते ह्यपश्यन्तो मरणे कृतनिश्चयाः ।।२८

वहाँ रावण ने अशोक वृक्ष की छाया में उसे रख दिया था। उधर श्रीराम ने देखा था कि पर्णशाला जानकी से रहित सूनी थी ।।२२।। श्रीराम ने

हृदय मे बहुत शोक किया और फिर जानकी की खोज करते हुए वे इधर–उधर वन मे भ्रमण करने लगे। जटायु को मृत प्राय देखा और उसके मर जाने पर उसका सस्कार किया था। जटायु न दक्षिण दिशा मे जानकी को ले जाने की बात बताई थी ॥२३॥ फिर श्रीराम ने ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर सुग्रीव के साथ मित्रता की थी। सुग्रीव को अपन बाणो की अमोघता सात तालो को भेदन कर दिखलाई थी और सुग्रीव के भाई बाली को मार कर सुग्रीव को किष्किन्धा पुरी का राजा बना दिया था। इसके अनन्तर स्वय राम ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने लगे थे। सुग्रीव न सीता की खोज करने के लिए बडे–बडे बलवान् वानरों को भेजा था। वे बलवान् वन्दर उत्तर आदि दिशाओं से तथा पूर्व और पश्चिम सभी दिशाओ से खोज करके वापिस लौट आये थे। जो बन्दर सीता को ढूंढने के लिये दक्षिण दिशा में गए थे उन्होने वन,नदियों के पुलिन,पर्वत और द्वीपो मे सर्वत्र जानकी की खोज की थी किन्तु उन्होने कहीं पर भी जानकी को नहीं पाया तो फिर उन सबने मरने का निश्चय किया था ॥२४ से २८॥

सम्पातिवचनाज्ज्ञात्वा हनूमान्कपिकुञ्जर.।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे मकरालयम् ॥२६

अपश्यज्जानकीं तत्र अशोकवनिकास्थिताम्।
भर्त्सिता राक्षसीभिश्च रावणेन च रक्षसा ॥३०

मम भार्य्येति वदता चिन्तयन्तीञ्च राघवम्।
अङ्गुरीयं कपिर्दत्त्वा सीता कौशल्यमब्रवीत् ॥३१

रामस्य तस्य दूतोऽहं शोकं मा कुरु मैथिलि।
स्वाभिज्ञानञ्च मे देहि येन रामः स्मरिष्यति ॥३२

तच्छ्रुत्वा प्रददौ सीता वेणीरत्नं हनूमते।
यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा वाच्यं त्वया गते ॥३३

तथेत्युक्त्वा तु हनुमान्वनं दिव्यं बभञ्ज ह।
हत्वाक्षं राक्षसांश्चान्यान्बन्धनं स्वयमागत. ॥३४

सर्वैरिन्द्रजितो बाणैर्दृष्ट्वा रावणमब्रवीत्।
रामदूतोऽस्मि हनुमान्देहि रामाय मैथिलीम् ॥३५

जटायु के भाई सम्पाति गृद्ध के वचन से ज्ञान प्राप्त करके वानरों में परम शिरोमणि हनुमान् ने सौ योजन के विस्तार वाले समुद्र को लाँघ लिया था ॥२६॥ और फिर अशोक वाटिका के मध्य में सस्थित जानकी को लङ्कापुरी में हनुमान् ने पहुंच कर देखा था । वहाँ बहुत-सी राक्षसियाँ उनको भर्त्सना दे रहीं थीं और कभी-कभी रावण भी आकर भय-त्रस्त किया करता था ॥ ३० ॥ रावण बार-बार जानकी से मेरी भार्या बन जाओ—यही कहता था। सीता अहर्निश श्री राघवेन्दु का चिन्तन किया करती थीं । इसी बीच में हनुमान् ने श्रीराम की दी हुई अँगूठी देकर समस्त कुशलता उन्हें सुना दी थी ॥ ३१ ॥ हनुमान् ने कहा—हे मैथिली ! मैं श्रीराम का दूत हूं—अब आप कोई भी शोक न करिये । अब आप कोई अपनी पहिचान की वस्तु दे दीजिए जिसको देखकर राम स्मरण करेंगे ॥३२॥ यह हनुमान् की प्रार्थना का श्रवण करके सीता ने अपनी वेणी का रत्न निकाल कर हनुमान् को दे दिया था और हनुमान् से जानकी ने यह कहा कि श्रीराम से कहना कि मुझे शीघ्र ही निकाल कर लिवा ले जावें । हनुमान् ने कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा । फिर हनुमान ने लङ्का के उद्यान को नष्ट कर दिया था जोकि बहुत ही अच्छा बना हुआ था । इस पर आये हुए अक्षय कुमार रावण के पुत्र का वध कर दिया और अन्य भी बहुत-से राक्षसों का बध कर दिया था और फिर स्वयं ही बन्धन में आ गये थे ॥३३-॥३४॥ मेघनाद ने हनुमान् को बाँधकर रावण के सामने पहुँचाया तो वहाँ हनुमान् ने कहा—हे रावण ! मैं राम का दूत हूँ—अब तुझे जानकी को श्रीराम की सेवा में भेज देना चाहिए—इसी में तुम्हारा कल्याण है ॥३५॥

एतच्छ्रुत्वा प्रकुपितो दीपयामास पुच्छकम् ।
कपिर्ज्वलितलाङ्गूलो लङ्कां देहे महाबलः ॥३६
दग्ध्वा लङ्कां समायातो रामपार्श्वं स वानरः ।
जग्ध्वा फलं मधुवने दृष्टा सीतेत्यवेदयत् ॥३७
वेणीरत्नञ्च रामाय रामो लङ्कापुरीं ययौ ।
ससुग्रीवः सहनुमान्साङ्गदाद्यः सलक्ष्मणः ॥३८
विभीषणोऽपि सम्प्राप्तः शरणं राघवं प्रति ।
लङ्कैश्वर्येऽभ्यषिञ्चद्रामस्तं रावणानुजम् ॥३९

रामो नलेन सेतुञ्च कृत्वाब्धौ चोत्ततार तम् ।
सुवेलावस्थितश्चैव पुरी लङ्का ददर्श ह ॥४०
अथ ते वानरा वीरा नीलाङ्गदनलादय ।
धूम्रधूम्राक्षवीरेन्द्रा जाम्बवत्प्रमुखास्तदा ॥४१
मैन्दद्विविदमुखास्ते पुरी लङ्का बभञ्जिरे ।
राक्षसाश्चमहाकायान्कालाञ्जनचयोपमान् ॥४२
राम मलक्ष्मणो हत्वा सकपिः सर्वराक्षसान् ।
विद्युज्जिह्वञ्च धूम्राक्ष देवान्तकनरान्तकौ ॥४३
महोदरमहापार्श्वातिकाय महाबलम् ।
कुम्भ निकुम्भ मत्तञ्च मकराक्ष ह्यकम्पनम् ॥४४
प्रहस्त वीरमुन्मत्त कुम्भकर्णं महाबलम् ॥४५

हनुमान की ऐसी बात सुनकर रावण को बड़ा क्रोध आगया था और उसने हनुमान की पूँछ मे आग लगवादी थी । जब पूँछ मे आग की ज्वालाओं ने भीषण रूप धारण किया तो उस महान् बलवान् हनुमान् ने लङ्कापुरी को जला दिया था ॥३६॥ उस पूरी लङ्कापुरी को जलाकर वह वानर शिरोमणि हनुमान् वापिस श्रीराम के समीप मे आगया था, किष्किन्धा पुरी मे आकर वहाँ के उद्यान में यथेष्ट रूप से फल खाकर अर्थात् मधुवन मे फल खाने के पश्चात् फिर हनुमान् ने जानकी के प्राप्त करने का समाचार श्रीराम को सुना दिया था ॥३७॥ इसके अनन्तर हनुमान् ने जानकी के द्वारा दिया हुआ वह वेणी का रत्न जो एक अभिज्ञान के रूप मे लाया था श्रीराम को दे दिया था । श्रीराम ने लक्ष्मण–सुग्रीव–अङ्गद प्रभृति सबके साथ लङ्कापुरी मे चढ़ाई कर दी थी । फिर रावण का भाई विभीषण श्रीराम की शरणागति में आगया था । रावणादि के सम्पूर्ण राज्य का स्वामी विभीषण को बनाकर उसका पहिले ही अभिषेक कर दिया था । इसके उपरान्त नल नामक वानर के द्वारा समुद्र मे पुल बनाकर सागर को पार कर लङ्का के पास समुद्र के तट पर अपना पड़ाव श्रीराम ने डाल दिया था । वहाँ से ही लङ्कापुरी का भली भाँति निरीक्षण किया था ॥३८।३९।४०॥ इसके अनन्तर बड़े-बड़े वीर वानर जिनमे नील—अङ्गद–

नल–घूम–धूम्राक्ष–वीरेन्द्र—परम प्रमुख जाम्ववान्–मैन्द–द्विविद आदि सभी थे। इन सबने लङ्का को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया था बड़े वीर काले पर्वत के समान विशालकाय सभी राक्षसों का हनन करके वानरों के और लक्ष्मण के सहित राम ने भयानक युद्ध किया था। धूम्राक्ष ने विद्युज्जिह्व को–देवान्तक–नरान्तक को–महोदर—महापार्श्व–अतिकाय—महाबल—कुम्भ—निकुम्भ—मत्त—मकराक्ष–अकम्पन–प्रहस्त का वध किया था। वीर—उन्मत्त–कुम्भकर्ण महाबली का हनन किया था ॥४१ से ४५॥

> रावणि लक्ष्मणश्छित्वा ह्यस्त्राद्यै राघवो बली ।
> निकृत्य बाहुचक्राणि रावणं तु व्यपातयत् ॥४६
> सीतां शुद्धां गृहीत्वाथ विमाने पुष्पके स्थितः ।
> सवानरः समायातो ह्ययोध्यां प्रवरां पुरीम् ॥४७
> तत्र राज्यं चकाराथ पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ।
> दशाश्वमेधानाहृत्य गयाशिरसि पातनम् ॥४८
> पिण्डानां विधिवत्कृत्वा दत्वा दानानि राघवः ।
> पुत्रौ कुशलवौ दृष्ट्वा तौ राज्येऽभ्यषेचयत् ॥४६
> एकादशसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ।
> शत्रुघ्नो लवणं जघ्ने शैलूषो भरतः स्थितः ॥५०
> अगस्त्यादीन्मुनीन्नत्वा श्रुत्वोत्पत्तिश्च रक्षसाम् ।
> स्वर्गं गतो जनैः सार्द्ध मयोध्यास्थै कृतार्थकः ॥५१

रावण के पुत्र इन्द्रजीत मेघनाद का वध लक्ष्मण ने किया था और अतुल बलशाली श्रीराम ने अपने अस्त्रों के द्वारा रावण की भुजाओं का छेदन कर उसका हनन रणभूमि में कर दिया था। ४६ ॥ इसके अनन्तर सीता की शुद्धि करके अपने साथ में ले लिया और पुष्पक विमान पर समारूढ़ होकर प्रमुख परम भक्त वानरों के सहित श्रेष्ठतम अयोध्यापुरी में श्रीराम चले आये थे ॥४७॥ यहाँ पर आकर अपनी समस्त प्रजा को पुत्र की तरह समझ कर प्रेम-पूर्वक उसका पालन किया और राज्य का शासन किया था। दश अश्वमेध यज्ञ किये तथा गया तीर्थ में विधि पूर्वक पितृगणों का पिण्डदान किया था तथा बहुत-से

दान भी दिये थे। श्रीराम ने अपने दो पुत्र कुश और लव को राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥४८॥ ग्यारह सहस्र वर्ष तक श्रीराम ने राज्य किया था। शत्रुघ्न ने लवण को पैदा किया था और भरत ने शैलूष को समुत्पन्न किया था। अगस्त्य आदि मुनियों को प्रणिपात करके और राक्षसों की उत्पत्ति का श्रवण करके पूर्णतया कृतार्थ होकर अयोध्या में स्थित सब मनुष्यों के साथ श्रीराम स्वर्ग में चले गये थे ॥४९।५०।५१॥

६५—हरिवंश सार

हरिवंश प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ।
वसुदेवात्तु देवक्यां वासुदेवो बलोऽभवत् ॥१
धर्मादिरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये ।
कृष्णः पीत्वा स्तनौ गाढं पूतनामनयत्क्षयम् ॥२
शकटं परिवृत्तोऽथ भग्नौ च यमलार्जुनौ ।
दमितः कालियो नागो धेनुको विनिपातितः ॥३
धृतो गोवर्द्धनः शैल इन्द्रेण परिपूजितः ।
भारावतरणं चक्रे प्रतिज्ञा कृतवान्हरिः ॥४
रक्षणायार्जुनादेश्च अरिष्टश्च विनिपातितः ।
केशी विनिहतो दैत्यो गोपाश्च परितोषिताः ॥५

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम हरिवंश का वर्णन करते हैं जिसमें परमोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य है। वसुदेव से देवकी भार्या में वासुदेव बल उत्पन्न हुए थे ॥१॥ वासुदेव की समुत्पत्ति धर्म आदि के संरक्षण करने के लिए तथा अधर्म प्रभृति के विनाश करने के लिए ही हुई थी। श्रीकृष्ण ने पूतना के खूब जोर से स्तनों को पीकर उसका क्षय कर दिया था ॥२॥ श्रीकृष्ण ने शकट को परिवृत्त कर दिया था और यमलार्जुनों को भग्न कर दिया था। कालिय नाग का दमन किया तथा धेनुकासुर का विनिपातन किया था ॥ ३ ॥ गोवर्द्धन पर्वत को कनिष्ठिका पर धारण कर समस्त व्रज की इन्द्र के कोप से रक्षा की थी और इन्द्र के द्वारा परिपूजित हुए थे। हरि भगवान् ने प्रतिज्ञा की थी और भूमि के भार का अवतरण कर दिया था ॥४॥ अर्जुन आदि की रक्षा

करने के लिये अरिष्ट आदि का निपातन किया था। केशी नाम वाले दैत्य का वध किया था तथा गोप आदि सबको परितुष्ट कर दिया था ।।५।।

चाणूरोमुष्टिको मल्लः कंसो मञ्चान्निपातितः ।
रुक्मिणीसत्यभामाद्या अष्टौ पत्न्यो हरेः पराः ।।६
षोडशस्त्रीसहस्राणि अन्यान्यासन्महात्मनः ।
तासां पुत्राश्च पौत्राद्या शतशोऽथ सहस्रशः ।।७
रुक्मिण्याञ्चैव प्रद्युम्नो न्यवधीच्छम्बरञ्च यः।
तस्य पुत्रोऽनिरुद्धोऽभूदुषाबाणसुतापतिः ।।८
हरिशङ्करयोर्यत्र महायुद्धं बभूव ह ।
बाणबाहुसहस्रञ्च छिन्नं बाहुद्वयो ह्यभूत् ।।९
नरको निहतो येन पारिजातं जहार यः ।
बलश्च शिशुपालश्च हतश्च द्विविदः कपिः ।।१०
अनिरुद्धादभूद्वज्रः स च राजा गते हरौ ।
सान्दीपनि गुरुञ्चक्रे सपुत्रञ्च चकार सः ।।
मथुरायाञ्चोग्रसेनं पालनञ्च दिवौकसाम् ।।११

मथुरा में पहुंच कर चाणूर और मुष्टिक नाम वाले मल्लों को मार गिराया था तथा राजा कंस को चोटी पकड़ कर मञ्च से नीचे गिरा कर हनन किया था। रुक्मिणी और सत्यभामा आदि श्रीकृष्ण की आठ प्रमुख पत्नियाँ हुईं थीं ।।६।। महान् आत्मा वाले श्रीकृष्ण की अन्य भी सोलह सहस्र पत्नियाँ थीं। उनके पुत्र और पौत्र सैकड़ों एवं सहस्रों की संख्या में हुए थे ।। ७ ।। रुक्मिणी से प्रद्युम्न पुत्र की उत्पत्ति हुई थी जिसने शम्बर का वध किया था। प्रद्युम्न के आत्मज का नाम अनिरुद्ध था जो बाण की पुत्री उषा के पति थे। ।। ८ ।। जहाँ पर हरि और शङ्कर इन दोनों का महान् युद्ध था। बाण की सहस्र बाहु छिन्न होगईं थीं और दो बाहुओं वाला होगया था ।। ९ ।। जिसने नरकासुर का निहनन किया था जोकि पारिजात वृक्ष के हरण करने वाला था। बल और शिशुपाल हुए। द्विविद नामक कपि मारा गया था। अनिरुद्ध से वज्र नाभ हुए। वह हरि के गत होने पर राजा हुआ था। श्रीकृष्ण ने सान्दीपनि

को अपना गुरु बनाया था अर्थात् समस्त विद्याओं का अध्ययन सान्दीपनि से किया था। गुरु दक्षिणा के रूप में उनके मृत पुत्र को लाकर दिया था जिससे पुत्र, पुत्र वाले होगये थे। मथुरा में उग्रसेन को राजा फिर से बनाया था और देवों का पूर्णतया पालन किया था ॥१०।११॥

६६—महाभारत सार

भारत सम्प्रवक्ष्यामि भारावतरणं भुवः ।
चक्रे कृष्णो युध्यमानः पाण्डवादिनिमित्ततः ॥१
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः ।
सोमस्ततो बुधस्तस्मादुर्वश्याश्च पुरूरवाः ॥२
तस्यायुस्तत्र वंशेऽभूद्ययातिर्भरतः कुरुः ।
शन्तनुस्तस्य वंशेऽभूद् गङ्गायां शन्तनोः सुतः ॥३
भीष्मः सर्वगुणैर्युक्तो ब्रह्मवैवर्तपारगः ॥४
शन्तनोः सत्यवत्याश्च द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ।
चित्राङ्गदं तु गन्धर्वः पुत्र चित्राङ्गदोऽवधीत् ॥५
भार्या विचित्रवीर्य्योऽभूत्काशिराजसुतापतिः ।
विचित्रवीर्य्ये स्वर्याते व्यासात्क्षेत्रतोऽभवत् ॥६
धृतराष्ट्रोऽम्बिकापुत्रः पाण्डुरम्बालिकासुतः ।
भुजिष्यायान्तु विदुरो गान्धार्य्यां धृतराष्ट्रतः ॥७
दुर्य्योधनप्रधानास्तु शतसंख्या महाबलाः ।
पाण्डोः कुन्त्याश्च माद्रयाश्च पञ्च पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—अब हम महाभारत के विषय में वर्णन करेंगे जोकि इस भूमि पर एक अत्यन्त विशाल भार का अवतरण हुआ था। इसी मही मण्डल के भार को हटाने के लिये भारत युद्ध की पूरी भूमिका भगवान् श्रीकृष्ण ने ही की थी और अर्जुन आदि पाण्डवों को इसका एक निमित्त मात्र बना कर ही यह युद्ध किया गया था ।१॥ भगवान् आदि पुरुष विष्णु की नाभि से समुत्पन्न कमल में ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई फिर ब्रह्मा के पुत्र अत्रि मुनि हुए और अत्रि से सोम समुत्पन्न हुए। सोम से बुध और बुध से उर्वशी में पुरूरवा

ने जन्म ग्रहण किया था ।। २ ।। पुरूरवा का पुत्र आयु हुआ और उस वंश में ययाति—भरत और कुरु हुए थे । इनके उपरान्त राजा शन्तनु ने जन्म लिया । उस शन्तनु से गङ्गा में भीष्म (देव व्रत) नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी जो समस्त गुणगण युक्त और ब्रह्म वैवर्त्त के पारगामी थे ।।३।४।। राजा शन्तनु की दूसरी पत्नी जो सत्यवती एक मल्लाह की पुत्री थी उसमें दो पुत्र समुत्पन्न हुए थे । एक उन दोनों मे चित्राङ्गद पुत्र था जिसको चित्राङ्गद गन्धर्व ने वध कर दिया था ।।५।। दूसरा विचित्र वीर्य नाम वाला आत्मज हुआ था जिसका विवाह काशिराज की पुत्री के साथ हुआ था । विचित्र वीर्य के स्वर्ग गमन कर जाने पर महर्षि व्यासदेव से उसके क्षेत्र अर्थात् पत्नी में अम्बिका नाम की स्त्री से धृतराष्ट्र और अम्बालिका नामधारिणी स्त्री से पाण्डु का जन्म हुआ था । भुजिष्या नाम वाली एक दासी से विदुर की उत्पत्ति हुई थी । धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी थी उसमें सौ पुत्र हुए थे जो कौरव नाम से विख्यात हुए थे । इनमें दुर्योधन प्रधान था और ये सब महान् बल वाले हुए थे । पाण्डु से कुन्ती और माद्री नाम वाली दो पत्नियों में पांच पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो पाण्डव—इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ।।६।७।८।।

युधिष्ठिरो भीमसेनो ह्यर्जुनो नकुलस्तथा ।
सहदेवश्च पञ्चैते महाबलपराक्रमाः ॥६
कुरुपाण्डवयोर्वैर दैवयोगाद्बभूव ह ।
दुर्योधनेनाधीरेण पाण्डवाः समुपद्रुताः ॥१०
दग्ध्वा जतुगृहं वीरास्ते मुक्ता स्वधियामलाः ।
ततस्तदेकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥११
विप्रवेशा महात्मानो निहत्य बकराक्षसम् ॥१२
ततः पाञ्चालविषये द्रौपद्यास्ते स्वयंवरम् ।
विज्ञाय वीर्य्यशुल्कान्तां पाण्डवा उपयेमिरे ॥१३
द्रोणभीष्मानुमत्या तु धृतराष्ट्रः समानयत् ।
अर्द्धराज्यं ततः प्राप्ता इन्द्रप्रस्थे पुरोत्तमे ॥१४

इन पांचों पाण्डवों के नाम युधिष्ठिर–भीमसेन–अर्जुन–नकुल और सहदेव थे । ये पाँचों पुत्र महान् बल और पराक्रम से समन्वित हुए थे ।।६।। कुछ दैव

का ऐसा योग बन गया था कि इन कौरव और पाण्डवों में बड़ा भारी आपस में वैर होगया था। अधीर दुर्योधन ने पाण्डवों को बहुत ही पीड़ित करना आरम्भ कर दिया था। वह इनका समूलो-मूलन कर स्वयं सम्पूर्ण साम्राज्य के सुख का उपभोग करना चाहता था॥ १० ॥ दुर्योधन ने एक लाख का महल बनवा कर उसमें इन पाण्डवों को जला देने की योजना तैयार की थी किन्तु ये परम विशुद्ध पाण्डव अपने बुद्धि-वैभव से उसमें से भी मुक्त होकर बच गये थे। ये सब बड़े ही बहादुर थे। इसके उपरान्त वे एक चक्रा में ब्राह्मण के घर में विप्रवेश वाले महात्मा रह थे। फिर बक नामक राक्षस का निहनन किया था ॥११।१२॥ इसके अनन्तर पाञ्चाल देश में उन्होंने द्रौपदी का स्वयम्वर होगा—यह जानकर वहाँ लक्ष्य वेध कर वीर्य के शुल्क वाली द्रौपदी के साथ विवाह किया था ॥१३॥ फिर आचार्य द्रोण और पितामह भीष्म की अनुमति से धृतराष्ट्र ने उनको बुला लिया था। इसके अनन्तर उत्तम नगर इन्द्रप्रस्थ में रहने लगे और आधा राज्य प्राप्त कर लिया था ॥१४॥

राजसूय ततश्चक्रु सभा कृत्वा यतव्रता ।
अर्जुना द्वारवत्यान्तु सुभद्रा प्राप्तवान्प्रियाम् ॥
वासुदेवस्य भगिनी मिश देवकिनन्दनम् ॥१५
नन्दिघोष रथं दिव्यमग्नेर्धनुरनुत्तमम् ।
गाण्डीव नाम तद्दिव्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥
अक्षयान्सायकाश्चैव तथाभेद्यश्च दशनम् ॥१६
स तेन धनुषा वीर पाण्डवो जातवेदसम् ।
कृष्णाद्वितीयो बीभत्सुस्तर्पयत वीर्यवान् ॥१७
नृपान्दिग्विजये जित्वा रत्नान्यादाय वै ददौ ।
युधिष्ठिराय महते भ्रात्रे नीतिविदे मुदा ॥१८
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभि परिवारित ।
जितो दुर्योधनेनैव मायाद्यूतेन पापिना ॥१९
कर्णदुःशासनमते स्थितेन शकुनेर्मते ।
अथ द्वादश वर्षाणि वने तेपुर्महत्तप ॥२०

सधौम्या द्रौपदीषष्ठा मुनिवृन्दाभिसंवृताः ।
ययुर्विराट्नगरं हि गुप्तरूपेण संश्रिताः ॥२१

इसके अनन्तर यत व्रत वाले पाडवों ने सभा करके राजसूय यज्ञ किया था। अर्जुन ने द्वारका में सुभद्रा के साथ विवाह कर लिया था जो वासुदेव की भगिनी थी। अर्जुन के देवकीनन्दन मित्र थे ॥१५॥ नन्दिघोष-अग्नि का दिव्य रथ और परमोत्तम दिव्य गाण्डीव धनुष ये तीनों लोकों में विश्रुत हैं। कभी क्षय को प्राप्त न होने वाले सायक और अभेद्य दंशन है ॥१६॥ उसने उस धनुष के द्वारा जातवेदा को तृप्त कर दिया था। पांडव महान् वीर पराक्रमी था और कृष्ण की सहायता से युक्त एवं बीभत्सु था ॥१७॥ अर्जुन ने दिग्विजय किया था, उसमें बहुत से राजाओं पर विजय प्राप्त की थी। रत्नों की राशि लाकर नीति के ज्ञाता बड़े भाई युधिष्ठिर को प्रसन्नता पूर्वक समर्पित की थी ॥ १८ ॥ युधिष्ठिर बहुत ही धर्मात्मा थे किन्तु भाइयों से परिवारित उसको पापी दुर्योधन ने मायाद्यूत क्रीड़ा के द्वारा जीत लिया था ॥१९॥ दुर्योधन ने जो द्यूत (जूआ) क्रीड़ा की योजना बनाई थी वह कर्ण—दुःशासन और शकुनि से सम्मति करके ही की थी। द्यूत में सभी कुछ हार जाने के पश्चात् पांडवों ने बारह वर्ष तक वन में तपस्या की थी ॥२०॥ द्रौपदी के साथ पाँचों पांडव धौम्य सहित मुनियों के वृन्द से अभिसंवृत होते हुए विराट् के नगर में पहुंचे थे। वहाँ जाकर गुप्त रूप से अर्थात् अपना अन्य नाम और गुण-कर्म बताकर आश्रय ग्रहण किया था ॥ २१ ॥

वर्षमेकं महाप्रज्ञा गोग्रहादिमपालयन् ।
ततो ज्ञाताः स्वकं राष्ट्रं प्रार्थयामासुराहृताः ॥२२
पञ्चग्रामानर्द्धराज्याद्वीरा दुर्योधनं नृपम् ।
नाप्तवन्तः कुरुक्षेत्रे युद्धञ्चक्रुर्बलान्विताः ॥२३
अक्षौहिणीभिर्दिव्याभिः सप्तभिः परिवारिताः ।
एकादशभिरुद्युक्ता युक्ता दुर्योधनादयः ॥२४
आसीद्युद्धं सङ्कुलञ्च देवासुररणोपमम् ।
भीष्मः सेनापतिरभूदादौ दौर्य्योधने बले ॥२५

पाण्डवाना शिखण्डी च तयार्युद्ध बभूव ह ।
शस्त्राशस्त्रि महाघोर दशरात्र शराशरि ॥२६
शिखण्ड्यर्जुनबाणाश्च भीष्म शरशतैर्युत ।
उत्तरायणमीक्ष्माय ध्यात्वा देव गदाधरम् ॥२७
उक्त्वा धर्मान्बहुविधास्तपयित्वा पितृन्बहून् ।
आनन्द तु पद लीनो विमल मुक्तकिल्विष ॥२८

इस प्रकार स महान् प्राज्ञ इन पाँचो पाण्डवो ने द्रौपदी के सहित एक वर्ष तक अज्ञातवास वहाँ पर गोगृहादि के पालन करते हुए किया था। इसके पश्चात् ज्ञात होते हुए आहूत होकर अपने राष्ट्र प्राप्त करने की प्रार्थना की थी ॥ २२ ॥ इन्होने पाँचो भाइयो क लिए केवल पाँच ही ग्राम अपने अपने राज्य से दुर्योधन से माँगे थ किन्तु उस प्रार्थना को भी दुर्योधन ने स्वीकार नही किया था। तब दल-बल से समन्वित होकर इन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान म युद्ध किया था जो महान् भारत युद्ध क नाम से प्रख्यात हुआ था ॥२३॥ पाण्डवो क पास केवल सात ही अक्षौहिणी सेना थी और दुर्योधन आदि कौरव ग्यारह अक्षौहिणी सेना से समन्वित थे। इस प्रकार से दोनो ओर की अठारह अक्षौहिणी सेना का युद्ध हुआ था ॥ २४ ॥ यह बड़ा सकुल युद्ध हुआ था। इस युद्ध को देवो और असुरो के समूह स होने वाले युद्ध के समान ही अति भीषण बताया गया है। आदि म दुर्योधन की सेना मे भीष्म पितामह ने सेनापति क पद को सभाला था ॥२५॥ पाण्डवों के दल का सेनाध्यक्ष शिखण्डी हुआ था। इस तरह दोनो दलों का महान् घोर युद्ध शस्त्रो का शास्त्रों से तथा शरों का शरा के द्वारा दश रात्रि तक चलता रहा ॥२६॥ शिखण्डी को आगे कर अर्जुन न बाणो के द्वारा भीष्म सैकडो शरों से विद्ध कर दिये गये थे। जब भीष्म पितामह ने अपना अन्त समय समझ लिया तो प्राणत्याग के लिये उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा म देव गदाधारी का ध्यान करने लगे थे ॥२७॥ उस समय मे भीष्म ने बहुत प्रकार के धर्मों का वर्णन किया-अपने पितृगण को तृप्त किया और फिर मुक्त किल्विष विमल आनन्दमय पद मे विलीन होगये थे ॥२८॥

ततो द्रोणो ययौ योद्धु धृष्टद्युम्नेन वीर्यवान् ।
दिनानि पञ्च तद्युद्धमासीत्परमदारुणम् ॥२९

यत्र ते पृथिवीपाला हताः पार्थास्त्रसागरे ।
शोकसागरमासाद्य द्रोणोऽपि स्वर्गमाप्तवान् ॥३०

ततः कर्णो ययौ योद्धुमर्जुनेन महात्मना ।
दिनद्वयं महायुद्धं कृत्वा पार्थास्त्रसागरे ॥
निमग्नः सूर्य्यलोकन्तु ततः प्राप स वीर्य्यवान् ॥३१

ततः शल्यो ययौ योद्धुं धर्मराजेन धीमता ।
दिनार्द्धेन हतः शल्यो बाणैर्ज्वलनसन्निभैः ॥३२

दुर्य्योधनोऽथ वेगेन गदामादाय वीर्य्यवान् ।
अभ्यधावत वै भीमं कालान्तकयमोपमः ॥३३

अथ भीमेन वीरेण गदया विनिपातितः ।
अश्वत्थामा गतो द्रौणिः सुप्तसैन्यं ततो निशि ॥३४
जघान बाहुवीर्य्येण पितुर्वधमनुस्मरन् ।
धृष्टद्युम्नं जघानाथ द्रौपदेयांश्च वीर्य्यवान् ॥३५

इसके अनन्तर महान् पराक्रमी आचार्य द्रोण धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करने के लिए युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुए थे। पाँच दिन तक यह युद्ध परम दारुण हुआ ॥२९॥ इस युद्ध में अनेक नृपति पार्थास्त्र सागर में निहत होगये थे। फिर अन्त में द्रोणाचार्य भी शोक सागर में प्राप्त होकर स्वर्गगामी होगये थे ॥३०॥ फिर कर्ण अर्जुन के साथ युद्ध करने के लिए आया। इसके साथ भी दो दिन पर्यन्त युद्ध होता रहा और यह भी पार्थ अर्जुन के अस्त्रों के सागर में भीषण समर करता हुआ निमग्न होगया। यह महा पराक्रमी कर्ण मरकर सूर्यलोक में प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ फिर धीमान् धर्मराज युधिष्ठिर के साथ युद्ध करने के लिये शल्य उपस्थित हुआ। आधे ही दिन में शल्य निहत होगया था क्योंकि अग्नि के समान बड़े तीक्ष्ण बाणों की वर्षा हुई ॥३२॥ इसके पश्चात् दुर्योधन, जो महान् वीर्य—पराक्रम से युक्त था, बड़े ही वेग से गदा लेकर कालान्तक यमराज के समान भीम पर दौड़ कर आया ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर वीरवर भीम ने उस दुर्योधन को अपनी गदा के द्वारा निपातित कर दिया। इसके अनन्तर द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा रात्रि में सेना के सोने पर गया ॥३४॥ उसने

अपने पिता द्रोण के वध का स्मरण करते हुए बाहुओं के पराक्रम से धृष्टद्युम्न का हनन कर दिया और द्रौपदी के पुत्रों का भी हनन किया ॥३५॥

द्रौपद्या रुद्यमानायामश्वत्थाम्न शिरोमणिम् ।
ऐषिकास्त्रेण त जित्वा जग्राहार्जुन उत्तम ॥३६
युधिष्ठिर समाश्वास्य स्त्रीजन शोकमङ्कुलम् ।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवाश्च पितृनथ पितामहान् ॥३७
आश्वासितोऽथ भीमेन राज्यश्चैवाकरोन्महत् ।
विष्णुमीजेऽश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ॥३८
राज्ये परीक्षित स्थाप्य यादवाना विनाशनम् ।
श्रुत्वा तु मौशले राजा जप्त्वा नामसहस्रकम् ॥
विष्णो स्वर्गं जगामाथ भीमाद्यैर्भ्रातृभिर्युत ॥३९
वासुदेव पुनर्बुद्ध स माहाय सुरद्विषाम् ।
देवादीना रक्षणाय अधर्महरणाय च ॥४०
दुष्टानाञ्च बधार्थाय अवतार करोति च ।
यथा धन्वन्तरिर्विप्रो जात क्षीरोदमन्थने ॥४१
देवादीना जीवनाय आयुर्वेदमुवाच ह ।
विश्वामित्रसुतायैव सुश्रुताय महात्मने ॥
भारताश्चावताराश्च श्रुत्वा स्वर्गं व्रजेन्नर ॥४२

जब द्रौपदी के पुत्र की मृत्यु होगई और वह बहुत रुदन करने लगी तो अश्वत्थामा को निग्रहीत कर ऐषिकास्त्र के द्वारा अर्जुन ने उसको जीत लिया और उसकी शिरोमणि को ग्रहण कर लिया ॥ ३६ ॥ महाराज युधिष्ठिर को समाश्वासित करके परम शोक से सन्तप्त स्त्रीजनों को समझा–बुझाकर देवों तथा पितृगण को स्नान के पश्चात् सन्तृप्त किया ॥३७॥ भीम के द्वारा आश्वासित होकर युधिष्ठिर ने महान् राज्य का शासन किया और अश्वमेध यज्ञ के द्वारा भगवान् विष्णु का यजन किया, जिसमें विधि–विधान के साथ विपुल दक्षिणादि दी गई ॥ ३८ ॥ बहुत दिन पर्यन्त अपने भाइयों के सहित राज्य के सुखों का उपभोग करने के पश्चात् मौशल युद्ध मे यादवों का पूर्ण विनाश सुनकर फिर

युधिष्ठिर ने राज्यासन पर परीक्षित को स्थापित कर दिया। भगवान् के सहस्र नाम का जाप करके भीमादि भाइयों के साथ विष्णु के स्वर्ग में गमन किया ॥ ३६ ॥ वासुदेव पुनः बुद्ध हुए। सुरों के द्वेषी लोगों के मोह के लिए और देवादि के रक्षण के वास्ते तथा अधर्म के हरण करने के निमित्त और दुष्टों के वध करने के अर्थ भगवान् अवतार ग्रहण किया करते हैं जिस प्रकार से क्षीर सागर के मन्थन के अवसर पर भगवान् धन्वन्तरि आविर्भूत हुए थे। उन्होंने देवादिकों के जीवन के लिए आयुर्वेद शास्त्र का उपदेश दिया और उस आयुर्वेद शास्त्र का अध्यापन विश्वामित्र महर्षि के पुत्र सुश्रुत को किया। सुश्रुत भी एक महान् आत्मा वाले महा पुरुष थे। इस तरह इन भारत अवतारों का जो मनुष्य श्रवण करता है वह स्वर्गलोक की प्राप्ति किया करता है ॥४०।४१।४२॥

६७—आयुर्वेद

सर्वरोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तत्त्वतः ।
आत्रेयाद्यैर्मुनिवरैर्यथा पूर्वमुदीरितम् ॥१
रोगः पाम्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुष्टमामयः ।
यक्ष्मातङ्कगदावाधाः शब्दाः पर्य्यायवाचिनः ॥२
निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥३
निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।
निदानमाहुः पर्य्यायैः प्राग्रूप येन लक्ष्यते ॥४
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ।
लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥५
तदेव व्यक्ततां जातं रूपमित्यभिधीयते ।
संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥६
हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम् ।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥७
विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ।
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्येति संज्ञितः ॥८

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम समस्त रोगों के निदान अर्थात् मूलकारण को तुमको बतलाते हैं जिसको तत्त्व पूर्वक आत्रेय आदि मुनि-श्रेष्ठों ने पहिले बतलाया था ॥१॥ यह रोग पाप होता है, ज्वर व्याधि है और किसी भी प्रकार का विकार का होना दुष्ट आमय होता है। इनके यक्ष्मा—आतङ्क—गदा—बाधा ये सभी शब्द पर्याय वाचक अर्थात् समानार्थक शब्द हुआ करते हैं ॥ २ ॥ निदा—पूर्वरूप—रूप अर्थात् रोग का स्वरूप—उपशय और सम्प्राप्ति इन पाँचों के द्वारा रोगों का विज्ञान अर्थात् विशेष रूप से भली भाँति ज्ञान प्राप्त करना होता है ऐसे यह पाँच प्रकार का निदान ही कहा जाता है क्योंकि इन्हीं से वास्तविक रोगों का ज्ञान होता है ॥३॥ केवल निदान के भी निमित्त—हेतु—आयतन—प्रत्यय उत्थान कारण इन पर्याय वाचक शब्दों के द्वारा कहा गया है जिससे कि रोगों का आग्रूप लक्षित हुआ करता है ॥ ४ ॥ उत्पन्न होने वाला आमय अर्थात् रोग किसी विशेष दोष से ही अधिष्ठित हुआ करता है। लिङ्ग अर्थात् व्याधियों का चिह्न अल्प होने से अव्यक्त प्रकाश में न आने वाला और ठीक प्रकार से न जानने के योग्य होता है ॥५॥ आरम्भ में वह कुछ छिपा हुआ-सा रहता है किन्तु शनै २ अपना एक प्रकट स्पष्ट स्वरूप धारण कर लेता है तो उसी को उसका रूप कहा करते हैं। किसी दोष के होने से निदान हुआ। उसका फिर एक अव्यक्त स्वरूप बनकर पूर्व रूप हुआ और जब वह व्यक्त होकर सामने स्पष्ट होगया तो रूप होगया अर्थात् रोग सही स्वरूप आगया। इसको सस्थान—व्यञ्जन लक्षण—चिह्न और आकृति कहते हैं ॥ ६ ॥ हेतु—व्याधि से विपर्यस्त और विपर्यस्त अर्थ के करने वाले औषध—अन्न और विहारों का उपयोग सुखावह होता है उसको व्याधि का उपशय कहते हैं। इसी को सात्म्य नाम से भी कहा जाता है। इसके जो विपरीत हो अर्थात् औषध—अन्न और विहारों का उपयोग सुख देने वाला न हो वही अनुपशय कहा जाता है। इसी को व्याधि की असात्म्य यह संज्ञा दी गई है ॥७।८॥

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्यातिरागति ॥९
सख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषत. ।
सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥१०

द्रोषाणां समवेतानां विकल्पोऽशांशकल्पना ।
स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेःप्राधान्यमादिशेत् ॥११
हेत्वादिकात्स्नर्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ।
नक्तं दिनर्तु भुक्तांशैर्व्याधिकालो यथा मलम् ॥१२
इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ।
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥१३
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ।
अहितस्त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः ॥१४

जिस प्रकार से दुष्ट दोष से और जैसे अनुविसर्पण करने वाले से रोग की निवृत्ति है यह सम्प्राप्ति होती है । इसका आगमन संख्या–विकल्प–प्रधानता बल और काल की विशेषता से होता है । इन्हीं कारणों से इसके भेद भी होते हैं । अब यहाँ आठ प्रकार के ज्वर बतलाते हैं ॥ ६।१० ॥ समवेत अर्थात् एक साथ मिलकर उपस्थित हुए दोषों का विकल्प और उनके अशांश की कल्पना का होना स्वतन्त्रता से और पराधीनता से उनसे होने के अनुसार ही व्याधि के प्राधान्य को बतलाना चाहिए ॥ ११ ॥ हेतु आदि के पूर्ण अवयवों से बल और अबल की विशेषता होती है । दिन–रात और ऋतु में भुक्त अशों से व्याधि का काल मल की भाँति होता है ॥१२॥ इस प्रकार से यह निदान का अर्थ ठीक–ठीक बता दिया गया है । व्यासदेव के द्वारा यह उपदिष्ट किया जाता है कि समस्त रोगों का आदिकारण निदान मलों का कुपित हो जाना ही होता है ॥१३॥ उसका प्रकोप अनेक प्रकार की अहित कर वस्तुओं का सेवन करने से होता है । अहित तीन प्रकार का होता है जोकि तीनों का योग है और पहिले बता दिया गया है ॥१४॥

तिक्तोषणकषायाम्लरूक्षाप्रमितभोजनैः ।
धावनोदीरणनिद्राजागरात्युच्चभाषणैः ॥१५
क्रियाभियोगभीशोकचिन्ताव्यायाममैथुनैः ।
ग्रीष्माहोरात्रभुक्तान्ते प्रकुप्यति समीरणः ॥१६
पित्त कट्वम्लतीक्ष्णोष्णकटुक्रोधविदाहिभिः ।
शरन्मध्याहरात्र्यर्द्धविदाहसमयेषु च ॥१७

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यन्दिशीतलैः ।
आस्यास्वप्नसुखाजीर्णदिवास्वप्नादिवृ हणैः ॥१८
प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवसन्तयो. ।
पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा वक्ष्यामि सङ्करान् ॥१६

तीन प्रधान दोष हैं जिनके नाम वात—पित्त और कफ ये होते हैं। इनमें भी सबसे प्रबल वायु को ही माना जाता है। अत. प्रथम वात के प्रकोप के कारणों पर प्रकाश डालते हैं—तिक्त-उपरण-कषाय-अम्ल-रूक्ष और अप्रमित भोजन से-दौड लगाना-उदीरण-निद्रा-जागरण-अधिक ऊँचे स्वर से भाषण-क्रिया का अभियोग-भय-शोक-चिन्ता-शक्ति से अधिक व्यायाम-मैथुन से-ग्रीष्म में तथा अहोरात्र मे भोजन से अन्त में वायु प्रकुपित हो जाया करता है। उपर्युक्त कार्य अधिक मात्रा मे ही प्रकोप करने वाले होते हैं ॥१५।१६॥ अब पित्त को कुपित होने के कारणों को बतलाते हैं—कटु-अम्ल (खट्टा)-तीक्ष्ण (तेज)-उष्ण (अधिक गर्म)-क्रोध और विशेष दाह करने वाले भोजन से—शरद् ऋतु के मध्य मे—दिन-रात के अर्ध विदाह के समय मे पित्त प्रकुपित होता है। अब कफ के प्रकोप के कारण और समय बतलाते हैं—स्वादु-अम्ल-लवण-स्निग्ध-गुरु (भारी)-अभिस्पन्दन करने वाले-शीतल भोजन से-आस्य-अस्वप्न (निद्रा न लेना)-सुख-अजीर्ण-दिन मे सोना—वृंहण—अछर्दनादि के अयोग से-वसन्त ऋतु मे-दिन के पूर्वाह्न मे (दुपहर के पूर्व मे) और पूर्व रात्रि मे कफ प्रकुपित होता है। अब इन तीनो दोषो के मिश्रण के विषय मे बतलाते हैं ॥१७।१८।१६॥

मिश्रीभावात्समस्ताना सन्निपातस्तथा पुनः ।
सकीर्णाजीर्णविषमविरुद्धाद्यशनादिभि. ॥२०
व्यापन्नमद्यपानीयशुष्कशाकाममूलकैः ।
पिण्याकमृत्यवसरपूतिशुष्ककृपामिषैः ॥२१
दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथान्नपरिवर्त्ततः ।
धातोर्दुष्टात्पुरो वाताद्ग्रिग्रहावेशविप्लवात् ॥२२
दुष्टामान्नैरतिश्लेष्मग्रहैर्जन्मर्क्षपीडनात् ।

मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानाञ्च निषेवणात् ॥
स्त्रीणां प्रसववैषम्यात्तथा मिथ्योपचारतः ॥२३
प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगविध्यनुगामिनः ।
रसायनं प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ॥२४

वात–पित्त और कफ इन तीनों समस्तों के मिलावट से जो प्रकोप होता है उसे ही सन्निपात कहते हैं। यह सङ्कीर्ण भोजन—अजीर्ण—विषम भोजन अर्थात् ऐसे भोजन जो परस्पर में विषमता रखने वाले हैं जैसे क्षीर और दधि आदि—विरोधी भोजन से–व्यापन्नता–मद्य–पानीय–शुष्क शाकाम मूलक से–पिण्याक मृतवसर—दुर्गन्ध युक्त भोजन से–शुष्क कृष्ट आमिष से तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं। अन्न के परिवर्त्तन से—ऋतु के दोष से—पहिले वात से और विग्रह–आवेश एवं विप्लव से—दुष्टामान्न से—अति श्लेष्मा से—ग्रहों से–जन्म नक्षत्र के पीड़न से—मिथ्यायोग से और अनेक प्रकार के पापों के करने से—स्त्रियों के प्रसव के वैषम्य से तथा मिश्रित उपचार से प्रत्येक रोग में रोग विधि के अनुगमन करने वाले तीनों दोष प्रकुपित हो जाते हैं। रसायन को प्राप्त कर ये दोष शीघ्र ही देह में विकार किया करते हैं ॥२० से २४॥

६८—ज्वर निदान

वक्ष्ये ज्वरनिदानं हि सर्वज्वरविबुद्धये ।
ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युराजोऽशनोऽन्तकः ॥
क्रुद्धदक्षाध्वरध्वंसिरुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥१
तत्सन्तापो मोहमयः सन्तापात्मापचारजः ।
विविधैर्नामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्त्तते ॥२
पाकलो गजेष्वभितापो वाजिष्वलर्कः कुक्कुरेषु ।
इन्द्रमदो जलदेष्वप्सु नीलिका ज्योतिरोषधीषु भूम्यामूषरो नाम ।
हृल्लासश्छर्दनं कासः स्तम्भः शैत्यं त्वगादिषु ।
अङ्गेषु च समुद्भूताः पीड़काश्च कफोद्भवे ॥३।४
काले यथास्तं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा ।
निदानोक्तानुपशयो विपरीतो यथापि वा ॥५

ग्ररुचिश्चाविपाकश्च स्तम्भमालस्यमेव च ।
हृद्दाहश्च विपाकश्च तन्द्रा चालस्यमेव च ॥
वस्तिविमर्दावनया दोषाणामप्रवर्त्तनम् ॥६

लालाप्रसेका हृल्लास क्षुन्नाशो रसद मुखम् ।
स्वच्छमुष्णगुरुत्वञ्च गात्राणां बहुमूत्रता ॥
न विजीर्ण न च ग्लानिर्ज्वरस्यामस्य लक्षणम् ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब समस्त प्रकार के ज्वरों के ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्वर का निदान बतलाया जाता है। यह सब रोगों का स्वामी है—पाप स्वरूप है—मृत्युराज—अशन (भक्षण करने वाला) और अन्त कर देने वाला होता है। यह दक्ष प्रजापति पर क्रोध करने वाले और उसके यज्ञ को विध्वंस करने वाले भगवान् रुद्र के ऊपर के तीसरे नेत्र से उत्पन्न हुआ था ॥१॥ उस ज्वर का सन्ताप मोह से परिपूर्ण होता है। यह सन्तापात्मा और अपचार से समुत्पन्न होने वाला है। यह विविध नामों से युक्त एवं अत्यन्त क्रूर और नाना योनियों में होता है ॥२॥ हाथियों में जो ज्वर का अभिताप होता है उसका नाम पाकल होता है। घोड़ों में होने वाले ताप को अलर्क नाम से कहा जाता है। कूकरों में जो ज्वर होता है उसको इन्द्रापद' कहते हैं। जलदों में जल में इसका नाम नीलिका है। औषधियों में इसी को ज्योति कहा करते हैं। भूमि में इसको 'ऊषर' इस नाम से पुकारते हैं ॥३॥ हृदय में वेदना-छर्दन अर्थात् जी की मतली-खांसी-स्तम्भ और त्वचा आदि में शीतलता अर्थात् शरीर का ठण्डा पड़ जाना—सम्पूर्ण अङ्गों में पीड़ा का उत्पन्न होना ये सब कफ के दोष से उत्पन्न ज्वर में होते हैं ॥४॥ किसी काल में इन सबका शमन और किसी समय में प्रवृत्ति तथा बढ़ाव हुआ करता है। निदान में उक्त अनुपशय अथवा इसके विपरीत होता है ॥ ५ ॥ अरुच—अविपाक अर्थात् किसी भी पदार्थ की ओर रुचि का न होना और खाये हुए पदार्थ का परिपाक न होना—स्तम्भ यानी शरीर का ज्यों कि त्यों रह जाना—आलस्य (शरीर में सुस्ती का होना)—हृदय में दाह अर्थात् जलन का होना—विपाक—तन्द्रा (नींद जैसी खुमारी का रहना)—आलस्य—वस्ति—विमर्द इनसे दोषों का प्रवर्त्तन नहीं

होता है ॥६॥ लाला प्रसेक अर्थात् मुख से लारों का गिरना—हृल्लास—क्षुधा का न रहना—मुख में पानी का आना—शरीर के अङ्गों में स्वच्छता—उष्णता और भारीपन रहना—पेशाब का अधिक आना—विशेष रूप से जीर्णता का न होना और ग्लानि का न होना ये सब पाप ज्वर के लक्षण हुआ करते हैं। जो खाये हुए पदार्थ का परिपाक होकर पूर्ण रस नहीं बनता है और कच्चा ही रह जाता है वह आम कहा जाता है जोकि मल के साथ चिकना-सा निकला करता है ॥७॥

क्षुत्क्षामता लघुत्वञ्च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ।
दोषप्रवृत्तिरष्टाहान्निरामज्वरलक्षणम् ॥
यथा स्वलिङ्गं संसर्गे ज्वरसंसर्गजोऽपि वा ॥८
शिरोर्त्तिमूर्च्छावमिदेहदाहकण्ठास्यशोषावपि पर्वभेदाः ।
उन्निद्रता सम्भ्रमरोमहर्षा जृम्भातिवाक्त्वं पवनात्सपित्तात् ॥६
तापहान्यरुचिपर्वशिरोमरिाक्षीरणश्वासकासविवर्गाः ।
शीतजाड्यतिमितभ्रमिनन्द्राश्लेष्मवातजनितज्वरलिङ्गम् ॥१०
शीतस्तम्भस्वेददाहाव्यवस्थास्तृष्णा कासः श्लेष्मपित्तप्रवृत्तिः ।
मोहस्तन्द्रा लिप्ततिक्तास्यता च ज्ञेयं रूपं श्लेष्मपित्तज्वरस्य ॥११
सर्वजो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः ।
तद्वच्छीतं तिमिरनिद्रा दिवा जागरणं निशि ॥१२
सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदो हि नैव वा ।
गीतनर्त्तनहास्यादिः प्रकृतेहाप्रवर्त्तनम् ॥१३
साश्रुणी कलुषे रक्ते भुग्ने लुलितपक्ष्मणी ।
अक्षिणी पिण्डिकापार्श्वशिरःपर्वास्थिरुग्भ्रमः ॥१४

क्षुधा से क्षामता का होना—गात्रों की लघुता अर्थात् हलकापन—ज्वर मार्दव—दोष की प्रवृत्ति आठ दिन में होती है—यह निराम ज्वर का लक्षण होता है। अपने चिह्न जैसे संसर्ग में हैं अथवा ज्वर के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला भी वह होता है ॥८॥ शिर में बड़ा दर्द—मूर्च्छा अर्थात् बेहोशी का होना वमि अर्थात् उल्टी का होना—शरीर में दाह का होना—गले और मुख का शुष्क

रहना—शरीर के जोड़ो मे भेदन का होना—नीद का न आना—सम्भ्रम अर्थात् चक्कर आना—रोमाञ्चो का होना—जँभाइयो का अधिक आना और जर्जर देना ये लक्षण पित्त के साथ वायु के दोष से हुआ करते है ॥ ९ ॥ ताप की कमी—अरुचि—गाँठो मे और माथे मे पीड़ा—श्वास का क्षीणता के साथ चलना—खासी का होना—विवर्णता—शीत का आना—जड़ता—आँखो के सामने अँधेरापन का होना—तन्द्रा का रहना ये सब कफ और वात मे मिश्रित होकर उत्पन्न होने वाले ज्वर का लक्षण होना है ॥१०॥ शीत-स्तम्भता-पसीने का आना—दाह का होना और इनकी कोई व्यवस्था का न रहना अर्थात् कभी पसीना आता है—दाह होता है और कभी-कभी ये नही होते हैं। प्यास का अधिक लगना—खासी का होना य सब लक्षण हो तो समझ लेना चाहिए कि रोगी को कफ और पित्त से मिश्रित ज्वर है। जब कफ और पित्त दोनो ही दोष मिलकर कुपित होते है तब ऐसे ही रोगी के लक्षण हुआ करते है। श्लेष्मा (कफ) और पित्त से होने वाले ज्वर का यही स्वरूप होता है कि उसको मोह—तन्द्रा और मुख का लिप्त-सा होना तथा तिक्त स्वाद का रहना होता है ॥११॥ यदि ये सभी लक्षण दिखलाई देवे तो समझना चाहिए कि सभी दोषो मे युक्त ज्वर है। इसम बार-बार दाह होता है। इसी प्रकार से शीत-अँधेरा-निद्रा दिन मे होना और रात्रि मे जागरण होता है ॥१२॥ अथवा सदा ही निद्रा नही होती है या नीद ही रहा करती है। कभी-कभी बहुत अधिक पसीना आता है और कभी बिल्कुल भी नही होता है। गीत-नृत्य और हास्य आदि प्रकृत चेष्टाओ की प्रवृत्ति होती है ॥ १३ ॥ नेत्रो मे आँसू होते हैं और आँखें कलुषित रक्त-भुग्न-झुकी हुई पलको वाली रहा करती है। पिडलियाँ—पसवाड़े—माथा और जोड़ो म तथा हड्डियो मे वेदना होती है और भ्रम होता है ॥१४॥

सस्वनो सरुजो कर्णौ महाशीतो हि नैव वा।
ष्ठीवन रक्तपित्तस्य लोठन शिरसोऽतितृट्।
कोठाना श्यावरक्ताना मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥१६
हृद्व्यथा मलससर्ग प्रवृत्तिर्वाल्पशोऽपि वा।
स्निग्धास्यता बलभ्रशः स्वरसाद प्रलापिता. ॥१७

परिदग्धा खरा जिह्वा गुरुस्रस्ताङ्गसन्धिता ॥१५

दोषपाकश्चिरं तन्द्रा प्रततं कण्ठकूजनम् ।
सन्निपातमभिन्यासं तं ब्रूयाच्च हतौजसम् ।।१८
वायुना कण्ठरुद्धेन पित्तमन्तःसुपीडितम् ।
व्यवायित्वाच्च सौख्याच्च बहिर्मार्गं प्रपद्यते ।।
तेन हारिद्रनेत्रत्वं सन्निपातोद्भवे ज्वरे ।।१९
दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ।।२०
अन्यत्र सन्निपातोत्थं यत्र पित्तं पृथक् स्थितम् ।
त्वचि कोष्ठे च वा दाहं विदधाति पुरोऽनु वा ।।२१

कानों में भी पीड़ा होती है और भुन-भुनाहट-सी होती रहती है। कभी-कभी महान् शीत होता है और कभी नहीं होता है। जीभ परिदग्ध और खरखरी रहा करती है। अङ्गों की सन्धियों में गुरुता और स्रस्तता रहती है ।।१५।। थूक में रक्त पित्त होता है। शिर में लोठन होता है और प्यास बहुत अधिक लगती है। कोष्ठ श्याव तथा रक्त वर्ण के होते हैं और मण्डलों का दर्शन भी होता है ।।१६।। हृदय में व्यथा होती है। मल का संसर्ग ऐसा होता है कि कभी तो बहुत अधिक जाता है और कभी अत्यन्त अल्प ही निकलता है। मुख का जायका स्निग्धता वाला होता है जैसे कोई लुआवसा घुल रहा हो। बल की क्षीणता हो जाती है। स्वर भी बिगड़ जाया करता है। कभी-कभी प्रलाप होता है ।।१७।। चिरकाल में दोप का परिपाक होता है। तन्द्रा और कण्ठ में घरघराहट की आवाज होती है। जिसमें ओज का हनन हो जाता है ऐसा यह अभिन्यास सन्निपात कहते हैं ।। १८ ।। वायु के द्वारा कण्ठ के रुद्ध हो जाने से अन्दर पित्त सुपीड़ित होता है। वह व्यवायी और सौख्य होने से बाहिर के मार्ग को प्राप्त होता है। सन्निपात से उत्पन्न होने वाले ज्वर में नेत्रों में हल्दी के समान नेत्रों का रङ्ग हो जाता है ।।१९।। सब प्रकार से पूर्ण लक्षणों वाला रोग सन्निपात ज्वर एक असाध्य रोग हो जाता है अथवा साध्य भी होता है तो यह बहुत कठिनाई से अच्छा होता है। दोषों के बढ़ जाने पर अग्नि नष्ट हो जाया करती है ।।२०।। अन्यत्र सन्निपात से उठा हुआ जब पित्त पृथक् स्थित होता है तो त्वचा में--कोष्ठ में पहिले या पीछे दाह किया करता है ।।२१।।

तद्वद्वातकफे शीत दाहादिर्दुस्तरस्तयो ।
शीतादौ तत्र पित्तेन कफे स्पन्दितशोषिते ॥२२
पित्ते शान्तेऽथ वै मूर्च्छा मदस्तृष्णा च जायते ।
दाहादौ पुनरन्तेपु तन्द्रालस्ये वमि क्रमात् ॥२३
आगन्तुरभिघाताभिपङ्गशापाभिचारत ।
चतुर्धा तु कृत स्वेदो दाहाद्य रभिघातज ॥२४
श्रमाच्च तस्मिन्पवन प्रायो रक्त प्रदूपयन् ।
सव्यथाशोकवैवर्ण्यं सरुज कुरुते ज्वरम् ॥२५

इसी प्रकार से वात—कफ में शीत और दुस्तर दाह आदि उन दोनों में हुआ करते हैं। उस दशा मे शीत आदि मे पित्त के द्वारा कफ के स्पन्दित एव शोषित होने पर तथा पित्त के शान्त हो जाने पर मूर्च्छा—मद और तृष्णा हो जाते हैं। दाह के आदि में और फिर अन्त में तन्द्रा—आलस्य और वमन क्रम से हुआ करते हैं ॥२२।२३॥ अभिघात–अभिषङ्ग–शाप और अभिचार इनसे आने वाला चार तरह से किया हुआ स्वेद (पसीना) होता है। दाहादि से अभिघातज होता है ॥ २४ ॥ क्रम मे उसमें वायु बहुधा रक्त को दूषित करता हुआ व्यथा–शोक और विवर्णता के सहित ज्वर का सरुज किया करता है ।२५।

६६—चिकित्सा के विभिन्न योग

एव धन्वन्तरिर्विष्णु सुश्रुतादीनुवाच ह ।
हरि पुनर्हरायाह नानायोगान्रुगर्दनान् ॥१
सर्वज्वरेपु प्रथम कार्य शङ्कर लङ्घनम् ।
क्वथितोदकपानञ्च तथा निर्वातिसेवनम् ॥२
अग्निस्वेदाज्ज्वरास्त्वेव नाशमायान्ति हीश्वर ।
वातज्वरहर क्वाथो गुडूच्या मुस्तकस्य च ॥३
दुरालभं कृत क्वाथ पित्तज्वरहर शृणु ।
शुण्ठीपर्पटमुस्तैश्च वालकोशीरचन्दनै. ॥४
साज्य क्वाथ· श्लेष्मजन्तु सशुण्ठि सदुरालभ. ।
सवालक. सर्वज्वर सशुण्ठि सहपर्पट ॥५

क्वाथश्च तिक्तकैरण्डगुडूचीशुण्ठिमुस्तकैः ।
पित्तज्वरहरः स्याच्च शृण्वन्यं योगमुत्तमम् ॥६
बालकोशीरपाठाभिः कण्टकारिकमुस्तकैः ।
ज्वरनुच्च कृतः क्वाथस्तथा वै ज्वरदारुणः ॥७

श्री रुद्र ने कहा—इस प्रकार से विष्णु के अवतार भगवान् धन्वन्तरि ने शङ्कर जी को रोग के अर्दन करने वाले अनेक योग बतल ये थे । श्री हरि ने कहा—हे शङ्कर ! सभी प्रकार के ज्वरों में सबसे प्रथम लङ्घन करना चाहिए अर्थात् भोजन बिलकुल त्याग देना चाहिए । औटाया हुआ पानी का पान करना और किसी निर्वात स्थान में जहाँ कि हवा का सञ्चार न हो रहना ज्वर के रोगी को हितकर होता है ॥ १।२ ॥ हे ईश्वर ! इस प्रकार से अग्नि स्वेद से ज्वर नाश को प्राप्त हुआ करते हैं । यदि वात ज्वर हो अर्थात् वायु कुपित होकर ज्वर की उत्पत्ति हुई हो तो गिलोय और मुस्तक का क्वाथ (काढ़ा) देना चाहिए । इससे वात ज्वर का प्रशमन होता है ॥३॥ अब पित्त के दोष से आने वाले ज्वर का हरण करने वाले काढ़े का विवरण श्रवण करो । दुरालभ शुण्ठी (सौंठ)–पर्पट और मुस्त (मोथा) तथा बालकोशीर (नवीन खस) और चन्दन के द्वारा क्वाथ प्रस्तुत कर देवे ॥४।५॥ श्लेष्मा (कफ) से दोष से समुत्पन्न ज्वर का शमन करने के लिए आज्य और दुरालभ के सहित शुण्ठि से युक्त काढ़ा होता है । पर्पट और सौंठ से युक्त सवालक क्वाथ समस्त प्रकार के ज्वरों के शमन करने वाला होता है ॥६॥ तिक्तक—एरण्ड—गिलोय—सौंठ और मुस्तक इनके द्वारा तयार किया हुआ क्वाथ पित्त के दोष से होने वाले ज्वर का हरण किया करता है । इसके अतिरिक्त अन्य उत्तम योग का श्रवण करो ॥६॥ बालकोशीर पाठा—कण्टकारि—मुस्तक—इनसे प्रस्तुत किया हुआ क्वाथ ज्वर का नाशक होता है ॥७।

धन्याकनिम्बमुस्तानां समधुः स तु शङ्कर ।
पटोलपत्रयुक्तस्तु गुडूचीत्रिफलायुतः ॥
पीतोऽखिलज्वरहरः क्षुधाकृद्वातनुत्त्विदम् ॥८
हरीतकीपिप्पलीनामामलीचित्रकोद्भवम् ।
चूर्णं ज्वरघ्नं क्वथितं धन्याकोशीरपर्पटैः ॥९

आमलक्या गुडूच्या च मधुयुक्तं सचन्दनम् ।
समस्तज्वरनुच्च स्यात्सन्निपातहरं शृणु ॥१०
हरिद्रानिम्बत्रिफलामुस्तकैर्देवदारुणा ।
कषायं कटुरोहिण्या सपटोलं सपत्रकम् ॥
त्रिदोषज्वरनुच्च स्यात्पीतन्तु क्वथितं जलम् ॥११
कण्टकार्य्या नागरस्य गुडूच्या पुष्करेण च ।
जग्ध्वा नागबलाचूर्णं श्वासकासादिनुद्भवेत् ॥१२

देवदारु–धन्याक–नीम और मुस्तक पटोल पत्र के सहित और गिलोय एवं त्रिफला से युक्त मधु से समन्वित क्वाथ ह शङ्कर ! पीने पर सब प्रकार के ज्वर का हरण करता है और इससे क्षुधा की भी वृद्धि होती है ॥ ८ ॥ हर्र–पीपल–आवला और चित्रक–इनका कूट–पीसकर बनाया हुआ चूर्ण भी ज्वर का नाशक होता है । धान्याक—उशीर और पपट के द्वारा औट या हुआ काढ़ा आमलकी–गुडूची (गिलोय) के साथ जिसमे चन्दन भी ज्वर को नष्ट करने वाला होता है और सभी प्रकार के ज्वरों का उखाड़ फेंकता है । अब सन्निपात ज्वर के हरण करने वाले योग का श्रवण करो ॥ ९।१० ॥ हरिद्रा–निम्ब–त्रिफला–मुस्तक–देवदारु–कटुरोहिणी का कषाय जोकि पटोल पत्र के सहित हो इसका काढ़ा बनाकर पिलाया जावे तो त्रिदोष के कुपित होने पर जो ज्वर होता है उसका हरण हो जाता है ॥११॥ कण्टकारि (कटेरी)—नागर–गिलोय और पुष्कर के साथ नाग बला का चूर्ण खाने पर श्वास और खाँसी आदि का नाश हो जाता है ॥१२॥

कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासिने ।
विश्वपर्पटकोशीरमुस्तचन्दनसाधितम् ॥१३
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ।
बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ॥१४
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूचीविश्वभेषजम् ।
वातज्वरे त्वयं क्वाथो दत्तः शान्तिकरः परः ॥
पित्तज्वरनुत्समधु क्वाथः पर्पटनिम्बयोः ॥१५

विधाने क्रियमाणेऽपि यस्य संज्ञा न जायते ।
पादयोस्तु ललाटे वा ददेल्लौहशलाकया ॥१६
तिक्ता पाठा पटोलश्च विशाला त्रिफला त्रिवृत् ।
सक्षीरो भेदनः क्वाथः सर्वज्वरविशोधनः ॥१७

कफ वाले के ज्वर में पिपासु को सदा उष्ण जल ही पीने के लिए देना चाहिए । यह विश्व पर्पटक—उशीर—मुस्तक और चन्दन साधित किया होना चाहिए ॥१३॥ शीतल जल देने से तृषा—छर्दि—ज्वर और दाह का क्षय होता है । यदि वातिक ज्वर हो तो उसमें बिल्वादि पञ्चमूल का काढ़ा देने से परम शान्ति होती है । पित्त ज्वर में पर्पट और निम्ब का क्वाथ मधु के साथ पीने से ज्वर का उपशमन हो जाता है । वात ज्वर में पिप्पलीमूल–गिलोय और विश्व भेज पाचन होते हैं और इनका क्वाथ शमन करने वाला होता है ॥१४।१५॥ इस प्रकार के विधान के करने पर भी यदि होश न होवें तो पैरों में अथवा ललाट में लोह की शलाका से दाह करना चाहिए ॥१६॥ तिक्ता—पाठा—पटोल—विशाला—त्रिफला—त्रिवृत् क्षीर के सहित किया हुआ क्वाथ भेदन तथा समस्त प्रकार के ज्वरों का विशेष रूप से शोधन करने वाला है ॥१७॥

१००—विविधौषधि (१)

सप्तरात्र्याः प्रजायन्ते खल्वाटस्य कचाः शुभाः ।
दग्धहस्तिदन्तलेपात्साजाक्षीररसाञ्जनात् ॥१
भृङ्गराजरसेनैव चतुर्भागेन साधितम् ।
केशवृद्धिकरं तैलं गुञ्जाचूर्णान्वितेन च ॥२
एलामांसीकुष्ठमुरायुक्तमभ्युद्गतं शिरः ।
गुञ्जाफलं समादेयं लेपनं चन्द्रलुप्तनुत् ॥३
आम्रास्थिचूर्णलेपाद् वै केशाः सूक्ष्मा भवन्ति च ।
करञ्जामलकैलाः सलाक्षा लेपोऽरुणापहः ॥४
आम्रास्थिमज्जामलकलेपात्केशा भवन्ति च ।
बद्धमूला घना दीर्घाः स्निग्धाः स्युर्नोत्पतन्ति च ॥५

विडङ्गगन्धपाषाणसाधित तैलमुत्तमम् ।
सचतुर्गुणगोमूत्र मनस शिलमेव वा ॥
शिरोऽभ्यङ्गाच्छिरोजन्मयूकालिक्षा क्षय नयेत् ॥६
नवदग्ध शङ्खचूर्णं घृष्टसीसकलेपितम् ।
वचा श्लक्ष्णा महाकृष्णा भवन्ति वृषभध्वज ॥७

श्री भगवान् ने कहा—जिसका मस्तक खल्वाट होता है अर्थात् जिसकी चाद मे बाल न हों उस मनुष्य के माथे मे बहुत सुन्दर केश सात रात्रियो में ही आजाया करते हैं यदि हाथी दाँत को भस्म कर उसका लेप किया जावे और साजा क दूध रसाञ्जन से करे। भृङ्गराज के रस के साथ तैल चतुर्भाग मे साधित करके गुञ्जा के चूर्ण से युक्त स्तमाल किया जावे तो यह केशों की वृद्धि करने वाला होता है ॥ १।२ ॥ एला–माषी कुष्ठ–मुरा इनका अभ्यङ्ग शिर म करे और गुञ्जा के फलो का लेपन करे तो च द्र का लोप होता है अर्थात् केशों का अभाव दूर हो जाता है ॥ ३ ॥ आम्र की अस्थियो के चूर्ण का लेप करने केश सूक्ष्म हो जाया करत हैं। करञ्ज—आमलक—एला (इलायची) ये लाक्षा के साथ लेप करने म अरुणा का अपहरण होता है ॥ ४ ॥ आम्रास्थि मज्जा—आँवला इनके लेप स केश वद्धमूल–घने–स्निग्ध होते हैं और उनका उत्पतन नही होता है। वायविडङ्ग गन्ध पाषाग क द्वारा साधित तैल भी परम उत्तम होता है। चौगुना गोमूत्र और मैनशिल इनका शिर अभ्यङ्ग करे तो केशो में जो भी जूआ लीक आदि उत्पन्न होकर पीडा देत हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं ॥५-॥६॥ हे वृषभध्वज! नवीन तयार किया हुआ शङ्ख की भस्म का चूरण शीशे पर घिसकर लप करे तो बाल श्लक्ष्ण (घने) और अत्य त काले होजाते हैं ॥७॥

भृङ्गराज लोहचूर्णं त्रिफला बीजपूरकम् ।
नीली च करवीरश्च गुडमेतं समं शृतम् ॥
पलितानीह कृष्णानि कुर्याल्लेपान्महौषधम् ॥८
आम्रास्थिमज्जा त्रिफला नीली च भृङ्गराजकम् ।
जीर्ण पक्वलाहचूर्ण काञ्जिव कृष्णकेशकृत् ॥९
चक्रमर्दकबीजानि कुष्ठमेरण्डमूलकम् ।
सारनुष्णकाञ्जिक पिष्ट्वा लेपान्मस्तकरागनुत् ॥१०

सैन्धवञ्च वचा हिङ्गु कुष्ठं नागेश्वरं तथा ।
शतपुष्पा देवदारुं एभिस्तैलं तु साधितम् ॥११
गोपुरीषरसेनैव चतुर्भागेन संयुतम् ।
तत्कर्णभरणाद्दुग्रकर्णशूलं क्षयं नयेत् ॥१२
मेषमूत्रसैन्धवाभ्यां कर्णयोर्भरणाच्छिव ।
कर्णयोः पूतिनाशः स्यात्कृमिस्रावादिकस्य च ॥१३
मालतीपुष्पदलयो रसेन भरणात्तथा ।
गोजलेनैव पूरेण पूयस्रावो विनश्यति ॥१४
कुष्ठमाषमरीचानि तगरं मधु पिप्पली ।
अपामार्गोऽश्वगन्धा च बृहती सितसर्षपाः ॥१५
यवास्तिलाः सैन्धवञ्च तेषामुद्वर्त्तनं शुभम् ।
लिङ्गबाहुस्तम्भनाशं कर्णयोर्वृद्धकृद्भवेत् ॥१६

भृङ्गराज (भँगरा–एक बूँटी का नाम)—लौहे का बुरादा–त्रिफला–विजौरा—नील—करवीर—इन समस्त वस्तुओं के समान ही गुड़ डाले और भून करके फिर लेप करे तो जो केश पलित अर्थात् श्वेत होगये हैं वे पुन: काले हो जाया करते हैं। पलित के मिटाने की यह महौषधि है ॥८॥ आम्रास्थि—आम्र की मज्जा–त्रिफला (हर्र–बहेड़ा–आंवला) नीली–भृङ्गराज इन सबको जीर्ण करे (पकावे) और उसमें लौहे का बुरादा कांजी डाले तो लेप करने पर केशों को कृष्ण (काला) करता है ॥ ९ ॥ चक्रमर्दक के बीज–कुष्ठ–एरण्ड (अरण्डुआ–एक वृक्ष का नाम) की जड़—इन सबको कांजी के साथ पीसकर गर्म करे और फिर लेप करे तो मस्तक के सम्पूर्ण रोगों का हरण होता है ॥१०॥ सैन्धव (सैंधा नमक)–वच–हींग–कुष्ठ–नागेश्वर–शत पुष्पा–देवदारु इन सबको समान भाग में लेकर तैल में पाक करे और तैल को साधित कर छान कर तयार करे। इससे भी शिर की समस्त पीड़ाऐं क्षीण होती हैं। इस तेल को गोबर के चतुर्भाग रस से युक्त कर कान में डाले तो का दर्द नष्ट हो जाता है ॥११।१२॥ मेष का मूत्र और सैन्धव इन दोनों जो मिलाकर हे शिव ! कान में डालने से कानों की दुगन्ध का नाश होता है और कान में कोई कृमि हों या

कान से स्राव होता हो अर्थात् कान बहता हो तो वह भी नष्ट होजाता है ।१३। मालती लता के पुष्प और उसके दलों का रस के डालने से अथवा गो-मूत्र के डालने से भी पूय का स्राव नष्ट हो जाता है ॥ १४ ॥ कुष्ट—माष और मिर्च-तगार—मधु तथा पीपल—अपामार्ग (ओंधा—एक बूँटी का नाम)-अश्वगन्धा वृहती और सफेद सरसों—यव (जौ)—तिल और सैन्धव इनका उद्वर्त्तन (उवटना) बनाकर लगावे तो यह बहुत ही अच्छा होता है । इससे—बाहु के स्तम्भ का नाश होता है और कर्णों की वृद्धि करने वाला होता है ॥१५।१६॥

१०१—विविधौषधि (२)

शोभाञ्जनपत्ररसं मधुयुक्तं हि चक्षुषो ।
भरणाद्रोगहरणं भवेन्नास्त्यत्र संशय. ॥१
अशीतितिलपुष्पाणि जात्याश्च कुसुमानि च ।
उपनिम्बामलाशुण्ठीपिप्पलीतण्डुलीयकम् ॥२
छायाशुष्का वटी कुर्य्यात् पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
मधुना सह सा चाक्ष्णोरञ्जनात्तिमिरादिनुत् ॥३
विभीतकास्थिमज्जा तु शङ्खनाभिर्मनःशिला ।
निम्बपत्रमरीचानि अजामूत्रेण पेषयेत् ॥
पुष्पं रात्र्यन्धतां हन्ति तिमिरं पटलं तथा ॥४
चतुर्भागानि शङ्खस्य तदर्द्धेन मनःशिला ।
सैन्धवञ्च तदर्द्धेन एतत् पिष्ट्वोदकेन तु ॥५
छायाशुष्का तु वटिका कृत्वा नयनमञ्जयेत् ।
तिमिरं पटलं हन्ति पिञ्जटस्य महौषधम् ॥६
त्रिकटु त्रिफला चैव करञ्जस्य फलानि च ।
सैन्धवं रजनी द्वे च भृङ्गराजरसेन हि ॥
पिष्ट्वा तदञ्जनादेव तिमिरादिविनाशनम् ॥७

श्री हरि ने कहा—शोभाञ्जन (सहजन—एक वृक्ष का नाम) के पत्ता का रस मधु के साथ मिश्रित करके नेत्रों में डाले तो नेत्रों के रोगों का हरण हो जाता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।।१।। अस्सी तिल के पुष्प और

जाती के पुष्प–उपनिम्ब–आंवला–सौंठ–पिप्पली—तण्डुलीयक—इन सबको पीस कर वटी बनावे और उन्हें छाया में ही सुखा लेवे। तात्पर्य यह है कि चावलों के जल के साथ इनको पीसे। चावलों के पानी से तात्पर्य चावल भिगोकर मसल कर उस पानी के साथ घर्षण कर वटी निर्मित करे। इस वटी को घिस-कर शहद के साथ आँखों में अञ्जन लगावे तो आँखों में जो तिमिरान्धता होती है वह नष्ट हो जाती है ॥२।३॥ बिभीतक की अस्थि और उसकी मज्जा–शङ्ख नाभि–मैनशिल–नीम के पत्ते—कालीमिर्च इन सबको बकरी के मूत्र के साथ पेषण करे फिर इसका अञ्जन करे तो रात्र्यन्धता (रतौंध) का हनन होजाता है तथा आँखों के सामने जो अँधेरा-सा छा जाता है उसका नाश हो जाता है ॥४॥ चार भाग शङ्ख के और इससे आधा भाग मैनशिल तथा मैनशिल का आधा भाग सैन्धव इन तीनों को जल के साथ पीसकर वटी बना लेवे और उन्हें छाया में शुष्क कर लेवे फिर उस वटी का नेत्रों में अञ्जन करे तो तिमिर के पटल का क्षय हो जाता है। यह पिञ्जटक की महान् उत्तम औषध है ॥५॥ ॥६॥ त्रिकुटा (सौंठ–मिर्च–पीपल)–अथवा त्रिकुट त्रिफला और करञ्ज के फल सैन्धव और दोनों हल्दी इनको भँगरा के रस से पीस लेवे फिर अञ्जन करे तो तिमिर आदि का नाश हो जाता है ॥७॥

अटरूषकमूलं तु काञ्जिकापिष्टमेव तु।
तेनाक्ष्णोर्भू रिलेपाच्च चक्षुःशूलं विनश्यति ॥८
शतद्रु बदरीमूलं पीतमक्षिव्यथां हरेत्।
सैन्धवं कटुतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम् ॥९
क्षीरकांजिकसंघृष्टं ताम्रपात्रे तु तेन च।
अञ्जनात् पिञ्जटस्यैव नाशो भवति शङ्कर ॥
ॐ दद्रु सर क्रों ह्रीं ठः ठः दद्रु सर ह्रीं ह्रीं ॐ उं ऊं सर क्रीं क्रीं ठः ठः आद्या वशमायान्ति मन्त्रेणानेन चाञ्जनात् ॥१०
बिल्वकं नीलिकामूलं पिष्टमभ्यञ्जनेन च।
अनेनाञ्जितमात्रेण नश्यन्ति तिमिराणि हि ॥११
पिप्पलीतगरञ्चैव हरिद्रामलकं वचा।
खदिरैः पिष्टवर्तिश्च अञ्जनान्नेत्ररोगनुत् ॥१२

नीरपूर्णमुखो धौति जलक्षेपेण योऽक्षिणी ।
प्रभाते नेत्ररोगैश्च नित्य सर्वे. प्रमुच्यते ॥१३
शुल्कैरण्डस्य मूलेन पत्रेणापि प्रसाधितम् ।
छागदुग्धसेकयुक्ताच्चक्षुर्वातनिरोगनुत् ॥१४

अटरूषक की जड को काजी से पीसकर इसके बहुत बार आँखों पर लेप करे तो इससे चक्षुओं का शूल नष्ट हो जाता है ॥८। दारुद्र और वदरी का मूल को घोटकर पीवे तो नेत्रों की व्यथा दूर होती है। सैन्धव-कडुवा तैल और अपामार्ग का (ओंगाका) मूल को क्षीर काजी मे ताम्र के पात्र मे घर्षण करे और फिर अञ्जन करे तो हे शङ्कर ! तिञ्जट का नाश हो जाता है। इस अञ्जन के करने मे मन्त्र का उच्चारण करना आवश्यक है। मन्त्र—"ॐ ददू सर ओं ह्रीं ठ ठ ददू सर ह्रीं ह्रीं ॐ उ ऊ श्रीं की ठ"—इस दि मन्त्रो के द्वारा आँजने से आद्या वश में आ जाते हैं ॥९-१०॥ बिल्व-नीलिका का मूल को पीस कर अञ्जन करे तो इसके आँजने मात्र मे ही तिमिरो का नाश हो जाता है ॥११॥ पिप्पली (पीपर)—नगर-हरिद्रा (हल्दी)—आमलक—(आवला) वच और खदिर इनको पीसकर एक वर्ति (वत्ती) बना लेवे। इसस अञ्जन करने से समस्त नेत्रों के रोग का हनन हो जाता है ॥१२। प्रात,काल प्रति भोर मे उठकर ठण्डे पानी को मुँह मे भर लेवे और फिर शीतल जल से नित्य-प्रति नेत्रों को छपाके दे देकर धोवे तो वह मनुष्य सभी नेत्रों के रोगों से मुक्त होजाया करता है ॥१३। शुक्ल—अरण्ड के मूल और पत्र से भी प्रसाधित तथा छाग के दूध से युक्त सेक से नेत्रों मे वात दोष से समुत्पन्न रोग का नाश होता है ॥१४॥

चन्दन सैन्धव वृद्धपलाशश्च हरीतकी ।
पटल कुसुम नीली चक्रिका हरतेऽञ्जनात् ॥
गुन्जामूल छागमूत्रे घृष्टं तिमिरबन्धनुत् ॥१५
रौप्यताम्रसुवर्णाना हस्तघृष्टशलाकया ।
घृष्टमुद्वर्तन रुद्र कामलाव्याधिनाशनम् ॥१६
घोषाफलमथाघ्रात पीत कामलनाशनम् ।
दूर्वा दाडिमपुष्प तु अलक्तकहरीतकी ॥
नासार्शवातरक्तनुन्नस्यार्द्रं स्वरसेन हि ॥१७

सुपिष्टं जिङ्गिनीमूलं तद्रसेन वृषध्वज ।
नस्यादानाद्विनश्येत नासार्शो नीललोहितः ॥१८

गव्यं घृतं सर्ज्जरसं रुद्र धन्याकसैन्धवम् ।
धुस्तूरकं गैरिकञ्च एतैः साधितसिक्थकम् ॥
ससैलं व्रणनुत् स्याच्च स्फुटितोच्चदिताधरे ॥१६

जातीपत्रञ्च चर्वित्वा विधृतं मुखरोगनुत् ।
भक्षणात्केशरवीजस्य दन्ताः स्युश्चलिता स्थिराः ॥२०

मुस्तकं कुष्ठमेला च याष्टिकं मधुबालकम् ।
धन्याकमेतददनान्मुखदुर्गन्धनुद्धर ॥२१

कषायं कटुकं वापि तिक्तशाकस्य भक्षणात् ।
तैलयुक्तस्य नित्यं स्यान्मुखदुर्गन्धताक्षयः ॥
दन्तव्रणानि सर्वाणि क्षयं गच्छन्त्यनेन तु ॥२२

चन्दन—सैन्धव—वृद्ध पलाश—हरीतकी (हर्र)—पटल कुसुम—नीली इनका अञ्जन करने से चक्रिका का हरण होता है। गुञ्जा की जड़ को बकरी के मूत्र में घर्षण कर आँजने से तिमिर के बन्ध का हनन हो जाता है ॥१५॥ हे रुद्र ! चाँदी—ताम्र और सुवर्ण की शलाका (सलाई) से घर्षण किया उद्वर्त्तन कामला व्याधि का नाशक है ॥ १६ ॥ घोषा के फल सूँघना और पीना भी कामला रोग को नष्ट किया करता है। दूर्वा (दूभ)—दाड़िम पुष्प (अनार का फूल)—अलक्तक—हरीतकी नाक के अर्श और वात रक्त का नाश करने वाला है। इसके स्वरस से जिङ्गिनी के मूल को भली भाँति पीसकर अथवा इसके रस से नस्य लेवे तो इससे नील लोहित नाक का अर्श नष्ट हो जाता है ॥१७॥ ॥१८॥ गौ का घृत—सर्ज रस—धन्याक—सैन्धव—धुस्तूरक और गैरिक (गेरू) इन सबके द्वारा बनाया हुआ सिक्थक तैल से युक्त व्रणका नाशक है जोकि स्फुटित और उच्चरित अधर में होता है ॥ १६ ॥ जाती के पत्तों को चबाकर मुँह में कुछ समय तक रक्खे तो मुख के रोग का नाश होता है। केशर के बीजों के करने से जो दाँत हिलते हों तो वे भी स्थिर हो जाया करते हैं ॥२०॥ मुस्तक कुष्ट—एला (इलायची)—याष्टिक—मधुवातक—धन्याक इनके अदन करने से

अर्थात् खाने से मुख में जो दुर्गन्ध आती हो तो उसका नाश हो जाया करता है ॥२१। कषाय–कटु (कडुआ) और तिक्त शाक के भक्षण में जोकि तैल से युक्त हो तो मुख की दुर्गन्धता का क्षय होता है। इससे सभी प्रकार के दाँतों के व्रण भी नष्ट हो जाया करते हैं ॥२२॥

काञ्जिकस्य सतैलस्य गण्डूषं कवलस्थिति ।
ताम्बूलचूर्णं दग्धस्य मुखस्य व्याधिनुच्छिव ॥२३
परित्यक्ति श्लेष्मणश्च शुण्ठीचर्वणतो यथा ।
मातुलुङ्गदलान्येला यष्टीमधु च पिप्पली ॥२४
जातीपत्रमर्यपाश्च चूर्णं लीढं तथा कृतम् ।
शेफालिकाजटायाश्च चर्वणं गलशुण्ठिनुत् ॥२५
नासाशिरारक्तकर्णं नश्येच्छङ्कर जिह्विका ।
रसं शिरीषबीजानां हरिद्रायाश्चतुर्गुणं ॥२६
तेन पक्वेन भूतेश नस्यं मस्तकरोगनुत् ।
गलरोगा विनश्यन्ति नस्यमात्रेण तत्क्षणात् ॥२७
दन्तकीटविनाशः स्याद् गुञ्जामूलस्य चर्वणात् ।
काकजङ्घास्नुहीनीलीकषायो मधुयोजितः ॥
दन्ताक्रान्तं दन्तजाश्च कृमीन्नाशयते शिव ॥२८
घृतं कर्कटपादेन दुग्धमिश्रेण साधितम् ।
तेन चाभ्यदिता दन्ता कुर्युं कटकटा न हि ॥२९
लिप्त्वा कर्कटपादेन केवलेनाथवा शिव ।
त्रिसप्ताह वारिपिष्टा ज्योतिष्मत्या फलानि हि ॥३०
शुक्लाभयामज्जलेपाद्दन्तस्याङ्कलङ्कनुत् ।
लोध्रकुङ्कुममञ्जिष्ठालोहकालेयकानि च ॥३१
यवतण्डुलमेतैश्च यष्टीमधुसमन्वितैः ।
वारिपिष्टैर्वक्त्रलेपः स्त्रीणां शोभनवक्त्रकृत् ॥३२

हे शिव ! तैल युक्त काञ्जिक से गण्डूष (कुल्ली) करे और मुँह में भर कर कवल स्थिति करे। दग्ध मुख की व्याधि को ताम्बूल का चूर्ण नाश कर

देता है ।।२३।। जिस तरह शुण्ठी (सौंठ) के चर्वण करने से श्लेष्मा की परिव्यक्ति होती है अर्थात् कफ का विकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार से मातुलुङ्ग (नींबू) के हल—एला—यष्टि—मधु—पीपल और जाती पत्र इनका चूर्ण चाटा जावे या उसी तरह लेवे तो रोकालि का जरा का नाश होता है और चर्वण (चवाने) से गल शुण्ठी का क्षय होता है ।।२४।२५।। हे शङ्कर ! नासा के शिरा के रक्त के वर्षण होने से नष्ट कर देता है। जिह्विका रस—शिरस के बीज और हरिद्रा का चतुर्गुण भाग हे भूतेश ! इससे पक्व कर बनाया हुआ नस्य माथे के रोगों का नाशक होता है। गले के तो सभी रोग नस्य के सूंघने मात्र से ही तुरन्त नष्ट हो जाया करते हैं ।।२६।२७।। गुञ्जा (चिरमिटी) की लता के मूल को लेकर चबावे तो दाँतों के कीड़ों का नाश हो जाया करता है। हे शिव ! काकजंघा (एक बूंटी का नाम है जोकि क्षुप के रूप में प्रायः सर्वत्र प्राप्त होती है)—स्नुही (सेंहुड़)—नीलीका कषाय मधु से योजित करे। इससे दन्ता क्रान्त और दाँतों में समुत्पन्न कृमियों का नाश हो जाता है ।। २८ ।। दुग्ध से मिश्रित कर्कट पाद से प्रस्तुत किया हुआ घृत हो इससे अभ्यर्चित दाँत कटकटाया नहीं करते हैं ।। २९ ।। हे शिव ! अथवा कर्कट पाद से लिप्त करे तो भी उक्त रोग का क्षय होता है। ज्योतिष्मती के फलों को तीन हफ्ते तक जल से घर्षण करे। इससे तथा शुक्ल अभया (हर्रे) के मज्जन से या लेप से दाँतों के ऊपर जो निशान हो जाते हैं उसके कलङ्क को दूर कर दिया जाता है। लोध—कुङ्कुम—मजीठ—लोह—का लेरक—यव—तण्डुल—यष्टी और मधु इन सबको जल से पीसकर मुख पर लेपन करे तो स्त्रियों के मुख की शोभा बढ़ जाया करती है। यह एक प्रकार का मुख पर लगाने का उबटना है ।।३०।३१।३२।।

द्विभागं छागदुग्धेन तैलप्रस्थं तु साधितम् ।
रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालाक्षाणां कर्षकेण वा ।।
यष्टीमधुकुङ्कुमाभ्यां सप्ताहान्मुखकान्तिकृत् ।।३३
शुण्ठीश्च पिप्पलीचूर्णं गुडूची कण्टकारिका ।
एभिश्च क्वथितं वारि पीतं चाग्निं करोति वै ।।३४
वातमूलक्षयञ्चैव करोति प्रमथेश्वर ।
करञ्जकर्कटोशीरं बृहती कटुरोहिणी ।।३५

गोक्षुर क्वथित त्वेभिर्वारि पीत भ्रमापहम् ।
दाह पित्तज्वर शाप मूर्च्छांश्चैव क्षय नयेत् ॥३६

मध्वाज्यपिप्पलीचूर्णं क्वथित क्षीरसयुतम् ।
पीत हृद्रोगकासस्य विषमज्वरनुद्भवेत् ॥३७

क्वाथौषधीना सर्वासा कर्षार्द्धं ग्राह्यमेव च ।
वयोऽनुरूपतो ज्ञयो विशेषो वृषभध्वज ॥३८

दुग्ध पीत तु सयुक्त गोपुरीषरसेन च ।
विषमज्वरनुत्स्याच्च काकजङ्घारसस्तथा ॥३९

सशुण्ठीक्वथित क्षीर विषमज्वरनुद्भवेत् ।
यष्टीमधुकमुस्तञ्च सैन्धव बृहतीफलम् ॥४०

एतैर्नस्यप्रदानाच्च निद्रा स्यात्पुरुषस्य च ।
मरीचमधुयुक्ताना नस्यान्निद्रा भवेच्छिव ॥४१

दो भाग छाग का दूध और एक प्रस्थ तैल साधित करे अथवा रक्त चन्दन—मजीठ और लाख एक कप यष्टी—मधु और कुड्कुम के साथ एक सप्ताह प्रयोग करे तो मुख की कान्ति बढ़ती है ॥३३॥ सोंठ—पीपल का चूर्ण गिलोल—कण्टकारी इनका क्वथित जल अर्थात् निर्माण किया हुआ काढा पीया जावे तो अग्नि की वृद्धि करता है ॥ ३४ ॥ हे प्रमथेश्वर ! इससे वात मूल का क्षय होता है। करञ्ज-कर्कट-उशीर (खस)-वृहती-कटु रोहिणी—गोखरू—इन सबका पानी मे क्वाथ पकाया जाय और उस काढ़े को पीवे तो भ्रम का अपहरण होता है। यह क्वाथ दाह-पित्त दोष के कुपित होने वाला पित्त ज्वर-शोष और मूर्च्छा—इन सबका भी क्षय किया करता है ॥३५।३६॥ मधु—आज्य (घृत) और पीपल का चूर्ण इनको क्वाथित करके क्षीर से युक्त पीवे तो इससे हृद्रोग खाँसी और विषम ज्वर होता है ॥ ३७ ॥ समस्त क्वाथ करने की औषधियो का आधा कप ग्रहण करना चाहिए। हे वृषभ ध्वज ! विशेष अवस्था के अनुसार ही जानना चाहिए ॥ ३८ ॥ जो पारी से आने वाला विषम ज्वर होता है उसे निवारण करने के लिये गोमय के रस से सयुक्त कर पीया हुआ दूध ही पर्याप्त है। यष्टी-मधुक-मुस्त-सैंधव-वृहती फल—इन समस्त

वस्तुओं के द्वारा प्रस्तुत किया हुआ नस्य देने से पुरुष को निद्रा हो जाती है। हे शिव ! कालीमिर्च मधु से युक्त करके नस्य देने से निद्रा होती है ।।३६ से ४१।।

मूलं तु काकजङ्घाया निद्राकृत्स्याच्छिरःस्थितम् ।
सिद्धं तैलं काञ्जिकेन तथा सर्ज्जरसेन च ।।४२
शतोदकसमायुक्तं लेपात्सन्तापनाशनम् ।
शोणितज्वरदाहेभ्यो जातसन्तापनुत्तथा ।।४३
शैलिशैवालाग्निमन्थः शुण्ठीपाषाणभेदकम् ।
शोभाञ्जनं गोक्षुरं वा वरुणच्छन्नमेव च ।।४४
शोभाञ्जनस्य मूलञ्च एतैः क्वथितवारि च ।
दत्वा हिङ्गुयवक्षारं पित्तवातविनाशनम् ।।४५
पिप्पली पिप्पलीमूलं तथा भल्लातकं शिव ।
वार्येतैः क्वथितं पीतं शूलापस्मारनुद्भवेत् ।।४६
अश्वगन्धामूलकाभ्यां सिद्धा वल्मीकमृत्तिका ।
एतया मर्दनाद्रुद्र ऊरुस्तम्भः प्रशाम्यति ।।४७
बृहतीकस्य वै मूलं संपिष्टमुदकेन च ।
पीतं सङ्घातवातस्य विघाटनकृदेव च ।।४८
पीतं तक्रेण मूलञ्च आर्द्रस्य तगरस्य च ।
हरेत झिञ्झिनीवातं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।।४९
अस्थिसंहारमेकेन भक्तेन सह खादितम् ।
पीतं मांसरसेनापि वातनुच्चास्थिभङ्गनुत् ।।५०

काक जंघा के मूल से भी निद्रा होती है। इससे सिद्ध किया हुआ तैल शिर में लगावे जो कि काञ्जिक तथा सर्जक रस से शतोदक से समायुक्त हो। इसके लेप से सन्ताप का नाश होता है। शोणित (रक्त) ज्वर और दाह से जो सन्ताप उत्पन्न होता है उसका नोदन करने वाला है ।।४२।४३।। शैली-शैवाल-अग्निमन्थ-शुण्ठि-पाषाण भेदक-शोभाञ्जन-गोखरू अथवा वरुणच्छन्न और शोभाञ्जन का मूल इन सबका जल के साथ क्वाथ करे और देवे। हींग और यवाक्षार से पित्त और वात का विशेष रूप से नाश होता है ।४४।४५। हे शिव !

पीपल—पीपरामूल—भल्लातक (भिलावा) इनका जल के साथ क्वाथ करे और पान करे तो शूल और अपस्मार (मृगी) का क्षय होता है ॥४६॥ हे रुद्र! अश्वगन्ध और मूलक से सिद्ध वाँबी की मिट्टी के मर्दन करने से ऊरु स्तम्भ का प्रशमन होता है। ४७॥ वृहती के मूल को जल के साथ पीसे और छानकर पान करे तो सप्त वात के विघटन करने वाला होता है॥ ४८॥ आर्द्र और तगर के मूल को घोटकर मट्ठा के साथ पीवे तो इन्द्र के वज्र के द्वारा वृक्ष की भाँति झिझिनी वात का एक दम विनाश हो जाया करता है॥ ४९॥ अस्थि संहारक को एक भक्त खावे या पीवे तो वात का शमन होता है एवं अस्थिभङ्ग को भी दूर करता है। मांस रस से भी होता है। अस्थि संहारी एक तिधारा-हड़ जोड़ लौकिक प्रसिद्ध नाम वाली बेल जैसी होती है। इसमें पत्ते नहीं होते हैं और तीन धार तथा एक एक बालिश्त पर एक ग्रन्थि जैसी हुआ करती है पेड़ों का आश्रय लेकर फैली होती है ॥५०॥

घृतलिप्तं सक्तुकञ्च छागक्षीरेण संयुतम्।
तल्लेपात्पादयोर्नश्येत्सन्तापो नात्र संशयः ॥५१
मध्वाज्यसैन्धवं सिक्थगुडगैरिकगुग्गुलं।
ससर्जरससस्फुटित श्लोमगुद्धिश्च लेपनात् ॥५२
कटुतैलेन लिप्तौ वै विधूमाग्नौ प्रतापितः।
मृत्तिकाखादितः पादः समः स्याद्वृषभध्वज ॥५३
सर्जरसं सिक्थकञ्च जीरकञ्च हरीतकी।
तत्साधितघृताभ्यङ्गो ह्यग्निदग्धव्यथापनुत् ॥५४
तिलतैलं चाग्निदग्धं यवभस्मसमन्वितम्।
अग्निदग्धव्रणं नश्येद्बहुशः कुललेपतः ॥५५
नवनीतं माहिषञ्च दग्धपिष्टतिलानि च।
समस्ताश्च व्रणं नश्येच्छूलं नश्यल्लेपतः ॥५६
कर्पूरगव्यसर्पिभ्यां प्रहारं पूरितो हर।
शस्त्रोद्भवो बन्धनञ्च शुक्लवस्त्रेण शङ्कर॥
पाकश्च वेदना चैव न स्पृशेद्वृषभध्वज ॥५७

छाग के दूध से संयुत सक्तूक (सतुआ) घृत के साथ लेप करने से पैरों में तलों में जो सन्ताप होता है वह नष्ट हो जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ५१ ॥ मधु—घृत-सैन्धव—सिक्थ—गुड—गैरिक—गूगल से सर्जर रस के सहित स्फुटित कर लेप करने से क्लोम की शुद्धि होती है ॥५२॥ हे वृषभध्वज ! कड़वे तैल से लिप्त कर धूँआ रहित अग्नि में प्रतापित अर्थात् तपाया हुआ मृत्तिकाखादित पाद सम हो जाता है ॥५३॥ सर्ज का रस-सिक्थक—जीरा—हर्र इन सबको घृत में पाक करके घृत प्रस्तुत करे और फिर उससे मर्दन करे तो आग से दग्ध होने की व्यथा दूर हो जाती है ॥५४॥ यव की भस्म से युक्त तिल का तैल आग पर गर्म करके बहुत वार लेप करे तो आग से जलने के कारण उत्पन्न होने वाले गुण नष्ट हो जाते हैं ॥ ५५ ॥ भैंस के दूध से निकला हुआ मक्खन और जलाकर पीसे हुए तिल भल्लाक सहित प्रयोग करे तो व्रण का नाश होता है और नस्य लेप से शूल नष्ट हो जाता है ॥५६॥ हे हर ! कपूर और गाय का घी इन दोनों से प्रहार से होने वाला व्रण भर जाता है। हे शङ्कर ! शस्त्र से होने वाले प्रहार पर शुक्ल वस्त्र से बाँध देना चाहिए। हे वृषभध्वज ! इसका पकाव और इसकी वेदना का स्पर्श नहीं होता है ॥५७॥

आम्रमूलरसेनैव शस्त्रघातः प्रपूरितः ।
ढौकते शस्त्रघातः स्यान्निर्व्रणो घृतपूरितः ॥५८

शरपुङ्खा लज्जालुका पाठा चैषां तु मूलकम् ।
जलपिष्टं तस्य लेपाच्छस्त्रघातः प्रशाम्यति ॥५९

मूलञ्च काकजंघायास्त्रिरात्रेणैव शोषितः ।
पाकपूतिवेदनाञ्च हन्ति वै रोहिते व्रणे ॥६०

सजलं तिलतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम् ।
तत्सेकदानान्नश्येच्च प्रहारोद्भववेदना ॥६१

अभयां सैन्धवं शुण्ठीमेतत्पिष्ट्वोदकेन तु ।
भक्षयित्वा ह्यजीर्णस्य नाशो भवति शङ्कर ॥६२

कटिबद्ध निम्बूलमर्शिमूलहरं भवेत् ।
शणमूल सताम्बूल दग्धमिन्द्रियकल्पहृद् ।६३
अश्वस्विन्नहरिद्रा च श्वेतसर्पपमूलकम् ।
बीजानि मातुलुङ्गस्य एषामुद्वर्त्तनं समम् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण शुभदेहकर भवेत् ॥६४
श्वेतापराजितापत्र निम्बपत्ररसेन तु ।
नस्यदानाड्डाकिनीना पितृणा ब्रह्मरक्षसाम् ॥
मोक्ष स्यान्मधुमारेण नस्याच्च वृषभध्वज ॥६५

आम के वृक्ष की जड के रस से ही शस्त्र के द्वारा होने वाला घाव भर जाया करता है । शस्त्र का घात क्षोभमान होता है और घृत से पूरित होता हुआ वह व्रण रहित हो जाया करता है ॥ ५८ ॥ शरपुंखा (लोक भाषा मे सरपोंका)—लज्जालुका (लजवन्ती-छुई मुई)—पाठा (ग्वारपाठा) इनकी जड़ों को जल के साथ घोटकर शस्त्र से होने वाले घाव पर प्रलेप करे तो वह प्रशमित हो जाया करता है ॥५९॥ काक जघा की जड से तीन रात्रि में ही शस्त्र घात का घाव शोषित हो जाया करता है और रोहित व्रण मे पकाव आदि की वेदना का नाश कर दिया करती है ॥६०॥ जल के सहित तिल का तैल—अपामार्ग (ओंगा) की जड इनके द्वारा दिये हुए सेक से प्रहार से उत्पन्न होने वाली वेदना का नाश हो जाता है ॥६१॥ अभया (हरी तकी)—सैन्धव (सैंधा नमक) शुण्ठी (सोंठ)—इनको जल के साथ पीस डाले और सेवन करे तो हे शङ्कर ! अजीर्णों का नाश होता है । अर्थात् भक्षित पदार्थ जो जीर्ण नही हो कर अपच करता है वह मिट जाया करती है ॥ ६२ ॥ नीम की जड को कमर मे बाँध लेने से अर्शों की शूल की पीडा का हरण हो जाता है । सन की जड ताम्बूल के सहित दग्ध किया हुआ इन्द्रिय कल्प का हरण करता है ॥६३॥ अश्व स्विन्न और हरिद्रा—श्वेत सर्षप (सफेद सरसों) का मूल—मातुलुङ्ग (नीबू) के बीज इन सबके समान भाग का उद्वर्त्तन (उबटना) बनावे । इस उद्वर्त्तन का सात रात्रि तक प्रयोग करे तो यह देह को शुभ करने वाला होता है ॥ ६४ ॥ श्वेत अपराजिता के पत्तों का नीम के पत्तो के रस के साथ नस्य प्रस्तुत कर देवे तो

डाकिनियों का—पितरों का और ब्रह्म राक्षसों का मोक्ष (छुटकारा) हो जाता है। मधुसार के द्वारा नस्य से भी हे वृषभध्वज ! उपर्युक्त बाधाओं से मुक्ति हो जाती है ॥६५॥

मूलं श्वेतज्जयन्त्याश्च पुष्यर्क्षे तु समाहृतम् ।
श्वेतापराजितार्कस्य चित्रकस्य च मूलनम् ॥
कृत्वा तु वटिकां नारी तिलकेन वशीभवेत् ॥६६
पिप्पलीलोहचूर्णन्तु शुण्ठीश्चामलकानि च ।
समानि रुद्र जानीयात्सैन्धवं मधुशर्करा ॥६७
उदुम्बरप्रमाणेन सप्ताहभक्षणात्समम् ।
पुमांश्च बलवान्स्यात्जीवेद्वर्षशतद्वयम् ॥
ॐ ठ ठ ठ इति सर्ववश्यप्रयोगेषु प्रयुक्तः सर्वकामकृत् ॥६८
संगृह्य वृक्षात्काकस्य निलयं प्रदहेच्च तत् ।
चिताग्नौ भस्म तच्छत्रोर्दत्तं शिरसि शङ्कर ॥६९
तमुच्चाटयते रुद्र शृणु तद्योगमुत्तमम् ।
निक्षिप्तश्च पुरीषं वै वनमूषिकचर्मणि ॥७०
कटितन्तुनिबद्धं वै कुर्यान्मिलनिरोधनम् ।
कृष्णाकाकस्य रक्तेन यस्य नाम प्रलिख्यते ॥७१
मध्येमध्ये च्युतदले ततो निक्षिप्यते हर ।
स खाद्यते काकवृन्दैर्नारी पुरुष एव च ॥७२

पुष्य नक्षत्र में श्वेत जयन्ती का मूल लावे—इसी प्रकार से श्वेत अपराजिता—अर्क और चित्रक का मूल लावे इन सबकी जड़ों को पीस कर वटी बना लेवे और उस वटी से अपने मस्तक पर तिलक लगावे तो उस पुरुष को देखकर ही नारी वशीभूत हो जाती है ॥६६॥ पीपल लोह चूर्ण—आँवला-सौंठ ये सब समभाग हे रुद्र ! जानने चाहिए सैन्धव—मधु और शर्करा इनके साथ गूलर के समान गोली बना कर बराबर एक सप्ताह तक भक्षण करने से वह पुरुष बहुत ही बलवान् हो जाता है और दो सौ वर्ष तक जीवित रहता है। "ॐ ठ ठ ठ" इस मन्त्र का समस्त वश्य के प्रयोगों में प्रयोग करने से सम्पूर्ण

नाम वाला होता है ।।६७।६८।। वृक्ष से काक का घोंसला अर्थात् रहने का स्थान समग्रहीत करके उसे जला देवे । चिताग्नि में जो भस्म हो उसे हे शङ्कर ! शत्रु के शिर में डाल देवे तो हे रुद्र ! उसका वह उच्चाटन कर देता है । मब उत्तम योग का श्रवण करो । बनैले चूहे के चर्म में निक्षिप्त पुरीष को कमर में तन्तु से निबद्ध कर देने से मल का निरोध हो जाता है । काले कौए के रक्त में जिसका नाम लिखा जाता है । हे हर ! मध्य-मध्य में च्युत दल में इसके पश्चात् निक्षिप्त किया जाता है वह काक वृन्दों के द्वारा नारी हो या पुरुष खाया जाता है ।।६६ से ७२।।

शर्करामध्वजाक्षीर तिलगोक्षुरकं समम् ।
स शत्रु नाशयेद्रुद्र उच्चाटितमिदं हर ।।७३
उलूककृष्णकाकस्य बिल्वस्याथ समिन्धनम् ।
रुधिरेण समायुक्तं ययोर्नाम्ना तु हूयते ।।
तयोर्मध्ये महावैरं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ।।७४
भावितं अक्षदुग्धेन मत्स्यस्य रोहितस्य च ।
मांस तत्साधितं तैलं तदभ्यङ्गाच्च रोगनुत् ।।
चन्दनोदकनस्यात्तु रोमोत्थानं भवेत्पुनः ।।७५
हस्ते लाङ्गलिकाकन्दं गृहीतं तेन लेपितम् ।
शरीरं येन स पुमान्वृद्धेर्दर्पं व्यपोहति ।।७६
मयूररुधिरेणैव जीवं सहन्ने शिव ।
ज्वलतान्तु भुजङ्गाना वितस्थानामपीश्वर ।।७७
देहश्चिताग्नौ दग्धश्च सर्पस्याजगरस्य हि ।
तद् भस्म समुखे क्षिप्तं शत्रूणां भङ्गकृद् भवेत् ।।७८

शर्करा—मधु—बकरी का क्षीर—तिल—गोखरू ये सब समान भाग में हो । हे रुद्र ! यह उच्चाटन उस शत्रु का नाश करता है ।।७३।। उलूक—कृष्ण काक के रक्त से संयुक्त बिल्व की जो सामिधा जिनके नाम से हवन की जाती है उन दोनों के बीच में महान् वैर हो जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।७४।। मत्स्य रोहित का मांस अक्ष के दुग्ध से भावित करे और उससे

फिर तैल को साधित करे तथा उस तेल से अभ्यङ्क करे तो रोग का हरण होता है। चन्दनोदक के नस्य से पुन: रोमों का उत्थान हो जाता है ॥ ७५ ॥ हाथ में लाङ्गलिका के कन्द को ग्रहण कर के उस से शरीर को लेपित करे तो वह पुरुष वृद्धि के दर्प को नष्ट कर देता है ॥ ७६ ॥ हे शिव ! हे ईश्वर ! विलों में स्थित भी भुजङ्गों के जीव को मयूर के रुधिर से ही सहरण करता है ।।७७।। सर्प या अजगर का शरीर चिता की अग्नि में जलाया हुआ हो और उसका भस्म शत्रु के सामने डाल देने से उनके भङ्ग करने वाला होता है ॥ ७८ ॥

मन्त्रेणानेन तत्क्षिप्तं महाभङ्ग करं रिपोः ।
ॐ ठ ठ ठ चाहीहि चाहीहि स्वाहा ॥
ॐ उदरं पाहिहि पाहिहि स्वाहा ॥७९
सुदर्शनाया मूलं तु पुष्यर्क्षे च समाहृतम् ।
निक्षिप्तं गृहमध्ये तु भुजङ्गा वर्ज्जयन्ति तत् ॥८०
अर्कमूलेन रविणा अर्काग्निज्वलिता शिव ।
युक्ता सिद्धार्थतैलेन वर्त्तिर्मार्गाहिनाशिनी ॥८१
मार्जारपललं विष्ठा हरितालञ्च भावितम् ।
छागमूत्रेण तल्लिप्तो मूषिको मूषिकान्हरेत् ॥८२
मुक्तो हि मन्दिरे रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा ।
त्रिफलार्जुनपुष्पाणि भल्लातकशिरीषकम् ॥८३
लाक्षा सर्जरसश्चैव विड़ङ्गश्चैव गुग्गुलः ।
एतंर्धूपो मक्षिकाणां मशकानां विनाशनः ॥८४

यदि इस निम्नलिखित मन्त्र के द्वारा वह क्षिप्त की जावे तो शत्रु के महान् भङ्ग के करने वाला होता है। मन्त्र यह है—" ॐ ठ ठ ठ चा हाहि चाहीहि स्वाहा। ॐ उदरं याहिहि स्वाहा " ॥७९॥ सुदर्शना का मूल जोकि पुष्य नक्षत्र में लाया गया हो। यदि इस घर के मध्य में निक्षिप्त कर दे तो उस घर को भुजङ्ग त्याग दिया करते हैं ॥ ८० ॥ हे शिव ! अर्क से मूल से रवि के द्वारा अर्काग्नि ज्वलित हुई सिद्धार्थ तैल से युक्त हुई वर्त्ति मार्ग के अहियों

के नाश करने वाली होती है ॥८१॥ मार्जार का पलल (माँस)—विष्ठा और हरि ताल गाय के मूत्र से भावित हो उससे लिप्त होने वाला मूषिक अन्य मूषिकों का हरण किया करता है ॥८२॥ हे रुद्र ! यदि यह मन्दिर में मुक्त हो तो इस विषय में कोई भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। त्रिफला—अर्जुन वृक्ष का पुष्प—भल्लातक (भिलावा) और शिरस—लाक्षा (लाख)—सर्ज का रस—वायविडङ्ग और गुग्गल—इन समस्त वस्तुओं से बनाया हुआ धूप हो तो उसके दान से मक्खियों और मच्छरों का विनाश होता है ॥८३॥८४॥

१०२—विविधौषधि (१)

हरिताल यवक्षार पत्राङ्ग रक्तचन्दनम् ।
जातिहिंगुनक लाक्षा पक्त्वा दन्तान्प्रलेपयेत् ॥१
हरीतकीकषायेण मृष्ट्वा दन्तान्प्रलेपयेत् ।
दन्ता स्युर्लोहिता पुंस श्वेता रुद्र न संशय ॥२
मूलकं स्विद्य मन्दाग्नौ रस तस्य प्रपूरयेत् ।
कर्णयो पूरणात्तेन कर्णस्रावो विनश्यति ॥३
अर्कपत्रं गृहीत्वा तु मन्दाग्नौ तापयेच्छनैः ।
निष्पीड्य पूरयेत्कर्णौ कर्णशूल विनश्यति ॥४
प्रियङ्गुमधुकाम्बष्ठाधातक्युत्पलपर्णिभि ।
मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभि कपित्थस्वरसेन च ॥
पचेत्तैलं तथा स्त्रीणा नश्येत्क्लेद प्रपूरणात् ॥५

श्री हरि भगवान् ने कहा—हरिताल-यवक्षार-पत्राङ्ग-रक्त चन्दन-जाति हिंगुनक-लाक्षा इनको पका कर दाँतों पर प्रलेप करे ॥ १ ॥ हरीतकी के कषाय से दाँतों को माँजकर प्रलेप करना चाहिए। हे रुद्र ! लोहित भी दाँत पुरुष के एकदम श्वेत हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२॥ मन्द अग्नि में मूलक का स्वेदन कर उसके रस को कानों में डाल देने से कानों का बहना नष्ट हो जाया करता है ॥ ३ ॥ आक के पत्ते लाकर मन्द अग्नि में धीरे-धीरे उनको तपावे और फिर निष्पीडन कर कानों में डाल देवे तो कान का दर्द

विनष्ट हो जाया करता है ।। ४ ।। प्रियंगु—मधुका–यष्टी–धातकी–उत्पल पङ्क्ति–मजीठ–लोध–लाक्षा और कपित्थ के स्वरस से तैल का पाक करे । इसके प्रपूरण करने से स्त्रियों के क्लेद का नाश होता है ।।५।।

> शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगु महौषधम् ।
> शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारुशिग्रु रसायनम् । ६
> सौवर्चलं यवक्षारं तथा सर्जकसैन्धवम् ।
> तथा ग्रन्थि विड़ं मुस्तं मधुयुक्तं चतुर्गुणम् ।।७
> मातुलुङ्गरसस्तद्वत्कदल्याश्च रसो हि तैः ।
> पक्वतैलं हरेदाशु स्रावादींश्च न संशयः ।।८
> कर्णयोः कृमिनाशः स्यात्कटुतैलस्य पूरणात् ।
> हरिद्रानिम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरीचानि च ।।६
> विडङ्गभद्रं मुस्तञ्च सप्तमं विश्वभेषजम् ।
> गोमूत्रेण च पिष्ट्वैव कृत्वा च वटिकां हर ।।
> अजीर्णाहृद्भवेच्चैकं द्वयं विसूचिकापहम् ।।१०
> पटोल मधुना हन्ति गोमूत्रेण तथार्बुदम् ।
> एषा च शाङ्करी वर्त्तिः सर्वनेत्रामयापहा ।।११

शुष्क मूलक शुण्ठी का क्षार—हिंगु–महौषध—शत पुष्पा–वच–कुष्ठ—दारु शिग्रु रसायन–सौवर्चल–यवक्षार—सर्जक सैन्धव–ग्रन्थि–विड़—मुस्त और मधु से युक्त चौगुना मातुलुङ्ग (नीबू) का रस तथा इसी की भांति कदली का रस से तैल का पाक करे । यह तैल स्राव आदि का बहुत ही शीघ्र हरण किया करता है—इसमें तनिक भी संशय की बात नहीं है ।। ६ ।।७।। ८ ।। कडुए तैल के पूरण करने से कानों के कृमियों का नाश होता है । हल्दी—नीम के पत्ते—पीपल और मिर्च काली—विडङ्गभद्र—मुस्त तथा सप्तम विश्व भेषज इन समस्त वस्तुओं को गोमूत्र से पीस कर हे हर ! वटिकाओं का निर्माण करे । एक के सेवन से अजीर्ण का हरण होता है और दो के सेवन करने से विसूचिका (हैजा)का अपहरण हो जाता है ।।६।।१०।। मधु के साथ पटोल तथा गोमूत्र

के साथ अर्बुद का हनन होता है। यह शाङ्करी वर्ति (वत्ती) है जो सम्पूर्ण नेत्रों के भय का अपहरण करने वाली कही जाती है ॥११॥

१०३—विविधौषधि (२)

वचा मासी च विल्वञ्च तगर पद्मकेशरम्।
नागपुष्प प्रियगुञ्च समभागानि चूर्णयेत्॥
अनेन धूपितो मर्त्यं कामवद्विचरेन्महीम् ॥१
कर्पूर देवदारुञ्च मधुना सह याजयत्।
लिङ्गलेपाच्च तेनैव वशीकुर्य्यात्स्त्रिय किल ॥२
मैथुन पुरुषो गच्छेद्गृह्णीयात्स्वकमिन्द्रियम्।
वामहस्तेन वामञ्च हस्त यस्या स्त्रिया लिहेत्॥
आलिप्ता स्त्री वश याति नान्य पुरुषमिच्छति ॥३
ॐ रक्तचामुण्डे अमुक मे वशमानय आनय। ॐ ह्रीं ह्रौं ह फट्।
इम जपत्वाऽयुत मन्त्र तिलकेन च शङ्कर।
गोरोचनासयुतेन स्वरक्तेन वशी भवेत्॥४
सैन्धव कृष्णलवण सौवीर मत्स्यपित्तकम्।
मधुसर्पि सितायुक्त स्त्रीणा तद्भगलेपनम् ॥५
य पुमान्मैथुन गच्छेन्नान्या नारी गमिष्यति।
शङ्खपुष्पी वचा मासी सोमराजी च फल्गुकम् ॥६
माहिष नवनीतञ्च गुटीकरणमुत्तमम्।
सनलानि च पक्षाणि क्षीरेणाज्येन पेषयेत् ॥७
गुटिका शोधिता कृत्वा नारीयोन्या प्रवेशयेत्।
दशवार प्रसूतापि पुन कन्या भविष्यति ॥८

श्रीहरि ने कहा—जटामासी—वच—बिल्व—तगर—पद्म केशर—नाग पुष्प—प्रियगु इन सबको समान भाग म लेकर चूर्ण बना डाले। फिर इस की धूप देने स मनुष्य कामदेव की भाँति विचरण भूमि पर किया करता है ॥ १ ॥ कपूर और देवदारु को शहद के साथ योजित करके जननेन्द्रिय पर प्रलेप करने से स्त्री—प्रसङ्ग में स्त्री को वशीकृत कर लेता है ॥२॥ जब पुरुष मैथुन क्रिया

करे तो अपनी इन्द्रिय को बाँये हाथ से ग्रहण करे और बाँये हाथ को जिस भी स्त्री का चाटे तो वह आलिमा स्त्री फिर अन्य पुरुष को नहीं चाहा करती है ।।३।। इस विषय का एक मन्त्र भी नीचे दिया जाता है–'ॐ रक्त चामुण्डे अमुक मे वश मानय आनय । ॐ ह्रीं ह्रीं हः फट्'' यह मन्त्र है। इस मन्त्र का दशहजार जाप करे । हे शङ्कर ! गोरोचन से संयुक्त अपने रक्त से तिलक से वशी होता है ।।४।। सैन्धव—कृष्णलवण (काला नमक)·सौवीर·मछली का पित्ता–मधु–घृत और मिश्री से युक्त करके स्त्रियों की जननेन्द्रिय का प्रलेप करे तो उस का ऐसा प्रभाव होता है कि जो पुरुष उसका गमन करेगा फिर किसी भी अन्य स्त्री की कभी इच्छा ही नहीं करेगा । शङ्खपुष्पी (एक प्रसर बूंटी का नाम है जिसे शङ्खाहुली कहते हैं)—वच—जटामांसी—सोम राजी—फल्गुक–भैंस के दूध का मक्खन–इन सबकी गुटिका बना लेवे। सनाल पद्मों को क्षीर और घृत से पेषण करे । इस तरह से शोधित गुटिका बना कर नारी की योनि में प्रविष्ट कर देवे । दश बार प्रसूता भी हो फिर भी कन्या ही होगी ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

सर्षपाश्च वचा चैव मदनस्य फलानि च ।
मार्जारविष्ठाधुस्तूरं स्त्रीकेशेन समन्वितः ॥९
चातुर्थकहरो धूपो डाकिनीज्वरनाशकः ।
अर्जुनस्य च पुष्पाणि भल्लातकविडङ्गके ॥१०
लाला चैव सर्जरसं सौवीरसर्षपास्तथा ।
सर्पयूकामक्षिकाणां धूमो मशकनाशनः ॥११
भूलतायाश्च चूर्णेन स्तम्भः स्याद्योनिपूरणात् ।
तेन लेपनतो योनौ भगस्तम्भस्तु जायते ॥१२

सर्ष पर (सरसों)—वच—मदन के फल—मार्जार (बल्ली) की विष्ठा–धुस्तूर और नारी के केश इन सब वस्तुओं की धूप लगा देने से चौथे दिन आने वाला चौथैया ज्वर शान्त हो जाया करता है और इस धूप से डाकिनी ज्वर का भी प्रशमन हो जाता है । अर्जुन नाम वाले वृक्ष के पुष्प–भल्लातक (भिलावा)–वाय विडङ्ग–लाला–सर्ज रस—सौवीर—सर्षप इनका धूम सर्प

यूका (जूँआ) मक्खियों का और मत्कुण (मच्छर) का नाश कर देने वाला होता है ॥६॥१०॥११॥ भूनता के चूर्ण से पूरण कर देने पर अर्थात् भर देने से योनि में स्तम्भता हो जाया करती है। इसका लेप कर देने से भी भगस्तम्भ होता है ॥१२॥

ताम्बूलञ्च घृत क्षौद्र लवण ताम्रभाजने ।
तथा पय समायुक्त चक्षु शूलहर परम् ॥१३
हरीतकी वचा कुष्ठ व्याप हिङ्गु मन शिला ।
कासे श्वासे च हिक्कायां लिह्यात्क्षौद्र घृतप्लुतम् ॥१४
पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुना लेहयेन्नर. ।
नश्यते पीनस कास श्वासश्च बलवत्तर ॥१५
समूलचित्रक भस्म पिप्पलीचूर्णक लिहेत् ।
श्वास कासञ्च हिक्काञ्च मधुमिश्र वृषध्वज ॥१६
नीलोत्पल शर्करा च मधुक पद्मक समम् ।
तण्डुलोदकसमिश्र प्रशमेद्रक्तविक्रिया ॥१७

भगवान् श्री हरि ने कहा—ताम्बूल (पान), घृत, क्षौद्र (शहद), लवण तथा पय से समन्वित ताम्र के पात्र में रक्खे तो यह प्रयोग नेत्रों के शूल को दूर करने के लिये परमोत्तम औषधि है ॥१३॥ हरीतकी (हर्रे), वचा (वच), कुठ, व्योष. हिङ्गु (हीग), मन शिला (मैनसिल) इन सब वस्तुओं को शहद और घृत म प्लुत करके चाटे तो यह कास (खाँसी), श्वास (दमा) और हिक्का (हिचकी आना) में बहुत लाभदायक होता है ॥१४॥ पीपल, त्रिफला (हर-बहेड़ा-आँवला) का चूर्ण इनको मनुष्य यदि शहद के साथ चाटे तो उसको पीनस का रोग (पीनस वह रोग है जिसमे नाक मे कृमि होकर एक प्रकार की महान् दुर्गन्धि उसम उत्पन्न कर दिया करते हैं जो पास म स्थित आदमी को असह्य हो जाया करती है), कास (खाँसी) और श्वास चाहे ये रोग कितने ही अधिक बलवान् क्यो न हो, शीघ्र नष्ट हो जाया करते हैं ॥१५॥ जड के सहित चित्रक की भस्म और पीपल का चूर्ण चाटने से हे वृषभध्वज ! शहद से मिश्रित करके इसको चाटा जावे तो इससे श्वास, खाँसी और हिचकियों के आने वाले रोग में आशातीत लाभ हो जाता है ॥१६॥ नीलोत्पल, शक्कर, मधुक और

पद्माक ये चारों वस्तुएँ समान भाग में लेकर सबको एकरस कूट-पीस कर रख लेवे और फिर चावलों को मसल कर धोये हुए जल के साथ सेवन करे तो रक्त की विक्रिया का शमन हो जाता है ।।१७।।

शुण्ठी च शर्करा चैव तथा क्षौद्रेण संयुता ।
कोकिलस्वर एव स्याद् गुण्डिकाभुक्तिमात्रतः ।।१८
हरितालं शङ्खचूर्णं कदलीदलभस्मना ।
एतद्द्रव्येण चोद्वर्त्य लोमशातनमुत्तमम् ।।१९
लवणं हरितालञ्च तुम्बिन्याश्च फलानि च ।
लाक्षारससमायुक्तं लोमशातनमुत्तमम् ।।२०
सुधा च हरितालञ्च शङ्खभस्म मनःशिला ।
सैन्धवेन सहैकत्र छागमूत्रेण पेषयेत् ।
तत्क्षणादुद्वर्त्तनादेव लोमशातनमुत्तमम् ।।२१
शङ्खमामलकं पत्रं धातक्याः कुसुमानि च ।
पिष्ट्वा तत्पयसा सार्द्धं सप्ताहं धारयेन्मुखे ।
स्निग्धाः श्वेताश्च दन्ताश्च भवन्ति विमलप्रभाः ।।२२

सौंठ, शर्करा (शक्कर) को शहद के साथ संयुक्त करके खाने से कोकिल के जैसा स्वर हो जाता है और गुण्डिका मात्र चाटने से ही स्वर में माधुर्य आकर सुन्दरता समुत्पन्न हो जाया करती है । निस्वरता के निवारण करने के लिये इसका सेवन हितकर होता है ।।१८।। हरिताल, शङ्ख का चूर्ण और कदली (केला) के पत्तों की भस्म इन तीनों का उद्वर्त्तन बना कर अर्थात् उबटन करने से लोमों का शातन बहुत अच्छी रीति से हो जाता है अर्थात् बाल उड़ जाया करते हैं ।।१९।। अन्य लोमों के शातन (नाश) करने का प्रयोग यह है जो कि परम उत्तम है—लवण (नमक), हरिताल, तुम्बिनी के फल इन तीनों चीजों को लाक्षारस से समन्वित करके उपयोग में लावे तो बालों का शातन होता है । ।।२०।। तुरन्त ही लोमों का शातन करना हो तो सुधा, हरिताल, शङ्ख की भस्म मैनसिल इन चारों चीजों को सैन्धव अर्थात् सैंधे नमक के साथ मिलाकर बकरी के पेशाब के साथ घोटे । जब भली-भाँति घुटकर सब वस्तुएँ एकरस एवं बारीक हो जावें तो इसका उबटना वहाँ पर लगावे जहाँ के रोमों का शातन

करना अभीष्ट हो तो उसी क्षण में अर्थात् लगाने के साथ ही लोमों का क्षय हो जाया करता है। यह सर्वोत्तम लोम पातन करने का नुस्खा है ।।२१।। शङ्ख, आँवले के पत्र, धातकी के पुष्प उस जल के साथ पीसकर सात दिन तक मुख में धारण करे तो दाँत स्निग्ध, श्वेत और अत्यन्त विमल प्रभा से युक्त हो जाया करते हैं ।।२ ।।

१०४ शक्तिवर्धक योग

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ।।१
भुक्ते तु शर्करा पीता नवनीतेन बुद्धिकृत् ।
गुडस्य तु पुराणस्य पलमेकन्तु भक्षयेत् ।
स्त्रीसहस्रञ्च गच्छेच्च पुमान्बलयुतो हर ।।२
कुष्ठ सचूर्णञ्च कृत्वा घृतमाक्षिकसंयुतम् ।
भक्षयेत्स्वप्नवेलाया वलीपलितनाशनम् ।।३
अतसीमाषगोधूमचूर्णं कृत्वा तु पिप्पलीम् ।
घृतेन लेपयेद्गात्रमेभिः सार्द्धं विचक्षण ।
कन्दर्पसदृशो मर्त्यो नित्य भवति शङ्कर ।।४
यवास्तिलाश्वगन्धा च मुषली सरला गुडम् ।
एभिश्च रचिता जग्ध्वा तरुणो बलवान्भवेत् ।।५
हिङ्गु सौवर्चलं शुण्ठी पीत्वा तु वत्रयितोदकं ।
परिणामाख्यशूलञ्च अजीर्णञ्चैव नश्यति ।।६
धातकीसोमराजीञ्च क्षीरेण सह पेषयेत् ।
दुर्बलश्च भवेत्स्थूलो नात्र कार्य्या विचारणा ।।७

श्री हरि भगवान् ने कहा—शरद्, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में बहुधा दही गर्हित होता है। दधि का सेवन शिशिर, हेमन्त और वर्षा ऋतुओं में प्रशस्त माना जाता है ।।१।। भोजन करने के पश्चात् नवनीत के साथ पी हुई शर्करा बुद्धि की वृद्धि करने वाली होती है। जो ताजा मट्ठा से मक्खन निकाला जाता है उसे ही नवनीत कहते हैं। भोजन करने के पीछे एक पल परिमाण का पुराना

गुड़ खाना चाहिये । इसके सेवन से पुरुष में अत्यधिक पुंस्त्व हो जाता है। इसके नियम से सेवन करने वाला पुरुष एक सहस्र नारियों के साथ अभिगमन करने का बल प्राप्त कर लिया करता है ।।२।। कुष्ठ को भली-भाँति चूर्ण करके घृत और शहद के साथ मिश्रित करे और शयन करने के समय में इसका भक्षण किया करे तो बली और पलित का नाश हो जाता है अर्थात् वृद्धावस्था के कारण जो शरीर के अङ्गों में तथा चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और बालों में सफेदी आ जाती है, इन सबका निवारण हो जाया करता है ।।३।। हे शङ्कर ! अतसी (अलसी), माष (उर्द), गोधूम (गेहूँ) इनका चूर्ण करके अर्थात् इन तीनों का चून और पीवल इन सबको घृत के साथ विचक्षण पुरुष शरीर पर लेप करे तो शरीर के अङ्गों में सौन्दर्य की छटा फूट निकलती है । नित्य-प्रति इस प्रकार से उपर्युक्त लेपन करने से मनुष्य कामदेव के समान हो जाया करता है ।।४।। यव (जौ), तिल, अश्वगन्ध, मुषली, सरला, गुड़ इन सबको एकत्रित कर विरचित पदार्थ को खाने से मनुष्य तरुण एवं बलशाली हो जाया करता है ।।५।। हींग, सौवर्चल, सौंठ इनका क्वाथ (काढ़ा) करके पीने से परि-णाम नाम वाला जो शूल होता है वह और भोजन का परिपाक न होने से अजीर्ण ये दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। भोजन के करने के कुछ ही पश्चात् जैसे ही उसका परिणाम अर्थात् परिपाक होना आरम्भ होता है वैसे ही एक प्रकार का शूल (दर्द) उदर में होना शुरू हो जाया करता है इसे ही परिणाम शूल कहा जाता है ।।६।। धातकी और सोमराजी इन दोनों को क्षीर के साथ पीसे। इसके सेवन से जो बहुत दुर्बल और दुबला-पतला हो वह भी स्थूल अर्थात् मोटा ताजा, हृष्ट-पुष्ट हो जाया करता है—इसमें तनिक भी विचार नहीं करना चाहिए ।।७।।

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं बली लिहेत् ।
क्षीराशी च क्षयी पुष्टि मेधाञ्चैवातुलां लभेत् ।।८
कुलीरचूर्णं सक्षीरं पीतञ्च क्षयरोगनुत् ।
भल्लातकं विडङ्गञ्च यवक्षारञ्च सैन्धवम् ।।९
मनःशिलाशङ्खचूर्णं तैलपक्वं तथैव च ।
लोमानि शातयत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ।।१०

मालूरस्य रस गृह्य जलौकां तत्र पेषयेत् ।
हस्तौ सलेपयेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥११
शाल्मलीरसमादाय खरमूत्रे निधाय तम् ।
अग्न्यादौ विक्षिपेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥१२
वायस्या उदरं गृह्य मण्डूकवसया सह ।
गुटिका कारयेत्तेन ततोऽग्नौ संक्षिपेत्सुधीः ।
एवमेतत्प्रयोगेण अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥१३
मुण्डीतकवचामस्त मरिच तगर तथा ।
चर्वित्वा च इम सद्यो जिह्वया ज्वलनं लिहेत् ॥१४

शर्करा और मधु (शहद) से समन्वित नवनीत की वर्ती को चाटना चाहिए । क्षीर का अशन करे अर्थात् दूध का पान करे तो क्षय वाला पुष्टि को प्राप्त किया करता है और केवल पुष्टि ही नहीं, इसके साथ-साथ अतुल मेधा (बुद्धि) का भी लाभ प्राप्त किया करता है अर्थात् इससे अनुपम बुद्धि भी बढ़ती है ॥८॥ कुचीर का चूर्ण क्षीर के सहित पीवे तो क्षय रोग का नाश होता है । जिसकी शारीरिक धातुऐं क्रमशः से क्षीण होने लगती हैं उस रोग का नाम क्षय रोग है । भल्लातक, वायविडङ्ग, यवक्षार, सैन्धव, मैनसिल, शङ्ख का चूर्ण इन सबको तैल में पक्व करके प्रस्तुत करे । इससे लोमों का लगाने पर निपातन हो जाता है—इसमें कोई भी विचारणा अर्थात् सन्देह नहीं करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि यह निश्चित एवं सफल प्रयोग है ॥१०॥ मालूर के रस को ग्रहण करके उसमें जलौका को पेषण करे अर्थात् पीस डाले, फिर उससे दोनों हाथों का लेपन करे । इसका यह प्रभाव होता है कि अग्नि-स्तम्भ हो जाता है और यह उत्तम अग्नि स्तम्भ है । अर्थात् फिर अग्नि से भी हाथ नहीं जला करते हैं ॥११॥ शाल्मली का रस लाकर उसे गधे के पेशाब में रख देवे और अग्नि आदि में विक्षिप्त कर देवे । इससे उत्तम अग्नि-स्तम्भ होता है ॥१२॥ वायसी का उदर लेकर मेंढक की वसा के साथ उसकी गुटिका बना लेवे । इसके पश्चात् उससे अग्नि में क्षिप्त कर देवे । सुधी पुरुष के इस प्रकार से करने पर इस प्रयोग से उत्तम अग्नि का स्तम्भन होता है ॥१३॥ मुण्डी तक वच

और मुस्त—मरिच तथा तगर इन सबको लेकर खूब चर्वण करे और फिर तुरन्त ही जीभ से अग्नि का लेहन करे अर्थात् अग्नि को मुँह में रख लेवे ॥१४॥

गोरोचनां भृङ्गराजं चूर्णीकृत्य घृतं समम् ।
दिव्याम्भसः स्तम्भनं स्यान्मन्त्रेणानेन वै तथा ।
ॐ अग्निस्तम्भनं कुरु कुरु ॥१५
ॐ नमो भगवते जलं स्तम्भय सं सं सं केक केक चर चर ।
जलस्तम्भनमन्त्रोऽयं जलं स्तम्भयते शिव ॥१६
गृध्रास्थिश्च गवास्थिञ्च तथा निर्माल्यमेव च ।
अरेर्यो निखनेद्द्वारे पञ्चत्वमुपयाति सः ॥१७
पञ्चरक्तानि पुष्पाणि पृथग्जात्याः समालभेत् ।
कुंकुमेन समायुक्तमात्मरक्तसमन्वितम् ॥१८
पुष्पेण तु समं पिष्ट्वा रोचनायाः पलैकतः ।
स्त्रिया पुंसा कृतो रुद्र तिलकोऽयं वशीकरः ॥ १६
ब्रह्मदण्डी तु पुष्येण भक्ष्ये पाने वशीकरः ।
यष्टीमधुपलैकेन पक्वमुष्णोदकं पिबेत् ॥२०
विष्टम्भिकाञ्च हृच्छूलं हरत्येव महेश्वर ।
ॐ ह्लू जः मन्त्रोऽयं हरते रुद्र सर्ववृश्चिकजं विषम् ॥२१

गोरोचन और भृङ्गराज का चूर्ण करके इसके समान भाग घृत लेवें तो दिव्य अम्भ अर्थात् जल का स्तम्भन होता है। स्तम्भन के लिए निम्नाङ्कित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। मन्त्र—'ॐ अग्नि स्तम्भनं कुरु कुरु।'' यह तो अग्नि के स्तम्भन की औषधि के साथ मन्त्र बोलते रहना चाहिए। अब जल के स्तम्भन का मन्त्र यह है—"ओम् नमो भगवते जलं स्तम्भय सं सं सं केक केक चर चर" यह जल के स्तम्भन का मन्त्र है शिव ! जल का स्तम्भन किया करता है ॥१५।१६॥ गृद्ध की अस्थि (हड्डी) और गौ की अस्थि तथा निर्माल्य को जो कोई अपने शत्रु के द्वार पर निक्षिप्त करदे अर्थात् डाल दे तो वह पञ्चत्व को (मृत्यु) को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥ पाँच रक्त वर्ण के पुष्प अर्थात् विभिन्न पाँच लाल रङ्ग के फूल और जाती के पृथक् पुष्प समालब्ध करे, कुंकुम से समायुक्त कर अपने रक्त से समन्वित करे फिर पुष्प के समान पीसकर रोचना

के मर्दन से तिलक करे तो हे रुद्र ! स्त्री के द्वारा पुरुष और पुरुष के द्वारा स्त्री का यह तिलक वश्य करने वाला होता है ॥१६॥ ब्रह्मदण्डी (एक बूँटी का नाम है) को पुष्य नक्षत्र में लाकर खाने पर या पीने पर वशीकरण करने वाली होती है। यही मधु एक पल परिमाण उष्ण उदक (जल) का पान करे तो विश्रम्भिका-हृदय शूल को हे हर ! यह हरण करता है। 'ॐ हूँ ज.' यह मन्त्र हे रुद्र ! सर्प और बिच्छू के विष का हरण कर देता है ॥२१॥

पिप्पली नवनीतञ्च शृङ्गवेरञ्च सैन्धवम् ।
मरिच दधि कुष्ठञ्च नस्ये पाने विष हरेत् ॥२२
त्रिफलार्द्रककुष्ठञ्च चन्दन घृतसयुतम् ।
एतत्पलाच्च लेपाच्च विषनाशो भवेच्छिव ॥२३
पारावतस्य चाक्षीणि हरिताल मन शिला ।
एतद्योगाद्विष हन्ति वैनतेय इवोरगान् ॥२४
सैन्धव श्यूषण चूर्ण दधिमध्वाज्यसयुतम् ।
वृश्चिकस्य विष हन्ति लेपोऽय वृषभध्वज ॥२५
ब्रह्मदण्डी तिलान्क्वाथ्य चूर्ण त्रिकटुक पिबेत् ।
नाशयेद्रुद्र गुल्मार्ति निरुद्ध रक्तमेव च ॥२६
पीत्वा क्षीर क्षौद्रयुत नाशयेदसृज श्रुतिम् ।
अटरूषकमूलेन भग नाभिञ्च लेपयेत् ।
सुख प्रसूयते नारी नात्र कार्या विचारणा ॥२७
शर्करा मधुसयुक्ता पीत्वा तण्डुलवारिणा ।
रक्तातिसारशमन भवतीति वृषध्वज ॥२८

पीपल, नवनीत, शृ गवेर, सैन्धव, काली मिर्च, दधि, कुष्ठ इनको नस्य में तथा पान में उपयुक्त करने से विष का हरण होता है ॥२२॥ हे शिव ! त्रिफला (हर्ड, बहेड़ा, आँवला), आर्द्रक (अदरख), कुष्ठ, चन्दन को घृत से सयुत करे। इसके लेप और पान से विष का नाश होता है ॥२३॥ पारावत (कबूतर) की आँखें, हरिताल, मन शिला (मैनसिल) इन सब वस्तुओं के योग से विष का हनन गरुड के द्वारा सर्पों को हो जाता है ॥२४॥ सैन्धव (सैंधा नमक), श्यूषण चूर्ण, दधि, मधु और घृत से सयुत करके हे वृषभध्वज !

इसका प्रलेप बिच्छू के विष को मार दिया करता है ॥२५॥ ब्रह्मदण्डी (एक रूखड़ी का नाम) और तिलों का क्वाथ (काढ़ा) करके त्रिकुटका चूर्ण के साथ पीवे तो हे रुद्र ! गुल्मों का नाश हो जाता है और निरुद्ध रक्त को भी नष्ट कर देता है ॥२६॥ क्षौद्र (शहद) से युक्त क्षीर पीकर रक्त की श्रुति का नाश किया जाता है। अटरूषक की जड़ को पीसकर नाभि और भग पर लेप करने से नारी सुख पूर्वक प्रसव किया करती हैं—इसमें कुछ भी विचारणा अर्थात् संशय करने की आवश्यकता नहीं है ॥२७॥ मधु (शहद) से संयुक्त शर्करा को तण्डुलों (चावलों) के पानी के साथ पान करने से हे वृषभध्वज ! रक्तातिसार अर्थात् खून के दस्तों में शमन हो जाता है ॥२८॥

॥ १०५—नारायण-भक्ति कथन ॥

मुक्तिहेतुमनाद्यन्तमजमव्ययमक्षयम् ।
यो नमेत् सर्वलोकस्य नमस्यो जायते नरः ॥१
विष्णुमानन्दमद्वैतं विज्ञानं सर्वगं प्रभुम् ।
प्रणमामि सदा भक्त्या चेतसा हृदयालयम् ॥२
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् ।
तं सर्वसाक्षिणं विष्णुं नमस्ये परमेश्वरम् ॥३
शक्तौ नापि नमस्कारः प्रयुक्तश्चक्रपाणये ।
संसारतृणवर्गाणामुद्वेजनकरो हि सः ॥४
कृष्णे स्फुरज्जलधरोदरचारुकृष्णे लोकाधिकारपुरुषे परमप्रमेये।
एको हि भावगुणमात्रदृढप्रणामः सद्यः श्वपाकमपि साधयितुं प्रशक्तः ॥५
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ।
स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ॥६
दुर्गसंसारकान्तारकूपारामेऽपि धावताम् ।
एकः कृष्णे नमस्कारो मुक्त्या तांस्तारयिष्यति ॥७

सूतजी ने कहा—मुक्ति के कारण स्वरूप-आदि एवं अन्त से रहित-अजन्मा—अव्यय अर्थात् नाश शून्य तथा क्षय से रहित प्रभु को जो नमन करता है वह मनुष्य सम्पूर्ण लोकों का नमन करने के योग्य हो जाया करता है ॥१॥ आनन्द स्वरूप द्वैत से रहित-चिन्मय—सर्वत्र गमन करने वाले परम प्रभु विष्णु को मैं सदा भक्ति भाव पूर्वक हृदय से प्रणाम करता हूँ जो कि मेरे हृदय में ही विराजमान रहने वाले हैं ॥२॥ जो अन्तःकरण में संस्थित होकर सबके शुभ एवं अशुभ कर्मों का बराबर देखते रहा करते हैं उन सबके साक्षी परमेश्वर भगवान् विष्णु को मैं नमन करता हूँ ॥ ३ ॥ भगवान् चक्रपाणि के लिये प्रयुक्त किया हुआ नमस्कार उनकी सर्वक्षम शक्ति के लिये है। वह प्रभु इस सम्पूर्ण संसार के तृण वर्गों के उद्वेजन करने वाले हैं ॥४॥ उमड़ते हुए महा मेघ की घटा के मध्य भाग के समान परम सुन्दर कृष्ण वर्ण वाले—समस्त लोकों पर पूर्ण प्रभुत्व रखने वाले पुरुष एवं परम प्रथा के करने योग्य भगवान् श्री कृष्ण के प्रति भक्ति भाव पूर्वक किया हुआ केवल एक बार का दृढ़ प्रणाम श्वपच को भी तुरन्त ही साधित करने के लिये पूर्ण समर्थ होता है ॥५॥ भूमि भाग में पड़े हुए दण्ड की भाँति प्रणाम करके जो भी कोई भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चना किया करता है वह जो परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है, उसे सैंकडों यज्ञ करने वाला भी—कभी प्राप्त नहीं करता है ॥ ६ ॥ अत्यन्त दुर्गम इस संसार के गहन वन के कूपा राम में धावन करने वाले प्राणियों को श्री कृष्ण के प्रति किया हुआ एक ही प्रणाम मुक्ति दान के द्वारा उनको तार देगा ॥ ७ ॥

आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् वा यत्र तत्र वा।
नमो नारायणायेति मन्त्रैकशरणो भवेत् ॥८
नारायणेति शब्दोऽस्ति वागस्ति वशवर्त्तिनी।
तथापि नरके मूढा पतन्तीति किमद्भुतम् ॥९
चतुर्मुखो वा यदि कोटिवक्त्रो भवेन्नर कोऽपि विशुद्धचेता।
स वै गुणानामयुतैकदेशं वदेन्न वा देववरस्य विष्णोः ॥१०
व्यासाद्या मुनयः सर्वे स्तुवन्तो मधुसूदनम्।
मतिक्षयान्निवर्त्तन्ते न गोविन्दगुणक्षयात् ॥११

श्रवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहहस्तैर्मृगो यथा ॥
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥१२
स्वप्नेऽपि नाम स्पृशतोऽपि तु सः क्षयं करोत्यक्षयपापराशिम् ।
प्रत्यक्षतः किं पुनरत्र पुंसा प्रकीर्त्तिते नाम्नि जनार्दनस्य ॥१३
नमः कृष्णाच्युतानन्तवासुदेवेत्युदीरितम् ।
यैर्भावभावितैर्विप्र न ते यमपुरं ययुः ॥१४

बैठा हुआ हो—शयन करता हुआ हो या स्थित हो जहाँ-कहीं भी किसी भी स्थिति में क्यों न हो जो कोई एक ही बार 'नमो नारायण'—अर्थात् भगवान् नारायण के लिये मेरा नमस्कार है—इस मन्त्र द्वारा उनकी शरणागति ग्रहण किया करता है उसका कल्याण हो जाता है ॥८॥ नारायण—यह शब्द वाणी को वशवर्त्तिनी करता है–ऐसा इसका अद्भुत चमत्कार है तो भी मूढ़ जीव नरक में पतित होते हैं—यह कितनी आश्चर्य की बात है ॥ ९ ॥ चार मुखों वाला हो अथवा एक करोड़ मुखों वाला मनुष्य क्यों न हो—कोई भी विशुद्ध चित्त वाला हो और देवों में परम श्रेष्ठ विष्णु से सहस्रों गुणों के एक देश को मुख से उच्चारण करे अथवा न करे ॥ १० ॥ व्यास आदि समस्त मुनिगण मधुसूदन भगवान् की स्तुति करते हुए मति के क्षय से निवृत्त हो जाया करते हैं गोविन्द के गुण क्षम से नहीं होते हैं ॥ ११ ॥ अवशता में रहने वाले के द्वारा भी भगवान् के कीर्त्तन करने पर पुरुष समस्त पातकों से सिंह के हाथों से मृग की भाँति तुरन्त ही विमुक्त हो जाता है तथा मोक्ष के लिये गमन करने के प्रति बद्धपरिकर होता है ॥१२॥ स्वप्न में भी भगवान् के नाम का स्पर्श करने वाले पुरुष के अक्षय पापों के समुदाय का क्षय हो जाता है—ऐसा इस भगवन्नाम का माहात्म्य है। यदि प्रत्यक्ष रूप से इस लोक में पुरुष के द्वारा भगवान् जनार्दन के नाम का कीर्त्तन करने पर तो जो इसका महत्त्व है उसका कहना ही क्या है ।१३। हे विप्र ! हे कृष्ण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है–ऐसा भक्ति के भाव से पूर्ण भावित होकर जो पुरुष भगवन्नाम को कहते हैं वे कभी भी यमपुर को नहीं जाया करते हैं ॥१४॥

क्षयो भवेद्यथा वह्नेस्तमसो भास्करोदये ।
तथैव कलुषौघस्य नामसंकीर्त्तनाद्धरे ॥१५
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरायाति नक्षयम् ।
गच्छतां दूरमध्वानं कृष्णमूर्च्छितचेतसाम् ॥१६
पाथेयं पुण्डरीकाक्षनामसंकीर्त्तनं हरेः ।
संसारसर्पसंदष्टविषचेष्टैकभेषजम्
कृष्णेति वैष्णवं नाम जप्त्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥१७
ध्यायन्कृते जपन्मन्त्रैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संस्मृत्य केशवम् ॥१८
जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
संसारसागरं तीर्त्वा स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥१९
विज्ञातदुष्कृतिसहस्रसमावृतोऽपि श्रेयः परं तु
परिशुद्धिमभीप्समानः ।
स्वप्नान्तरे न हि पुनश्च भवं स पश्येन्नारायणस्तुतिकथापरमो
मनुष्यः ॥२०

भुवनभास्कर सूर्य के उदय होने पर अग्नि की भाँति अन्धकार का क्षय हो जाता है उसी प्रकार से पापों के समूह का क्षय हरि भगवान् के शुभ नाम एवं गुणों की संकीर्त्तन से हो जाया करता है ॥१५॥ स्वर्ग में गमन करना क्या है जहाँ पुण्यों के क्षीण हो जाने पर पुनः मानव यहाँ इस लोक में आ जाया करता है अर्थात् स्वर्ग वास सावधिक ही हुआ करता है चिर स्थायी नहीं होता है। भगवान् श्री कृष्ण के नमोच्चारण करने से भावावेश में मूर्छित चित्त वाले घोर दूर मार्ग में जाने वाले भक्तों का कभी क्षय नहीं होता है ॥ १६ ॥ भक्ति मार्ग में चलने वालों का पाथेय (मार्ग का आहार) पुण्डरीकाक्ष भगवान् हरि के नामों का सङ्कीर्तन ही हुआ करता है अर्थात् नाम—सङ्कीर्त्तन के बल पर ही भक्त लोग आगे बढ़ते चले जाया करते हैं। भगवान् के नामों का सङ्कीर्त्तन संसार रूपी सर्प के दंशन के विष की चेष्टा की एक मात्र महौषध है। मनुष्य 'कृष्ण'—इस विष्णु के नाम का जाप करके मुक्त हो जाता है ॥ १७ ॥

कृतयुग में ध्यान से—त्रेता में मन्त्रों के जाप से—द्वापर में भगवान् के अर्चन से जो भी फल प्राप्त होता था वही फल इस कलियुग में भगवान् केशव के शुभ परम मङ्गलमय नाम के कीर्त्तन एवं स्मरण से होता है ॥ १८ ॥ जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर 'हरि'—ये भगवान् के दो अक्षर विद्यमान रहा करते हैं अर्थात् जो रात-दिन 'हरि-हरि'—यह रटता रहता है वह इस अथाह संसार के सागर को पार कर अन्त में भगवान् विष्णु के गृह अर्थात् लोक की प्राप्ति किया करता है ।।१६।। सहस्रों विज्ञात दुष्कृत्यों से घिरा हुआ भी परिशुद्धि की इच्छा रखने वाला मानव परं श्रेय को भगवन्नाम के प्रभाव से प्राप्त कर लेता है। भगवान् नारायण की स्तुति तथा कथा में अहर्निश परायण रहने वाला मनुष्य स्वप्नान्तर में भी फिर इस संसार को नहीं देखा करता है ।।२०।।

१०६—विष्णु पूजादि कथन

अशेषलोकनाथस्य सारमाराधनं हरेः ।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च ।।१
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् ।
यो न पूजयते विष्णुं तं विद्याद् ब्रह्मघातकम् ।।२
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
तं यो न ध्यायते विष्णुं स विष्ठायां क्रिमिर्भवेत् ।।३
नरके पच्यमानस्तु यमेन परिभाषितः ।
किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ।।४
उदकेनाप्यभावेन द्रव्याणामर्चितः प्रभुः ।
यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न चार्चितः ।।५
न तत्करोति सा माता न पिता नापि बान्धवः ।
यत्करोति हृषीकेशः सन्तुष्टः श्रद्धयार्चितः ।।६
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ।।७

न दानैर्विविधैर्दत्तैर्न पुष्पैर्नानुलेपनैः ।
तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः ॥८

सम्पदैश्वर्यमाहात्म्यैः सन्तत्या न च कर्मणा ।
विमुक्तश्चैकता लभ्या मूलमाराधनं हरेः ॥६

सूतजी ने कहा—समस्त लोकों के स्वामी भगवान् हरि की आराधना करना ही इस संसार में परम सार वस्तु है। जो हरि को पुरुष सूक्त मन्त्रों के द्वारा जल तथा पुष्पों को समर्पित करता है वह हरि का परमाराधक पुरुष है ॥१॥ केवल एक श्री हरि की समर्चना करने से यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अर्चित हो जाता है। जो पुरुष भगवान् विष्णु का पूजन नहीं किया करता है उसको ब्रह्म घातक ही समझना चाहिए अर्थात् ब्रह्म घाती के तुल्य पाप का भागी होता है ॥२॥ जिससे समस्त भूतों की प्रवृत्ति होती है और जिसके द्वारा ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ करता है उन भगवान् विष्णु को जो ध्यान में नहीं लाता है वह निश्चय ही विष्ठा में रहने वाला कृमि हुआ करता है ॥३॥ नरक में घोर यातनाऐं सहन करते हुए मनुष्य से यमराज के द्वारा पूछा जाता है कि क्या तूने सब क्लेशों के नाश करने वाले देव केशव भगवान् की कभी अर्चना नहीं की थी ? ॥४॥ भगवान् केशव तो इतने कृपालु हैं कि यदि पूजा के अन्य समस्त उपचार द्रव्यों का भी अभाव हो तो केवल जल से ही उनकी अर्चना भक्ति के साथ करने से वे इतने सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाया करते हैं कि उस अर्चना करने वाले जीव को अपना लोक प्रदान कर देते हैं। ऐसे सहज दयालु प्रभु की तूने अर्चना क्यों नहीं की थी ॥५॥ फिर यमराज ने कहा—अपने गर्भ से उत्पन्न करने वाली वह माता जिस काम को नहीं किया करती है—न पिता ही करता है और न कोई बान्धव करता है उसको परम श्रद्धा के भाव से अर्चित किये हुए हृषीकेश प्रभु पूर्ण सन्तुष्ट होकर अपने भक्त के परम कल्याण को कर दिया करते हैं ॥६॥ वर्णों और आश्रमों के शास्त्रोक्त आचार वाले पुरुष के द्वारा परमाराध्य पुरुष भगवान् विष्णु समाराधित किये जाते हैं। उनकी आराधना के अतिरिक्त अन्य उनको सन्तुष्ट करने का कोई भी मार्ग नहीं है ॥७॥ अनेक प्रकार के दानों से जो कि दिये जाया करते हैं—

पुष्पों से और अनुलेपनों से यह महान् आत्मा वाले भगवान् तोष को प्राप्त नहीं होते हैं जैसे कि जनार्दन प्रभु भक्ति के द्वारा प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ करते हैं ॥८॥ विमुक्तों के द्वारा सम्पत्ति—ऐश्वर्य–माहात्म्य–सन्तति और कर्म से एकता प्राप्त नहीं की जाती है। इस एकता अर्थात् एकरूपता एवं भगवत्सन्निधि के प्राप्त करने का मूल श्री हरि का आराधन ही होता है ॥९॥

१०७—विष्णु माहात्म्य कथन

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य्यं च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥१
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ।
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ॥२
षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च ।
नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्माणि यानि वै ।
यानि येषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥४
कृतपापेऽनुरक्तिश्च यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तं तु तत्यैकं हरेः संस्मरणं परम् ॥५
मुहूर्त्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमतन्द्रितः ।
सोऽपि स्वर्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः ॥६
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु योगस्थस्य च योगिनः ।
या काचिन्मनसो वृत्तिः सा भवत्यच्युताश्रया ॥७

श्री सूतजी ने कहा—समस्त शास्त्रों का अवलोकन करके और बारम्बार भली-भाँति विचार करके यह एक ही सिद्धान्त निष्पन्न हुआ है कि सर्वदा भगवान् नारायण का ही ध्यान करना चाहिए ॥१॥ जो परम देव भगवान् नारायण का अनन्य बुद्धि के द्वारा नित्य ध्यान किया करता है, उसको दानों के देने, तीर्थों के अटन, तपश्चर्या और यज्ञों के यजन करने से क्या प्रयोजन है अर्थात् इन सबके करने की नारायण के उपासक को कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥२॥ साठ हजार और साठ सौ तीर्थ भी नारायण को किये हुए एक प्रणाम की

सोलहवी कला के समान नही होते हैं। भगवान् नारायण के लिये किये हुए प्रणाम का इतना अधिक महत्त्व है ॥३॥ सम्पूर्ण प्रायश्चित्त और समस्त तपश्चर्या के कर्म-कलाप जो भी हैं ये सब उतना महत्त्व नही रखते हैं जितना श्री कृष्ण नाम के स्मरण का होता है। कृष्ण का अनुस्मरण इन सबसे परमाधिक होता है ॥४॥ जिस पुरुष की किये हुए पाप मे अनुरक्ति हो जाती है उसका एक ही श्री हरि का सस्मरण करना परमोत्तम प्रायश्चित्त है ॥५॥ जो कोई व्यक्ति तन्द्रा रहित होकर एक मुहूर्त मात्र भी नारायण का ध्यान करता है वह भी स्वर्ग को गमन करता है उसके विषय मे तो क्या कहा जावे, जो अहर्निश नारायण के ध्यान में ही परायण रहा करता है ॥६॥ जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था में और योग में स्थित योगी की दशा मे जो कुछ भी मन की वृत्ति होती है वह मनोवृत्ति भगवान् के समाश्रय प्राप्त करने वाली हुआ करती है ॥ ७ ॥

उत्तिष्ठन्निपतन्विष्णु प्रलपन्विविशस्तथा ।
भुञ्जन् जाग्रच्च गोविंद माधव यश्च सस्मरेत् ॥८
स्वे स्वे कर्मण्यभिरत कुर्याच्चित्त जनार्दने ।
एषा शास्त्रानुसारोक्ति किमन्यैर्बहुभाषितै ॥९
ध्यानमेव परो धर्मो ध्यानमेव पर तप ।
ध्यानमेव पर शौच तस्माद् ध्यानपरो भवेत् ॥१०
नास्ति विष्णो पर ध्येय तपो नानशनात्परम् ।
तस्मात्प्रधानमत्रोक्त वासुदेवस्य चिन्तनम् ॥११
यद् दुर्लभ पर प्राप्य मनसो यन्न गोचरम् ।
तदप्यप्रार्थित ध्यातो ददाति मधुसूदन ॥१२
प्रमादात्कुर्वता पु सा प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णो सपूर्णं स्यादिति श्रुति ॥१३
ध्यानेन सदृश नास्ति शोधन पापकर्मणाम् ।
आगामिदेहहेतूना दाहको योगपावक ॥१४

उठते हुए, पडते हुए तथा विवश होकर बैठते हुए, भोजन करते हुए

और जागते हुए जो भगवान् हरि के नाम का उच्चारण करता रहता है तथा गोविन्द माधव का संस्मरण किया करता है। अपने-अपने कर्मों में रत रहते हुए जो भगवान् जनार्दन में अपना चित्त लगाता रहता है, यह शास्त्र के अनुसार हो उक्ति है, अन्य बहुत कुछ कथनों से क्या लाभ है ।।८।९।। भगवान् का ध्यान करना ही सब से परम धर्म है और भगवद्-ध्यान ही सबसे बड़ा तप होता है। ध्यान का करना ही सर्वोत्तम शुचिता है। इसलिये सर्वदा भगवान् के ध्यान में ही परायण रहना चाहिए ।।१०।। भगवान् विष्णु से अधिक अन्य कोई भी ध्येय अर्थात् ध्यान करने के योग्य नहीं है और अनशन करने से बड़ा अन्य कोई तप नहीं होता है। अतएव प्रधान मन्त्र द्वारा कथित भगवान् वासुदेव का ही चिन्तन होता है ।।११।। जो प्राप्त करना अत्यन्त ही दुर्लभ है और जो मन में भी कभी आने वाला नहीं है उसको भी बिना ही प्रार्थना किये हुए ध्यान में आने वाले भगवान् मधुसूदन प्रदान कर दिया करते हैं ।।१२।। प्रमाद पूर्वक करने वाले पुरुषों का जो कुछ भी यज्ञों में छूट जाता है वह सभी विष्णु के स्मरण करने से ही सम्पूर्णता को प्राप्त हो जाया करता है—यह श्रुति प्रतिपादन करती है। ।।१३।। पाप कर्मों के शोधन करने के लिए ध्यान के समान अन्य कोई भी उत्तम साधन नहीं है। आने वाले देह के हेतुओं को दाह करने वाला योग ही एक पावक होता है ।।१४।।

विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्तिमत्रैव जन्मनि।
प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मा च योऽचिरात् ।।१५
यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति वानिलः।
तथा चित्तस्थिते विष्णौ योगिनां सर्वकिल्बिषम् ।।१६
यथाग्नियोगात्कनकममलं संप्रजायते।
संप्लुष्टो वासुदेवेन मनुष्याणां सदा मलः ।।१७
गङ्गास्नानसहस्रेषु पुष्करस्नानकोटिषु ।
यत्पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ।।१८
प्राणायामसहस्रैस्तु यत्पापं नश्यति ध्रुवम्।
क्षणमात्रेण तत्पापं हरेर्ध्यानात्प्रणश्यति ।।१९

कलिप्रभावो दुष्टोक्ति पाषण्डाना तथोक्तय ।
न क्रामन्मानम तस्य यस्य चेतसि केशव ॥२०
सा तिथिस्तदहोरात्र स योग स च चन्द्रमा ।
लग्न तदेव विख्यात यत्र प्रस्मर्य्यते हरि ॥२१

विशेष रूप से निष्पन्न समाधि वाला योगी इसी जन्म में मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है क्योंकि वह योग की अग्नि के द्वारा अपने समस्त कर्मों का शीघ्र ही दाह कर दिया करता है ॥१५॥ जिस प्रकार से उठी हुई ज्वाला वाला अग्नि कक्ष को दग्ध कर दिया करता है उसी भाँति विष्णु के चित्त में स्थित होने पर योगियों के सम्पूर्ण पापों का अग्नि दग्ध कर दिया करता है ॥१६॥ जिस तरह अग्नि के ताप के सम्पर्क को प्राप्त करके सुवर्ण विशुद्ध एव मल रहित हो जाया करता है उसी तरह से भगवान् वासुदेव के सम्पर्क होने से मनुष्यों के मन का मल भी सदा सम्प्लुत हो जाता है ॥१७॥ जो महापाप सहस्रों बार भागीरथी गंगा में स्नान करने से तथा करोड़ों बार पुष्कर में स्नान करने से क्षीण हुआ करता है वह भगवान् श्री हरि के स्मरण करने मात्र से नष्ट हो जाया करता है ॥१८॥ सहस्रों बार प्राणायाम करने से जो पाप का निश्चय रूप से नाश होता है वही पाप एक क्षण मात्र के श्री हरि के ध्यान करने से नष्ट हो जाया करता है ॥१९॥ इस घोर एव महान् दारुण कलियुग का प्रभाव दुष्टों की उक्ति तथा पाखण्डियों की उक्तियाँ उस पुरुष के हृदय को आक्रमण नहीं किया करती है जिसके हृदय में भगवान् केशव विद्यमान रहा करते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान् के ध्यान करने वाले के हृदय पर कोई भी दूषित प्रभाव नहीं होता है ॥२०॥ वही उत्तम तिथि है—वही श्रेष्ठ अहोरात्र है—वह ही अच्छा योग और चन्द्रमा है तथा उत्तम लग्न कही गई है जिसमें श्री हरि का स्मरण किया जाता है ॥२१॥

सा हानिस्तन्महच्छिद्र सा चार्थजडमूकता ।
यन्मुहूर्तं क्षणो वापि वासुदेव न चिन्तते ॥२२
कलौ कृतयुगस्तस्य कलिस्तस्य कृते युगे ।
हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युत ॥२३

यस्याग्रतस्तथा पृष्ठे गच्छनस्तिष्ठतोऽपि वा ।
गोविन्दे नियतं चेतः कृतकृत्यः सदैव सः ॥२४
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥२५
असंत्यज्य च गार्हस्थ्यं स तप्त्वा च महत्तपः ।
छिनत्ति पौरुषीं मायां केशवार्पितमानसः ॥२६
क्षमां कुर्वन्ति क्रुद्धेषु दयां मूर्खेषु मानवाः ।
मुदञ्च धर्मशीलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते ॥२७
ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानदानादिकर्मसु ।
प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु दुष्कृतेषु विशेषतः ॥२८

वही सबसे बड़ी हानि है और वही महान छिद्र है तथा वही अर्थ जड़ता एवं मूकता है, जो घड़ी और क्षण भगवान् वासुदेव के चिन्तन के बिना यों ही नष्ट हो जाया करते हैं। इस महा दुर्लभ मनुष्य जीवन का समय भगवान् के ध्यान, चिन्तन और स्मरण के बिना नष्ट कर देने के समान महान् हानि अन्य कुछ भी नहीं है ॥२२॥ जिसके हृदय में गोविन्द का ध्यान है और वह विराजमान रहते हैं उसके लिये इस कलियुग में भी सतयुग ही होता है और जिसके हृदय में गोविन्द का ध्यान—स्मरण और चिन्तन नहीं है उसको कृतयुग में भी घोर कलियुग ही रहा करता है ॥२३॥ जिसके आगे-पीछे जाते हुए और स्थित होते हुए चित्त में नियत रूप से गोविन्द का ध्यान एवं स्मरण रहता है वह पुरुष सदा ही कृत-कृत्य समझना चाहिये ॥२४॥ जप, होम और अर्चन आदि में जिसका मन भगवान् वासुदेव में स्थित रहा करता है। हे मैत्रेय ! उसके बस निरन्तर भगवच्चिन्तन में देवेन्द्र के पदादि के प्राप्ति का फल ही महान् विघ्न हुआ करता है ॥२५॥ गृहस्थाश्रम का त्याग न करके महान् तप करते हुए केशव भगवान् में अपने मन को लगा देने वाला पुरुष पौरुषी माया का छेदन कर दिया करता है ॥२६॥ भगवान् गोविन्द जब हृदय में विराजमान रहते हैं तो मनुष्य क्रुद्धों पर क्षमा, मूर्खों पर दया और धर्मशीलों पर प्रसन्नता

किया करते हैं ॥२७॥ स्नान आदि सब कर्मों मे, समस्त प्रायश्चित्तो मे और विशेष रूप से दुष्कृतों में देववर नारायण का ही ध्यान करना चाहिए ॥२८॥

लाभस्तेषा जयस्तेषा कुतस्तेषां पराभव ।
येपामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥२६
कीटपक्षिगणानाञ्च हरौ सन्यस्तचेतसाम् ।
ऊर्ध्वा एव गतिश्चास्ति कि पुनर्ज्ञानिना नृणाम् ॥३०
वासुदेवतरुच्छाया नातिशीतातितापदा ।
नरकद्वारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते ॥३१
न च दुर्वासस शापो राज्यञ्चापि शचीपते. ।
हन्तु समर्थं हि सखे हृत्कृते मधुसूदने ॥३२
वदतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वत' ।
नापयाति यदा चिन्ता सिद्धा मन्येत धारणाम् ॥३३
ध्येय. सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती नारायण. सरसिजासन-
सन्निविष्ट ।
केयूरवान्कनककुण्डलवान्किरीटी हारी हिरण्मयवपुधृतशङ्खचक्र.।
न हि ध्यानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते ।
श्वपचान्नानि भुञ्जानो पापी नैवात्र लिप्यते ॥३४।३५

जिन पुरुषों के हृदय में इन्दीवर के सदृश श्याम वर्ण वाले भगवान् जनार्दन विराजमान रहते हैं अर्थात् जो जनार्दन प्रभु का निरन्तर चिन्तन एवं स्मरण किया करते हैं उनको सदा लाभ ही होता है और उनकी सर्वदा विजय होती है। उनका पराभव तो कभी होता ही नहीं है ॥२६॥ जिन कीट और पक्षीगणों ने भी हरि में अपने चित्त की वृत्ति लगादी है उनकी ऊर्ध्व ही गति होती है। जो ज्ञान वाले मनुष्य हैं उनकी चित्तवृत्ति हरि में सलग्न हो जावे तो उनके कल्याण के विषय में तो कहना ही क्या है ? ॥३०॥ भगवान् वासुदेव के चरणों की शरणागति एक तरुवर की छाया के समान ही है, जो न अत्यन्त शीत देने वाली है और न अति ताप ही प्रदान करने वाली होती है। वह तो नरकों के द्वारों का शमन करने वाली होती है। ऐसी वासुदेव तरु की छाया

का सेवन क्यों नहीं किया जाता है ? तात्पर्य यह है कि उसका सेवन अवश्य हर एक को करना ही चाहिए ।।३१।। भगवान् मधुसूदन को अपने हृदय में स्थित कर लेने पर अर्थात् हृदय में उनका चिन्तन-स्मरण करने पर हे सखे ! दुर्वासा ऋषि का शाप और शची के पति इन्द्रदेव का राज्य भी हनन करने को समर्थ नहीं होता है ।।३२।। बोलते हुए, स्थित रहते हुए अथवा स्वेच्छा से अन्य कोई भी कर्म करते हुए भी जिस समय में भगवान् का चिन्तन हृदय से दूर नहीं रहता है उसको ही सिद्ध धारणा मानना चाहिए ।।३३।। सूर्य-मण्डल के मध्य में स्थित, कमल के आसन पर सन्निविष्ट, केयूर धारण करने वाले, सुवर्ण के कुण्डल पहिने हुए तथा किरीट और हार धारे हुए, सुवर्ण सदृश शरीर वाले एवं शख और चक्र को धारण करने वाले भगवान् नारायण का सदा ध्यान करना चाहिए ।।३४।। भगवान् के ध्यान के तुल्य इस लोक में अन्य कुछ भी पवित्र नहीं है । श्वपच के अन्नों का खाने वाला पापी इसमें लिप्त नहीं होता है । ।। ३५ ।।

सदा चित्तं समासक्तं जन्तोर्विषयगोचरे ।
यदि नारायणेऽप्येवं को न मुच्येत बन्धनात् ।।३६
विष्णुभक्तिर्यस्य चित्ते तं वा जीवो नमेत्सदा ।
स तारयति चात्मानं तथैव दुरितार्णवात् ।।३७
तज्ज्ञानं यत्र गोविन्दः स कथा यत्र केशवः ।
तत्कर्म यत्तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितैः ।।३८
स जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम् ।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ।।३९
प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदुस्तदर्चनं पाणिफलं दिवौकसः ।
मनः फलं तद्गुणकर्मचिन्तन वचस्तु गोविन्दगुणस्तुतिः फलम् ।।४०
मेरुमन्दारमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः ।
केशवस्मरणादेव तस्य सर्वं विनश्यति ।।४१

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म पुरुष साध्वसाधु वा ।
सर्व नारायणे न्यस्य कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥४२
तृणादिचतुराम्यान्त भूतग्राम चतुर्विधम् ।
चराचर जगत्सर्वं प्रसुप्त मायया तव ॥४३

जीवों का चित्त सासारिक विषयों मे सदा आसक्त रहा करता है। जैसी आसक्ति उसकी विषयों मे होती है वैसी ही यदि नारायण के चरणों मे हो तो फिर इस जन्म-मरण के आवागमन के सासारिक बन्धनों से कौन मुक्ति नहीं पा जाता ॥३६॥ सूतजी ने कहा-जिसके चित्त मे सदा विष्णु की भक्ति रहती है अथवा विष्णु का जो नमन किया करता है वह दुरितो (पापों) के समुद्र से अपने आप को पार कर ले जाया करता है ॥ ३७ ॥ वह ही ज्ञान चर्चा है जिस मे गोविन्द के गुणों का वर्णन हो और वही कथा है जिस मे भगवान् केशव की लीला का वर्णन हो तथा वही कर्म है जो भगवान् की सेवा से सम्बन्धित होता है अर्थात् भगवान् के निमित्त ही किया जाता है। विशेष कथन करने से क्या लाभ है ॥३८॥ वही वस्तुत जिह्वा सफल एव सार्थक है जो हरि का स्तवन किया करती है। वही चित्त प्रशसनीय है जो भगवान् मे लगा दिया गया हो। वे ही दोनों हाथ श्लाघा करने के योग्य होते हैं जो भगवान् की पूजा करने में लगे रहते हैं ॥३९॥ ईश्वर को प्रणाम करना ही शिर के प्राप्त करने का फल होता है। जो शिर भगवान् के आगे झुक जाता है वही सफल शिर होता है। देवगणों की पूजा-अर्चा का करना ही हाथों का फल होता है। भगवान् के गुण-गणों का चिन्तन करने ही से मन की सफलता हुआ करती है। वाणी की सफलता तभी होती है जब श्री गोविन्द के गुणों का वर्णन करे या उनकी स्तुति किया करती है ॥४०॥ मेरु एव मन्दार पर्वत के समान भी पाप कर्मों का समूह भगवान् केशव के स्मरण से ही वह महान् पापों की राशि सम्पूर्ण विनष्ट हो जाया करती है ॥४१॥ तृण से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त चार प्रकार का भूतों का समुदाय होता है। यह समस्त चर—अचर स्वरूप जगत् आपकी माया से प्रसुप्त है। जो कुछ भी सत् या असत् कर्म पुरुष किया करता है उस सबको नारायण मे न्यस्त कर देने पर वह कुछ भी करता हुआ भी लिप्त नहीं हुआ करता है ॥४२॥४३॥

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र न वेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिश्चेतसि संस्थितोजड़धियांपुंसां ददात्यव्ययः ।
किञ्चित्तं यदयं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्त्तिते ॥४४
अग्निकार्य्यं जपः स्नानं विष्णोर्ध्यानञ्च पूजनम् ।
गन्तुं दुःखोदधेः कुर्य्युर्ये च तत्र तरन्ति ते ॥४५
राष्ट्रस्य शरणं राजा पितरो बालकस्य च ।
धर्मश्च सर्वमर्त्यानां सर्वस्य शरणं हरिः ॥४६
ये नमन्ति जगद्योनिं वासुदेवं सनातनम् ।
न तेभ्यो विद्यते तीर्थमधिकं मुनिसत्तम ॥४७
अनर्घ्यरत्नपूजाश्च कुर्य्यात्स्वाध्यायमेव च ।
तमेवोद्दिश्य गोविन्द ध्यानं नित्यमतन्द्रितः ॥४८

जिस भगवान् में अपनी मति को न्यस्त कर देने वाला पुरुष नरक में कभी नहीं जाया करता है और जिसके चिन्तन करने में स्वर्ग में प्राप्त होता है। जिसमें अपनी आत्मा और मन को निवेशित कर देने वाले को कभी ब्रह्म का लोक भी बड़ी वस्तु नहीं होता है। चित्त में संस्थित होकर जो जड़ बुद्धि वालों को भी पुरुषों को अव्यय अविनाशी भगवान् मुक्ति प्रदान कर दिया करते हैं तो क्या आश्चर्य की बात हैं कि अच्युत भगवान् का सङ्कीर्त्तन करने पर यह पुरुष विलय को प्राप्त हो जाता हैं ॥ ४४ ॥ अग्नि कार्य अर्थात् होम करना–जप–स्नान–विष्णु का ध्यान तथा भगवान् विष्णु का अर्चन दुखः के सागर से पार होने के लिये करने चाहिए जिस में वे तर जाते हैं ॥ ४५ ॥ राष्ट्र का रक्षक राजा होता है—बाल्यावस्था में बालक के रक्षा करने वाले उसके माता-पिता होते हैं—समस्त मनुष्यों का शरण अर्थात् रक्षा करने वाला धर्म हुआ करता है और सभी का शरण भगवान् श्री हरि होते हैं ॥ ४६ ॥ जो इस जगत् योनि अर्थात् उद्भव स्थान—सनातन भगवान् वासुदेव का नमन किया करते है हे मुनि श्रेष्ठ ! उनसे विशेष अधिक तीर्थ नहीं होता है। तात्पर्य यह है कि भगवान् को नमन करने वाले भक्त तीर्थ स्वरूप ही हुआ करते हैं ॥४७॥

नित्य ही तन्द्रा से रहित होकर अनर्घ्य रत्न—पूजा और स्वाध्याय उन्ही गोविन्द के उद्देश्य रख कर ध्यान करना चाहिए ॥४८॥

शूद्र वा भगवद्भक्त निषाद श्वपच तथा ।
द्विजजाति सम मन्ये न याति नरक नर ॥४६
आदरेण सदा स्तौति धनवन्त धनेच्छया ।
तथा विश्वस्य कर्त्तार को न मुच्येत बन्धनात् ॥५०
यथा जातबना वह्निर्दहत्यार्द्र मपीन्धनम् ।
तथाविध स्थितो विष्णुर्योगिना सर्वकिल्विषम् ॥५१
आदीप्त पर्वत यद्वन्नाश्रयन्ति मृगादय ।
तद्वत्पापानि सर्वाणि योगाभ्यासरतो नरः ॥५२
यस्य यावाश्च विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती ।
एतावानेव कृष्णस्य प्रभाव परिमीयते ॥५३
विद्वेषादपि गोविन्द दमघोषात्मज स्मरन् ।
शिशुपालो गतस्तत्त्व किं पुनस्तत्परायण ॥५४

भगवान् का भक्त शूद्र-निषाद, श्वपच अथवा द्विज जाति हो सबको समान मानना चाहिए ऐसा पुरुष कभी नरक मे नहीं जाया करता है ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार से बहुत ही आदर के साथ धन की इच्छा से धनवान् पुरुषों की स्तुति किया करते हैं उसी भाँति इस सम्पूर्ण विश्व के कर्त्ता भगवान् का स्तवन किया जावे तो कौन पुरुष है जो सासारिक बन्धन से मुक्ति न पावे अर्थात् सभ मुक्त हो जाया करते हैं ॥५०॥ जिस तरह वन मे वृक्षो के ही सघर्ष से समुत्पन्न दावानल गीले भी ईधन को दग्ध कर दिया करता है उसी भाँति योगियों के हृदय में स्थित भगवान् विष्णु उनके सम्पूर्ण किल्विषो को जला कर नष्ट कर दिया करते हैं ॥ ५१ ॥ जैसे चारो ओर से अग्नि से दीप्त पर्वत को मृग आदि पशुगण अपना आश्रय नही बनाया करते है उसी तरह योग के अभ्यास में रति रखने वाले पुरुष समस्त पापो को अपने अन्दर आश्रय नहीं दिया करते हैं ॥५२॥ जिस पुरुष का जितना विश्वास भगवान् मे होता है उसको उतनी ही सिद्धि हुआ करती है। भगवान् श्री कृष्ण का इतना ही

प्रभाव परिमाणित होता है ।।५३।। दमघोस का पुत्र शिशुपाल विद्वेष के भाव से भी श्री कृष्ण का अहर्निश स्मरण करता हुआ मुक्ति को प्राप्त हो गया था फिर जो श्री कृष्ण के ध्यान—स्मरण में भक्ति भाव से परायण रहने वाले हैं उनके कल्याण के विषय में क्या कहा जा सकता है ।।५४।।

१०८—नृसिंह स्तोत्र

नारसिंहस्तुतिं वक्ष्ये शिवोक्तं शौनकाधुना ।
पूर्वं मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन् ।।१
भगवन् भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ।।२
भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः ।
तस्माद्घोरतरप्रायं मनः शीघ्रं निवर्त्त्यताम् ।।३
इत्येवं शङ्करेणोक्तमनादृत्य तु तद्वचः ।
भक्षयामासुरव्यग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।४
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै ।
नृसिंहरूपिणं देवं प्रदध्यौ भगवान् शिवः ।।५
अनादिनिधनं देवं सर्वभूतभवोद्भवम् ।
विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केशरमालिनम् ।।६
रत्नाङ्गदं सुमुकुटं हेमकेशरभूषितम् ।
श्रोणिसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ।।७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब मैं शिव के द्वारा वर्णित नरसिंह भगवान् की स्तुति को बतलाता हूँ। पहिले सब मातृगण ने भगवान् शङ्कर से यह वाक्य कहे थे ।।१।। हे भगवन् ! आपके प्रसाद से हम इस देव-असुर और मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण जगत् को भक्षण कर जायगें । आप हमको अपनी आज्ञा दे दीजिये ।।२।। शङ्कर ने कहा—आप सबके द्वारा इन समस्त प्रजाजनों की रक्षा करनी चाहिए—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसके विषय में जो तुम्हारा अत्यन्त घोरतर मत है उसे शीघ्र ही निवृत्त कर डालो ।। ३ ।। भगवान्

शङ्कर ने यही कहा था किन्तु उन ने शङ्कर के वचनों को न मान कर अव्यग्र होते हुए चराचर इस त्रिलोकी को भक्षण करना आरम्भ कर दिया था ॥ ४ ॥ इस प्रकार से मातृगण के द्वारा त्रैलोक्य के भक्ष्यमाण हो जाने पर भगवान् शिव ने नृसिंह रूप वाले देव का ध्यान किया था ॥ ५ ॥ नृसिंह देव के ध्यान में स्वरूप का वर्णन किया जाता है—आदि और अन्त से रहित देव—समस्त प्राणियों के उत्पत्ति स्थान—विद्युत् के तुल्य जीभ वाले—महान् दाढों से युक्त—स्फुरमाण केसरों की माला वाला उनका दिव्य रूप है ॥ ६ ॥ रत्नों से जटित अङ्गदों को भुजाओं में धारण करने वाले—सुन्दर मुकुट मस्तक पर पहिने हुए—सुनहल केसरों से अलंकृत तथा विशाल सुवर्ण की करधनी से विभूषित है ॥ ७ ॥

नीलोत्पलदलश्याम रत्ननूपुरभूषितम् ।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डोदरमण्डपम् ॥८
आवर्त्तसदृशाकारैः संयुक्त देहरोमभिः ।
सर्वपुष्पविचित्राश्च धारयश्च महास्रजम् ॥९
स ध्यानमात्रो भगवान्प्रददौ तस्य दर्शनम् ।
यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रुद्रैस्तु भक्तितः ॥१०
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः ।
प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः ॥११
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर ।
दैत्येश्वरेन्द्र संहारनखशुक्तिविराजित ॥१२
नखकमलसलग्न हेमपिङ्गलविग्रह ।
नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो ॥
कल्पान्तेऽम्भोदनिर्घोष सूर्य्यकोटिसमप्रभ ॥१३

नील कमल के दलों के समान श्याम वर्ण वाले—रत्नों से निर्मित, नूपुरों से भूषित और अपने अतुल तेज से समस्त ब्रह्माण्ड के उदर मण्डप को आक्रान्त किये हुए हैं ॥८॥ आवर्त (भवर) के समान आकार वाले शरीर के रोमों से समन्वित आपका देह है। समस्त प्रकार के पुष्पों से सुनिर्मित एवं

अति अद्भुत विशाल माला को धारण किये हुए हैं ।।९।। इस प्रकार के अत्यद्भुत स्वरूप वाले भगवान् का जैसे ही शङ्कर ने ध्यान किया था वैसे ही नृसिंह भगवान् ने ध्यान करने ही से तुरन्त शिव को दर्शन दिया था। भक्ति भाव पूर्वक जिस प्रकार के स्वरूप का ध्यान शिव ने किया था उसी प्रकार के रूप से जोकि देवों के द्वारा भी दुर्निरीक्ष्य था नृसिंह देव ने दर्शन प्रदान किया था। उस समय शङ्कर ने देवेश नृसिंह को प्रणाम करके फिर उनकी स्तुति की थी ।। १० ।। ११ ।। शङ्कर ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! नरसिंह के स्वरूप धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। दैत्यों के स्वामी हिरण्यकशिपु के संहार करने वाले नखरूपी शक्तियों से आप सुशोभित हैं। नखरूपी कमलों में संलग्न हेम के समान पिङ्गल वर्ण के विग्रह से युक्त हैं। हे जगत् के गुरु ! परम शोभ न पद्मनाभ आपके लिये मेरा प्रणाम है। आप कल्प के अन्त में मेघों के समान निर्घोष (गर्जना) वाले हैं और करोड़ों सूर्यों के तुल्य प्रभा से युक्त हैं ।।१२।।१३।।

सहस्रयमसंत्रास सहस्रेन्द्रपराक्रम ।
सहस्रधनदस्फीत सहस्रचरणात्मक ।।१४

सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशुहरिक्रम ।
सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत ।।१५

सहस्ररुद्रसंजप्त सहस्राक्षनिरीक्षण ।
सहस्रजन्ममथन सहस्रबन्धमोचन ।।१६

सहस्रवायुवेगाग्र सहस्राक्ष कृपाकर ।
स्तुत्वैवं देवदेवेशं नृसिंहवपुषं हरिम् ।।
विज्ञापयामास पुनर्विनयावनतः शिवः ।।१७

अन्धकस्य विनाशाय या सृष्टा मातरो मया ।
अनादृत्य तु सद्वाक्यं भक्षयन्त्यद्भुताः प्रजाः ।।१८

सृष्ट्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्त्तुमपराजितः ।
पूर्वं कृत्वा कथं तासां विनाशमभिरोचये ।।१९

एवमुक्त स रुद्रेण नरसिंहवपुर्हरिः ।
सहस्रदेवीजिह्वाग्रात्तदा वागीश्वरो हरिः ॥२०
तथा सुरगणान्सर्वान्रौद्रान्मातृगणान्विभुः ।
संहृत्य जगतः शमं कृत्वा चान्तरधीयत ॥२१

हे नृसिंह देव ! आप सहस्रों यमों को सत्रास देने वाले हैं और सहस्र इन्द्रों के समान पराक्रम से युक्त हैं। आप सहस्र कुबेरों के तुल्य स्फीत हैं तथा सहस्र वरुणों के स्वरूप वाले हैं ॥१४॥ सहस्र चन्द्रों की प्रतिभा के सदृश हैं—और सहस्रांशु (सूर्य) के हरि (अङ्गा) के समान क्रम वाले हैं। सहस्र रुद्रों के समान तेज वाले हैं और आप सहस्रों ब्रह्माओं से संस्तुत हैं ॥ १५ ॥ सहस्र रुद्रों से भली भाँति जय किये हुए हैं और सहस्राक्ष (इन्द्र) के समान निरीक्षण करने वाले हैं। आप सहस्र जन्मों के मथन करने वाले तथा सहस्रों के बन्धों को मोचन करने वाले हैं ॥१६॥ सहस्र वायु के वेग के समान अग्रगामी हैं। आप सहस्राक्ष हैं तथा कृपा के करने वाले हैं। इस तरह से शिव ने देवों के हेतु नृसिंह वपुधारण करने वाले हरि भगवान् की स्तुति की थी और फिर बहुत नम्रता के साथ अवनत होकर शङ्कर ने उनको विज्ञापित किया था ॥१७॥ अन्धक दैत्य के विनाश करने के लिये जो मैंने मातृगण का सृजन किया था वे मेरे वाक्य का अनादर करके अद्भुत प्रजाओं का भक्षण करती हैं ॥१८॥ उनका सृजन करके अपराजित मैं अब उनका संहार करने में असमर्थ हूँ क्योंकि पहिले मैंने उनका सृजन किया था अब उनका विनाश करना कैसे अच्छा लगता है ? ॥१९॥ इस प्रकार से जब रुद्र ने कहा तो नरसिंह के स्वरूप धारण करने वाले भगवान् हरि ने जो वागीश्वर थे अपनी जिह्वा के अग्रभाग से सहस्र देवी—सुरगण—रौद्रगण और मातृगणों को विभु ने संहार करके सम्पूर्ण जगत् का कल्याण कर दिया था तथा उसी समय वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ॥२०॥२१॥

नारसिंहमिदं स्तोत्रं यः पठेन्नियतेन्द्रियः ।
मनोरथप्रदस्तस्य रुद्रस्येव न संशयः ॥२२

ध्यायेन्नृसिंहं तरुणार्कनेत्रं सिताम्बुजातं ज्वलिताग्निवक्त्रम् ।
अनादिमध्यान्तमजं पुराणं परावरेशं जगतां निधानम् ॥२३
जपेदिदं सन्ततदुःखजालं जहाति नीहारमिवांशुमाली ।
समातृवर्गस्य करोति मूर्त्तिं यदा यदा तिष्ठति तत्समीपे ॥२४
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्त्तेः पूजां विधातुं त्रिपुरान्तकारी ।
प्रसाद्य तं देववरं स लब्ध्वा अव्याज्जगन्मातृगणेभ्य एव ॥२५

इस नरसिंह भगवान् के स्तोत्र को अपनी सब इन्द्रियों को नियत करके जो भी कोई पुरुष नित्य पढ़ेगा उस पाठ करने वाले के समस्त मनोरथों को रुद्र की ही भाँति यह स्तोत्र प्रदान कर देगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२२॥ तरुण सूर्य के सदृश नेत्रों वाले—श्वेत कमल के समान वर्ण वाले—जलती हुई अग्नि के तुल्य मुख वाले—आदि-मध्य तथा अन्त से रहित—अजन्मा परावर के स्वामी—जगतों के निधान—परम पुराण पुरुष नृसिंह भगवान् का ध्यान करता हूँ ॥२३॥ जो इसका जाप करता है वह सूर्य के द्वारा नीहार (कुहरा) की भाँति सन्तत रहने वाले दुःखों के समुदाय को त्याग देता है अर्थात् उस जप करने वाले के दुःखों का जाल नष्ट हो जाता है। मातृ वर्ग के सहित की मूर्त्ति बनावे जब-जब उसके समीप में स्थित होवे। देवेश्वर नृसिंह मूर्त्ति की पूजा करने के लिये त्रिपुर दैत्य के विनाश करने वाले शङ्कर ने देवों में श्रेष्ठ नृसिंह भगवान् को प्राप्त कर उन्हें प्रसन्न किया था और फिर मातृगण से ही जग की रक्षा की थी ॥२४॥२५॥

१०६—कुलामृत स्तोत्र

कुलामृतं प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं यत्तु हरोऽब्रवीत् ।
पृष्टः श्रीनारदेनैव नारदाय तथा शृणु ॥१
यः संसारे सदा द्वन्द्वैः कामक्रोधैः शुभाशुभैः ।
शब्दादिविषयैर्बद्धः पीड्यमानः स दुर्मतिः ॥२
क्षणं विमुच्यते जन्तुर्मृत्युसंसारसागरात् ।
भगवन् श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो हि त्रिपुरान्तक ॥३

तस्य तद्वचन श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचन ।
उवाच तमृषि शम्भु प्रसन्नवदनो हर ॥४
ज्ञानामृत पर गुह्य रहस्यमृषिसत्तम ।
वक्ष्यामि शृणु दुखघ्न भवबन्धभयापहम् ॥५
तृणादिचतुरास्यान्त भूतग्राम चतुर्विधम् ।
चराचर जगत् सर्व प्रसुप्त यस्य मायया ॥६
तस्य विष्णो प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यति ।
स निस्तरति ससार देवानामपि दुस्तरम् ॥७

सूत जी ने कहा—श्री नारद ने शिव से पूछा था तब नारद के द्वारा पूछे गये शिव ने नारद से जो कहा था उस कुलामृत स्तोत्र को मैं अब कहता हूँ। उसका तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ नारद जी ने कहा—जो ससार में सदा शुभ और अशुभ द्वन्द्व काम और क्रोध तथा शब्द आदि अनेक विषयों से बद्ध रहा है और वह दुष्ट मति वाला पीड्यमान रहता है। ऐसा व्यक्ति इस मृत्यु ससार रूपी सागर से क्षण मात्र में ही विमुक्त हो जावे इस प्रकार का प्रयोग हे त्रिपुरान्तक शिव ! मैं आपसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ ॥ २ ॥ ३ ॥ त्रिलोचन भगवान् शङ्कर ने नारद के वचन को सुनकर परम प्रसन्न मुख होकर हर शम्भु उस ऋषि से बोले—॥ ४ ॥ महेश्वर ने कहा—हे ऋषियों मैं परम श्रेष्ठ ज्ञानामृत अत्यन्त गोपनीय वस्तु है और परम गुह्य रहस्य है। यह दुखो के हनन करने वाला तथा सासारिक बन्धन के भय का अपहरण करने वाला है—इसको मैं तुमको बतलाता हूँ तुम समाहित होकर इसका श्रवण करो ॥ ५ ॥ जिस परमात्मा प्रभु की माया से तृण जैसे तुच्छ वस्तु से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त चारों प्रकार का यह भूतों का चर और अचर समुदाय एव सम्पूर्ण जगत् प्रसुप्त हो रहा है उस प्रभु विष्णु के प्रसाद से यदि कोई जन्तु प्रबुद्ध हो जाता है अर्थात् ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो वह इस देवो के द्वारा भी दुस्तर ससार-सागर से पार चला जाता है। तात्पर्य है ससार के जन्म मरण द्वारा निरन्तर आवागमन महान् बन्धन से निस्तार प्राप्त कर लिया करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

भोगैश्वर्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ् मुखः ।
पुत्रदारकुटुम्बेषु मत्ताः सीदन्ति जन्तवः ।।८
सर्व एकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ।
यस्त्वाननं निबध्नाति दुर्मतिः कोषकारवत् ।।
तस्य मुक्तिं न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ।।६
तस्मान्नारद सर्वेषां देवानां देवमव्ययम् ।
आराधयेत् सदा सम्यग्ध्यायेद्विष्णुं मुदान्वितः ।।१०
यस्तु विश्वमनाद्यन्तमजमात्मनि संस्थितम् ।
सर्वज्ञमचलं विष्णुं सदा ध्यायेत् स मुच्यते ।।११
देवं गर्भोचितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ।
अशरीरं विधातारं सर्वज्ञानमनोरतिम् ।
अचलं सर्वगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ।।१२
निर्विकल्पं निराभासं निष्प्रपञ्चं निरामयम् ।
वासुदेवं गुरुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ।।१३
सर्वात्मकस्य यावन्तमात्मचैतन्यरूपकम् ।
शुभमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ।।१४

सांसारिक भोगों के अति विशाल जाल और ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त तथा तत्त्व-ज्ञान से विमुख जन्तु-गण अपने पुत्र और दास एवं कुटुम्ब-परिवार में ही मत्त होकर अनेक दुःखों एवं अवसादों को भोगते रहा करते हैं ।।८।। सभी जन्तु इसी एक महा विशाल सागर में डूबे हुए हैं और वन के हाथियों की भाँति जीर्ण हो रहे हैं। कोषकार के समान जो आनन को निबद्ध कर लेता है वह दुर्मति है और उस ऐसे पुरुष की करोड़ों जन्मों के पश्चात् भी मैं मुक्ति नहीं देखता हूँ ।।९।। इसलिये हे नारद ! समस्त देवों के भी देव परम प्रभु अव्यय, अविनाशी भगवान् विष्णु की सदा आराधना अवश्य ही करनी चाहिए। परम आनन्द से युक्त होकर विष्णु की भली-भाँति समाराधना करे ।।१०।। जो प्राणी विश्व स्वरूप आदि और अन्त से रहित, अजन्मा सर्वज्ञ, अचल और अपनी ही आत्मा में अन्तर्यामी रूप से विराजमान भगवान् विष्णु का ध्यान सदा किया

करता है वह अवश्य ही इस संसार से मुक्त हो जाता है ।।११।। सर्वोचित देव विष्णु का सर्वदा ध्यान करने वाला पुरुष विमुक्ति प्राप्त कर लिया करता है। शरीर से रहित, विधाता, सबके ज्ञान और मन को रति प्रदान करने वाले, सर्वत्र गमन करने वाला अर्थात् सबमें व्यापक एवं अचल भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहने वाला पुरुष संसार से विमुक्त हो जाया करता है ।।१२।। विकल्पों से रहित, आभास शून्य, बिना प्रपञ्चों वाला एवं निरामय परम गुरु भगवान् वासुदेव विष्णु का सर्वदा ध्यान करने वाला व्यक्ति इस संसार से मुक्त हो जाता है ।।१३।। सर्वात्मा का जितना भी आत्म चैतन्य स्वरूप है ऐसे परम शुभ, एकाक्षर भगवान् विष्णु का सर्वदा निरन्तर ध्यान करते रहने वाला पुरुष इस संसार के विशाल बन्धन से छुटकारा पा जाता है ।।१४।।

वाक्यातीतं त्रिकालज्ञं विश्वेशं लोकसाक्षिणम् ।
सर्वस्मादुत्तमं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ।।१५
ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभिः सिद्धचारणैः ।
योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ।।१६
संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छन्लोको ह्यशेषतः ।
स्तुत्वैवं वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ।।१७
संसारबन्धनात्कोऽपि मुक्तिमिच्छन्समाहितः ।
अनन्तमव्ययं देवं विष्णुं विश्वे प्रतिष्ठितम् ।
विश्वेश्वरमजं विष्णुं सदा ध्यायन्विमुच्यते ।।१८
नारदेन पुरा पृष्ट एवं स वृषभध्वजः ।
यत्तेन तस्मै व्याख्यातं तन्मया कथितं तव ।।१९

वचनों से भी परे, तीनों (भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान) कालों का ज्ञाता, विश्व के स्वामी और समस्त लोकों के साक्षी तथा सबसे उत्तम भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहने वाला जन्तु अवश्य ही विमुक्ति प्राप्त कर लेता है। ।।१५।। ब्रह्मा से आदि लेकर देवों और गन्धर्वों के द्वारा, महामुनियों से, सिद्ध तथा चारणों के द्वारा एवं योगियों से जो सेवित हैं ऐसे भगवान् विष्णु का निरन्तर ध्यान करने वाला पुरुष निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।।१६।।

इस अत्यन्त दुस्तर और महाविशाल संसार के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष समाहित होकर सम्पूर्ण लोक से छुटकारा पाने की चाह रखता हुआ वरद विष्णु की इस प्रकार स्तुति करके उनका ही सर्वदा ध्यान करता हुआ इससे छुटकारा पा जाता है ।।१७।। संसार के बन्धन से मुक्ति की इच्छा करने वाला कोई भी सावधान होकर अनन्त, अव्यय विष्णुदेव को जो इस विश्व में प्रतिष्ठित हैं तथा विश्व के ईश्वर एवं अजन्मा हैं उनका सर्वदा निरन्तर ध्यान करके अवश्य ही विमुक्त हो जाता है ।।१८।। श्री सूतजी ने कहा— इस प्रकार से पहिले समय में नारद देवर्षि के द्वारा पूछे गये वह भगवान् वृषभध्वज शिव ने उनको जो व्याख्या करके बतलाया था वही मैंने सब तुमको बतला दिया है ।।१९।।

तमेव सततं ध्यायन्निर्व्ययं ब्रह्म निष्कलम् ।
अवाप्स्यसि ध्रुवं तात शाश्वतं पदमव्ययम् ।।२०
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
क्षणमेकाग्रचित्तस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।२१
श्रुत्वा सुरऋषिर्विष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात् ।
स विष्णुं सम्यगाराध्य सिद्धेः पदमवाप्तवान् ।।२२
यः पठेच्छृणुयाद्वापि नित्यमेव स्तवोत्तमम् ।
कोटिजन्मकृतं पापमपि तस्य प्रणश्यति ।।२३
विष्णोः स्तवमिदं दिव्यं महादेवेन कीर्त्तितम् ।
प्रयत्नाद्यः पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति ।।२४

हे तात ! इसलिये निर्व्यय, निष्कल उसी ब्रह्म का निरन्तर ध्यान करते हुए तुम सब निश्चय ही अव्यय एवं शाश्वत पद को प्राप्त कर लोगे ।।२०।। सहस्रों अश्वमेध यज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ भी एक क्षण भर एकाग्र चित्त करके भगवान् विष्णु के ध्यान करने की सोलहवीं कला के समान भी नहीं होते हैं। ऐसा विष्णु के ध्यान का माहात्म्य है ।।२१।। इस तरह से देवर्षि नारद जी ने ईश्वर शिव से भगवान् विष्णु के ध्यान का परम प्राधान्य श्रवण किया था और फिर उनने विष्णु की भली-भाँति आराधना की तथा सिद्धि के

परम पद को प्राप्त किया था ॥२२॥ जो कोई भी पुरुष इस परमोत्तम स्तव का नित्य ही पाठ करता है अथवा उसका श्रवण किया करता है उसके करोड़ों जन्मों में किये हुए भी पाप पूर्ण रूप से नष्ट हो जाया करते हैं ॥२३॥ इस भगवान् विष्णु के स्तव को जो कि अत्यन्त दिव्य एवं परम उत्तम है, महादेव ने इसका कीर्त्तन किया था। जो भी कोई प्रयत्न पूर्वक इसका नित्य ही पाठ करता है वह अमृतत्त्व को प्राप्त हो जाता है ॥२४॥

११०—मृत्यष्टक स्तोत्र

स्तोत्रं सर्वं प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयेन भाषितम् ।
दामोदर प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥१
शङ्खचक्रधरं देवं व्यक्तरूपिणमव्ययम् ।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥२
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम् ।
माधवञ्च प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥३
पुरुषं पुष्करक्षेत्रबीजं पुण्यं जगत्पतिम् ।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥४
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥५
भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम् ।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥६

श्री सूतजी ने कहा—मार्कण्डेय के द्वारा भाषित मैं सर्व स्तोत्र को बतलाता हूँ। अब तो मैं भगवान् दामोदर की शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ। यह मृत्यु हमारा क्या बिगाड़ करेगा ? ॥१॥ शङ्ख, चक्र आयुधों के धारण करने वाले व्यक्त रूप से संयुत एवं परम अव्यक्त देव अधोक्षज विष्णु की शरणागति में पहुँच गया हूँ अब मेरा यह मृत्यु क्या कर सकेगा ? ॥२॥ वराह, वामन, नृसिंह, माधव, जनार्दन भगवान् विष्णु की प्रपत्ति में मैं प्राप्त हो गया हूँ। अब यह मृत्यु हमारी क्या हानि करेगा ? ॥३॥ पुष्कर क्षेत्र के बीज, जगतों के स्वामी,

पुण्य स्वरूप, लोकों के नाथ परम पुरुष विष्णु का मैं प्रपन्न हो चुका हूँ, मेरा अब यह मृत्यु क्या बुरा करेगा ? ।।४।। सहस्र शिरों वाले, व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप से समन्वित, सनातन (सदा सर्वदा रहने वाला) एवं महान् योग वाले विष्णुदेव प्रपत्ति मैंने ग्रहण कर ली है। अब यह परम दारुण मृत्यु प्राप्त होकर भी हमारी क्या हानि कर सकेगा ? ।।५।। समस्त भूतों की आत्मा, महान् आत्मा यज्ञों की योनि अर्थात् उद्भव स्थान, विश्व रूप वाले तथा अयोनिज भगवान् विष्णु की मैं शरणागति में प्राप्त हो गया है। अब यह विचारा मृत्यु हमारा क्या कर सकेगा ? ।।६।।

इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तवं तस्य महात्मनः ।
अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैः प्रपीड़ितः ।।७
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता ।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ।।८
मृत्यवष्टकमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम् ।
मार्कण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ।।९
इदं यः पठते भक्त्या त्रिकालं नियतं शुचिः ।
नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः ।।१०
हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं नारायणं शाश्वतमप्रमेयम् ।
विचिन्त्य सूर्य्यादतिराजमानं मृत्युं स योगी जितवांस्तथैव ।।११

इस प्रकार से कहे हुए महान् आत्मा वाले भगवान् के स्तव का श्रवण कर मृत्यु वहाँ से चला गया था और वह विष्णु के दूतों के द्वारा बहुत ही प्रपीड़ित किया गया था ।।७।। इस प्रकार से परम धीमान् मार्कण्डेय मुनि ने उस मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी। पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले भगवान् नृसिंह के प्रसन्न हो जाने पर यहाँ फिर कुछ भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहा करती है ।।८।। यह मृत्यु का अष्टक परम पुण्यमय है। यह अत्यन्त शुभ है और मृत्यु का प्रशमन करने वाला है। इसको मार्कण्डेय मुनि के हित-सम्पादन करने के लिये ही विष्णु भगवान् ने स्वयं ही अपने मुखारविन्द से कहा था ।।९।। इस मृत्यु के अष्टक को जो नित्य ही नियम पूर्वक भक्ति-भाव के साथ तीनों कालों में नियत

एवं पवित्र होकर पढ़ता है उस अच्युत भगवान् में चित्त को लगाने वाले मनुष्य की अकाल में कभी भी मृत्यु नहीं होती ॥१०॥ अपने हृदय रूपी पद्म में सर्वदा संस्थित, परम पुराण पुरुष, शाश्वत, प्रमाण करने के योग्य भगवान् नारायण का विशेष रूप से चिन्तन करे जो कि सूर्यदेव से भी महत्तर दीप्ति वाले हैं। ऐसा ध्यान करने वाला योगी मृत्यु को उसी प्रकार से मार्कण्डेय की भाँति ही जीत लेता है ॥११॥

१११—अच्युत स्तोत्र

वक्ष्येऽहमच्युतस्तोत्रं शृणु शौनक सर्वदम् ।
ब्रह्मा पृष्टो नारदाय यथोवाच तथापरम् ॥१
यथाऽऽराध्यो मया विष्णुः स्तोतव्यो वरदो मया ।
प्रत्यहं चार्चनाकाले तथा त्वं वक्तुमर्हसि ॥२
ते धन्यास्ते सुजन्मानस्ते हि सर्वसुखप्रदाः ।
सफलं जीवितं तेषां ये स्तुवन्ति सदाच्युतम् ॥३
मुने स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि वासुदेवस्य मुक्तिदम् ।
शृणु येन स्तुतः सम्यक्पूजाकाले प्रसीदति ॥४
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः सर्वपापहारिणे ।
नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः ॥५
नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर ॥६
नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक ।
नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब हम भगवान् अच्युत के स्तोत्र कहेंगे जो कि समस्त पदार्थों के प्रदान करने वाला है। अब तुम उसका श्रवण करो। एक बार देवर्षि नारद जी ने ब्रह्मा जी से इसको पूछा था तब जैसा भी उन्होंने नारदजी से कहा था वही मैं तुमको बता रहा हूँ ॥१॥ नारद जी ने कहा—जिस विधि-विधान से प्रसन्न और अव्यय तथा वरदान देने वाले भगवान् विष्णु का स्तवन मुझे करना चाहिए और प्रतिदिन अर्चना करने के समय में उनकी

स्तुति जिस प्रकार से करनी चाहिए–यह मुझे आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥२॥ वे पुरुष इस लोक में परम धन्य हैं तथा उनका जन्म धारण करना भी बहुत ही शुभ है एवं वे अत्यन्त सुख के प्रदान करने वाले हैं और उनका जीवन ही पूर्णतः सफल एवं सार्थक है जो सदा भगवान् अच्युत् स्तवन किया करते हैं ॥३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिवर ! मैं भगवान् वासुदेव के मुक्ति प्रदान कर देने वाले स्तोत्र का वर्णन करता हूँ, तुम उसका श्रवण करो। पूजन करने के अवसर पर इस स्तोत्र के द्वारा स्तवन किये जाने पर भगवान् परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥४॥ स्तोत्र यह है— भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है। समस्त पापों के अपहरण करने वाले भगवान् के लिये नमस्कार है। यज्ञ वराह स्वरूप भगवान् के लिये नमस्कार है और गोविन्द के लिये वारम्बार नमस्कार है ॥५॥ परम आनन्द स्वरूप वाले भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है। हे पर-माक्षर ! आपकी सन्निधि में मेरा नमस्कार है ॥६॥ आप ज्ञान के सद्भाव हैं आपके लिये नमस्कार है। हे ज्ञान के प्रदान करने वाले प्रभो ! आपको मेरा प्रणाम है। आप परम अद्वैत स्वरूप वाले हैं और पुरुषों में सर्वोत्तम हैं आपके लिये मेरा सविनय प्रणाम है ॥७॥

नमस्ते विश्वकृद्देव नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण ॥८
नमस्ते मधुदैत्यघ्न नमस्ते रावणान्तक ।
नमस्ते कंसकेशिघ्न नमस्ते कैटभार्दन ॥९
नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरुड़ध्वज ।
नमस्ते कालनेमिघ्न नमस्ते गरुड़ासन ॥१०
नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते वृष्णिनन्दन ।
नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्ते दितिनन्दन ।
नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय ॥११
जय गोपवपुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय ।
जय गोवर्द्धनाधार जय गोकुलवर्द्धन ॥१२
जय रावणवीरघ्न जय चाणूरनाशन ।

जय वृष्णिकुलोद्योत जय कालीयमर्दन ॥१३
जय सत्यजगत्साक्षिन् जय सर्वार्थसाधक ।
जय वेदान्तविद्वेद्य जय सर्वद माधव ॥१४

हे विश्व की रचना करने वाले देव ! आप तो इस समस्त विश्व का पूर्णतया पालन एवं रक्षण करने वाले हैं। आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं और विश्व की रचना के कारण स्वरूप हैं। आपकी सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम है ॥८॥ हे मधु नामक दैत्य के हनन करने वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। रावण राक्षस के अन्त करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है। कंस और केशी के वध करने वाले तथा कैटभ के हनन करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है। ॥९॥ हे गरुडध्वज ! कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों वाले प्रभो ! आपको मेरा प्रणाम है। हे गरुड के ऊपर आसीन रहने वाले ! आपने कालनेमि का हनन किया था। आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है ॥१०॥ हे देवकी के पुत्र ! हे वृष्णि नन्दन ! आपको मेरा नमस्कार है। हे रुक्मिणी के कान्त ! हे अदिति को आनन्द देने वाले ! आपको मेरा नमस्कार है। आपका आवास गोकुल ग्राम में है और आप गोकुल के परम प्रिय हैं, आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है ॥११॥ हे कृष्ण ! आपने एक गोप का शरीर धारण करके भूमण्डल पर अवतार लिया है और गोपीजनों के परम प्रिय हैं आपकी जय हो। आप गोवर्धन को आधार बना कर गिरिराज का सब भाग ग्रहण करने वाले हैं और गायों के कुल को बढ़ाने वाले हैं, आपकी सदा जय हो ॥१२॥ आपने रावण जैसे महा वीर का हनन किया था और चाणूर मल्ल का विनाश करने वाले हैं, आपकी सदा जय जयकार होवे। आपने जन्म लेकर विश्व में वृष्णि कुल को प्रकाशित कर दिया था। आपने महा विषधर कालिय नाग का मर्दन कर दिया था, आपकी सदा जय हो ॥१३॥ हे इस जगत् के सच्चे साक्षी प्रभो ! हे सम्पूर्ण अर्थों के साधन करने वाले ! आपकी सर्वदा जय हो। हे माधव ! आप वेदान्त के वेत्ता मनीषियों के वेद्य हैं और सभी कुछ प्रदान करने वाले हैं, आपकी सदा जय हो ॥ १४ ॥

जय सर्वाश्रयाव्यक्त जय सर्वद माधव ।
जय सूक्ष्मचिदानन्द जय चित्तनिरञ्जन ॥१५
जयस्तेऽस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन ।
जय नाथ जगत्पुष्ट जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥१६
त्वं गुरुस्त्वं हरे शिष्यस्त्वं दीक्षामन्त्रमण्डलम् ।
त्वं न्यासमुद्रासमयस्त्वञ्च पुष्पादि साधनम् ॥१७
त्वमाधारस्त्वमनन्तस्त्वं कूर्मस्त्वं धराम्बुजः ।
धर्मज्ञानादयस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तयः ॥१८
त्वं प्रभो छलभृद्रामस्त्वं पुनः संवरान्तकः ।
त्वं ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥१९
त्वं नृसिंहः परानन्दो वराहस्त्वं धराधरः ।
त्वं सुवर्णस्तथा चक्रस्त्वं गदा शङ्ख एव च ॥२०
त्वं श्रीः प्रभो पुष्टिस्त्वं त्वं माला देव शाश्वती ।
श्रीवत्सः कौस्तुभस्त्वं हि शार्ङ्गी त्वञ्च तथेषुधिः ॥२१

हे लक्ष्मी के पति देव ! आप सबके अव्यक्त रूप से आश्रय हैं और समस्त अर्थों के प्रदान करने वाले हैं आपकी सदा जय होवे । हे भगवान् ! आपका स्वरूप परम सूक्ष्मचित् अर्थात् ज्ञानमय और आनन्द रूप है । आप सबके चित्त के रञ्जन करने वाले हैं । आपकी सदा जय हो ॥१५॥ आप स्वयं बिना अवलम्ब वाले हैं—शान्त स्वरूप हैं और सनातन अर्थात् सर्वदा से चले आने वाले तथा सदा रहने वाले हैं, आपकी सदा जय हो । हे नाथ ! आप से ही यह समस्त जगत् पोषण प्राप्त कर पुष्ट होता है । हे विष्णो ! आपकी जय हो और आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१६॥ हे हरे ! आप ही सबके अज्ञान के नाश करने वाले गुरु हैं और आप ही दीक्षा देने वाले मन्त्रों का मण्डल हैं—आप न्यास, मुद्रा और समय हैं तथा पुष्प आदि की अर्चना के साधन भी आप ही हैं ॥१७॥ हे प्रभो ! आप ही सब के आधार हैं और आप अनन्त हैं । आप ही भूमि का आधार कूर्म हैं, आप धरा हैं और आप ही अम्बुज अर्थात ब्रह्मा है । जो धर्म और ज्ञान आदि हैं वे सभी आपका ही रूप हैं ।

वेदि मण्डल और नदियाँ भी आप ही हैं ॥१८। हे प्रभो ! आप ही दशरथ सुत राम हैं और फिर आप ही मथुरा तक हैं। आप ही महर्षि देव हैं और सत्य पराक्रम वाले विष्णु रूप भी आप ही हैं ॥१९॥ परम आनन्द स्वरूप नृसिंह भी आप हैं और इस धरा मण्डल को धारण कर पाताल से लाने वाले वाराह भी आप ही हैं। आप सुन्दर वर्ण वाले हैं तथा शङ्ख—चक्र और गदा आ आयुध हैं वे भी सब आप के ही स्वरूप हैं ॥२०॥ हे प्रभो ! आप ही श्री हैं—आप ही पुष्टि हैं आप ही वनमाला हैं हे देव ! जो वनमाला सर्वदा धारण किये हुए हैं आप ही श्री वत्स हैं—आप ही कौस्तुभ हैं और आप ही शार्ङ्ग धनुष हैं॥ २१॥

त्वं खड्गचर्मणा सार्द्धं त्वं दिक्पालस्तथा प्रभो।
त्वं रक्षाऽधिपतिं साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकर ॥२२
आदित्या वसवो रुद्रास्त्वमश्विन्यौ मरुद्गणाः ।
त्वं दैत्या दानवानागास्त्वं यक्षा राक्षसा खगाः ॥२३
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः पितरस्त्वं महामराः ।
भूतानि विषयस्त्वं हि त्वमव्यक्तन्द्रियाणि च ॥२४
मनोबुद्धिरहङ्कार क्षत्रज्ञस्त्वं हृदीश्वर
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमाङ्कार समिन्कुश ॥२५
त्वं वेदी त्वं हर दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशन ।
त्वं होता यजमानस्त्वं त्वं धान्य पशुयाजक ॥२६
त्वमध्वर्युस्त्वमुद्गाता त्वं यज्ञ पुरुषोत्तम ।
दिक्पातालमही व्योम द्यौस्त्वं नक्षत्रकारक ॥२७
देवतिर्य्यङ मनुष्येषु जगदेतच्चराचरम् ।
यत्किञ्चिद्दृश्यते देव ब्रह्माण्डमखिलं जगत् ॥२८
तव रूपमिदं सर्वं दृष्टयर्थं सम्प्रकाशितम् ।
नाथ यत्त पर ब्रह्म दवैरपि दुरासदम् ॥२९

चम के साथ खड्ग भी आप हैं और हे प्रभो ! समस्त दिशाओं के पालक दिक्पाल भी आप ही हैं। आप राक्षसों के अधिपति हैं। आप ही साध्य

हैं तथा वायु और निशाकर चन्द्र भी आप ही हैं ॥ २२ ॥ द्वादश आदित्य—आठ वसुगण—एकादश रुद्र—दोनों अश्विनी कुमार एवं मरुद्गण आप ही है अर्थात् आपके ही ये सब विभिन्न रूप हैं। आप ही दैत्यों के रूप में रहते हैं–आप ही दानव हैं–नाग, यक्ष, राक्षस खग, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध और पितृगण तथा महान् अमर गण भी आप ही हैं अर्थात् ये सब आपके ही स्वरूप हैं। तात्पर्य यह है कि आपके अतिरिक्त अन्य कहीं भी कुछ नहीं है सर्वत्र सभी रूपों में आप ही विराजमान हैं। समस्त भूत और विषय आप ही हैं। आप ही अव्यक्त हैं और समस्त इन्द्रियाँ भी आपका स्वरूप हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ मन–बुद्धि–अहङ्कार और हृदय में क्षेत्रज्ञ ईश्वर भी आप ही हैं। आप ही यज्ञ हैं–आप ही वषट्कार और ओंकर भी हैं तथा कुश एवं समित् भी आपका स्वरूप हैं ॥२५॥ हे हरे ! आप ही वेदी–दीक्षा–यूप और हुताशन हैं। आप ही होता हैं और आप ही यजमान हैं। आप ही धान्य तथा पशुयाजक हैं ॥२६॥ आप ही अध्वर्यु हैं और आप ही उद्गाता हैं। आप ही पुरुषोत्तम एवं यज्ञ भी आप ही हैं। दिशाऐं–पाताल–मही—व्योम—द्यौ और नक्षत्र आदि सब आप ही के स्वरूप हैं ॥ २७ ॥ देवगण—तिर्यक् योनि के जन्तु तथा मनुष्य के स्वरूप में जो यह चर एव अचर जगत् है तथा हे देव ! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जगत् जो कुछ भी दिखलाई देता है यह सब आप ही का रूप है और दृष्टि के लिये ही ये सब सम्प्रकाशित हुए हैं। हे नाथ ! आपका जो परात्पर स्वरूप है जिसे ब्रह्म कहा जाता है वह तो देवों के द्वारा भी दुष्प्राप्त होने वाला है साधारण जन्तु तो प्राप्त ही कैसे कर सकता है ? ।२८।।२९।।

कस्तज्जानाति विमलं योगिगम्यमतीन्द्रियम् ।
अव्ययं पुरुषं नित्यमव्यक्तमजमव्ययम् ॥३०
प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।
सर्वज्ञं निर्गुणं शुद्धमानन्दमजरं परम् ॥३१
बोधरूपं ध्रुवं शान्तं पूर्णमद्वैतमक्षयम् ।
अवतारेषु या मूर्त्तिर्विहरेद्देव दृश्यते ॥३२

पर भावमजानन्तस्त्वां भजन्ति दिवौकसः ।
यथ त्वामीदृश सूक्ष्मं शक्नोमि पुरुषोत्तम ॥३३
पुष्पधूपादिभियत्तत्तव सर्वाविभूतय ।
सङ्कर्षणादि हे देव तव यत्पूजितो मया ॥३४
क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं यद्कृत न कृत मया ।
न शक्नोमि विभो सम्यक्तव पूजा यथोदिताम् ॥३५

आपके इस ब्रह्म स्वरूप को कौन जानता है ? वह तो अत्यन्त विमल-योगियों के द्वारा जानने के योग्य होता है और वह इन्द्रियों से भी परे की वस्तु है । ब्रह्म का स्वरूप अव्यय पुरुष है—नित्य—अव्यक्त-अज और नाश रहित है ॥३०॥ ब्रह्म प्रलय तथा उत्पत्ति से रहित है—सर्वत्र व्याप्त रहने वाला और सबका ईश्वर है । वह सर्वज्ञ अर्थात् सभी कुछ के ज्ञाता हैं । ब्रह्म में कोई भी गुण नहीं है अर्थात् गुणों से शून्य निर्गुण हैं । उस ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप होता है । जरा से (बार्धक्य से) रहित परात्पर और आनन्दमय वह होता है ॥३१॥ ब्रह्म बोध अर्थात् ज्ञान के स्वरूप वाला है—ध्रुव है—शान्त है-पूर्ण है तथा क्षय से शून्य एवं द्वैतभाव से विपीत होता है । जो इसी ब्रह्म की मूर्ति अवतीर्ण होकर इस लोक में अवतार धारण किया करती है वह सर्वत्र विचरण किया करती है और हे देव ! वह सबके द्वारा दिखलाई देती है ॥ ३२ ॥ हे पुरुषों में परमश्रेष्ठ ! उस आपके ब्रह्म स्वरूप के परम भाव का ज्ञान न रखने वाले देवगण आपका भजन एवं सेवन किया करते हैं । आपके इस प्रकार के सूक्ष्म स्वरूप को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ॥ ३३ ॥ गन्धाक्षत पुष्प धूप दीपादि पूजनोपचारों के द्वारा मैंने जो सङ्कर्षण आदि की प्रतिमाओं का अर्चन किया है वे सब आप ही की विभूतियाँ हैं । उन आपकी विभूतियों का पूजन भी आप का ही पूजन है ॥३४॥ हे विभो ! मैंने जो कुछ भी आपकी अर्चना आदि की है और जो कुछ भी नहीं किया है अर्थात् मुझसे जो त्रुटि रह गई है उन सबको आप क्षमा करने के योग्य होते हैं । हे प्रभो ! जिस प्रकार से आपकी पूजा बताई गई है उसे ठीक तरह से मैं नहीं कर सकता हूँ ॥ ३५ ॥

यत्कृतं जपहोमादि असाध्यं पुरुषोत्तम ।
विनिष्पादयितुं भक्त्या अतस्त्वां क्षमयाम्यहम् ॥३६
दिवारात्रौ च सन्ध्यायां सर्वावस्थासु चेष्टतः ।
अचला तु हरे भक्तिस्तवाङ्घ्रियुगले मम ॥३७
शरीरेण तथा प्रीतिर्न च धर्मादिकेषु च ।
यथा त्वयि जगन्नाथ प्रीतिरात्यन्तिकी मम ॥३८
किं तेन न कृतं कर्म स्वर्गमोक्षादिसाधनम् ।
यस्य विष्णौ दृढा भक्तिः सर्वकामफलप्रदे ॥३९
पूजां कर्त्तुं तथा स्तोत्रं कः शक्नोति तवाच्युत ।
स्तुतं तु पूजितं मेऽद्य तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥४०
इति चक्रधरस्तोत्रं मया सम्यगुदाहृतम् ।
स्तौहि विष्णुं मुने भक्त्या यदीच्छसि परं पदम् ॥४१

हे पुरुषोत्तम ! मैंने जो कुछ भी असाध्य अर्थात् साधना के अयोग्य जप एवं होम आदि को विशेष रूप से निष्पादित करने के लिये भक्तिभाव पूर्वक किया है। उनमें बहुत-सी त्रुटियाँ अवश्य ही रही होंगी। अतएव मैं आप से उन सब के लिये क्षमा की याचना करता हूँ ॥ ३६ ॥ दिन और रात्रि में तथा दोनों सन्धि कालों में एव सभी प्रकार की अवस्थाओं में स्थित रहकर चेष्टाऐं करते हुए मेरी हे हरि भगवन् ! आपके चरण युगल में अचल भक्ति है ॥३७॥ हे जगत् के नाथ ! धर्म आदि अन्य कार्यों में मेरी शरीर के द्वारा उस प्रकार की प्रीति नहीं है जैसी कि आत्यन्ति की प्रीति मेरी आपके चरण-कमल में रहती है ॥ ३८ ॥ उस पुरुष ने स्वर्ग और मोक्ष आदि का कौन-सा साधन नहीं कर लिया है। जिसकी समस्त कामनाओं के फलों को प्रदान कर देने वाले भगवान् विष्णु के चरणारविन्द में परम सुदृढ़ भक्ति होती है। विष्णु की भक्ति ही समस्त कर्मों के फलों को प्रदान करने वाली होती है। इसके करने के बाद फिर अन्य किसी भी धर्मादि साधन करने की आवश्यकता ही नहीं रहा करती है ॥३९॥ हे अच्युत् ! आपकी उस प्रकार की विधि-विधान पूर्वक अर्चना तथा आपके स्तोत्र का पाठ कौन पुरुष करने में समर्थ होता है ?

अर्थात् कोई भी कर नहीं सकता है। हे भगवन्! आज मैंने आपका स्तवन किया है और आपका अर्चन भी किया है। इनमें बहुत-सी त्रुटियाँ जो हो गई हैं उन्हें आप कृपा कर क्षमा कर देवें। आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥ ४० ॥ यह भगवान् चक्रधारी का स्तोत्र मैंने भली भाँति वर्णन करके तुमको बता दिया है। हे मुने! यदि आप परम पद के प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो भक्ति की भावना से भगवान् विष्णु का स्तवन करो। एकमात्र इसी से तुमको सर्वोत्तम पद की प्राप्ति हो जायगी और पूर्ण कल्याण होगा ॥ ४१ ॥

स्तोत्रेणानेन यः स्तौति पूजाकाले जगद्गुरुम् ।
अचिराल्लभते मोक्ष छित्त्वा ससारबन्धनम् ॥४२
अन्योऽपि यो जपेद्भक्त्या त्रिसन्ध्य नियत शुचि ।
इद स्तोत्र मुने सोऽपि सर्वकाममवाप्नुयात् ॥४३
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
रोगाद्विमुच्यते रोगी निर्धनो लभते धनम् ॥४४
विद्यार्थी लभते विद्या यश कीर्तिञ्च विन्दति ।
जातिस्मरत्व मेधावी यद्यदिच्छति चेतसा ॥४५
अधन्य सर्ववित्प्राज्ञस्त्वसाधु सर्वकर्मकृत् ।
सत्यवाक्य शुचिर्दाता य स्तौति पुरुषोत्तमम् ॥४६
साधुशीला हि ते सर्वे सर्वधर्मबहिष्कृता ।
यथा प्रवर्तन नास्ति हरिमुद्दिश्य सत्क्रिया ॥४७
नाशौच विद्यते तस्य मनो वाक् च दुरात्मन ।
यस्य सर्वार्थद विष्णौ भक्तिर्नाऽव्यभिचारिणी ॥४८
आराध्य विधिवद्देव हरि सर्वसुखप्रदम् ।
प्राप्नोति पुरुष सम्यग्यद्यत्प्रार्थयते फलम् ॥४९

इस भगवान् विष्णु के स्तोत्र के द्वारा विष्णु के अर्चन के समय में सम्पूर्ण जगत् के गुरु भगवान् विष्णु का जो भी कोई पुरुष स्तवन किया करता है वह बहुत ही शीघ्र ससार के सम्पूर्ण विशाल बन्धनों का छेदन करके अवश्य

ही मोक्ष पाने का लाभ प्राप्त कर लिया करता है ।।४२।। जो पुरुष प्रातःकाल में भी भक्ति भाव पूर्वक नियत रूप से पवित्र होकर तीनों सन्ध्याओं में इस स्तोत्र का जाप किया करता है हे मुनिवर ! वह पुरुष भी अपनी सभी कामनाओं के फलों को प्राप्त कर लिया करता है ।।४३।। जो पुत्र के प्राप्त करने की कामना रखकर इस स्तोत्र का जप करता है वह पुत्रों की प्राप्ति किया करता है और जो सांसारिक बन्धनों में बँधा हुआ उन सब से छूटकारा पाने के लिये इस स्तव का जाप करता है वह उन सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है । जो कोई रोग से मुक्त होने वाला इस विष्णु के स्तोत्र का जाप करता है वह रोग से छुटकारा पा जाता है और धन रहित पुरुष धन की प्राप्ति कर लेता है ।। ४४ ।। विद्या की चाह रखने वाला पुरुष पूर्ण विद्या का लाभ प्राप्त कर लेता है तथा इसी प्रकार से यश और कीत्ति की भी प्राप्ति किया करता है । अपनी जाति में प्रमुखता का भी इस स्तोत्र के पाठ एवं जाप के प्रभाव से मनुष्य प्राप्त कर लेता है । मेधावी पुरुष जो-जो भी चित्त से चाहता है उसी का लाभ निश्चय ही उसको हो जाया करता है । जो अधन्य है वह इस स्तव के प्रभाव से सबका वेत्ता परम प्राज्ञ हो जाता है और जो असाधु है वह समस्त कर्मों के करने वाला बन जाया करता है । जो सत्य वचनों के बोलने वाला—परम पवित्र हो कर तथा दान शील रहते हुए इस स्तोत्र के द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम का स्तवन करता है उसका सर्वतोभाव से पूर्ण कल्याण हो जाता है ।।४५।।४६।। जो चाहे साधु शील भी हों किन्तु वे सब समस्त धर्मों से बहिष्कृत होते हैं जिनकी प्रवृत्ति भगवान् विष्णु की सान्निधि प्राप्त करने के उद्देश्य को लेकर नहीं होती है ।। ४७ ।। उस दुरात्मा के मन तथा वाणी में कभी शुचिता नहीं रहा करती है जिसकी सब अर्थों के प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु में अव्यभिचारिणी भक्ति नहीं होती है । व्यभिचार रहित अर्थात् आत्यन्तिकी विष्णु-भक्ति का होना परमावश्यक साधन मानव के निःश्रेयस प्राप्त करने के लिये होता है ।। ४८ ।। सब सुखों के प्रदान करने वाले हरिदेव का विधि पूर्वक आराधन कर के मनुष्य जिस-जिस भी फल के पाने की प्रार्थना करता है उसी उसी फल का लाभ वह अवश्य ही कर लेता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।।४९।।

११२ रोग नाशन वैष्णव कवचम्

श्वेतद्वीपनिवासी च श्वेतद्वीप नयत्वज॰ ।
सर्वाञ्शत्रून्सूदयतु मधुकैटभसूदन ॥१
विष्णु सदा चाकर्षतु किल्विष मम विग्रहात् ।
हंसो मत्स्यस्तथा कूर्म पातु मा सर्वतो दिशम् ॥२
त्रिविक्रमस्तु मे देव सर्वान्पापान्निगृह्णतु ।
तथा नारायणो देवो बुद्धि पालयता मम ॥३
शेषो मे निर्मलं ज्ञान करोत्वज्ञाननाशनम् ।
वडवामुखो नाशयतु कल्मष यत्कृत मया ॥४
पद्भ्या ददातु परम सुख मूर्ध्नि मम प्रभु ।
दत्तात्रेय कलयतु सपुत्रपशुबान्धवम् ॥५
सर्वानरीन्नाशयतु राम परशुना मम ।
रक्षोघ्नस्तु दाशरथि पातु नित्य महाभुज ॥६
शत्रून्हलेन मे हन्याद्रामो यादवनन्दन ।
प्रलम्बकेशिचाणूरपूतनाकसनाशन ।
कृष्णस्य यो बालभाव स मे कामान् प्रयच्छतु ॥७

वैष्णव कवच का कथन है—श्वेत द्वीप के निवास करने वाले प्रज श्वेतद्वीप को प्राप्त करावे । मधु और कैटभ के सहार करने वाले भगवान् मेरे समस्त शत्रुओं का सहार करें ॥ १ ॥ भगवान् विष्णु सदा मेरे शरीर किल्विषों का आकर्षण करें। हस मत्स्य तथा कूर्म के अवतार धारण करने वाले भगवान् विष्णु मेरी सभी दिशाओं मे रक्षा करें ॥ २ ॥ भगवान् त्रिविक्रम देव मेरे समस्त पापो का निग्रह करें। नारायण देव मेरी बुद्धि की रक्षा करें ॥ ३ ॥ भगवान् शेष मेरे लिये निर्मल ज्ञान प्रदान करें और मेरे अज्ञान का नाश करें। वडवामुख देव मैंने जो भी कल्मष किया है उसका समूल नाश कर देवे ॥ ४ ॥ प्रभु अपने चरणो मे मेरे मस्तक पर परम सुख प्रदान करें। दत्तात्रेय भगवान् मुझे पुत्र, पशु और बान्धवो के सहित सुख प्रदान करें ॥ ५ ॥

भगवान् परशुराम अपने परशु से मेरे सभी शत्रुओं का नाश कर देवें। सम्पूर्ण राक्षसों के संहार करने वाले भगवान् दाशरथि श्री राम जिनकी बड़ी-बड़ी भुजाऐं हैं मेरी नित्य ही रक्षा करें ।। ६ ।। भगवान् बलराम जो कि यादव कुल में अवतीर्ण हुए हैं अपने हल से मेरे समस्त शत्रुओं का हनन करें। प्रलम्ब-केशी—चाणूर—पूतना और कंस के नाश करने वाला जो भगवान् श्री कृष्ण का बाल भाव है वह मेरी समस्त कामनाओं को प्रदान करें।।७।।

अन्धकारतमोघोरं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
पश्यामि भयसंत्रस्तः पाशहस्तमिवान्तकम् ।।८
ततोऽहं पुण्डरीकाक्षमच्युतं शरणं गतः ।
धन्योऽहं निर्भयो नित्यं यस्य मे भगवान्हरिः ।।९
ध्यात्वा नारायणं देवं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
वैष्णवं कवच बद्ध्वा विचरामि महीतले ।।१०
अप्रधृष्योऽस्मि भूतानां सर्वदेवमयो ह्यहम् ।
स्मरणाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।।११
सिद्धिर्भवतु मे नित्यं यथा मन्त्रमुदाहृतम् ।
यो मां पश्यति चक्षुर्भ्यां यश्च पश्यामि चक्षुषा ।।
सर्वेषां पापदुष्टानां विष्णुर्बध्नाति चक्षुषी ।।१२
वासुदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य ये त्वराः ।
ते हि छिन्दन्तु पापानि मम हिंसन्तु हिंसकान् ।।१३

अन्धकार तम से परम घोर कृष्ण और पिङ्गल वर्ण वाले पुरुष को जिसके हाथों में पाश है साक्षात् यम के समान मैं जब देखता हूँ तो भय से एकदम संत्रस्त हो जाता हूँ। तब मैं पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले भगवान् अच्युत के शरणागति में प्राप्त हुआ हूँ। मैं परम धन्य एवं भाग्यशाली हूँ कि फिर मैं निर्भय हो जाता हूँ क्योंकि मैं नित्य ही भगवान् हरि के सन्निकट में स्थित रहता हूँ ।। ८ ।। ९ ।। सम्पूर्ण उपद्रवों के नाश करने वाले देव नारायण का ध्यान करके और इस वैष्णु सम्बन्धी वैष्णव कवच को बाँध कर मैं निर्भय इस मही मण्डल में विचरण करता हूँ । १० ।। मैं भूतों के प्रधर्षण करने

के प्रयाग्य हूँ और मैं सब दवों से परिपूर्ण हूँ अर्थात् सब देव मेरे साथ हैं। अमित तेज वाल भगवान् विष्णु जो देवों के भी देव हैं उनके स्मरण का ही यह प्रभाव है ॥ ११ ॥ जैसे ही मैंने मन्त्र का उच्चारण किया वैसे ही मुझे नित्य सिद्धि होवे। जो मुझको नेत्रों से देखता है और जिस को मैं नेत्र से देखता हूँ, भगवान् विष्णु समस्त दुष्ट पापियों के नेत्र को बाँध देते हैं ॥ १२ ॥ भगवान् वासुदेव का जो चक्र है और उस चक्र की जो ज्वराऐं हैं वे पापों का छेदन करें और मेरे हिंसकों की हिंसा कर देवें ॥१३॥

राक्षसेषु पिशाचेषु कान्तारेष्वटवीषु च ।
विवादे राजमार्गेषु द्यूतेषु कलहेषु च ॥१४
नदीसन्तारणे घोरे सग्रामे प्राणसंशये ।
अग्निचौरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारणे ॥१५
विद्युत्सर्पविषोद्वेगे रोगे च विघ्नसङ्कटे ।
जप्यमेतज्जपेन्नित्यं शरीरे भयमागते ॥१६
अयं भगवतो मन्त्रो मन्त्राणां परमो महान् ।
विख्यातं कवचं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
स्वमायाकृतनिर्माणकल्पान्तगहनं महत् ॥१७
ॐ अनाद्यन्त जगद्बीज पद्मनाभ नमोऽस्तु ते ॥१८

राक्षसों में—पिशाचों में—घोर वनों में—अटवियों में—विवाद के अवसर पर—राजमार्गों में—द्यूतों में और कलहों में—नदी के सन्तरण में—घोर प्राणों के संशय के अवसर पर—अग्नि, चोरों के निपातों में—सब ग्रहों के निवारण में—विद्युत्—सर्पविष—उद्वेग में—रोग में—विघ्नों के सङ्कट में इस कवच का जाप नित्य ही करना चाहिए और जिस समय में भी शरीर पर कोई भय उपस्थित हो इसका जाप करे। यह भगवान् का मन्त्र है। समस्त मन्त्रों में यह परम महान् है। यह वैष्णव कवच अति विख्यात है और अत्यन्त गोपनीय है। यह समस्त पापों का नाशक है। अपनी माया से किये गये निर्माण और कल्पान्त के समान महान् गहन है ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥ मन्त्र—'ॐ अनाद्यन्त जगद्बीज पद्मनाभ नमोऽस्तुते "—

अर्थात् आप आदि और अन्त से रहित हैं–इस जगत् के बीज स्वरूप अर्थात् कारण हैं–आपकी नाभि में पद्म है ऐसे आपके लिये प्रणाम है ।।१८।।

११३—सर्वकामद विद्या कथन

सर्वकामप्रदां विद्यां सप्तरात्रेण तां शृणु ।
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ।।१
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
नमो विज्ञानदात्रे च परमानन्दमूर्त्तये ।।२
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ।
त्वं रूपाणि च सर्वाणि तस्मात्तुभ्यं नमो नमः ।।३
हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तमूर्त्तये ।
यस्मिमिन्निदं यतश्चं तत्तिष्ठत्यन्योऽपि जायते ।।४
मृन्मयीं वहसि क्षोणीं तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ।
यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ।।
अन्तर्बहिश्चरसि त्वं व्योमतुल्यं नमाम्यहम् ।।५
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपतये सकलसत्त्वभावि-व्रीड़निकरकमलरेणूत्पलनिभधर्माख्यविद्यया चरणारविन्दयुगल परमेष्ठिन्नमस्ते अवापविद्याधरतां चित्रकेतोश्च विद्यया ।।६

श्री हरि ने कहा–समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाली उस विद्या को सात रात्रि पर्यन्त श्रवण करो। भगवान् आपके लिये नमस्कार है। वासुदेव भगवान् का ध्यान करते हैं ।।१।। प्रद्युम्न–अनिरुद्ध और सङ्कर्षण भगवान् के लिये नमस्कार है। विज्ञान के दाता के लिये और परम आनन्द की मूर्त्ति के लिये नमस्कार है ।। २ ।। अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले–शान्त स्वरूप और द्वैत दृष्टि के निवृत्त हो जाने वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है। आप ही समस्त रूपों में विद्यमान है। इसलिये आपको वारम्बार नमस्कार

है ॥ ३ ॥ भगवान् हयग्रीव और महत् अनन्तमूर्ति के लिये मेरा नमस्कार है। जिसके स्वरूप मे यह सम्पूर्ण जगत् है और जिससे इसकी उत्पत्ति होती है तथा जिसमें यह स्थिति प्राप्त किया करता है एव अन्य भी समुत्पन्न होता है उन भगवान् के लिये मेरा नमस्कार है। जो इस मृत्तिकामयी पृथ्वी का वहन करते हैं उन ब्रह्म के लिये नमस्कार है। जिसका मन–बुद्धि–इन्द्रिय और प्राण स्पर्श नहीं किया करते हैं और न जानते ही हैं। हे भगवन ! आप बाहिर और भीतर सर्वत्र विचरण किया करते हैं और व्योम के समान हैं। मैं ऐसे आप के लिये नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ ५ ॥ मन्त्र—'ॐ नमो भगवते ' चित्रकेतोश्च विद्यया '—अर्थात् महाभूतों के पति महा पुरुष भगवान् के लिये नमस्कार है। समस्त सत्वों के, आदिपीठ के, समुदाय के, कमल रेणु के उत्पल के तुल्य धम नाम वाली विद्या से चरणारविन्द युगल परमश्री आपके लिये नमस्कार है। चित्रकेतु की विद्या से प्रावन विद्याधरता का प्राप्त किया था ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥५॥

११४—व्याकरण कथन

अथ व्याकरणं वक्ष्ये कात्यायन समासत ।
सिद्धशब्दविवेकाय बालव्युत्पत्तिहेतवे ॥१
सुप्तिङन्त पद रुयात सुप सप्त विभक्तय ।
स्वौजस प्रथमा प्रोक्तासा प्रातिपदिकात्मके ॥२
सम्बोधने च लिङ्गादावुक्ते कर्मणि कर्त्तरि।
अर्थवत्प्रातिपदिक धातुप्रत्ययवर्जितम् ॥३
अमौशसा द्वितीया स्यात्तत्कर्म क्रियते च यत्।
द्वितीया कर्मणि प्रोक्ताऽन्तरान्तरेण सयुते ॥४
टाम्याभिसस्तृतीया स्यात्करणे कर्तरीरिता।
येन क्रियते तत्करण कर्त्ता यश्च करोति स ॥५
ङेभ्याम्भ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके।
यस्मै दित्सा धारयते राचते सम्प्रदानकम् ॥६

पञ्चमी स्यान्ङसिभ्यांभ्यो ह्यपादाने च कारके ।
यतोऽपैति समादत्ते अपादत्ते भयं यतः ॥७

कुमार ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं व्याकरण के विषय में बतलाता हूँ। हे कात्यायन ! बालकों की व्युत्पत्ति के निमित्त सिद्ध शब्दों के विवेक के लिए संक्षेप में इसका वर्णन किया जाता है ॥१॥ सुबन्त और तिङन्त दो प्रकार के पद कहे गये हैं। सुप ये सात विभक्तियाँ होती हैं। सु–औ–जस् नाम वाली प्रातिपदिक रूप शब्द में तीन, एक वचन, द्विवचन और बहुवचन में विभक्तियाँ प्रथमा कही जाती हैं ॥२॥ यह प्रथमा विभक्ति सम्बोधन में–लिङ्गादि में, उक्त कर्म में अर्थात् वहाँ जहाँ कर्म की ही प्रधानता कथित हो और कर्त्ता में होती है। जो शब्द अर्थ वाला हो और धातु एवं प्रत्यय से रहित हो वही प्रातिपदिक कहा जाता है ॥३॥ अम्–औ–शस्—ये तीनों वचनों में कर्म की विभक्तियाँ होती हैं। अन्तरा और अन्तरेण से संयुत में और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।४॥ टा–भ्याम्–भिस्—ये तीनों वचनों में करण की विभक्तियाँ होती हैं। ये उक्त कर्म जहाँ होता है वहाँ कर्त्ता में भी होती हैं। जिसके द्वारा किया जाता है अर्थात् जो क्रिया का साधन होता है वह करण कहा जाता है, और जो क्रिया को करता है वह कर्त्ता होता है ॥५॥ ङे–भ्याम्–भ्यस्—ये तीन वचनों में तीन विभक्तियाँ चतुर्थी कही जाती हैं और सम्प्रदान कारक में होती हैं। जिसके लिये देने की इच्छा होती है और जो रुचि का पात्र होता है वह सम्प्रदान कहा जाता है ॥६॥ ङसि–भ्याम्–भ्यस्—ये तीन वचनों में पञ्चमी विभक्ति होती है जो अपादान कारक में होती हैं। जहाँ से अपगमन होता है, समादान होता है या अपादान एवं भय जिससे होता है वहाँ यह अपादान कारक हुआ करता है ॥७॥

ङसोमामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके ।
ङ्योःसुपश्च सप्तमी स्यात् सा चाधिकरणे भवेत् ॥८
आधारश्चाधिकरणो रक्षार्थानां प्रयोगतः ।
ईप्सितञ्चानीप्सितं यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥९
पञ्चमी पर्य्यपाङ्योगे इतरर्त्तेऽन्तदिङ्मुखे ।

एनयोगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकै ॥१०
वीप्सेत्यम्भावचिह्नेऽभिभागे चैव परिप्रती ।
अनुरेपु सहार्थे च हीनेऽनूपश्च कथ्यते ॥११
द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टाया गतिकर्मणि ।
अप्राणे हि विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे ॥१२
नमः स्वस्ति स्वधा स्वाहालवपड्योग ईरिता ।
चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः ॥१३
तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे ।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगेऽपि षष्ठ्यपि ॥१४

ङस्, ओस्, आम्—ये तीनों वचनो मे षष्ठी विभक्ति के रूप होते हैं। यह षष्ठी विभक्ति मुख्यतया स्वामी के सम्बन्ध मे ही हुआ करती है। ङि, ओस्, सुप्—ये तीनों वचनों मे सप्तमी विभक्ति के रूप होते हैं। यह अधिकरण में होती है ॥८॥ जो क्रिया का होना जिस स्थान, समय आदि में होता है वही उसका आधार होता है उसे ही अधिकरण कहा जाता है। रक्षार्थों के प्रयोग से, ईप्सित और अनीप्सित जो होता है वह अपादान कहा गया है। परि, अप और आङ् के योग में तथा इतरत्-ऋते और अन्य दिशा के मुख मे भी पञ्चमी होती है। एन के योग मे द्वितीया होती है तथा कर्म प्रवचनीय नामक संज्ञा के योग मे द्वितीया विभक्ति हुआ करती है ॥८।९।१०॥ वीप्सा में-इत्थमाव चिह्न में-अभिभाग मे परि और प्रति के योग में-सहार्थ में अनु और हीन मे अनूप कहा जाता है ॥११॥ और इनमें द्वितीया विभक्ति होती है। चेष्टा में, गतिकर्म में और अप्रमाण मे, मन्य कर्म में और अनादर में द्वितीया तथा चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ होती हैं ॥१२॥ नमः-स्वस्ति, स्वधा, स्वाहा, अलं, वषट्-इनके योग में भी चतुर्थी विभक्ति कही गई है। तादर्थ्य में और भाववाची तुमय मे अर्थात् तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में भी चतुर्थी विभक्ति हुआ करती है ॥१३॥ सह और सह र्यक अन्य भी किसी शब्द के योग में एव कुत्सित अङ्ग के विशेषण के होने पर तृतीया विभक्ति होती है। काल मे और भाव मे सप्तमी होती है और इनके योग मे षष्ठी भी होती है ॥१४॥

स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षाद्दायादसूतकैः ।
निर्द्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५
स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके ।
हिंसार्थानां प्रयोगे च प्रतिकर्मणि कर्त्तरि ॥१६
न कर्त्तृकर्मणोः षष्ठीनिष्ठयोः प्रातिपादिके ।
द्विविधं प्रातिपदिकं नाम धातुस्तथैव च ॥१७
भुवादिभ्यस्तिङो लःस्याल्लकारा दश वै स्मृताः ।
तिप्तसन्ति प्रथमो मध्यः सिप्थसथोत्तमपुरुषः ॥१८
मिब्वस्मसपरस्मै तु पदानाञ्चात्मनेपदम् ।
त आत अन्ते प्रथमो स आथे ध्वे च मध्यमः ॥१९

स्वामी, ईश्वर, अधिपति और साक्षात् दायाद तथा सूतकों के [illegible] निर्धारण करने में दो विभक्तियाँ होती हैं। हेतु के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति हुआ करती है ॥१५॥ स्मृति के अर्थ कर्म में तथा कृञ् धातु के प्रति यत्न में और हिंसार्थकों के प्रयोग में प्रतिकर्म कर्त्ता में षष्ठी होती है ॥१६॥ प्रातिपदिक में निष्ठ कर्त्ता और कर्म में षष्ठी नहीं होती है। प्रातिपदिक दो प्रकार का होता है। एक नाम है और दूसरा धातु है ॥१७॥ भू आदि से तिङ् होते हैं। [illegible] लकार होते हैं। वे लकार दश कहे गये हैं। तिप्, तस्, झि (अन्ति) [illegible] तिङ् प्रत्यय प्रथम पुरुष में होते हैं। मध्यम पुरुष में सिप्, थस् और [illegible] तीन प्रत्यय एक वचन, द्विवचन और बहुवचन में होते हैं। [illegible] क्रम से तीनों वचनों में मिप्, वस् और मस्—ये तिङ् प्रत्यय होते हैं। [illegible] पुरुषों और तीन-तीन वचनों के तिङ् प्रत्यय परस्मै पद में हुआ करते हैं। [illegible] के लिये जो क्रिया का प्रयोग किया जाता है वह परस्मैपद [illegible] आत्मनेपद बतलाते हैं जो अपने अर्थ प्रयुक्त होता है। [illegible] और झ का परिणत रूप 'आते', 'अन्ते' है) ये तीनों [illegible] प्रथम पुरुष के तिङ् प्रत्यय होते हैं। स—आथे—ध्वे—[illegible] होते हैं ॥१८।१९॥

ए वहे महे उत्तम पुरुषो हि निरूप्यते ।
नाम्नि प्रयुज्यमानेऽपि प्रथम पुरुषो भवेत् ॥२०
मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तम पुरुषोऽस्मदि ।
भूराद्या धातव प्रोक्ता सनाद्यन्तास्तथा तत ॥२१
लडीरिते वर्त्तमाने स्मेनातीते च धातुत ।
भूतेऽनद्यतने लड् वा लुडाशिषि च धातुत. ॥२२
विध्यादावेवानुमतौ लोड् वाच्यो मन्त्रणे भवेत् ।
निमन्त्रणाधीष्टसप्रश्ने प्रार्थनेषु तथाशिषि ॥२३
लिडतीते परोक्षे स्यादुद्‌भूते लुड् भविष्यति ।
धातोर्लृट्‌क्रियातिपत्तौ लिडर्थे लोट् प्रकीर्त्तित ॥२४
कृतस्त्रिष्वपि वर्त्तन्ते भावे कर्मणि कर्त्तरि ।
तृण्तव्यवड्नीय स्यात् शतृङाद्याश्च धातुत ॥२५

ए–वहे–महे—ये तीन उत्तम पुरुष मे होते है । नाम के प्रयोग किये जाने पर प्रथम पुरुष होता है । युष्मद् शब्द के प्रयोग मे मध्यम पुरुष होता है और अस्मद् शब्द के प्रयोग मे उत्तम पुरुष होता है । भू आदि धातुएँ कही जाती हैं । उनमे फिर सनादि प्रत्यय भी होते हैं ।।२०।२१।। लट् लकार वर्त्तमान काल में होता है । लट् लकार मे धातु के आगे 'स्म' लगा देने से भूतकाल का अर्थ हो जाता है । अनद्यतन भूतकाल मे लड् लकार होता है । चौबीस घण्टो से पहिले के काल को अनद्यतन काल कहते हैं । धातु से आशीर्वाद के अर्थ मे लिड् लकार होता है । आशिषि लिड् और विधि लिड् ऐसे लिड् लकार दो प्रकार का होता है । विधि आदि के अर्थ मे और अनुमति में भी लिड् होता है । मन्त्रण मे लोट् लकार होता है । निमन्त्रण–अधीष्ट सप्रश्न–प्रार्थना मे और आशिष मे लिड् लकार होता है । परोक्ष में लिट् लकार होता है और उद्‌भूत लुट् होता है । भविष्यदर्थ में धातु से लृट् लकार होता है । क्रियातिपत्ति मे लिट् के अर्थ मे लोट् लकार बताया गया है । तीनो कालो मे भाव, कर्म और कर्त्ता मे कृदन्त प्रत्यय हुआ करते हैं । केवल धातु के अर्थ

मात्र का जहाँ द्योतन होता है उसे भाव कहते हैं। तृण्, तव्य, अनीयर्, शतृ, शानच् आदि कृत्प्रत्यय धातु से हुआ करते हैं ॥२२ से २५॥

११५—सदाचार कथन

हरेः श्रुत्वाऽब्रवीद् ब्रह्मा यथा व्यासाय शौनक ।
ब्राह्मणादिसमाचारं सर्वदं ते यथा वदे ॥१
श्रुतिस्मृती तु विज्ञाय श्रौतं कर्म समाचरेत् ।
श्रौतं कर्म न चेदुक्तं तदा स्मार्त्तं समाचरेत् ॥२
तत्राप्यशक्तः करणे सदाचारं चरेद् बुधः ।
श्रुतिस्मृतीह् विप्राणां लोचने कर्मदर्शने ॥३
श्रुत्युक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः ।
शिष्टाचारेण शिष्टानां त्रयो धर्माः सनातनाः ॥४
सत्यं दानं दया लोभो विद्येज्या पूजनं दमः ।
अष्टौ तानि पवित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥५
तेजोमयानि पूर्वेषां शरीराणीन्द्रियाणि च ।
न च लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥६
निवासमुख्या वर्णानां धर्माचाराः प्रकीर्त्तिताः ।
सत्यं यज्ञस्तपो दानमेतद्धर्मस्य लक्षणम् ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! भगवान् हरि से श्रवण करके ब्रह्माजी ने जिस तरह से व्यास महर्षि से कहा था वह सब देने वाला ब्राह्मणादि का समाचार तुमको बतलाता हूँ ॥१॥ श्रुति और स्मृति का ज्ञान प्राप्त करके जो श्रौत (वैदिक) कर्म है उसका समाचरण करना चाहिए। यदि श्रौत कर्म न कहा गया है तो फिर स्मार्त्त कर्म अर्थात् स्मृतियों के द्वारा प्रतिपादित कर्म करना चाहिए। वैदिक कर्म को प्राथमिकता देनी चाहिए ॥२॥ यदि स्मार्त्त कर्मों के करने में भी असमर्थता किसी कारण से हो तो फिर बुध पुरुष को सत्पुरुषों का आचार ही करना चाहिए। श्रुति और स्मृति ये दोनों विप्रों के नेत्र होते हैं। जिनके द्वारा कर्मों का दर्शन हुआ करता है ॥३॥ श्रुति के द्वारा जो धर्म प्रति-

पादित किया गया है वह परम धर्म होता है। स्मृति शास्त्रो के द्वारा जो कहा गया है वह दूसरी श्रेणी का अपर धर्म होता है। शिष्ट पुरुषो के शिष्टाचार के द्वारा जिस धर्म का बोध होता है वह भी तीसरी श्रेणी का धर्म होता है। इस प्रकार से ये तीन सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) धर्म होते हैं ॥४॥ सत्य, दान, दया, लाभ, विद्या, इज्या, पूजन और दम ये आठ पवित्र अर्थात् शुद्ध धर्म के स्वरूप हैं जो कि शिष्टाचार के लक्षण हैं ॥५॥ पूर्व पुरुषो के शरीर और इन्द्रियाँ तेजोमय थे और वे पाप मे लिप्त नहीं हुआ करते थे जिस तरह पद्म के पत्र जल मे कभी लिप्त नही होते हैं और वे जल मे ही रहा करते हैं। ॥६॥ वर्णों के धर्म तथा आचार निवास की मुख्यता वाले बताये गये हैं। सत्य, यज्ञ, तप और दान ये धर्म के लक्षण हैं ॥७॥

अदत्तस्यानुपादान दानमध्ययन तप. ।
विद्या वित्त तप शौर्यं कुले जन्म स्वरोगिता ॥८
ससारोच्छित्तिहेतुश्च धर्मादेव प्रवर्त्तते ।
धर्मात् सुखञ्च ज्ञानञ्च ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते ॥९
इज्याध्ययनदानानि यथाशास्त्र सनातनः ।
ब्रह्मक्षत्रियवैश्याना सामान्यो धर्म उच्यते ॥१०
याजनाध्ययने शुद्धे विशुद्धाच्च प्रतिग्रह ।
वृत्तित्रयमिद प्राहुर्मुनय श्रेष्ठवर्णिन ॥११
शस्त्रेणाजीवन राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम् ।
पाशुपाल्य कृषि पण्य वैश्यस्य जीवन स्मृतम् ॥१२
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजानामनुपूर्वश ।
गुरौ वासोऽग्निशुश्रूषा स्वाध्यायो ब्रह्मचारिण ॥१३
निम्नाता स्नापिता भैक्ष्य गुरौ प्राणान्तिकी स्थिति ।
समेखले जटा दण्डी मुण्डो वा गुरुसश्रय ॥१४

अदत्त अर्थात् न दिये हुए का अनुपदान, दान, अध्ययन, तप, विद्या, वित्त, शौर्य, अच्छे कुल मे जन्म, नीरोगता और ससार के उच्छेदन के हेतु यह धर्म से ही प्रवृत्त होता है। धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है और धर्म

से ही ज्ञान का लाभ भी हुआ करता है। ज्ञान जब हो जाता है तो उससे संसार के जन्म-मरण के आवागमन से छुटकारा पाकर मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करती है ।।८।९।। इज्या (यज्ञादि का करना, कराना), अध्ययन (वेद-वेदाङ्गादि शास्त्रों का पढ़ना)—दान शास्त्र के अनुसार और सदा से चला आने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों का साधारण धर्म कहा जाता है ।।१०।। मुनिगण श्रेष्ठ वर्ण वाले की शुद्ध याजन और अध्ययन तथा विशुद्ध से प्रतिग्रह लेना वृत्ति अर्थात् तीन प्रकार की रोजी बतलाते हैं ।।११।। क्षत्रिय का कर्म शस्त्र के द्वारा जीवन निर्वाह करना और प्राणिमात्र की अभिरक्षा करना है। पशुओं का पालन, कृषि करना तथा दूकानदारी का व्यवसाय करना यही जीवन निर्वाह का साधन वैश्यों को बताया गया है ।।१२।। शूद्र का कर्म द्विजातियों की सेवा करना है जो कि द्विजों की आनुपूर्व शुश्रूषा करनी चाहिए अर्थात् सबसे प्रथम विप्र फिर क्षत्रिय और इसके पश्चात् वैश्य की सेवा करे। अब चारों वर्णों के धर्मों के अनन्तर चारों आश्रमों के धर्म बतलाते हैं—ब्रह्मचर्य की अवस्था का पालन करने वाले ब्रह्मचारी का धर्म है अपने गुरुवर्य के निकट गुरुकुल में घर छोड़कर निवास करना, अग्निहोत्र नित्य नियम से करना और वेद एवं वेद के अङ्ग शास्त्रों का समयानुसार अध्ययन करना होता है ।।१३।। ब्रह्मचारी को तीनों कालों में स्नान और त्रिषवण तथा स्नापन करना चाहिए—भिक्षाचरण करे, गुरु की सन्निधि में प्राणों के अन्त तक स्थिति रक्खे, मेखला, जटा, दण्ड धारण करे, मुण्डन और गुरु का सश्रय रक्खे। ये उसके कर्म-धर्म होते हैं ।। १४ ।।

अग्निहोत्रोपचरणं जीवनञ्च स्वकर्मभिः ।
धर्मदारेषु कल्पेत पर्ववर्जं रतिक्रियाः ।।१५
देवपित्रतिथिभ्यश्च पूजादिष्वनुकल्पनम् ।
श्रुतिस्मृत्यर्थसंस्थान धर्मोऽयं गृहमेधिनः ।।१६
जयित्वमग्निहोतृत्वं भूशय्याजिनधारणम् ।
वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता ।।१७
प्रतिषिद्धे निवृत्तिश्च त्रिःस्नानं व्रतधारिता ।

देवतातिथिपूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ॥१८
सर्वारम्भपरित्यागो भैक्ष्यान्नं वृक्षमूलता ।
निष्परिग्रहता द्रोहः समता सर्वजन्तुषु ॥१९
प्रियाप्रियपरिष्वङ्गे सुखदुःखाविकारिता ।
सबाह्याभ्यन्तरं शौचं वाग्यमो ध्यानचारिता ॥२०
सर्वेन्द्रियसमाहारो धारणाध्याननित्यता ।
भावसंशुद्धिरित्येष परिव्राड् धर्म उच्यते ॥२१

गृहस्थ आश्रम में प्राप्त होकर उसका फिर कर्म होता है नित्य अग्नि होत्र करना—अपने शास्त्रोक्त कर्मों के द्वारा जीवन का निर्वाह करना तथा वैदिक पद्धति से परिणीत सवर्ण पत्नी के साथ पर्वों का त्याग कर रति क्रिया करे ॥ १५ ॥ देवता—पितृगण और अतिथियों का पूजन—सत्कार करना चाहिए तथा श्रुति स्मृति के द्वारा प्रतिपादित अर्थ का संस्थान रक्खे यही एक गृहमेधी (गृहस्थी) का धर्म एवं कार्य होता है । गृहस्थ धर्म का पूर्ण निर्वाह कर लेने के अनन्तर वन में निवास करके वानप्रस्थ आश्रम में जब प्रवेश करता है तो उस समय उसका धर्म है कि इन्द्रियों पर संयम करे—नित्य अग्नि होत्र करे—भूमि पर शयन करे-मृग चर्म धारण करे । उस दशा में वन में निवास करना चाहिए । वहाँ पर जो सुविधा से जल—मूल—निवार और फल आदि प्राप्त हो उनसे ही निर्वाह करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ जो शास्त्र द्वारा प्रतिषेध किया गया हो उससे निवृत्त रहे—तीन बार स्नान करे—व्रतों को धारण करे और देव एवं समागत अतिथियों का अर्चन करना चाहिए—यही धर्म एक वनवासी आश्रमधारी का होता है ॥ १८ ॥ अब चौथा आश्रम सन्यास है उस आश्रम में रहने वाले के धर्म बताये जाते हैं—सब प्रकार के आरम्भों का परित्याग सन्यासी को सबसे प्रथम करना चाहिए—भिक्षा वृत्ति से जो अन्न प्राप्त हो उससे अपनी शरीर यात्रा पूरी करे । वृक्ष के मूल में निवास करे । अपने पास कुछ भी साधन संञ्चित न रक्खे—किसी से द्रोह न करे । समस्त जन्तुओं में समता का भाव रक्खे ॥१९॥ किसी को भी प्रिय तथा अप्रिय न समझे । सुख और दुःख में समान रहे । बाहिर और भीतर अर्थात् अन्त

करण में भी शुद्ध रहे—मौन रहे या बहुत कम भाषण करे। ध्यान में मग्न रहे ॥ २० ॥ समस्त इन्द्रियों का नियन्त्रित करे तथा नित्य ध्यान एवं धारणा करे। सर्वदा अपने हृदय की भावनाओं को शुद्ध रक्खे—यही एक परिव्राड् (संन्यासी) का धर्म कहा जाता है ॥२१॥

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया।
वर्णिना लिंगिनाश्चैव समान्यो धर्म उच्यते ॥२२
यथोक्तकारिणः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम्।
आबोधात् स्वपनं यावत् गृहस्थधर्म वच्मि ते ॥२३
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
शर्वर्य्यन्ते समुत्थाय कृतशौचः समाहितः ॥२४
स्नात्वा सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम्।
प्रातःसन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम् ॥२५
उभे मूत्रपुरीषे च दिवा कुर्य्यादुदङ्मुखः।
रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा ॥२६
छायायामन्धकारे वा रात्रौ वाहनि वा द्विजः।
यथा तु सुमुख कुर्य्यात् प्राणाबाधभयेषु च ॥२७
गोमयाङ्गारवल्मीकफालाकृष्टे जले शुभे।
मार्गोपजीव्यन्च्छायासु न मूत्रञ्च पुरीषकम् ॥२८

किसी भी प्राणी की हिंसा न करना अर्थात् किसी भाँति से न सताना—सत्य एवं सुप्रिय वाणी बोलना—सत्य व्यवहार मन-वचन और कर्म से करना—पवित्रता रखना—क्षमा रखना—सब पर दया भाव रखना ये सब वर्णों के लोगों का और समस्त आश्रमों में रहने वालों का सामान्य धर्म है जो सामान्यतया सभी में होना चाहिए ॥ २२ ॥ जैसा शास्त्र ने बताया है उसी का पूर्णतया पालन करने वाले सभी को परम गति प्राप्त हुआ करती है। जब से प्रातः काल में शय्या से उठे और रात्रि में जिस समय तक शयन करे उस पूरे समय का एक गृहस्थ धर्म को मैं अब तुमको बतलाता हूँ ॥ २३ ॥ एक गृहस्थ को प्रातः काल में ब्राह्म मुहूर्त्त में शय्या का त्याग कर उठ जाना

चाहिए। अरुणोदय और उषा काल में भी पूर्व का समय ब्राह्म मुहूर्त कहा जाता है। उठ कर अर्थात् शय्या का त्याग करके सब में प्रथम धर्म और अर्थ का चिन्तन करे। रात्रि के अन्त में उठकर फिर शौचादि क्रिया से निवृत्त होवे और पूर्ण सावधान हो जावे ॥ २४ ॥ स्नान करे—सन्ध्या—वन्दन करे। इस स्नान क्रिया के पूर्व ही दन्त धावन आदि शुद्धि कर लेनी चाहिए। प्रातः काल में सन्ध्या नमो करे जब पवित्र दातुन आदि की पूर्ण शुद्धि कर लेवे ॥ २५ ॥ मूत्र त्याग और मल का त्याग ये दोनों कार्य दिन में उत्तर दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए। यदि रात्रि के समय में ये दोनों कार्य करे तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे। दोनों दिन-रात के सन्धि काल में इन मल मूत्रों का त्याग करना हो तो दिन की जो दिशा बताई गई है उसी ओर मुख करके करना चाहिए ॥ २६ ॥ छाया में—अन्धकार में—रात्रि में अथवा दिन में द्विज को जैसे भी सुमुख हो वैसे ही करे। प्राणों की यदि बाधा होने का भय उपस्थित हो तो भी जैसे भी हो मल मूत्र का त्याग करे ॥ २७ ॥ गोमय (गोबर) अग्नि का अंगारा वल्मीक (बाँबी) हल से जुता हुआ भू भाग—शुभ स्थान—जल—मार्ग उपजीव्य छाया में कभी भी मल और मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ॥२८॥

अन्तर्जलाद् देवगृहाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ।
परेषां शौचशिष्टाच्च श्मशानाच्च मृदं त्यजेत् ॥२९
एका लिङ्गे मृदं दद्याद्वामहस्ते मृदद्वयम् ।
उभयोर्द्वे न दातव्ये मूत्रशौचे प्रचक्षते ॥३०
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश ।
पञ्च पादे दशैकस्मिन् करयोः सप्त मृत्तिकाः ॥३१
अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ।
द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा परिकीर्तिता ॥३२
उपविष्टस्तु विण्मूत्रं कर्तुं यस्तु न विन्दति ।
स कुर्यादर्द्धशौचं तु स्वस्य शौचस्य सर्वदा ॥३३

दिवा शौचस्य राज्यर्द्धं यद्वा पादो विधीयते ।
स्वस्थस्य तु यथोद्दिष्टमार्त्तः कुर्य्याद्यथाबलम् ॥३४
वसाशुक्रमसृङ्मज्जालालाविण्मूत्रकर्णगुत् ।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥३५

जल के अन्दर से—देवगृह से—वल्मीक से—चूहों के रहने के स्थल से—पर पुरुषों के शौच से, शिष्ट स्थल से और श्मशान से मिट्टी का त्याग कर देना चाहिए अर्थात् इन उक्त स्थलों से मिट्टी नहीं लेनी चाहिए ॥ २६ ॥ मूत्र त्याग करने के पश्चात् एक बार मिट्टी मूत्रेन्द्रिय पर लगावें–बाँये हाथ में दो बार मिट्टी लगावे और फिर दोनों हाथों में दो बार मिट्टी लगा कर मूत्र त्याग के अनन्तर शुद्धि करे ॥ ३० ॥ मल के त्याग करने के पश्चात् एक बार लिङ्ग पर–तीन बार गुदा पर—दशबार बाँये हाथ में—पाँच बार पैर में–एक कर में दशबार और दोनों हाथों में मिलाकर सातबार मृत्तिका लगा कर शुद्धि शौच जाने के बाद करना चाहिए ॥ ३१ ॥ आधी पस मिट्टी पहिली बताई गई है—दूसरी बार और तीसरी कर उससे आधी-आधी कही गई है ॥ ३२ ॥ जो उपहिष्ट होता हुआ मल-मूत्र का त्याग नहीं कर पाता है उसे अर्ध शौच (आधी शुद्धि) ही करना चाहिए क्योंकि इस शौच का सर्वदा यही बताया गया है ॥ ३३ ॥ दिन में जो शुद्धि का विधान कहा गया है रात्रि में उसका आधा अथवा चौथाई भाग ही का विधान होता है। यह सम्पूर्ण विधान स्वस्थ व्यक्ति के लिये ही कहा गया है। जो आर्त्त हो उसे तो अपनी शक्ति और बल के ही अनुसार शारीरिक शुद्धि करनी चाहिए ॥ ३४ ॥ मनुष्यों के निकलने वाले मल बारह प्रकार के हुआ करते हैं। उनके नाम निम्नलिखित हैं—वसा–शुक्र—रक्त–मज्जा–लाला (लार)–विष्ठा-मूत्र—कर्ण—गुत्—आँसू–श्लेष्मा (कफ)—स्वेद (पसीना) हैं ॥३५॥

यावता शुद्धिर्मन्येत तावच्छौचं समाचरेत् ।
प्रमाणं शौचसंख्याया नादिष्टं रवशिष्यते ॥३६
शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथान्तरम् ॥३७

त्रिराचामेदप पूर्वं द्वि प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
समृज्याङ्गुष्ठमूलेन त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३८
अंगुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् ।
अंगुष्ठानामिकाभ्यान्च चक्षु श्रोत्रे पुनः पुनः ॥३९
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नाभि हृदय तु तलेन वै ।
सर्वाभिस्तु शिर पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत्॥४०
ऋचो यजूंषि सामानि त्रि पठन् प्रीणयेत्क्रमात् ।
अथर्वाङ्गिरसौ पूर्वं द्वि प्रमाष्टयय षण्मुखम् ॥४१
इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि यथाक्रमम् ।
स मुखे नासिके वायु नेत्रे सूर्य्यं श्रुतिदिशः ॥४२
प्राणग्रन्थिमयो नाभि ब्रह्माणं हृदये स्पृशेत् ।
रुद्रं मूर्घ्ना समालम्य प्रीणात्यथशिखामृषीन् ॥४३

जहाँ तक मन में शुद्धि हो जाने की बात ठीक बैठे वहाँ तक उसकी शुद्धि करनी चाहिए । शौच की संख्या का प्रमाण जो निर्दिष्ट किया गया है वह अवशिष्ट नहीं रहता है ॥ ३६ ॥ यह शौच (शुद्धि) बाह्य और आभ्यन्तर दो तरह की बताई गई है । मिट्टी और जल से तो बाहिरी शारीरिक शुद्धि हुआ करती है तथा आभ्यन्तर शुद्धि तो भावों के विशुद्ध रखने पर ही होती है । जब तक मन की अन्तर्भावना शुद्ध नहीं होगी तब तक आन्तरिक शुद्धि नहीं हो सकती है । बाहिरी शुद्धि के साथ आन्तरिक शुद्धि का होना भी परम आवश्यक होता है ॥ ३७ ॥ सबसे पूर्व तीन बार जल का आचमन करे फिर दो बार मुख का प्रमार्जन करे फिर अंगुठे के मूल से तीन बार मुख का उपस्पर्शन करना चाहिए ॥ ३८ ॥ अंगुष्ठ और प्रदेशिनी से पीछे घ्राण (नासिका) का स्पर्श करे । इसके उपरान्त अंगूठा और अनामिका से बार-बार नेत्र तथा श्रोत्र का स्पर्श करना चाहिए ॥ ३९ ॥ कनिष्ठिका और अंगुष्ठ से नाभि का और तले से हृदय का स्पर्श करे । सम्पूर्ण अंगुलियों से शिर का स्पर्श करे और इसके अनन्तर अग्रभाग से बाहुओं का स्पर्श करना चाहिए ॥ ४० ॥ ऋग्वेद—यजुर्वेद और सामवेद इन तीनों का क्रम से पाठ करता हुआ प्रीणन

करना चाहिए। इसके पूर्व अथर्व और आङ्गिरस करे और दोनों से षण्मुख का प्रमार्जन करे ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त इतिहास और पुराण तथा यथाक्रम वेदों के अङ्गों का पारायण करना चाहिए। मुख में आकाश—नासिका में वायु—नेत्र में सूर्य—कानों में दिशा—नाभि में प्राण ग्रन्थि और हृदय में ब्रह्मा का स्पर्श करना चाहिए। मस्तक से रुद्र का सम्यक् प्रकार से लाभ करके फिर शिखा के स्पर्श से ऋषियों को प्रसन्न करे ॥४२॥४३॥

बाहू यमेन्द्रवरुणे कुबेरवसुधानलान् ।
अभ्युक्ष्य चरणौ विष्णुमिन्द्रं विष्णुं करद्वयम् ॥४४
अग्निर्वायुश्च सूर्येन्दुगिरयोऽङ्गुलिपर्वसु ।
गङ्गाद्याः सरितस्तासु या रेखाः करमध्यगाः ॥४५
उषःकाले तु संप्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत् ।
ततः स्नान प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥४६
मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्य्याद्वै दन्तधावनम् ॥४७
कदम्बबिल्वखदिरकरवीरवटार्जुनाः ।
यूथी च वृहती जाती करञ्जार्कातिमुक्तकाः ॥४८
जम्बूमधूकापामार्गशिरीषोदुम्बराशनाः ।
क्षीरिकण्टकिवृक्षाद्याः प्रशस्ता दन्तधावने ॥४६

दोनों बाहुओं में यम—इन्द्र और वरुण का—चरणों में कुबेर, वसुधा और अनल का तथा दोनों हाथों में विष्णु और इन्द्र का अभ्युक्षण करे ॥४४॥ अग्नि—वायु—सूर्य—चन्द्र-गिरि ये अंगुलियों के पर्वों में तथा कर के मध्य में जो सब रेखाएँ हैं वे सब गङ्गा आदि सम्पूर्ण नदियाँ हैं ॥ ४५ ॥ प्रातः काल के प्राप्त होने पर यथार्थ रीति से शौच (शुद्धि) करके फिर दन्त धावन के पश्चात् स्नान करना चाहिए ॥ ४६ ॥ मुख के पर्युषित (वासी) बने रहने पर सर्वदा मनुष्य अप्रयत रहा करता है। इसलिये सब प्रकार के पूर्ण प्रयत्नों के साथ दाँतुन अवश्य ही करना चाहिए ॥ ४७ ॥ दन्त धावन के लिये जो जिन वृक्षों की दातुन अच्छी मानी गई हैं उन वृक्षों के नाम ये हैं—कदम्ब—

बिल्व—खदिर—करवीर—वट—अर्जुन—करञ्ज—जाती—यूथी—वृहती—अर्क—प्रति मुक्तक—जामुन—मधूक—अपामार्ग—शिरीष—उदुम्बर (गूलर)—अशन और जो वृक्ष दूध वाले तथा काँटेदार हैं वे भी प्रशस्त माने जाते हैं ॥४८॥४६॥

कटुतिक्तकषायाश्च धनारोग्यसुखप्रदा.।
प्रक्षाल्य भुक्त्वा च शुची देशे त्यक्त्वा तदाचमेत् ॥५०
अमावस्या तथा षष्ठ्या नवम्या प्रतिपद्यपि ।
वर्जयेद्दन्तकाष्ठं तु तथैवार्कस्य वासरे ॥५१
अभावे दन्तकाष्ठस्य निषिद्धायां तथा तिथौ ।
अपां द्वादशगण्डूपैं कुर्वीत मुखशोधनम् ॥५२
प्रात स्नात्वा प्रशसन्ति दृष्टादृष्टकरं हितम् ।
सर्वं महति शुद्धात्मा प्रात स्नायी जपादिकम् ॥५३
अत्यन्तमलिन कायो नरश्छिद्रसमन्वितः।
श्रवत्येष दिवारात्रौ प्रात स्नानं विशोधनम् ॥५४

कटु—तिक्त और कषाय (कसैले) स्वाद वाली जो दाँतुन होती हैं वे धन—आरोग्य तथा सुख के प्रदान करने वाली हुआ करती हैं। दाँतुनों को धोकर फिर उन से दाँत साफ करने चाहिए। दन्त धावन करके किसी शुद्ध स्थान पर डाल देवे और आचमन (कुल्ली) करे ॥ ५० ॥ अमावस्या—षष्ठी—नवमी और प्रतिपदा तिथियों में तथा रविवार के दिन में दन्त काष्ठ का सेवन करना अर्थात् काष्ठ से दाँतों का स्वच्छ करना वर्जित होता है ॥ ५१ । दाँतुन के अभाव में तथा जो तिथियाँ ऊपर निषिद्ध बताई गयी हैं उनमें जल के बारह कुल्ले करके मुख का शोधन कर लेना चाहिए। मुख का शोधन करना तो परम आवश्यक है ॥ ५२ ॥ प्रात काल में दृष्ट तथा अदृष्ट हित करने वाले हित स्नान करके ही प्रशस्त होते हैं। प्रात काल में स्नान करने वाला शुद्ध आत्मा से युक्त पुरुष ही जप आदि सम्पूर्ण कार्य करने के योग्य होता है ॥५३। शरीर के अनेक छिद्रों से युक्त यह मानव अत्यन्त मलिन देह वाला होता है इस शरीर में रात-दिन अनेक अनिष्टता करने वाले मलों का स्राव करता

होता ही रहता है। प्रातः काल में जो सर्वाङ्ग स्नान किया जाता है उससे सब देह का पूर्ण शोधन हो जाता है। अतः प्रातः स्नान परम आवश्यक शुद्धि के लिये माना गया है ।।५४।।

मनःप्रसादजननं रूपसौभाग्यवर्द्धनम् ।
शोकदुःखप्रशमनं गङ्गास्नानवदाचरेत् ।।५५
अद्य हस्ते तु नक्षत्रे दशम्यां ज्यैष्ठके सिते ।
दशपापहरायाञ्च अदत्त्वा दानकल्मषम् ।।५६
विरुद्धाचरणं हिंसा परदारोपसेवनम् ।
पारुष्यानृतपैशून्यमसम्बद्धाभिभाषणम् ।।५७
परद्रव्याभिधानञ्च मनसानिष्टचिन्तनम् ।
एतद्दशाघघातार्थं गङ्गास्नानं करोम्यहम् ।।५८
प्रातः संक्षेपतः स्नानं बाणप्रस्थगृहस्थयोः ।।५९

प्रातः काल में किये हुए स्नान से मन में एक प्रकार की प्रसन्नता होती है और सुबह ही स्नान करने से रूप तथा सौभाग्य की उत्पत्ति हुआ करती है। यह स्नान शोक और दुःख शमन करने वाला है। इसे गङ्गा स्नान की भाँति परम पुण्यमय समझ कर करना चाहिए ।। ५५ ।। आज हस्त नक्षत्र में और ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि में अर्थात् दशहरा में जो कि दशमी तिथि दश पाप का अपहरण करने वाली होती है—कुछ भी दान न देकर कल्मष रहित यह गङ्गा स्नान करता हूँ ।५६। यह स्नान किसी के विरुद्ध आचरण करना—हिंसा—पराई स्त्री का सेवन करना—पारुष वचन एवं कठोर व्यवहार करना—मिथ्या भाषण—पिशुनता (चुगली)—असम्बद्ध भाषण करना—पराये द्रव्य का अपहरण—अभिधान तथा मन से किसी के अनिष्ट का चिन्तन करना इन दश पापों के घात करने के लिये यह स्नान किया जाता है। यह वाणप्रस्थ और गृहस्थ को प्रातः काल में संक्षेप से स्नान करना चाहिए ।।५७।।५८।।५९।।

यतेस्त्रिपवणं स्नानं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः ।
आचम्य तीर्थमावाह्य स्नायात्स्मृत्वाव्ययं हरिम् ।।६०

तिस्र कटयर्द्धं विज्ञेया मन्देहा नाम राक्षसा. ।
उदयन्त दुरात्मान सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥६१
स हन्ति सूर्यं सन्ध्याया नोपास्ति कुरते तु य. ।
दह्यन्ति मन्त्रपूतेन तोयेनानलरूपिणा ॥६२
अहोरात्रस्य य सन्धि सा सन्ध्या भवतीति ह ।
द्विनाडिका भवेत्सन्ध्या यावद्भवति दर्शनम् ॥६३
सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयहोमो विधीयते ।
स्वयहोमफल यत्त तदन्येन न जायते ॥६४
ऋत्विक्पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पति ।
एभिरेव हुत यत्त् तद्धुत स्वयमेव हि ॥६५
ब्रह्मा वै गार्हपत्याग्निर्दक्षिणाग्निस्त्रिलोचन ।
विष्णुराहवनीयोऽग्नि कुमार सत्य उच्यते ॥६६

यति को तीन बार स्नान और सन्ध्या करनी चाहिए और ब्रह्मचारी को एक बार ही स्नान पर्याप्त होता है। आचमन करके तथा तीर्थ का आवाहन करके, अव्यय भगवान् हरि का स्मरण करके स्नान करना चाहिए ॥६०॥ मन्देह नामवाले साढ़े तीन करोड राक्षस हैं जो दुष्ट आत्मा वाले उदय होने वाले सूर्य को भक्षण कर जाना चाहते हैं ॥ ६१ ॥ जो सन्ध्या के समय में उपासना नहीं करता है वह सूर्य का हनन किया करता है। मन्त्रों से पूत अनलरूप जल से जलते हैं ॥ ६२ ॥ दिन और रात की जो सन्धि होती है वही सन्ध्या हुआ करती है। दो नाडिका के समय पर्यन्त सन्ध्या होती है जब तक कि दर्शन होता है ॥ ६३ ॥ सन्ध्या कर्म के अन्त में स्वय होम करने का विधान है। जो स्वय होम का फल होता है, वह अन्य किसी से भी नहीं होता है ॥ ६४ ॥ ऋत्विक् पुत्र, गुरु भ्राता—भागिनेय (भानजा) और विट् पति इन के द्वारा जो होम किया गया है वह स्वय ही हुत समझना चाहिए ॥ ६५ ॥ गार्हपत्याग्नि ब्रह्मा है—दक्षिणाग्नि त्रिलोचन शिव हैं—आहवनीय अग्नि विष्णु है तथा सत्य कुमार कहे जाते हैं ॥६६॥

कृत्वा होमं यथाकालं सौरान्मन्त्राञ्जपेत्ततः :
समाहितात्मा सावित्रीं प्रणवञ्च यथोदितम् ॥६७
प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु ।
त्रिपदायाञ्च सावित्र्यां न भयं विद्यते क्वचित् ॥६८
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं कल्यमुत्थाय मानवः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥६९
श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा ।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा ॥७०
आवाह्य यजुषाऽनेन तेजोऽसीति विधानतः ।
एतद्यजुः पुरा देवैर्दृष्टिदर्शनकांक्षिभिः ॥७१
आदित्यमण्डलान्तःस्थां ब्रह्मलोकस्थितामपि ।
तत्रावाह्य जपित्वातो नमस्काराद्विसर्जयेत् ॥७२
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ।
न विष्णोः परमो देवस्तस्मात्तं पूजयेत्सदा ॥७३

यथा समय होम करके सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों का जाप करना चाहिए। समाहित आत्मा वाला होकर यथोदित प्रणव और सावित्री का जाप करे। ॥ ६७ ॥ नित्य प्रणव में और सात व्याहृतियों तथा त्रिपदा सावित्री में जो युक्त रहता है उस को कहीं भी भय नहीं होता है ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य प्रातः काल में उठ कर नित्य प्रति नियम से गायत्री मन्त्र का जप किया करता है वह कभी भी पापों से जल से कमल के पत्र की भाँति लिप्त नहीं हुआ करता है ॥ ६९ ॥ गायत्री देवी के स्वरूप का ध्यान बतलाते हैं--गायत्री का वर्ण श्वेत है और वह देवी कौशय (रेशमी) वस्त्रों को धारण करने वाली और पद्म के आसन पर वह शुभा देवी विराजमान हैं ॥ ७० ॥ " तेजोऽसि "—इस यजुर्वेद के मन्त्र के द्वारा विधान से आवाहन करे। यह यजुर्वेद का मन्त्र पहिले दृष्टि से दर्शन करने की इच्छा वाले देवों ने पढ़ा था ॥ ७१ ॥ आदित्य के मण्डल के अन्दर विनाश करने वाली और ब्रह्मलोक में विराजमान देवी सावित्री का वहाँ

पर आवाहन करके तथा जाप करके अभिवादन कर विमर्जन करना चाहिए ॥ ७२ ॥ दो पहर के पूर्व मे ही देवताओं का पूजन करे। भगवान् विष्णु से परम देव अन्य कोई नहीं है अतएव उनका सदा अर्चन करना चाहिए ॥७३॥

ब्रह्मविष्णुशिवान्देवान्न पृथग्भावयेत्सुधी ।
लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशन ॥७४
हिरण्य सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टम ।
एतानि सतत पश्येदर्चयेच्च प्रदक्षिणम् ॥७५
वेदस्याध्ययन पूर्वं सर्वदाभ्यसन चरेत् ।
तद्दानञ्चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥७६
वेदार्थं यज्ञशास्त्राणि धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
मूल्येन लेखयित्वा यो दद्याद्याति स वैदिकम् ॥७७
इतिहासपुराणानि लिखित्वा य प्रयच्छति ।
ब्रह्मदानसम पुण्य प्राप्नोति द्विगुणीकृतम् ॥७८
तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थ साधनम् ।
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीना समाश्रिता ॥७९
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्नि पोष्यवर्गा उदाहृता ।
भरण पोष्यवर्गस्य प्रशस्त स्वर्गसाधनम् ॥८०

सुधी पुरुष को चाहिए कि ब्रह्मा—विष्णु और शिव इन तीनो को पृथक् न समके। इस लोक मे ये आठ मङ्गलमय वस्तु हैं—ब्राह्मण—गौ—हुताशन—हिरण्य—घृत—सूर्य—जल तथा आठवाँ राजा है। इनको सदा देखे और इनकी अर्चना करे एव प्रदक्षिणा करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ वेद का पाँच प्रकार का अभ्यास होता है—प्रथम वेद का अध्ययन, सदा, उसका अभ्यास करते रहना उस वेद का दान अर्थात् अध्यापन जो कि शिष्यो को कराना चाहिए ॥ ७६ ॥ वेदार्थ—यज्ञ करने—कराने का शास्त्र—धर्म शास्त्र इनको मूल्य देकर लिखवा कर जो किसी वैदिक ब्राह्मण को दान करता है और इतिहास—पुराणो को लिखकर देता है वह ब्रह्मदान के समान दुगना पुण्य प्राप्त किया करता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ तीसरे भाग में जो पोष्य (पोषण करने के

योग्य हों) वर्ग के अर्थ का साधन करे जैसे—माता—पिता—गुरु—भ्राता—प्रजा—दीन और आश्रय में रहने वाले हों—अभ्यागत—अथिति और अग्नि ये सब पोष्य कहे गये हैं। पोष्य वर्ग का भरण करना भी परम प्रशस्त और स्वर्ग का साधन माना गया है ।।७९।।८०।।

भरणं पोष्यवर्गस्य तस्माद्यत्नेन कारयेत् ।
स जीवति वरश्चैको बहुभिर्योपजीव्यति ।।८१
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः ।
स्वकीयोदरपूर्णञ्च कुक्कुरस्यापि विद्यते ।।८२
अर्थेभ्योऽपि विवृद्धेभ्यः सम्भूतेभ्यस्ततस्ततः ।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ।।८३
सर्वरत्नाकरा भूमिर्धान्यानि पशवः स्त्रियः ।
अर्थास्य कार्य्ययोगत्वादर्थो इत्यभिधीयते ।।८४
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ।।८५
धनं तु त्रिविधं ज्ञेयं शुक्लं शबलमेव च ।
कृष्णञ्च तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पृथक् ।।८६
क्रमायत्तं प्रीतिदत्तं प्राप्तञ्च सह भार्य्यया ।
अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधं धनम् ।।८७

अतएव पोष्य वर्ग का भरण-पोषण यत्नपूर्वक करना चाहिए। उस एक पुरुष का परम प्रशस्त जीवन होता है जिसके सहारे बहुतों का उपजीवन होता है ।।८१।। जो अपने ही उदर को भरने वाले रहकर जीवन बिताते हैं वे पुरुष जीवित रहते हुए भी मृतक ही के समान होते हैं। अपने पेट को तो एक कुत्ता भी किसी प्रकार से भर ही लिया करता है ।।८२।। अर्थों के विशेष रूप से बढ़ जाने पर तथा इधर-उधर चारों ओर से आने पर फिर उन्हीं से पर्वतों से नदियों की भाँति समस्त क्रियाऐं प्रवृत्त हुआ करती हैं ।।८३।। यह भूमि समस्त प्रकार के रत्नों की खान है। धान्य, पशु, स्त्रियाँ ये सब अर्थ के कार्यों के योग होते हैं अतएव इनको अर्थ ही कहा जाता है ।।८४।। समस्त प्राणियों के साथ

किसी भी प्रकार का द्रोह न हो अथवा द्रोह कुछ हो भी तो बहुत ही कम हो, इस प्रकार की जो वृत्ति हो उसी वृत्ति से विप्र को अनापत्ति काल में स्थित रह कर जीवन का यापन करना चाहिए ॥८५॥ यह धन तीन प्रकार का जानना चाहिए—शुक्ल शबल और कृष्ण ये तीन वर्ग होते हैं। उस धन का सात प्रकार से पृथक् विभाग होता है ॥८६॥ यह धन एक तो पितृ परम्परा के क्रम से आया हुआ होता है—दूसरा ऐसा धन होता है जो किसी के द्वारा प्रीति से प्रदान किया हुआ होता है। तीसरे प्रकार का धन ऐसा होता है जो भार्या के साथ प्राप्त होने वाला होता है। विशेषता के बिना प्राय समस्त वर्णों का यह तीन ही प्रकार का धन हुआ करता है ॥८७॥

वशेषिक धन दृष्ट ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम् ।
याजनाध्यापने नित्य विशुद्धश्च प्रतिग्रह ॥८८
त्रिविध क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वैशेषिक धनम् ।
युद्धार्थं लब्धकरज दण्डाम जयज तथा ॥८९
वैशेषिक धन दृष्ट वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम् ।
कृषिगारक्षवाणिज्य शूद्रस्यभ्यस्त्वनुग्रहात् ॥९०
कुसीदकृषिवाणिज्य प्रकुर्वीत स्वय कृतम् ।
आपत्काले स्वय कुर्वन्नैनसा युज्यते द्विज ॥९१
बहुधा वर्त्तनोपाया ऋषिभि परिकीर्तिता ।
सर्वेषामपि चैवैषा कुसीदमधिक विदु ॥९२
अनावृष्ट्या राजभयान्मूषिकाद्य रुपद्रवैः ।
कृष्यादिके भवेद्बाधा सा कुसीद न विद्यते ॥९३
देश गताना या वृद्धिर्नानापण्यापजीविनाम् ।
कुसीद कुर्वत सम्यक्सम्यितस्यैव जायते ॥९४
लब्धलाभ पितॄन्देवान्ब्राह्मणाश्चैव पूजयेत् ।
ते तृप्तास्तस्य तद्दोष शमयन्ति न सशय ॥९५

विशेषता से युक्त ब्राह्मण का धन तीन प्रकार के लक्षणों से युक्त देखा गया है—याजन से प्राप्त होने वाला, अध्यापन से प्राप्त और विशुद्ध प्रतिग्रह

से प्राप्त होने वाला धन होता है ॥८८॥ इसी प्रकार से क्षत्रिय का भी धन तीन प्रकार का होता हैं जो कि वैशेषिक धन कहलाता है। शुद्ध धन वह है जो करों के द्वारा न्यायोचित रूप से प्राप्त किया जाता है अर्थात् शास्त्रोक्त उचित करों के द्वारा जो राजा के पास आता है। दण्डों द्वारा जो धन राजा के पास आया करता है। तीसरा वह धन है जो विजय करके धन प्राप्त होता है अर्थात् अन्य राजा से युद्ध करके उस पर जय प्राप्त कर उससे जो मिला करता है ॥८९॥ इसी तरह विशेषता से संयुत वैश्य का धन भी तीन प्रकार का हुआ करता है। कृषि के द्वारा लब्ध धन, पशु पालन से आने वाला धन और वाणिज्य-व्यवसाय से मिलने वाले मुनाफे का धन तीसरी तरह का वैशेषिक धन है। शूद्रों के पास जो धन होता है वह तो इन तीन वर्ण वालों के अनुग्रह से ही प्राप्त हुआ करता है ॥९०॥ ब्राह्मण भी आपत्ति काल उपस्थित होने कुसीद, गोरक्षण और वाणिज्य यदि स्वयं भी करे तो उसे कोई पाप नहीं लगता हैं ॥९१॥ ऋषियों ने बहुत से जीवन निर्वाह के उपाय बतलाये हैं किन्तु इन सभी उपायों में कुसीद (ब्याज) को सबसे अधिक बताया है ॥९२॥ कृषि कर्म में अनावृष्टि से, राजा के भय से और मूषिका आदि के अन्य अनेकों उपद्रवों से बाधा उपस्थित हो जाया करती हैं किन्तु कुसीद वृत्ति में यह कुछ भी बाधाऐं नहीं हैं ॥९३॥ दूसरे देशों में जाने वाले अनेक पण्य पदार्थों का विक्रय कर रोजी कमाने वालों की जो वृद्धि होती है वह कुसीद के काम करने वालों को एक ही स्थान पर स्थित रहते हुए ही हो जाया करती है ॥९४॥ जो लाभ प्राप्त होता है उससे मनुष्य को चाहिए कि पितृगण, देवता और ब्राह्मणों का पूजन करे। ये सब तृप्त होकर उसका जो भी कुछ दोष होता है उसका शमन कर दिया करते हैं— इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥९५॥

कुषीवलोऽल्पपानादियानशय्यासनानि च ।
राजभ्यो विंशतिर्दत्त्वा पद्मुस्वर्णादिकं शतम् ॥९६
विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षा विपणिः कृषिः ।
वृत्तिर्भैक्ष्यं कुषीदञ्च दश जीवनहेतवः ॥९७
प्रतिग्रहार्जिता विप्रे क्षत्रिये शस्त्रनिर्जिताः ।
वैश्ये न्यायार्जिताः स्वार्थाः शूद्रे शुश्रूषयार्जिता ॥९८

नदी वहूदका शाकपर्णानि च समित्कुशा ।
आग्नेयो ब्रह्मघोषश्च विप्राणा धनमुत्तमम् ॥६६
अयाचितोपपन्ने तु नास्ति दोष प्रतिग्रहे ।
अमृत तद्विदुर्देवास्तस्मात्तन्न व वर्जयेत् ॥१००
गुरुद्रव्याश्चोज्जिहीर्षुर्नाचिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वत प्रतिगृह्णीयात्तत्तु तृप्येत्स्वय तत ॥१०१
साधुत प्रतिगृह्णीयादथवाऽसाधुतो द्विज ।
गुणवानल्पदोपश्च निर्गुणो हि निमज्जति ॥१०२

कृषीवल (किसान) अन्न पान आदि, शय्या, आसन और पशु स्वर्णादिक शत तथा विंशति राजाओ को देते है ॥६६॥ विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा दूकानदारी, खेती, वृत्ति, भैक्ष्य और कुसीद ये दश जीवन निर्वाह के हेतु होते हैं । ६७॥ ब्राह्मण मे प्रतिग्रह से अर्जित, क्षत्रिय म शस्त्रो के द्वारा निर्जित और वैश्य मे न्याय से उपार्जित तथा शूद्र म सेवा से अर्जित स्वार्थ होते हैं । ब्राह्मणों का उत्तम धन तो बहुत जल व ली नदी, शाकपत्र, समिधा, कुशा, आग्नेय और ब्रह्म घोष होता है ॥६८॥६६॥ बिना याचना किये हुए जो उपपन्न हो ऐसे प्रतिग्रह म कोई भी दोष नहीं होता है । देवगण उसको अमृत कहते हैं इसलिये उसका वर्जित नही करना चाहिए ॥१००॥ गुरुगण के द्रव्यो का हरण करने की इच्छा वाला और देवता तथा अतिथियों का अर्चन न करता हुआ जो सभी ओर से प्रतिग्रह लेता है और स्वय ही उसमे तृप्ति किया करता है ॥१०१॥ अतएव प्रतिग्रह के विषय म यह बताया जाता है कि दान साधु पुरुष से ही लेना चाहिय, असाधु पुरुष से दान लेने का विचार द्विज को करना चाहिए । कौनसा दान गुण वाला है और कौनसा अल्प दोषो से युक्त है—यह भी विचार करना चाहिए । जो गुणहीन होता है वह निमज्जित हो जाता है ॥१०२॥

एव स्वकारवृत्त्या वा कृत्वा भरणमात्मन ।
कुर्याद्विशुद्धि परत प्रायश्चित्त द्विजात्तम ॥१०३
चतुर्थे च तथा भागे स्नानार्थी मृदमाहरेत् ।
तिलपुष्पकुशादीनि स्नानश्चाकृत्रिमे जले ॥१०४

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।
मार्जनाचमावगाहाश्चाष्टस्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥१०५
अस्नातस्तु पुमान्नार्हो जपाग्निहवनादिषु ।
प्रातःस्नानं तदर्थन्तु नित्यस्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥१०६
चाण्डालशवविष्ठाद्यान् स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ।
स्नानार्हस्तु यदा स्नाति स्नानं नैमित्तिकं हि तत् ॥१०७
पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् ।
तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥१०८
जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
स्नानं समाचरेद्यत्तु क्रियाङ्गं तच्च कीर्त्तितम् ॥१०९

इस प्रकार से अक्षर वृत्ति के द्वारा अपना भरण करके द्विजोत्तम को बाद में प्रायश्चित्त करके विशुद्धि कर लेनी चाहिये ॥१०३॥ तथा चतुर्थ भाग में स्नान के लिये मृत्तिका का आहरण करे और तिल, पुष्प तथा कुशा आदि लावे । अकृत्रिम अर्थात् प्राकृतिक भरे हुए जल में स्नान करे । स्नान आठ प्रकार के होते हैं । नित्यस्नान, निमित्त से सम्बन्धित स्नान, काम्य अर्थात् किसी कामना को हृदय में रखकर किया जाने वाला स्नान, किसी क्रिया का अङ्ग स्वरूप स्नान, मल को साफ करने वाला स्नान, मार्जन, आचमन और अवगाहन ये आठों के नाम हैं ॥१०४।१०५॥ जो पुरुष स्नान न किया हुआ हो वह जप, अग्नि और हवन आदि कर्मों के करने के योग्य नहीं होता है । जो प्रातःकाल में किया जाने वाला स्नान होता है वह उसके लिये नित्यस्नान कहा गया है ॥१०६॥ किसी चाण्डाल, शव और विष्ठा आदि का स्पर्श करके या किसी रजस्वला का स्नान जो स्नान के योग्य होकर स्नान किया करता है वह नैमित्तिक स्नान कहा गया है ॥१०७॥ ज्योतिषियों के द्वारा बताई विधि से प्रेरित होकर जो पुष्य स्नान आदि के विधान में स्नान होता है वह काम्य स्नान है । इसे बिना कामना वाला कभी नहीं किया करता है ॥१०८॥ जाप करने की इच्छा वाला देवता तथा अतिथियों की अर्चना करने के लिये पवित्रता के अर्थ स्नान किया जाता है वह स्नान क्रिया का अङ्ग स्नान कहा गया है ॥१०९॥

मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तत्र नान्यथा ।
सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥११०
स्नानमेव क्रिया यस्मात्क्रियास्नानमतः परम् ।
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलं लभेत् ॥१११
मार्जनान्मज्जनं मन्त्रैः पापमाशु प्रणश्यति ।
नित्यं नैमित्तिकञ्चापि क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।
तीर्थाभावे तु वक्तव्यमुष्णोदकपरोदके ॥११२
भूमिष्ठादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणादिकम् ।
ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ॥११३
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यन्तु सर्वतः ।
गाङ्गं पयः पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम् ॥११४
गयायाञ्च कुरुक्षेत्रे यत्तोयं समुपस्थितम् ।
तस्मात् गाङ्गमपरं जानीयात्तोयमुत्तमम् ॥११५
पुत्रजन्मनि यागेषु तथा संक्रमणे रवेः ।
राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं निशि नान्यथा । ११६
उपस्युषसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ ।
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥११७

केवल शरीर के मल का प्रक्षालन करने के ही निमित्त जो स्नान होता है वह मलापकर्षण स्नान कहा गया है क्योंकि अन्य कोई हेतु उसका नहीं होता है। उसकी प्रवृत्ति ही मल का अपकर्षण ही होती है। सरोवरों में—देवखातों में, तीर्थों में और नदियों में जो स्नान है वही एक क्रिया है, इसलिए इस क्रिया स्नान कहते हैं। इसके पश्चात् जल में शरीर के अङ्गों की शुद्धि होती है और तीर्थों के स्नान से फल का भी लाभ होना है ॥११०।१११॥ मज्जन मन्त्रों के द्वारा मज्जन करने से पापों का बहुत ही शीघ्र प्रणाश हो जाता है। नित्य, नैमित्तिक, क्रियाङ्ग, मलकर्षण स्नान तीर्थ के अभाव में उष्णोदक तथा परोदक से करना चाहिए ॥११२॥ भूमि से जो उद्धृत जल होता है वह पुण्य है। इससे भी अधिक पुण्य प्रस्रवण आदि का होता है। इससे ज्यादा सरोवर का

जल पवित्र है । सरोवर से भी अधिक पुण्य नदी का जल है—ऐसा कहा जाता है ॥११३॥ तीर्थ का जल विशेष पुण्य होता है । गङ्गा का जल तो सभी प्रकार से पुण्य है । गंगा का जल शीघ्र ही पवित्र किया करता है और आमरणान्तिक पापों को नष्ट कर देता है ॥११४॥ गया में, कुरुक्षेत्र में जो जल उपस्थित है उससे भी उत्तम दूसरा गंगाजल को ही समझना चाहिये ॥११५॥ पुत्र के जन्म में, योग विशेषों में, रवि के संक्रमण की वेला में, राहु के दर्शन में अर्थात् ग्रहण के समय में रात्रि में स्नान प्रशस्त माना गया है अन्यथा निशा की वेला में स्नान अच्छा नहीं कहा गया है ॥११६॥ सुबह ही सुबह के समय में रवि के उदय होने की सन्धि में जो स्नान होता है वह प्राजापत्य व्रत के समान महापातकों के नाश करने वाला होता है ॥११७॥

यत्फलं द्वादशाब्दानि प्राजापत्ये कृते भवेत् ।
प्रातःस्नायी तदाप्नोति वर्षेण श्रद्धयान्वितः ॥११८
य इच्छेद्विपुलान्भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ।
प्रातःस्नायी भवेन्नित्यं मासौ द्वौ माघफाल्गुनौ ॥११९
यस्तु माघं समासाद्य प्रातःस्नायी हविष्यभुक् ।
अतिपापं महाघोरं मासादेव व्यपोहति ॥१२०
मातरं पितरञ्चापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ।
यदुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशं लभेत्तु सः ॥१२१
तुष्यत्यमलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः ।
श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः ॥१२२
सन्तापः कीर्त्तिरल्पायुर्धनं निधनमेव च ।
आरोग्यं सर्वकामाप्तिरभ्यङ्गाद्भास्करादिषु ॥१२३
उपोषितस्य व्रतिनः कृत्तकेशस्य नापितैः ।
तावच्छ्रीस्तिष्ठति प्रीता यावत्तैलं न संस्पृशेत् ॥१२४

बारह वर्ष तक प्राजापत्य व्रत के करने से जो फल प्राप्त होता है उसे श्रद्धा से समन्वित होकर नित्य प्रातःकाल में स्नान करने वाला एक वर्ष ही में प्राप्त कर लिया करता है ॥११८॥ जो पुरुष चन्द्र और सूर्य ग्रहों के तुल्य बहुत

अधिक भोगो के प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे माघ और फाल्गुन इन दो मासो मे नित्य ही प्रातःकाल मे स्नान करने वाला हो जाना चाहिये ॥११६॥ जो पुरुष माघ मास को प्राप्त कर नित्य प्रातःकाल मे स्नान करता है और हविष्य का भोजन करता है वह अत्यन्त उग्र महान् पाप को भी एक ही मास मे नष्ट करके विशुद्ध हो जाता है ॥१२०॥ माता, पिता, भ्राता, सुहृद्, गुरु इनमे जिस किसी का उद्देश्य लेकर निमज्जन किया करता है उसका बारहवाँ अंश वह प्राप्त किया करता है ॥१२१॥ भगवान् विष्णु विशेषकर एकादशी तिथि मे आमलकी से बहुत सन्तुष्ट हुआ करते हैं। जो श्री की कामना रखता हो उस मनुष्य को सर्वदा आमलकी (आंवला) से स्नान करना चाहिये ॥१२२॥ भास्कर आदि दिनो मे अभ्यंग करने से सन्ताप, कीर्ति, अल्पायु, धन, निधन और आरोग्य इन सम्पूर्ण कामो की प्राप्ति होती है ॥१२३॥ उपोषित, श्री और नापित के द्वारा क्षौर कर्त्तन कराने वाले की श्री प्रसन्न होकर तभी तक स्थित रहा करती है जब तक तैल का स्पर्श नही किया करता है ॥१२४॥

एवं स्नात्वा पितृन्देवान्मनुष्यांस्तर्पयेन्नरः ।
नाभिमात्रे जले स्थित्वा चिन्तयेदूर्ध्वमानसः ॥१२५
आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्वपोऽञ्जलिम् ।
त्रींस्त्रीनञ्जलीन्दद्यादाकाशे दक्षिणे तथा ॥१२६
उत्तीर्य वसनं शुक्लं स्थलस्थस्तीर्णबर्हिषि ।
विधिज्ञास्तर्पणं कुर्युर्न पात्रे तु कदाचन ॥१२७
यदपां क्रूरमामात्तं यदमेध्यं तु किञ्चन ।
अशान्तं मलिनं यच्च तत्सर्वमपगच्छतु ॥१२८
गृहीत्वानेन मन्त्रेण तोयं सव्येन पाणिना ।
प्रक्षिपेद्दिदिशि नैरृत्यां रक्षोऽपहतये तु तत् ॥१२९
निषिद्धभक्षणाद्यत्तु पापाद्यच्च प्रतिग्रहम् ।
दुष्कृतं यच्च मे किञ्चिद्वाङ्मनः कायकर्मभिः ॥१३०
पुनातु मे तदिन्द्रस्तु वरुणः सबृहस्पतिः ।
सविता च भगश्चैव मुनयः सनकादयः ॥१३१

इस प्रकार से स्नान करके मनुष्य को पितृगण, देवता और मनुष्यों को तृप्त करना चाहिए। नाभि मात्र जल में स्थित होकर ऊर्ध्व मन वाला होते हुए चिन्तन करे ॥ १२५ ॥ चिन्तन इस प्रकार से करे-हे मेरे पितृगण! आप लोग आइये और मेरी इस दी हुई जलाञ्जलि को ग्रहण कीजिए। दक्षिण दिशा में तीन-तीन अञ्जलियाँ आकाश में देवे। फिर सूखे हुए वस्त्रों को पहिन कर स्थल पर बिछे हुए बर्हि पर बैठकर विधि के ज्ञाताओं को तर्पण करना चाहिए किन्तु पात्र में कभी तर्पण न करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ क्रूर मांस से जो कुछ भी जल में अभेध्य हो और अशान्त एवं मलिन जो कुछ भी हो वह सब अभगत हो जावे ॥ १२८ ॥ इस मन्त्र से सव्य हाथ से जल ग्रहण करके नैर्ऋत्य दिशा में राक्षसों के अप हनन करने के लिये उस जल को प्रक्षिप्त कर देवे ॥ १२९ ॥ निषिद्ध पदार्थ के भक्षण करने के पाप से और प्रतिग्रह के लेने से जो भी कुछ दुष्कृत मन—वाणी—शरीर के कर्म के द्वारा मेरा हुआ हो उसे इन्द्रदेव—वरुण—बृहस्पति—सविता—भग और सनकादि मुनि गण पवित्र करें ॥ १३० ॥ १३१ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जपंस्तृप्यन्तिति ब्रुवन् ।
क्षिपेदपोऽञ्जलींस्त्रींस्तु कुर्वन्संक्षेपतर्पणम् ॥१३२
सुराणामर्चनं कुर्याद् ब्रह्मादीनाममत्सरी ।
ब्राह्मवैष्णवरौद्रैश्च सावित्रैर्मैत्रवारुणैः ॥१३३
तल्लिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान्नमस्य च ।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेत्तु पृथक्पृथक् ॥१३४
सर्वदेवमयं विष्णुं भास्करश्चाथ चार्चयेत् ।
दद्यात्पुरुषसूक्तेन य पुष्पाण्यप एव वा ॥१३५
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् ।
अन्यैश्च तान्त्रिकैर्मन्त्रैः पूजयेच्च जनार्दनम् ॥१३६

'आब्रह्म स्तम्ब पर्यन्तम्'-इस मन्त्र का जप करके उच्चारण करता हुआ, संक्षेप से तर्पण करता हुआ तीन-तीन जल की अञ्जलियों का प्रक्षेप करना चाहिए ॥ १३२ ॥ फिर ब्रह्मादि सुरों का मत्सरता से रहित होकर अर्चन

करना चाहिए। ब्राह्म-वैष्णव—रौद्र-सावित्र—मैत्रवारुण तत् तत् लिङ्गों वाले मन्त्रों के द्वारा सम्पूर्ण देवों का अर्चन करे फिर सब देवताओं को नमस्कार करके पृथक् पृथक नमस्कार द्वारा ही पुष्पों का विन्यास करना चाहिए ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ समस्त देवों के परिपूर्ण भगवान् विष्णु और भुवन भास्कर को अर्चना करनी चाहिए। पुरुष सूक्त के द्वारा जो पुरुषों को एवं जल को समर्पित करता है उसने इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की ही अर्चना करली है। इसके अतिरिक्त तान्त्रिक मन्त्रों के द्वारा भी जनार्दन की पूजा करे ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

आदावर्घ्यं प्रदातव्य तत पश्चाद्विलेपनम् ।
तत पुष्पाञ्जलि धूप उपहारफलानि च ॥१३७
स्नानमन्त्रर्जले चैव मार्जनाचमन तथा ।
जलाभिमन्त्रण यच्च तीर्थस्य परिकल्पनम् ॥
अघमर्षणसूक्तेन त्रिवार त्वेव नित्यश ॥१३८
स्नाने चरितमित्येतत्समुद्दिष्ट महात्मभि ।
ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव मन्त्रवत् स्नानमिष्यते ।
तूष्णीमेव तु शूद्रस्य सनमस्कारक स्मृतम् ॥१३९
अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञस्तु सर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥१४०
गवा गोष्ठे दशगुण अग्न्यागारे शताधिकम् ।
सिद्धक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ॥
सहस्रशतकोटीनामनन्त विष्णुसन्निधौ ॥१४१
पञ्चमे च तथा भागे सविभागो यथार्थत ।
पितृदेव मनुष्याणा कोटीनाञ्चोपदिश्यते ॥१४२
ब्राह्मणेभ्य प्रदायाग्र य सुहृद्भि सहाश्नुते ।
स प्रेत्य लभते स्वर्गमन्नदान समाचरन् ॥१४३

सर्व प्रथम आदि में जब कि अर्चा का आरम्भ कर देव को अर्घ्य देना चाहिए। इसके अनन्तर विलेपन देवे। इसके पश्चात् पुष्पाञ्जलि देवे और क्रमशः

धूप और उपहार के लिये फल आदि समर्पित करने चाहिए। इसके उपरान्त जल के अन्दर स्नान करावे—मार्जन तथा आचमन करावे। जल को अभिमन्त्रित करे तथा तीर्थ का परिकल्पन करना चाहिए। इस तरह से अघमर्षण सूक्त से नित्य ही तीन बार करना चाहिए ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ महान् आत्मा वालों ने स्नान में यह इतना चरित्त कहा है। ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों को मन्त्रवत् स्नान करना चाहिए। केवल शूद्र को चुप चाप ही नमस्कार के साथ स्नान बताया गया है ॥ १३९ ॥ अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ है और तर्पण करना पितृ यज्ञ होता है। होम करना दैवयज्ञ होता है तथा बलि देना भौत यज्ञ है। अतिथियों का अर्चा-संस्कार करना नृयज्ञ होता है ॥१४०॥ गौओं के गोष्ठ में इस सबका करना दशगुना फल वाला होता है। अग्न्यागार में यदि यह सब किया जावे तो शत गुना फल प्रद होता है। जो सिद्ध क्षेत्र हैं—तीर्थ हैं तथा देवतायतन हैं उन में देवार्चन आदि करने से सहस्र शत कोटि गुना फल प्रद होता है एवं भगवान् विष्णु की सन्निधि में किया जावे तो अनन्त गुना फल देने वाला हुआ करता है ॥ १४१ ॥ तथा पञ्चम भाग में यथार्थ रूप से पितृ-देव-मनुष्य और कीटियों का विभाग करे—ऐसा उपदेश दिया जाता है ॥ १४२ ॥ सबसे पूर्व ब्राह्मणों को प्रदान कर के जो अपने सुहृदों के साथ अशन किया करता है वह इस तरह अन्न का दान करने वाला मनुष्य मर कर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है ॥ १४३ ॥

पूर्वं मधुरमश्नीयाल्लवणान्तौ च मध्यतः।
कटुतिक्तकषायांश्च पयश्चैव तथान्ततः ॥१४४

शाकञ्च रात्रौ भूमिष्ठमत्यन्तञ्च विवर्जयेत्।
न चैकरससेवायां प्रसज्येत कदाचन ॥१४५

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम्।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम् ॥१४६

अमावसी वसेद्यत्र एकहायनमेव वा।
तत्र श्रीश्चैव लक्ष्मीश्च वसते नात्र संशयः ॥१४७

उदरे गार्हपत्याग्निः पृष्ठदेशे तु दक्षिण ।
ग्रास्ये आहवनीयोऽग्नि सत्ये सर्वञ्च मूर्द्धनि ॥१४८
य पञ्चाग्नीनिमान्वेद ग्राहिताग्निः स उच्यते ।
शरीरमाप सोमञ्च विविधश्चान्नमुच्यते ॥१४९
प्राणो ह्यग्निस्तथादित्यस्त्रिभोक्ता एक एव तु ।
ग्रन्न बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ॥१५०
भवत्येतत्परिणतौ समाप्तव्याहत सुखम् ।
हस्तेन परिमार्ज्याथ कुर्य्यात्ताम्बूलभक्षणम् ॥१५१
श्रवणञ्चेतिहासस्य तत्कुर्य्यात्सुसमाहित. ।
इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमके नयेत् ॥१५२
तत सन्ध्यामुपासीत स्नात्वा वं पश्चिमा नर ।
एतद्वा दिवसे प्रोक्तमनुष्ठान मया द्विज ॥१५३
ग्राचार य पठेद्विद्वान्शृणुयात्स दिव व्रजेत् ।
ग्राचारादिधर्मकर्त्ता केशवो हि स्मृतो द्विज ॥१५४

सबसे पूर्व जो मधुर पदार्थ हो उसका ग्रशन करे ग्रौर मध्य में लवणाग्नो का भोजन करना चाहिए। जो कटु—तिक्त तथा कषाय स्वाद वाले हों उन्हे बाद मे खाने ग्रौर सबसे ग्रन्त मे पय का पान करे ॥ १४४ ॥ रात्रि में शाक का ग्रशन करे ग्रौर जो भूमिष्ठ हो उसका विशेष रूप से वर्जन कर देना चाहिए। कभी भी एक ही रस का सेवन नहीं करना चाहिए ॥ १४५ ॥ ब्राह्मण का ग्रन्न ग्रमृत के तुल्य माना गया है—क्षत्रिय का ग्रन्न दुग्ध के समान बताया गया है—वैश्य का जो ग्रन्न होता है वह ग्रन्न ही होता है तथा शूद्र का ग्रन्न रुधिर के तुल्य कहा गया है ॥ १४६ ॥ जहाँ पर ग्रमावासी वास करता है ग्रथवा एक हायन निवास करता है वहाँ पर श्री ग्रौर लक्ष्मी नित्य निवास किया करती है—इसमे तनिक भी संशय नहीं है ॥ १४७ ॥ उदर मे गार्हपत्याग्नि है ग्रौर पृष्ठ देश मे दक्षिणाग्नि है मुख मे ग्राहवनीय ग्रग्नि का तथा सत्य मे मूर्द्धा मे सबका निवास रहता है ॥ १४८ ॥ जो इन पाँच ग्रग्नियों को जानता है वह ग्राहिताग्नि कहा जाता है। शरीर-ग्राप ग्रौर सोम विविध

भ्रम कहा जाता है ॥ १४६ ॥ प्राण—अग्नि तथा आदित्य ये तीन भोक्ता एक ही होता है। भूमि का अन्न मेरे बल के लिये है। जलों का-अग्नि और अनिल का भी बल के लिये होता है ॥ १५० ॥ यह समाप्त और व्याहृत सुख परिणति (परिपाक) में होता है। हाथ से परिमार्जन करके ताम्बूल का भक्षण करना चाहिए ॥ १५१ ॥ इसके उपरान्त पूर्णतया सावधान होते हुए इतिहास श्रवण करना चाहिए। षष्ठ और सप्तम भाग को इतिहास-पुराणादि के श्रवण-पठन आदि के द्वारा व्यतीत करना चाहिए ॥ १५२ ॥ इसके अनन्तर अर्थात् दिवस के जो सात भाग बताये गये हैं उनका ऊपर में बताये हुए क्रम से उप-योग किये जाने पर फिर पश्चिम सन्ध्या की वन्दना स्नान करके करनी चाहिए। हे द्विज ! इस प्रकार से मैंने दिवस का पूरा अनुष्ठान बता दिया है। जो विद्वान् इस दिन भर के अनुष्ठान को पढ़ता है या श्रवण करता है वह विष्णु लोक को जाया करता है। हे द्विज ! इस आचार आदि धर्म का जो करने वाला है वह तो केशव ही बतलाया गया है ॥१५३॥१५४॥

११६—धर्म-सार कथन

धर्मसारमहं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सूक्ष्मं सर्वपापविनाशनम् ॥१
श्रुतं धर्म बलं धैर्य्यं सुखमुत्साहमेव च ।
शोको हरति वै नृणां तस्माच्छोकं परित्यजेत् ॥२
कर्मदाराः कर्मलोकाः कर्मसम्बन्धिबान्धवाः ।
कर्माणि प्रेरयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयो ॥३
दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते ।
दान स्वर्गश्च राज्यश्च दद्याद्दानं ततो नरः ॥४
एकतो दानमेवाहुः समग्रवरदक्षिणम् ।
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥५
तपसा ब्रह्मचर्य्येण यज्ञैः स्नानेन वा पुनः ।
धर्मस्य नाशका ये च ते वै निरयगामिनः ॥६

ये च होमजपस्नानदेवतार्चनतत्परा ।
सत्यक्षमादयायुक्तास्ते नरा स्वर्गगामिन. ।७

ब्रह्माजी ने कहा—हे शङ्कर ! अब मैं सक्षेप में धर्म का सार बतलाता हूँ उसका तुम श्रवण करो । यह धर्म का सार अत्यन्त सूक्ष्म है और मुक्ति तथा मुक्ति के प्रदान करने वाला एव सब प्रकार के पापो का नाश कर देने वाला होता है ॥१॥ शोक बहुत ही बुरी वस्तु है, इससे श्रुत, धर्म बल, धैर्य और सुख एव उत्साह इन सबका हरण हो जाया करता है अर्थात् शोक से ये सब नष्ट हो जाते हैं । अतएव शोक का परित्याग कर देना चाहिए । तात्पर्य यह है कि शोक को कभी भी न करे ॥२॥ ये कर्म ही पत्नियाँ हैं, कर्म ही लोक हैं कर्म ही सम्बन्धी और बान्धव हैं । इस ससार मे सुख तथा दुःख मे पुरुष को कर्म ही प्रेरित किया करते हैं ॥३॥ दान करना सबसे बड़ा परम धर्म होता है । दान करने से ससार मे सभी कुछ की प्राप्ति की जाया करती है । दान ही स्वर्ग है और दान ही राज्य है अर्थात् दान से स्वर्ग तथा राज्य की प्राप्ति हुआ करती है । अतएव मनुष्य को दान अवश्य ही देना चाहिये ॥४। एक ओर तो समग्र श्रेष्ठ दक्षिणा से युक्त दान है और एक ओर भय से भीति (डरा हुआ) प्राणी के प्राणो का रक्षण है ॥५॥ तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और स्नान के त्यागने से जो धर्म के नाश करने वाले हैं वे मनुष्य निश्चय ही नरक के गामी हुआ करते हैं । ॥६॥ जो मनुष्य होम, जप, स्नान, देवों का अर्चन इन सत्कर्मों मे सदा परायण रहा करते हैं और सत्य, क्षमा और दया से युक्त होते हैं वे मनुष्य अवश्य ही स्वर्ग के गमन करने वाले होते हैं ॥७॥

न दाता सुखदु खाना न च हर्त्तास्ति कश्चन ।
स्वकृतान्येव भुञ्जन्ते दु खानि च सुखानि च ॥८
धर्मार्थं जीवित येषा दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।
सन्तुष्टः को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्त्तितुम् ॥९
सर्व एव हि सौख्येन सङ्कटान्यवगाहते ।
इदमेव हि लोभस्य कार्य्यं स्यादतिदुष्करम् ॥१०

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभाद्द्रोहः प्रवर्त्तते ।
लोभान्मोहश्च माया च मानो मत्सर एव च ॥११
रागद्वेषानृतक्रोधलोभमोहमदोज्झितः ।
यः स शान्तः परं लोकं याति पापविवर्जितः ॥१२
देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुह्यका हर ।
धार्मिकं पूजयन्तीह न धनाढ्यं न कामिनम् ॥१३
अनन्तबलवीर्य्येण प्रज्ञया पौरुषेण वा ।
अलभ्यं लभते मर्त्यस्तत्र का परिवेदना ॥१४

सुखों और दुःखों का देने वाला या इनके हरण करने वाला कोई भी नहीं है। मनुष्य अपने ही किये हुए कर्मों के अनुसार चाहे वे पहिले जन्मान्तरों में किये हों या इसी जन्म के हों—सुख-दुःखों का भोग किया करते हैं ॥८॥ जिनका जीवन ही धर्म के लिये होता है वे सभी दुःखों का नाश कर दिया करते हैं। कौन सन्तुष्ट पुरुष फल और मूलों के द्वारा जीवन निर्वाह नहीं कर सकता है? ॥९॥ सभी सुख से सङ्कटों का अवगाहन करते हैं। यह ही लोभ का अत्यन्त कठिन कार्य है ॥१०॥ लोभ से क्रोध होता है और लोभ से ही द्रोह प्रवृत्त हुआ करता है। लोभ ही एक ऐसा महान् दोष है जिससे मोह, माया, मान और मत्सर उत्पन्न हुआ करते हैं ॥११॥ वही पुरुष शान्त होता है जो राग, द्वेष, मिथ्या, क्रोध, लोभ, मोह और मद से दूर रहता है अर्थात् इनका त्याग जिसने कर दिया है तथा जो शान्ति से सम्पन्न होता है पाप से रहित होकर परलोक में सद्गति प्राप्त किया करता है ॥१२॥ हे हर! देवता, मुनिगण, नाग, गन्धर्व और गुह्यक गण ये सभी लोग यहाँ इस लोक में धर्मनिष्ठ पुरुष ही का पूजन किया करते हैं, धन से सम्पन्न तथा कामी पुरुष की कोई भी पूजा नहीं करता है ॥१३॥ अपने अनन्त बल और वीर्य्य से, प्रज्ञा से अथवा पुरुषार्थ से मनुष्य अलभ्य पदार्थ को प्राप्त किया करता है। इसमें फिर परिदेवना (पश्चात्ताप) क्या करना है? ॥१४॥

सर्वसत्त्वदयात्यर्थं सर्वेन्द्रियविनिग्रहः ।
सर्वत्रानित्यबुद्धित्वं श्रेयः परमिदं स्मृतम् ॥१५

पश्यन्निवाग्रतो मृत्यु यो धर्मं नाचरेन्नर ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१६
भ्रूणहा ब्रह्महा गोघ्न पितृहा गुरुतल्पग ।
भूमि सर्वगुणोपेता दत्त्वा पापै प्रमुच्यते ॥१७
न गोदानात्पर दान किञ्चिदस्तीह मे मति ।
या गौर्न्यायार्जिता दत्ता कृत्स्न तारयते कुलम् ॥१८
नान्नदानात्पर दान किञ्चिदस्ति वृषध्वज ।
अन्नेन धार्यते सर्वं चराचरमिद जगत् ॥१९

समस्त प्राणियो पर अत्यन्त दया करना तथा सम्पूर्ण इन्द्रियो का विशेष रूप से नियन्त्रण रखना और सभी में अनित्यता की बुद्धि का रखना ही परम श्रेय बताया गया है ॥१५॥ अपने सामने मृत्यु को खडी हुई तत्पर देखकर भी जो मनुष्य धर्म का आचरण नही किया करता है उसका यहाँ इस लोक मे जन्म ग्रहण करना भी बकरी के गले म होने वाले स्तन की भाँति ही बिल्कुल व्यर्थ होता है। जिसी किसी बकरी के कण्ठ म एक स्तन होता है जिससे दूध नहीं निकलता है और वह बेकार ही होता है ॥१६॥ जो भ्रूण (गर्भस्थ बालक) की हत्या करने वाला है, ब्राह्मण की हत्या करने वाला है, गौ का हनन करने वाला पिता के मारने वाला और गुरु की पत्नी के साथ गमन करने वाला है वह समस्त गुणों से सम्पन्न भूमि का दान करके पापों से छुटकारा पाया करता है ॥१७॥ इस ससार में गोदान से उत्तम अन्य कोई भी दान नहीं होता है—ऐसी मेरी मति है। जो न्याय से अर्जित की हुई गौ का दान किया जाता है वह गौ दान पूर्ण कुल का उद्धार कर दिया करता है ।१८। अन्न के दान का भी बडा माहात्म्य है। इससे बडा भी अन्य कोई दान नहीं होता है। हे वृषभध्वज ! अन्न से ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् धारण किया जाता है ॥१९॥

कन्यादानं वृषोत्सर्गस्तीर्थसेवा श्रुत तथा ।
हस्त्यश्वरथदानानि मणिरत्नवसुन्धरा ॥२०
अन्नदानस्य सर्वाणि कला नार्हन्ति षोडशीम् ।
अन्नात्प्राणा बल तेजश्चान्नाद्वीर्यं धृति स्मृति. ॥२१

कूपवापीतड़ागादि आरामाणि च कारयेत् ।
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ।।२२
साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थादपि विशिष्यते ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ।।२३
सत्यं दमस्तपः शौच सन्तोषश्च क्षमार्जवम् ।
ज्ञानं शमो दया दानमेष धर्मः सनातनः ।।२४

कन्या का दान देना, वृषोत्सर्ग तीर्थों का सेवन करना, श्रुत, हाथी, घोड़ा और रथ का दान तथा मणि, रत्न एवं भूमि का दान देना ये सभी महान् से महान् दान भी अन्न के दान की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हुआ करते हैं। अन्न से प्राणों की रक्षा होती है, बल की वृद्धि होती है, तेज बढ़ता है और अन्न से ही वीर्याधृति तथा स्मृति हुआ करते हैं अतएव यह दान परम महत्त्वशाली होता है ।।२०।२१।। कुआ, बावड़ी, तालाब आदि का निर्माण एवं उद्यान की रचना भी अवश्य ही करानी चाहिए। इनसे मनुष्य अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके अन्त में विष्णु लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ।।२२।। साधु-सन्त पुरुषों का दर्शन परम पुण्यप्रद होता है जो कि तीर्थों के सेवन से भी अधिक कहा जाता है। तीर्थों का सेवन तो समय आने पर ही फल दिया करता है किन्तु साधु पुरुषों का समागम तुरन्त ही फल दिया करता है ।।२३।। सत्य, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, आर्जव (सीधा भाव), ज्ञान, शम, दया और दान ये सब सनातन धर्म कहे गये हैं ।।२४।।

११७–युग-धर्म कथन

मुनिभिश्चरिता धर्मा भवत्या व्यास मयोदिताः ।
यैर्विष्णुस्तुष्यते चैव सुखादिपरिचारकाः ।।१
तर्पणेन च होमेन सन्ध्याया वन्दनेन च ।
प्राप्यते भगवान् विष्णुर्धर्मकामार्थमोक्षदः ।।२
धर्मो हि भगवान् विष्णुः पूजाविष्णुस्तु तर्पणम् ।
होमः सन्ध्या तथा ध्यान धारणा सकलं हरिः ।।३

प्रलय जगतो वक्ष्ये तत्सर्वं शृणु शौनक ।
चतुर्युगसहस्रन्तु कल्पंकाब्जदिन स्मृतम् ॥४
कृतत्रताद्वापरादियुगावस्था निवोध मे ।
कृते धर्मश्चतुष्पाच्च सत्य दान तपो दया ॥५
धर्मपाता हरिश्चेति सन्तुष्टा ज्ञानिनो नरा ।
चतुर्वर्षसहस्राणि नरा जीवन्ति वै तदा ॥६
कृतान्ते क्षत्रियैर्विप्रा विट्शूद्राश्चजिता द्विजै ।
शूरश्चातिबला विष्णू रक्षासि च जघान ह ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे व्यास ! भक्तिभाव से मुनियो के द्वारा समाचरण किये गये धर्म मैंने बतलाय हैं जिन धर्मो से भगवान् विष्णु की तृप्ति होती है और सुखादि के परिचारक होते हैं ॥१॥ तर्पण करने से, होम करने से और सन्ध्या क समय में वन्दना करने से धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष के प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु प्राप्त किये जाते हैं ॥२॥ भगवान् विष्णु का ही स्वरूप धर्म होता है। पूजा विष्णु है और तर्पण भी विष्णु है। होम, सन्ध्या-वन्दन एव ध्यान और धारणा ये सभी हरि के ही स्वरूप हैं ॥३॥ श्री सूतजी ने कहा हे शौनक ! अब हम इस जगत् की प्रलय का वर्णन करते हैं। उस सबका तुम श्रवण करो। एक सहस्र सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग इन चारो युगो का एक कल्प होता है जो कि ब्रह्मा का एक दिन हुआ करता है ॥४॥ अब कृत युग, त्रेता, द्वापर आदि युगो की अवस्था मुझसे सुन समझ लो। कृतयुग मे धर्म के चारों पाद होते हैं। वे चार पाद सत्य, दान, तप और दया ये ही होते हैं। ॥५॥ धर्म का पालन करने वाले हरि हैं। ज्ञानी मनुष्य सन्तुष्ट रहा करते हैं। उस समय कृतयुग में मनुष्य चार हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं अर्थात् मनुष्यों की आयु उस युग मे चार सहस्र वर्ष की हुआ करती है ॥६॥ कृतयुग के अन्त मे क्षत्रियो के द्वारा विप्र, वैश्य और शूद्र जीत लिये गये। द्विजो से अति बलवान् शूर विष्णु ने राक्षसो का हनन किया था ॥७॥

त्रेतायुगे त्रिपाद्धर्मं सत्यदानदयात्मक. ।
नरा यज्ञपरास्तस्मिंस्तथा क्षत्रोद्भव जगत ॥८

रक्तो हरिर्नरैः पूज्यो नरा दशशतायुषः ।
तत्र विष्णुर्भीमरथः क्षत्रिया राक्षसानहन् ।।६
द्विपादविग्रहो धर्मः पीताताञ्चाच्युते गते ।
चतुःशतायुषो लोका द्विजक्षत्रोद्भवाः प्रजाः ।।१०
तत्र दृष्ट्वाल्पबुद्धींश्च विष्णुर्व्यासस्वरूपधृक् ।
तदेकं तु चतुर्वेदं चतुर्द्धा व्यभजत् पुनः ।।११
शिष्यानध्यापयामास समस्तान् तान् निबोध मे ।
ऋग्वेदमथ पैलन्तु सामवेदञ्च जैमिनिम् ।।१२
अथर्वाणं सुमन्तुं तु यजुर्वेदं महामुनिम् ।
वैशम्पायनसञ्ज्ञन्तु पुराणं सूतमेव च ।
अष्टादश पुराणानि यो वेत्ति हरिरेव हि ।।१३
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।१४

त्रेता युग में धर्म के तीन ही पाद रह गये थे। और वे तीन धर्म के पाद सत्य, दान और दया ये थे। उस समय में मनुष्य यज्ञों के करने में तत्पर रहते थे तथा यह सम्पूर्ण जगत् क्षत्रोद्भव हो गया था ।।८।। हरि का रक्त वर्ण था जो कि मनुष्यों के द्वारा पूजा के योग्य थे। मनुष्यों की आयु इस युग में एक सहस्र वर्ष की होती थी। उस समय में भीमरथ विष्णु थे और क्षत्रियों ने राक्षसों का हनन किया था ।।६।। द्वापर युग में धर्म दो पादों के शरीर वाला था। भगवान् अच्युत उस समय में पीत वर्ण के थे। मनुष्यों की आयु उस युग में चारसो वर्ष की थी और प्रजा, द्विज तथा क्षत्रियों से उद्भव प्राप्त करने वाली थी ।।१०।। उस समय में मनुष्यों को अल्प बुद्धि वाले देखकर भगवान् विष्णु ने महर्षि व्यास के स्वरूप को धारण किया था। उन एक महर्षि व्यास देव ने चारों वेदों के रूप में वेद का विभाजन किया था ।।११।। उन चारों वेदों को सम्पूर्ण रूप में शिष्यों को पढ़ाया था। उनको भी अब तुम समझ लो। ऋग्वेद को तो पैल को पढ़ाया था और सामवेद जैमिनि नामक शिष्य को पढ़ाया था। अथर्वण वेद सुमन्तु को पढ़ाया था तथा यजुर्वेद महामुनि को पढ़ाया था।

वैशम्पायन के साथ सूतजी को पुराण का अध्यापन कराया था। जो अठारह पुराणों का ज्ञान रखता है वह साक्षात् हरि ही है ॥१२॥१३॥ पुराण के पाँच लक्षण होते हैं–उनमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तरों का वर्णन और वंशानुचरित होते हैं ॥१४॥

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा।
भविष्यन्नारदीयञ्च स्कान्दं लिङ्गं वराहकम् ॥१५
मार्कण्डेयं तथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तमेव च।
कौर्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम् ॥
अष्टादशसमुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ॥१६
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम् ॥१७
तृतीयं स्कन्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं स्यान्नन्दीश्वरभाषितम् ॥१८
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम्।
कपिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम् ॥१९
ब्रह्माण्डं वारुणञ्चाथ कालिकाह्वयमेव च।
माहेश्वरं तथा साम्बमेवं सर्वार्थसञ्चयम् ॥
पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाह्वयम् ॥२०
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च वेदास्त्वङ्गानि यन्मुने।
न्यायः शौनक मीमांसा आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् ॥
गन्धर्वश्च धनुर्वेदो विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥२१

पुराणों के नाम ये हैं—ब्राह्म (ब्रह्मपुराण)—पाद्म (पद्म पुराण)—वैष्णव (विष्णु पुराण)—शैव (शिव पुराण)—भागवत–भविष्यत्—नारदीय-स्कान्द (स्कन्द पुराण)—लिङ्ग–वराहक–मार्कण्डेय—आग्नेय (अग्नि पुराण)-कौर्म (कूर्म पुराण)—मात्स्य–गरुड–वायवीय (वायु पुराण) ये अष्टादश पुराण हैं जिनमें अट्ठारहवां ब्रह्माण्ड पुराण है ॥ १५ ॥१६ ॥ इनके अतिरिक्त भी उपपुराण हैं जो मुनियों के द्वारा कहे गये हैं। सबसे आदि का नारसिंह

पुराण है जिसको सनत्कुमारों ने कहा है, वह भी दूसरा पुराण है। तीसरा स्कन्द पुराण कुमार के द्वारा कथित है। चौथा शिव धर्म नाम वाला पुराण है जो नन्दीश्वर के द्वारा भाषित हुआ है ॥ १७ ॥ १८ ॥ दुर्वासा के द्वारा कथित आश्चर्य और इसके अनन्तर नारद के द्वारा उक्त पुराण है। कपिल—वामन और उशना के द्वारा कथित पुराण है ॥ १९ ॥ ब्रह्माण्ड—वारुण और कालिका नामक पुराण है। माहेश्वर—साम्ब—सर्वार्थसञ्चय—पराशर के द्वारा कथित पुराण—मारीच और भार्गव नाम वाला पुराण है ॥ २० ॥ पुराण—धर्मशास्त्र—वेद के अङ्ग हे शौनक मुने ! न्याय—मीमांसा और आयुर्वेदार्थ शास्त्र—गन्धर्व शास्त्र—धनुर्वेद ये सब मिल कर अठारह विद्याऐं बताई गई हैं ॥२१॥

द्वापरान्तेन च हरिर्गुरुभारमपाहरत् ।
एकपादस्थिते धर्मे कृष्णस्त्वञ्चाच्युते गते ॥२२
जनास्तदा दुराचारा भविष्यन्ति च निर्दयाः ।
सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ॥
कालसञ्चोदितास्तेऽपि परिवर्त्तन्त आत्मनि ॥२३
प्रभूतञ्च यदा सत्त्वं मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यद्रतः ॥२४
यदा कर्मसु काम्येषु शक्तिर्यशसि देहिनाम् ।
तदा त्रेता रजभूतिरिति जानीहि शौनक ॥२५
यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भश्च मत्सरः ।
कर्मणाञ्चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥२६
यदा सदानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसाविसाधनम् ।
शोकमोहौ भयं दैन्यं स कलिस्तमसि स्मृतः ॥२७
यस्मिन् जनाः कामिनः स्युः शश्वत् कटुकभाषिणः ।
दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः ॥२८

द्वापर युग के अन्त में भूमि के बहुत भारी भार को भगवान् हरि ने दूर किया था जब कि धर्म का केवल एक ही पाद यहाँ पर स्थित रहा था

उस समय में भगवान् अच्युत ने कृष्णावतार धारण किया था ॥ २२ ॥ उस समय में मनुष्यों के आचार बहुत दूषित हो गये थे। मनुष्यों में दया बिल्कुल नहीं रहेगी और पुरुषों में सत्व—रज और तम ये गुण दिखलाई दिया करते हैं। वे सभी काल से सम्प्रेरित होकर आत्मा में परिवर्तित हो जाते हैं ॥२३॥ जिस समय सत्व का बाहुल्य रहता है और मन बुद्धि-इन्द्रियाँ उसी प्रकार के होते हैं उस समय कृतयुग जानना चाहिए मनुष्य उस समय ज्ञान तथा तपस्या में रत रहा करते हैं ॥ २४ ॥ जिस समय में देहधारियों की रति काम्य कर्मों में शक्ति यश में हुआ करती है उस समय त्रेता युग होता है। हे शौनक! इसमें रजो गुण की उत्पत्ति या वैभव ही समझना चाहिए ॥ २५ ॥ जिस समय में लोभ—असन्तोष-मान—दम्भ—मत्सर और केवल कामना से युक्त कर्म ही होते हैं उसे द्वापर युग समझो। इसमें रजोगुण और तमोगुण की ही प्रधानता रहा करती है ॥ २६ ॥ जिस समय में सदा मिथ्या—तन्द्रा—निद्रा और हिंसा आदि के साधन होते हैं तथा शोक—मोह—भय—दैन्य हुआ करते हैं वह कलियुग कहा गया है इसमें केवल तमो गुण ही रहा करता है ॥ २७ ॥ जिस समय में मनुष्य कामी और सदा कटुभाषी हो जाते हैं। जन पद दस्युओं के द्वारा उत्कृष्ट होते हैं और वेद पाषण्ड के द्वारा दूषित हो जाया करते हैं। ये सब कलियुग का प्रभाव है ॥२८॥

राजानश्च प्रजाभिक्षा शिश्नोदरपराजिता.।
अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ॥२९
तपस्विनो ग्रामवासाः न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः।
ह्रस्वकाया महाहाराश्चौर्यास्तु साधव स्मृता ॥३०
त्यक्ष्यन्ति भृत्याश्च पति तापसस्त्यक्ष्यति व्रतम्।
शूद्रा प्रतिग्रहिष्यन्ति वैश्यस्तपपरायण. ॥३१
उद्विग्ना सन्ति च जनाः पिशाचसदृशाः प्रजा.।
अन्यायभोजनेनाग्निदेवतातिथिपूजनम् ॥३२
वरिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पित्र्युदकक्रियाम्।
स्त्रीपराश्च जनाः सर्वे शूद्रप्रायाश्च शौनक ॥३३

बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः ।
शिरःकण्डूयनपरा आज्ञां भेत्स्यन्ति भर्त्सिताः ॥३४
विष्णुं न पूजयिष्यन्ति पाषण्डोपहता जनाः ।
कलेर्दोषनिधेर्विप्रा अस्ति ह्येको महागुणः ॥३५
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्यजेत् ।
कृते यज्ञादिना विष्णुं त्रेतायां जपतः फलम् ॥३६
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ।
तस्माद् ध्येयो हरिर्नित्यं ध्येयः पूज्यश्च शौनक ॥३७

कलियुग में राजा लोग प्रजाजनों से भिक्षा की याचना करते हैं और ये सभी शिश्न तथा उदर की पूर्त्ति में ही परायण रहने वाले होते हैं। वटु लोग अर्थात् ब्रह्मचारी व्रत रहित, शौच विहीन—भिक्षु और कुटुम्बी होंगे ॥ २९ ॥ जो तपस्वी नामधारी पुरुष होंगे वे ग्रामों के अन्दर निवास करने वाले हो जायेंगे। जो संन्यास धारण करने वाले लोग हैं वे महान् धन के लालची हो जायेंगे। साधु गण वे ही कहलायेंगे जिनके शरीर का आकार छोटा होगा—अधिक आहार करने वाले और चोरी करने वाले होंगे ॥ ३० ॥ भृत्य लोग अपने स्वामियों को उस समय में त्याग कर दिया करेंगे। तापस-गण अपने व्रतों को छोड़ दिया करेंगे। शूद्र लोग दान ग्रहण किया करेंगे। वैश्य लोग तपस्या में परायण होंगे ॥ ३१ ॥ सभी मनुष्य उद्वेग से युक्त रहेंगे और सारी प्रजा पिशाचों के तुल्य हो जायगी। अन्याय के भोजन द्वारा लोग अग्नि—देवता और अतिथियों का पूजन करेंगे। जब कलियुग प्राप्त होगा तो पितृगण की कोई भी उदक क्रिया नहीं करेगा। हे शौनक ! कलियुग में सभी मनुष्य स्त्रियों में ही परायण और शूद्र प्रायः हो जायेंगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ लोगों के सन्तान अत्यधिक होंगी और वे सब भाग्य हीन हुआ करेंगे। स्त्रियाँ ऐसी अभागिनी होंगी कि अपने शिरों को खुजलाने में तत्पर रहेंगी और भर्त्सित होकर बड़ों की आज्ञा का खण्डन किया करेंगी ॥ ३४ ॥ लोगों में पाखण्ड इतना हो जायगा कि उससे उपहत होकर वे विष्णु का पूजन नहीं किया करेंगे हे विप्रगण ! इन दोषों से दूषित कलियुग में एक ही महान् गुण

होता है और वह यह है कि केवल भगवान् श्री कृष्ण के कीर्तन अर्थात् केवल नाम के सकीर्तन से ही इस कलियुग में महान् बन्धन का त्याग हो जाता है। सतयुग मे यज्ञादि के द्वारा और त्रेता में जपादि के द्वारा तथा द्वापर मे परिचर्या के द्वारा जो पुण्य—फल होता है वह पूरा फल इस कलियुग मे केवल एक मात्र भगवान् हरि के नाम सकीर्त्तन से हो जाता है। हे शौनक ! इसीलिये भगवान् हरि का नित्य ही ध्यान एव पूजन करना चाहिए ॥३५॥ ॥३६॥३७॥

११८—नैमित्तिक प्रलय कथन

चतुर्युगसहस्रान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लय.।
अनावृष्टिश्च कल्पान्ते जायते शतवार्षिकी ।१
उत्तिष्ठन्ति तदा रौद्रा दिवि सप्त दिवाकरा ।
ते तु पीत्वा जल सर्वं शोषयन्ति जगत्त्रयम् ॥२
भूर्भुव स्वर्महर्लोक चराचर जन तथा ।
रुद्रो भूत्वासौ विष्णुश्च पातालानि दहत्यथ ॥३
विष्णुर्दहेत्त्रिलोकश्च मुखान्मेघान् सृजत्यलम् ।
वर्षन्ते च वर्षशत नानामोहमहाघना ॥४
विष्णुरेकार्णवे भूते वर्षे ब्रह्मस्वरूपधृक् ।
शेतेऽनन्तासने विष्णुर्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥५
सुप्त्वा वर्षसहस्र स जगद्भूयोऽसृजद्धरि.।
अथ प्राकृतिक वक्ष्ये प्रलय शृणु शौनक॥६

श्री सूत जी ने कहा—चारो युगों के एक सहस्र समाप्त हो जाने पर ब्राह्म नैमित्तिक लय हुआ करती है। कल्प के अन्त में एक सौ वर्ष तक अनावृष्टि अर्थात् एक दम वर्षा का अभाव हुआ करता है ॥१॥ उस समय में दिन में महान् रौद्र स्वरूप वाले सात सूर्य उठते हैं अर्थात् उदित हो जाया करते हैं। वे सूर्य समस्त जल का पान कर जाते हैं और अपनी प्रखर किरणों द्वारा जल को पीकर इस जगतीत्रय को एक दम शोषित बना दिया करते

हैं ॥ २ ॥ भूः—भुवः—स्वः—महर्लोक—जनलोक तथा समस्त चराचर को और पाताल आदि लोकों को यह विष्णु रुद्र होकर दग्ध किया करते हैं। पहिले विष्णु तीनों लोकों का दाह किया करते हैं फिर प्रमुख मेघों का सृजन किया करते हैं। वे अनेक मोहमय महाघन सौ वर्ष पर्यन्त वर्षा किया करते हैं ॥३॥ ॥ ४ ॥ समस्त चराचर के एक समुद्र के स्वरूप में हो जाने पर और स्थावर तथा जङ्गम सबके नष्ट होने पर भगवान् विष्णु अनन्तासन पर वहाँ शयन किया करते हैं ॥ ५ ॥ एक सहस्र वर्ष तक शयन करने के अनन्तर भगवान् हरि पुनः इस जगत् का सृजन करते हैं। अब हे शौनक ! हम प्राकृतिक प्रलय का वर्णन करते हैं उसे सुनो ॥ ६ ॥

पूर्णे संवत्सरशते संहृत्य सकलं जगत् ।
ब्राह्मणं न्यस्य देहे हि मुक्तो योगबलैर्हरिः ॥७
अनावृष्ट्यर्कसम्पन्ना आसन् मेघास्तथा द्विज ।
शतं वर्षाणि वर्षद्भिर्मेघैरण्डं प्रपूर्य्यते ॥८
अन्तर्गतेन तोयेन भिन्नमण्डं जगत्पतेः ।
पूर्णे ब्रह्मायुषि गते भिद्यतेऽम्भसि लीयते ॥९
एवं सा जगदाधारा तोये चोर्वी प्रलीयते ।
आपस्तेजसि लीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते ॥१०
वायुः खे खञ्च भूतादौ विशते च तदा महान् ।
महान् प्रपद्यते व्यक्तौ प्रकृतिः पुरुषे नरे ॥११
शतवर्ष हरिः शेते सृजतेऽथ दिनागमे ।
अव्यक्तादिक्रमेणैव व्यक्तीभूतं चराचरम् ॥१२

सौ वर्षों के पूर्ण हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् का संहार करके देह में ब्राह्मण का न्यास करके हरि योग बल से मुक्त हो जाते हैं ॥ ७ ॥ हे द्विज ! अनावृष्टि और सूर्य से सम्पन्न मेघ होते हैं। सौ वर्ष तक बरसते हुए मेघों से यह अण्ड प्रपूरित कर दिया जाता है ॥ ८ ॥ जल के अन्तर्गत हो जाने से जगत्पति का अण्ड भिन्न हो जाता है। ब्रह्मा की आयु पूर्ण हो जाने पर वह विद्यमान होता है और जल में लीन हो जाया करता है ॥ ९ ॥ इस प्रकार

से लेकर वर्णन करता हूँ। इसके विना कुछ भी पुरुषार्थ नहीं होता है और न परमात्मा में ही लीन हुआ करता है ॥ २ ॥ ऊर्ध्व में वास करने वाला मनुष्य उसे त्याग कर अन्य देह को प्राप्त किया करता है। बारह दिन में यमराज के यम पुरुषों के द्वारा वह ले जाया जाया करता है ॥३॥ वहाँ पर बान्धवगण जो तिलों के साथ जल दिया करते हैं और जो पिण्ड दान किया करते हैं वह इस यमलोक में उसी का अशन (भोजन) किया करता है ॥ ४ ॥ पाप से नरक का गमन होता है और अपने पुण्य कर्मों से स्वर्ग का गमन हुआ करता है। जो पापों के करने वाला होता है वही नरक में जाता है तथा पुण्य कर्म करने वाला प्राणी स्वर्ग में चला जाता है ॥ ५ ॥ स्वर्ग और नरक के भोगों के भोगने की छोटी-बड़ी एक अवधि होती है। पाप क्षय के बाद नरक से और पुण्यों के क्षीण होने पर स्वर्ग से वह प्राणी पुनः यहाँ आकर स्त्रियों के गर्भ में प्रवेश किया करता है। उसके अनभिभूत रज और वीर्य ये दो बीज होते हैं ॥ ६ ॥ आरम्भ में कलन फिर बुद्बुद मय अर्थात् एक बुलबुला जैसा होता है। इसके अनन्तर शोणित होता है। पेशी से युक्त पलसम अण्ड होता है और फिर अंकुर होता है ॥७॥

उपाङ्गान्यंगुलीनेत्रनासान्यस्रवलानि च।
आवह याति चाङ्गेभ्यस्ततरं तु नखादिकम् ॥८
त्वचो रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम्।
नरश्चाधोमुखः स्थित्वा दशमे च स जायते ॥९
ततस्तु वैष्णवी मायाऽऽवृणोत्ययमोहिनी।
बालत्वं तु कुमारत्वं यौवनं वृद्धतामपि ॥१०
ततश्च मरणं तत्तद्धर्ममाप्नोति मानवः।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्राम्यते घटियन्त्रवत् ॥११
नरकात्प्रतिमुक्तस्तु पापयोनिषु जायते।
पतितात्प्रतिगृह्याथ अधोयोनिं व्रजेद् बुध ॥१२
नरकात्प्रतिमुक्तस्तु कृमिर्भवति याचकः।
उपाध्यायव्यलीकस्तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः ॥१३

तज्जाया मनसा वाञ्छंस्तद्द्रव्य वाप्यसंशयः ।
गर्दभो जायते जन्तुर्मित्रस्यैवापमानकृत् ॥१४

इसके अनन्तर अगुली—नेत्र—नासिका—अग्र बल आदि उपाङ्ग प्रक होते हैं जो कि अङ्गों से उत्पन्न हुआ करते हैं। इसके अनन्तर नख आदि की उत्पत्ति तथा निर्माण हो जाता है ॥ ८ ॥ त्वचा—रोम और फिर केश उत्पन्न हुआ करते हैं। इन सबके निर्माण हो जाने पर मनुष्य नीचे की ओर मुख वाला होकर स्थित रहा करता है। जब दशम मास का आरम्भ होता है तो वह उत्पन्न होता है अर्थात् गर्भाशय से बाहिर होता है ॥ ९ ॥ जैसे ही यह जीवात्मा यहाँ लोक म देह धारण कर उत्पन्न होता है वैसे ही वैष्णवी माया जो कि अत्यन्त मोहन करने वाली है उसे आवृत कर लिया करती है। यह प्राणी इस लोक मे आकर बचपन—कुमारावस्था—यौवन और वृद्धा को क्रम से प्राप्त करके पूर्ण उम्र समाप्त कर देता है और इसके पश्चात् उसव मृत्यु प्राप्त होती है। इस प्रकार से यह मानव तद्-तद् धम को प्राप्त किया करता है। इस प्रकार का यह ससार का एक चक्र है जिसमे जीवात्मा घड़ी के यन्त्र की भाँति भ्रमित होता रहता है। उत्पन्न हुआ—उम्र भोगी—मर गया—कर्म फल भोग भले बुरे जैस भी हो और फिर जन्म लिया—यही चक्र गति है ॥ १० ॥ ११ ॥ नरको से कर्मानुसार भोग भोगलेने के पश्चात् अपनी अवधि समाप्त करके यह जीवात्मा फिर यहाँ पापयोनियो मे जन्म ग्रहण किया करता है। हे बुध ! पतित पुरुष से प्रतिग्रह लेकर यह अधो योनियो मे जाया करता है ॥ १२ ॥ याचक नरक से प्रति मुक्त होकर कृमि होता है। जो द्विज उपाध्याय होकर व्यलीक किया करता है वह कुत्ते की योनि मे जन्म ग्रहण करता है ॥ १३ ॥ उसकी जाया को मन से इच्छा करता है या उसके द्रव्य का मन म प्राप्त करने की चाह रखता है तो बिना किसी सशय के गधे की योनि म जन्म लेता है जो जन्तु अपने मित्र का अपमान करता है वह भी गधा होता है ॥१४॥

पितरौ पीडयित्वा तु कच्छपत्वञ्च जायते ।
भर्त्तु पिण्डमुपाश्नस्तो वञ्चयित्वा तमेव य. ॥१५

सोऽपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृतः ।
न्यासोपहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः ॥१६
असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः ।
विश्वासहर्त्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते ॥१७
यवधान्यानि संहृत्य जायते मूषको मृतः ।
परदाराभिमर्षात्तु वृको घोरोऽभिजायते ॥१८
भ्रातृभार्य्याप्रसङ्गत्वे कोकिलो जायते नरः ।
गुर्वादिभार्य्यागमनाच्छूकरो जायते नरः ॥१९
यज्ञदानविवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्कृमिः ।
देवतापितृविप्राणामदत्त्वा यो समश्नुते ॥२०
प्रमुक्तो नरकाद्वापि वायसः सम्प्रजायते ।
ज्येष्ठभ्रात्रपमानाच्च क्रौञ्चयोनौ प्रजायते ॥२१

जो अपने माता-पिता को उत्पीड़ित किया करता है वह कछुआ होकर लोक में जन्म लिया करता है। स्वामी के पिण्ड से उपाश्वस्त होकर उसी को जो वञ्चित किया करता है वह भी मोह के समापन्न होने पर मृत होने के पश्चात् वानर की योनि में उत्पन्न हुआ करता है। जो किसी के न्यास (धरोहर) का उपहरण करने वाला है वह नरक से विमुक्त होकर अर्थात् पहिले नरक की पीड़ा का भोग भोगकर फिर शेष भोग को भोगने के लिये कृमि होकर इस लोक में जन्म लिया करता है ॥१५।१६॥ जो असूया (निन्दा) करने वाला पुरुष है वह नरक की यातना भोगकर फिर शेष कर्मों के फल की पीड़ा भोगने के लिये राक्षस हुआ करता है। जो किसी को विश्वास देकर फिर उसका घात किया करता है वह मीन (मछली) की योनि प्राप्त करता है ॥१७॥ जो किसी के यव तथा धान्यों का संहार करता है वह मरकर मूषक (चूहा) हुआ करता है। जो पराई स्त्री के साथ अभिमर्ष किया करता है वह घोर वृक (भेड़िया) होकर उत्पन्न होता है ॥१८॥ अपने भाई की भार्या के साथ प्रसङ्ग करने पर मनुष्य कोकिल की योनि में जन्म लेता है। गुरु आदि की पूजनीय भार्या के गमन करने से शूकर की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ॥१९॥ यज्ञ, दान

और विवाहों में जो विघ्न उपस्थित किया करता है वह कृमि होता है। जो देवता, पितृगण और विप्रों को समर्पण न करके स्वयं ही पहिले खा लिया करता है वह पहिले तो नरक की यातना भोगता है और पीछे कौआ होकर जन्म ग्रहण किया करता है। अपने ज्येष्ठ भाई के अपमान करने से यह मनुष्य क्रौञ्च की योनि में जन्म प्राप्त किया करता है ॥२०।२१॥

शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते।
तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तःकीटको भवेत् ॥२२
कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा।
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः सञ्जायते खरः ॥२३
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते।
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ॥२४
हृत्वान्नञ्चैव मार्जारस्तिलहृच्चैव मूषिकः।
घृतं हृत्वा च नकुलः काको मद्गुरमामिषम् ॥२५
मधु हृत्वा नरो दंशः पूपं हृत्वा पिपीलिकः।
अपो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते ॥२६
हृते काष्ठे च हारीतः कपोतो वा प्रजायते।
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ॥२७
कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वह्निहर्त्ता बकस्तथा।
मयूरो वर्णकं हृत्वा शाकपत्रञ्च जायते ॥२८

जो कोई शूद्र वर्ण का हो और किसी ब्राह्मणी के साथ गमन करता है तो इस पाप का फल भोगने के लिये वह किसी की योनि में जन्म लिया करता है। इस योनि में सन्तान का उत्पादन कर फिर काष्ठ के अन्दर रहने वाला कीट (कीड़ा) हुआ करता है ॥२२॥ जो कोई कृतघ्न अर्थात् किये हुए उपकार को मटियामेट कर देता है वह कृमि, कीट पतङ्ग और बिच्छू की योनि प्राप्त किया करता है। जो बिना शस्त्र वाले पुरुष का हनन किया करता है वह खर (गधे) की योनि में जन्म धारण करता है ॥२३॥ स्त्री के वध को करने वाला, बालक का हनन करने वाला भी कृमि की योनि प्राप्त किया करता है। जो कोई भोजन

की चोरी करता है वह मक्षिका (मक्खी) की योनि में उत्पन्न होता है ।।२४।। अन्न का हरण करने वाला मार्जार (बिलाव) और तिलों का हर्त्ता मूषिक होता है। घृत की चोरी करने वाला नकुल (न्यौला) तथा मुद्ग्र और अमिष्ठ का चोर काक (कौआ) हुआ करता है ।।२५।। मधु (शहद) का हरण करने वाला दंश और पूप (पूओं) का हर्त्ता पिपीलक (चींटा) होता है। जल का हर्त्ता बड़ा पापी होता है और वह वायस (कौआ) होकर जन्म ग्रहण किया करता है। ।।२६।। काष्ठ की चोरी से हारीत (एक पक्षी का नाम) अथवा कपोत (कबूतर) होता है। जो कोई सुवर्ण के पात्र की चोरी करता है वह कृमि की योनि में उत्पन्न होता है ।।२७।। कार्पासिक अर्थात् कपास की वस्तु हरण करने से क्रौञ्च और वह्नि के हरण से बक (बगुला)-वर्णक के हरण से मयूरी तथा शाक पत्र के हरण से भी मोरनी होता है ।।२८।।

जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रपहृन्नरः ।
छुछुन्दरिः शुभान्गन्धान् शशं हृत्वा शशो भवेत् ।।२६
षण्ढः कलापहरणे काष्ठहृत्तृणकीटकः ।
पुष्पं हृत्वा दरिद्रस्तु पंगुर्यानकहृन्नरः ।।३०
शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः ।
गृहहृन्नरकान्गत्वा रौरवादीन्सुदारुणान् ।।३१
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्हा च तरुतां व्रजेत् ।
एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णादिहारिणाम् ।।३२
विद्यापहारी मूकश्च गत्वा च नरकान्बहून् ।
असमिद्धे हुते चाग्नौ मन्दाग्निः समजायत ।।३३
परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्यादघातनम् ।
नैष्ठुर्यं नैर्घृणत्वञ्च परदारोपसेविनाम् ।।३४
परस्वहरणाशौचं देवतानाञ्च कुत्सनम् ।
निकृत्य वञ्चनं नृणां कार्पण्यञ्च नृणां नरः ।
उपलक्षणादि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ।।३५

दया भूतेषु सवाद परलोक प्रतिक्रिया ।
सत्य हितार्थमुक्तिश्च वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥३६
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिसेवन साधुसयम ।
सत्क्रियाभ्यसन मैत्री स्वर्गस्य लक्षण विदु ।
अष्टाङ्गयोगविज्ञानात्प्राप्नोत्यात्यन्तिक फलम् ॥३७

रक्त वस्तु का व्युपहर्त्ता नर जीता हुआ जीवकता को प्राप्त होता है। शुभ गन्ध युक्त पदार्थों का अपहरण करने से छछूँदर होता है और शश के हरण से शश ही होता है ॥१६॥ कला के अपहरण से मनुष्य षण्ढ होता है तथा काष्ठ के हरण से तृण का कीट हुआ करता है। जो पुष्पों की चोरी करता है या हरण करता है वह मनुष्य दरिद्री होता है। यावक का हरण करने वाला पंगला होता है ॥२०॥ शाक के हरण करने वाला हारीत और तोय (जल) के हरण करने वाला चातक पक्षी होता है। जो किसी के गृह का हरण करता है वह रौरव आदि महान् दारुण नरकों मे जाकर घोर यातना भोगता है। तृण, गुल्म, लता, वल्ली के त्वङ्क का हर्त्ता या हनन करने वाला मानव जड वृक्ष की योनि को प्राप्त होता है। यही गौ और स्वर्ण आदि को हरण करने वालो की देखा गया है ॥३१।३२॥ विद्या का अपहरण करने वाला मूक (गूँगा) होता है जो पहिले बहुत से नरको की यातनाऐ भोग लेता है। असमिद्ध अर्थात् बिना समिधाओ वाली अग्नि म हवन करने पर मन्दाग्नि का रोग उत्पन्न हो जाता है ॥३३॥ जो पराई स्त्रियो का सेवन करने वाले मनुष्य है—जो पराई निन्दा किया करते है—जो कृतघ्न होते हैं और जो पराई मर्यादा के घात करने वाले है—जो निष्ठुरता रखते हैं और जिनमे विघृणत्व होता है—जो पराये धन के हरण करने से अपवित्र हैं—जो देवताओ की बुराई किया करते हैं। निकृतन करके मनुष्यो का जो वञ्चन किया करते हैं तथा जिन मनुष्यो मे कृपणता होती है इन सबको इस बात का उपलक्षण समझ लेना चाहिये कि पापो का फल भोगने के लिए ऐसे ये लोग पहिले नरकों की यातनाऐ भोगकर फिर शेष रहे पाप फल को भोगने के लिय बाद में यहाँ लोक म उत्पन्न हुए है ॥३४।३५॥ प्राणियो पर दया, सम्वाद, परलोक के लिए प्रतिक्रिया का करना, सत्य भाषण

तथा सत्य व्यवहार, हित के सम्पादन करने वाली उक्ति, वेदों के प्रामाण्य का दर्शन, गुरु, देव, ऋषि, सिद्धों का सेवन, साधु संयम, सत्क्रिया अर्थात् अच्छे कर्मों के करने का व्यसन, मित्र भावना, ये सब स्वर्ग के उपलक्षण हैं अर्थात् इनसे यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे प्राणी स्वर्ग के सुख की अवधि समाप्त करके ही यहाँ शेष सुख भोगने को और पर जन्म के लिये सत्कर्म करने को उत्पन्न हुए हैं। आठ अङ्गों वाले योग के विशेष ज्ञान होने से आत्यन्तिक फल मनुष्य प्राप्त करता है ॥३६।३७॥

१२०—अष्टाङ्ग योग कथन

वक्ष्ये साङ्गं महायोगं भुक्तिमुक्तिकरं परम् ।
सर्वपापप्रशमनं भक्त्यानुपठितं शृणु ॥१
ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति निवर्त्तते ।
दत्तात्रेयो ह्यलर्काय इममाह महामतिः ॥२
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान्महान् ।
गृहक्षेत्राश्च शाखाश्च यत्र दाराभिपल्लवः ॥३
धनधान्ये महापात्रे पापमूलोऽतिदुर्गमः ।
विधिवत्सुखशान्त्यर्थी जातो ज्ञानमहातरुः ॥४
छिन्नो विद्याकुठारेण ते गता लयमीश्वरे ।
प्राप्य ब्रह्मरसं पीतं नीरजस्कमकण्टकम् ॥५
प्राप्नुवन्ति पराः प्राज्ञाः सुखनिर्वृतिमेव च ।
मूर्त्तेन्द्रियलयं नूनं न त्वं राजन् न चाप्यहम् ॥६
न तन्मात्रादिकं वाचा नैवान्तःकरणं तथा ।
कं वा पश्यसि राजेन्द्र प्रधानमिदमावयोः ॥७

सूतजी ने कहा—अब मैं अङ्गों के सहित महायोग को बतलाता हूँ जो कि परम भुक्ति और मुक्ति—इन दोनों का देने वाला है। यह समस्त पापों को शान्त करने वाला होता है। इसे मैं अनुपठित करता हूँ तुम भक्ति के साथ इसका श्रवण करो ॥१॥ मम अर्थात् यह मेरा है—यही सम्पूर्ण दुःखों का मूल

है। मेरा कुछ नहीं है—यही भाव निवृत्ति का मूल होता है। महान् मति वाले धीमान् दत्तात्रेय ने अलर्क के लिए इसी को बतलाया था।।२।। अहम् (मैं) इस अंकुर से यह आरम्भ में उत्पन्न एक वृक्ष जैसा ही है। अहं के अंकुर से उत्पन्न वृक्ष का 'मम' अर्थात् मेरा यह स्कन्ध अर्थात् तना होता है। गृह और क्षेत्र आदि इसकी शाखाएँ हैं और दारा आदि इस वृक्ष के पत्ते हैं।।३।। धन और धान्य रूपी महान् पात्र में यह पाप मूल अर्थात् जिसकी जड़ पाप ही होती है, अत्यन्त दुर्गम होता है। विधि पूर्वक सुख और शान्ति के लिये यही ज्ञान का एक महान् वृक्ष भी उत्पन्न हो गया है।।४।। वह पाप मूल महा वृक्ष विद्या रूपी कुठार से छिन्न हो जाता है फिर वे मनुष्य रजोगुण से रहित अकारक पीत ब्रह्मरस को प्राप्त करके ईश्वर में लय को प्राप्त हो गये हैं।।५।। परम प्राज्ञ जो पुरुष हैं वे सुख निवृंति को (परमानन्दमय सुख) प्राप्त किया करते हैं। हे राजन् मूर्त इन्द्रियों के लय को न तो प्राप्त हो सकते और न मैं भी उसे पा सकता हूँ।।६।। वाणी स तन्मात्रादिक और अन्तःकरण का लय नहीं है। हे राजेन्द्र ! अथवा जिसको देखते ही। हम दोनों में यह प्रधान है।।७।।

मृत परेऽस्ति क्षेत्रज्ञ सजातोऽय गुणात्मक ।
एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मना नृप ॥८
ज्ञानपूर्ववियोगाऽसौ ज्ञाने नष्टे च योगिन ।
सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्य पुत्र ते गुणैः ॥९
तद्गृह यत्र वसति तद्राज्य येन जीवति ।
यन्मुक्तये तदेवोक्त ज्ञानाज्ञानेन चान्यथा ॥१०
भवभागेन पुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव ।
कर्त्तव्यानाञ्च नित्यानां क्षय त्वकरणात्तथा ॥११
अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहौ ।
यमा पञ्चाथ नियमा शौच द्विविधमीरितम् ॥१२
सन्तोषस्तपसा शान्तिर्वासुदेवार्चन दम ।
आसन पद्मकाद्युक्त प्राणायामो मरुज्जय. ॥१३
प्रत्येक त्रिविध सोऽपि पूरकुम्भकरेचकै ।
लघुर्यो दशमात्रस्तु द्विगुण स तु मध्यम ॥१४

मृत दूसरे दिन में यह क्षेत्रज्ञ गुणात्मक हो गया। हे नृप ! एकत्व होने पर भी क्षेत्रात्मा का पृथग्भाव होता है ॥८॥ यह वियोग ज्ञान पूर्वक होता है। ज्ञान नष्ट हो जाने पर योगी की वही मुक्ति होती है। हे पुत्र ! गुणों के द्वारा तेरा ब्रह्म के साथ ऐक्य और अनैक्य होता है ॥९॥ वही गृह है जहाँ पर वास करता है और वही भोज्य है जिसके द्वारा जीवित रहता है। मुक्ति के लिये यही कहा गया है जो ज्ञानाज्ञान से अन्यथा है। १०॥ हे पार्थिव ! भव (संसार) के भोग से पुण्यों और अपुण्यों का तथा कर्त्तव्यों का जो नित्य हैं न करने से क्षय होता है॥११॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (दान न लेना या संग्रह न करना) ये पाँच नियम हैं। शौच (शुद्धि) दो प्रकार की होती है ॥१२॥ सन्तोष—तप के द्वारा शान्ति—भगवान् वासुदेव का अर्चन ये दम कहे जाते हैं। पद्मक आदि आसन बताये गये हैं और वायु का जय प्राप्त करना ही प्राणायाम है ॥१३॥ प्रत्येक प्राणायाम पूरक–कुम्भक और रेचक के भेद से तीन प्रकार का होता है। जो प्राणायाम लघु होता है वह दश मात्रा वाला होता है। इससे जो दुगुना होता है वह मध्यम है ॥१४॥

त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः स उदाहृतः।
जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतस्त्वभक्षकः ॥१५
प्रथमे जनयेत्स्वप्नं मध्यमेन च वेपथुः।
विपाकं हि तृतीयेन जाता दोषास्त्वनुक्रमात् ॥१६
आसनस्थं तु युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि।
पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणौ स्पर्शन्नैकाग्रमानसः ॥१७
रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा।
निरुध्य निश्चलो वृत्तिं स्थितो युञ्जीत योगवित् ॥१८
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च।
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमात् ॥१९
प्राणायामा दशाष्टौ च धारणा सा विधीयते।
द्वे धारणे स्मृतो योगो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥२०

प्राङ्नाड्या हृदये चात्र तृतीया च तथोरसि ।
कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रे भ्रूमध्यमूर्धसु ॥२१
किञ्चित्तस्मात्परस्मिश्च धारणा दशधा स्मृता ।
दशैता धारणा प्राप्य प्राप्नोत्यक्षररूपताम् ॥२२

जिनमें लघु से तिगुनी मात्राएँ होती हैं वह उत्तम प्राणायाम कहा गया है । इस प्राणायाम के गर्भ अर्थात् मध्य में जप तथा ध्यान होना चाहिए, इस प्रकार से जप एवं ध्यान युक्त गर्भ वाला प्राणायाम विपरीतत्व के भक्षण करने वाला होता है ॥१५॥ प्रथम प्राणायाम में स्वप्न का जनन होता है मध्यम प्राणायाम के द्वारा वेपथु अर्थात् कम्प होता है । तथा तृतीय प्राणायाम से विषाद होता है । इस अनुक्रम से ये दोष हुआ करते हैं ॥१६॥ हृदय में प्रणव का ध्यान करके आसन पर स्थिर होकर योग करना चाहिए । दोनों पार्ष्णियों से जननेन्द्रिय एवं वृषणों का स्पर्श करते हुए आसन पर अपनी स्थिति करनी चाहिए और मन को पूर्णतया एकाग्र कर लेवे ॥१७॥ रजोगुण के द्वारा तमोगुण की वृत्ति को और सत्व गुण के द्वारा तमोगुण को निरुद्ध करके अपनी वृत्ति को पूर्णतया निश्चल करके मात्र के वेत्ता पुरुष को अपनी स्थिति बना कर ही योग साधन करना चाहिये ॥१८॥ अपनी समस्त इन्द्रियों को उन इन्द्रियों के विषयों से—प्राणादि को एव मन को पूर्णतया निगृहीत करके समवाय के द्वारा प्रत्याहार क्रम से करना चाहिए ॥१९॥ इस तरह से अठारह प्राणायाम जब किये जाते हैं तो वह धारणा विहित होती है अर्थात् उसे ही धारणा कहा जाता है । तत्त्व के जानने वाले योगियों के द्वारा इस प्रकार से दो धारणाओं को ही योग कहा गया है ॥२०॥ पहिले नाड़ी में फिर हृदय में और तीसरी उर स्थल में—कण्ठ में—मुख में—नासिका के अग्र भाग में—नेत्र में—भ्रू मध्य और मूर्धा म कुछ उससे परे में इस प्रकार से धारणा दश प्रकार की बताई गई हैं । इन दश धारणाओं को प्राप्त करके योगाभ्यास करने वाला अक्षर रूपता को प्राप्त होता है ॥२१।२२॥

यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तस्तथात्मा परमात्मनि ।
ब्रह्मरूप महापुण्यमामित्येकाक्षरं जपेत् ॥२३

अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् ।
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ॥२४
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थूलदेहविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम् ॥२५
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्या मलवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम् ॥२६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सूक्ष्मदेहविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थानास्थानविवर्जितम् ॥२७
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्गन्धमात्रविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्परिवर्जितम् ॥२८

जिस तरह से अग्नि अग्नि में संक्षिप्त होता है वैसे ही आत्मा परमात्मा में संक्षिप्त होता है । इस प्रकार से महान् पुण्यमय ब्रह्म रूप "ओम्"—इस एक अक्षर का जाप करना चाहिए ॥२३॥ इस 'ओम्' में अकार, उकार और मकार ये तीन अक्षर होते हैं । इन तीनों अक्षरों से मिलकर 'ओम्'—इस एक अक्षर की रचना होती है जो ब्रह्म स्वरूप परम ओङ्कार संज्ञा वाला होता है ॥२४॥ मैं ब्रह्म स्वरूप पर ज्योति हूँ और इस स्थूल देह से विशेष रूप से वर्जित हूँ । मैं परब्रह्म ज्योति स्वरूप जरा (वृद्धता) और मरण से रहित हूँ ॥२५॥ मैं ज्योति रूप परब्रह्म पृथिवी के मल से वर्जित हूँ तथा वायु, आकाश आदि से भी रहित हूँ ॥२६॥ मैं ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म सूक्ष्म देह से भी रहित और स्थानास्थान से वर्जित हूँ । मैं ज्योति रूप परब्रह्म गन्ध मात्र से वर्जित तथा श्रोत्र एवं त्वचा से वर्जित हूँ ॥२७।२८॥

अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम् ॥२९
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरज्ञानपरिवर्जितम् ॥३०
अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्तुरीयं परमं पदम् ।
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ॥३१

नित्यशुद्धबुद्धयुक्तमहमानन्दमद्वयम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ज्ञानरूपो विमुक्तये ॥३२
इत्यष्टाङ्गो मया योग उक्तः शौनक मुक्तिदः ।
नित्यनैमित्तिक प्राप्त्वा लयं प्राकृतबन्धना ॥३३
उत्पद्यन्ते हि संसारं नैकं प्राप्त्वा परात्मनाम् ।
विमुच्यते विमुक्तश्च ज्ञानादज्ञानमोहित ॥३४
ततो न म्रियते दुःखी न रोगी न च बन्धवान् ।
न पापैर्युज्यते योगी नरके न विपच्यते ॥३५

मैं परब्रह्म ज्योति स्वरूप जिह्वा और घ्राण से रहित तथा प्राण एवं अपान से भी वर्जित हूँ ॥२६॥ मैं ब्रह्म हूँ और ज्योति स्वरूप वाला हूँ तथा व्यान–उदान एवं अप्रान से परिवर्जित हूँ ॥३०॥ उस समय में ऐसा ही ध्यान करना चाहिए कि मैं नित्य शुद्ध एवं बुद्ध तथा अद्वय आनन्द स्वरूप हूँ और मैं ज्योति रूप परब्रह्म ज्ञान के स्वरूप वाला हूँ जो विमुक्ति के योग्य पात्र हूँ। मैं परब्रह्म ज्योति के रूप वाला देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहङ्कार से वर्जित हूँ और परम पद का प्राप्त होने वाला हूँ ॥३१।३२॥ सूतजी ने कहा—यम, नियम, ध्यान, धारणा आदि आठ अङ्गों वाला यह योग है शौनक ! मैंने तुम्हारे सामने भली भाँति वर्णन कर दिया है, यह मुक्ति के प्रदान करने वाला है। प्राकृत बन्धन नित्य तथा नैमित्तिक लय को प्राप्त कर संसार में उत्पन्न होते हैं। एक परमात्मा को प्राप्त करके यह अज्ञान से मोहित जीवात्मा ज्ञान से अज्ञान–विमुक्त होकर विमुक्ति प्राप्त किया करता है ॥३३।३४॥ अतएव योगी न मरता है, न दुःखित होता है, न रोगयुक्त होता है तथा न बान्धवों को पापों से युक्त किया करता है और न नरक में ही विपच्यमान होता है ॥३५

गर्भवासे स नो दुःखी स्यान्नारायणोऽव्ययः ।
भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो भगवान्भुक्तिमुक्तिदः ॥३६
ध्यानेन पूजया जप्यैः सम्यक्स्तोत्रैर्यतव्रतः ।
यज्ञैर्दानैश्चित्तशुद्धिस्तया ज्ञानञ्च लभ्यते ॥३७

प्रणवादिकमन्त्रैश्च जप्यैर्मुक्तिं गता द्विजाः ।
इन्द्रोऽपि परमं स्थानं गन्धर्वाप्सरसो वराः ॥३८
प्राप्ता देवाश्च देवत्वं मुनित्वं मुनयो गताः ।
गन्धर्वत्वश्च गन्धर्वा राजत्वञ्च नृपादयः ॥३९

योगी पुरुष कभी अपनी माता के गर्भवास में दुःख नहीं भोगता है। उसे तो अव्यय भगवान् नारायण प्राप्त हो जाते हैं जो कि अनन्य भक्ति के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं। ॥३६॥ ध्यान के द्वारा, पूजा से, जाप, स्तोत्र, पाठ, यतव्रत, यज्ञ, दान इनके द्वारा चित्त की शुद्धि होती है और भक्ति के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। ॥३७॥ द्विजगण प्रणव आदि के मन्त्र जपों के द्वारा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। इन्द्र ने भी परम पद प्राप्त किया है तथा परम श्रेष्ठ गन्धर्व एवं अप्सरायें प्राप्त की हैं। देवगण ने इसी के बल से देवत्व की प्राप्ति की है एवं मुनियों ने मुनित्व को, गन्धर्वों ने गन्धर्वत्व तथा नृपगण ने राजत्व को प्राप्त किया है ॥३८॥३९॥

१२१ —विष्णु भक्ति कीर्त्तन

विष्णुभक्तिं प्रवक्ष्यामि यया सर्वमवाप्यते ।
यथा भक्त्या हरिस्तुष्येत्तथा नान्येन केनचित् ॥१
महतः श्रेयसो मूलं प्रसवः पुण्यसन्ततेः ।
जीवितस्य फलं स्वादु नियतिस्मरणं हरेः ॥२
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिसाधनभूयसी ।
ते भक्ता लोकनाथस्य नामकर्मादिकीर्त्तने ॥३
मुञ्चन्त्यश्रूणि संहर्षाद्ये प्रहृष्टतनूरुहाः ।
जगद्धातुर्महेशस्य ज्ञानदं चरणद्वयम् ॥४
इह नित्यक्रियाः कुर्युः स्निग्धा ये वैष्णवास्तु ते ।
ब्रह्माक्षरं न शृण्वन्वै तथा भगवतेरितम् ॥५
प्रणामपूर्वकं भक्तया यो वदेद्वैष्णवो हि सः ।
तद्भक्तजनवात्सल्यं पूजयंश्चानुमोदनम् ॥६

तत्कथाश्रवणे प्रीति' श्रवणं सफलं भवेत् ।
येन सर्वात्मना विष्णौ भवतया भावो निवेशितः ॥७
विश्वेश्वरकृताद्विप्रान्महाभागवतो हि सः ।
स्वयमभ्यर्चनञ्चैव यो विष्णुञ्चोपजीवति ॥८

श्री सूतजी ने कहा—अब हम भगवान् विष्णु की भक्ति के विषय में वर्णन करते हैं जिसके द्वारा सभी कुछ प्राप्त किया जाया करता है। भगवान् हरि जितने भक्ति के द्वारा सन्तुष्ट हुआ करते हैं वैसे अन्य किसी से भी सन्तुष्ट एवं प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ १ ॥ निरन्तर नियत रूप श्री हरि का स्मरण करना महान् श्रेय का मूल—पुण्य सन्तति का प्रसव और जीवन का स्वाद युक्त फल होता है ॥ २ ॥ अतएव बुध पुरुषों के द्वारा भक्ति के साधनों से सम्पन्न सेवा बतलाई गई है। वे भक्त लोग समस्त लोकों के स्वामी भगवान् के नाम तथा कर्मों के कीर्तन में अपने आँसुओं का भावावेश में मग्न होकर त्याग किया करते हैं। गुणगान करने में तथा नाम—सङ्कीर्तन में भगवान् के भक्तों का बहुत अधिक हर्षोद्गम होता है और उसमें उस समय उनका शरीर पुलकाय मान हो जाया करता है। जगती तल के धाता महेश के दोनों चरण ज्ञान के प्रदान करने वाले हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ जो परम स्निग्ध विष्णु के भक्त हैं वे ब्रह्मा क्षर का श्रवण न करते हुए यहाँ इसी प्रकार से नित्य क्रिया करते हैं जैसा कि भगवान् के द्वारा कहा गया है ॥ ५ ॥ जो प्रणाम पूर्वक बोलता है वही विष्णु का भक्त वैष्णव है। जो इस तरह से पूजन किया करता है उनका भगवान् अनुमोदन करते हैं और उन भक्तों पर भगवान् का परम वात्सल्य होता है ॥ ६ ॥ भगवत्कथा के श्रवण करने में जो पूर्णतया प्रीति होती है तो वह श्रवण करना सफल हुआ करता है। तात्पर्य यह है कि प्रेम के बिना भगवत्कथा के केवल सुन लेने मात्र से वह फल नहीं मिलता है जोकि वास्तव में उससे मिलना चाहिए। जिसने सर्वात्म स्वरूप से भक्ति-भाव पूर्वक भगवान् विष्णु में अपना भाव निवेशित कर दिया है वह विश्वेश्वर कृत विप्र से महा-भागवत होता है जो स्वयं अभ्यर्चन करके विष्णु को उपजीवित किया करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छोऽपि वर्त्तते ।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स याति परमां गतिम् ॥६
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः ।
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया ॥१०
दयां कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरेः ॥११
मन्त्रयाजिसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः ।
सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते ॥१२
एकान्तिनः स्ववपुषा गच्छन्ति परमं पदम् ।
एकान्तेन समो विष्णुस्तस्मादेषां परायणः ॥१३
यस्मादेकान्तिनः प्रोक्तास्तद्भागवतचेतसः ।
प्रियाणामपि सर्वेषां देवदेवस्य सुप्रियः ॥१४

यह भगवान् की भक्ति आठ प्रकार की हुआ करती है जिसमें म्लेच्छ भी भाग लिया करता है अर्थात् भक्ति करने का नीच से नीच का भी पूर्ण अधिकार है। भक्ति करने वाला म्लेच्छ भी विप्रों का शिरोमणि—मुनि और श्रीमान् है तथा वह परम गति को प्राप्त किया करता है ॥ ६ ॥ उसको जो भी कुछ दिया जाता है वह ग्राह्य होता है अथवा उससे भी ग्रहण करने के योग्य सभी कुछ हुआ करता है। चाहे वह चाण्डाल क्यों न हो यदि भगवान् का भक्त है तो वह यह इच्छा से पवित्र कर दिया करता है क्योंकि उसमें भगवान् की भक्ति की विशेषता होती है ॥१०॥ जो भगवत्प्रपन्न है उस पर दया करे। जो 'मैं तेरा ही हूँ'—ऐसा बोलता है उन समस्त प्राणियों को भगवान् अभय प्रदान किया करते हैं—ऐसा हरि का व्रत है ॥ ११ ॥ सहस्रों मन्त्रों द्वारा यजन करने वालों से और जो सम्पूर्ण वेदान्त के पारगामी विद्वान् हैं उनसे तथा समस्त वेदान्त के ज्ञाता से विष्णु भक्त करोड़ गुना विशिष्ट होता है ॥ १२ ॥ जो एकान्त में रहते हैं वे अपने ही शरीर से परम पद जाया करते हैं। एकान्त के समान विष्णु होते हैं इसलिये एकान्त निवास में परायण होना चाहिए ॥ १३ ॥ जो एकान्त में रहने वाले हैं वे भगवान् में चित्त को

सलग्न रखने वाले हुआ करते हैं। वे लोग जो नितान्त एकान्त निवास करके भगवद्भजन—स्मरण और नाम—सङ्कीर्तन किया करते हैं वे सभी के प्रिय होकर भी देवों के देव भगवान् विष्णु के तो अत्यन्त ही सुप्रिय हुआ करते हैं॥ १४॥

आपत्स्वपि सदा यस्य भक्तिरव्यभिचारिणी।
या प्रीतिरधिका विष्णौ विषयेष्वनपायिनी ॥१५
विष्णु सस्मरत सा मे हृदयान्नोपसर्पति।
दृढभक्तोऽपि वेदादिसर्वशास्त्रार्थपारग. ॥१६
यो न सर्वेश्वरे भक्तस्त विद्यात् पुरुषाधमम्।
नाधीतवेदशास्त्रोऽपि न कृतोऽध्वरसम्भवः।
यो भक्ति वहते विष्णौ तेन सर्वं कृत भवेत् ॥१७
यज्वन क्रतुमुख्याना वेदाना पारगा अपि।
न ता यान्ति गति भक्ता या यान्ति मुनिसत्तमाः ।१८
य. कश्चिद् वैष्णवो लोके मिथ्याचाराऽप्यनाश्रमी।
पुनाति सकलान् लोकान् सहस्रांशुरिवोदित ॥१९
य नृशसा दुरात्मान पापाचाररतास्तथा।
येऽपि यान्ति पर स्थान नारायणपरायणा ॥२०
दृढा जनार्दने भक्तिर्यदैवाव्यभिचारिणी।
तदा कियत् स्वर्गसुख सैव निर्वाण हेतुकी ॥२१

जिस मनुष्य की सदा आपत्ति के समयों मे भी अव्यभिचारिणी भगवान् मे भक्ति हुआ करती है और जो प्रीति भगवान् विष्णु में अधिक होती है वह विषयों म अनपायिनी होती है। जो भगवान् को छोड़कर कभी अन्यत्र चित्त की वृत्ति नही जाती है वही अव्यभिचारिणी भक्ति कहलाती है। जिसकी प्रीति विष्णु के चरणों मे होती है उसका मन कभी भी विषयों मे जाया ही नहीं करता है। विष्णु का सस्मरण करने वाले की वह मेरी भक्ति ऐसी ही होती है कि कभी भी हृदय स अन्यत्र कहीं भी नहीं जाया करती है। जो भगवान् विष्णु का परम दृढ भक्त होता है वह भी वेद आदि समस्त शास्त्रो के अर्थों का पार

गामी हुआ करता है ।। १५ ।। १६ ।। जो पुरुष भगवान् सर्वेश्वर में भक्ति नहीं रखने वाला है उसको मनुष्यों में सबसे अधम ही समझना चाहिए । ऐसा पुरुष भले ही वेदशास्त्र आदि सब कुछ पढ़ा हुआ भी क्यों न हो किन्तु उसे कुछ भी वेदादि के पढ़ने वाला नहीं समझना चाहिए । ऐसा पुरुष अध्वरादि करने पर भी यज्ञादि के नहीं करने वाले के ही तुल्य होता है । जिसने भगवान् विष्णु में भक्ति की है उसने सभी कुछ वेदादि का अध्ययन और यज्ञादि का यजन पूरा कर लिया है—यही समझना चाहिए ।। १७ ।। प्रमुख ऋतुओं के करने वाले और वेदों के पारगामी पुरुष भी उस उत्तम गति को प्राप्ति नहीं किया करते हैं जिस परमोत्तम गति को भक्त मुनिगण प्राप्त किया करते हैं ।। १८ ।। जो कोई वैष्णव अर्थात् भगवान् विष्णु का भक्त लोक में होता है वह चाहे मिथ्याचारी भी हो और किसी भी उचित आश्रम में रहने वाला न हो तो भी वह विष्णु का भक्त उदित होने वाले सूर्य की भाँति समस्त लोकों को पवित्र किया करता है ।। १९ ।। जो परम नृशंस (क्रूर) दुष्ट आत्मा वाले तथा पापों के आचरण करने वाले हों और नारायण में परायण रहने वाले हों तो वे भी नारायण की भक्ति भाव के प्रभाव के कारण परम पद को प्राप्त किया करते हैं ।। २० ।। जब भगवान् जनार्दन में सुदृढ़ भक्ति होती है तो वही भक्ति अव्यभिचारिणी भक्ति कही जाती है । जब ऐसी भगवान् विष्णु में दृढ़ भक्ति हो जाती है तो उसके लिये स्वर्ग का सुख क्या वस्तु है और कितना महत्व रखने वाला है ? अर्थात् कुछ भी नहीं है । विष्णु की व्यभिचरित न होने वाली एक मात्र भक्ति ही निर्वाण (मोक्ष) पद को प्रदान करने वाली होती है ।।२१।।

भ्राम्यतां तत्र संसारे नराणां कर्मदुर्गमे ।
हस्तावलम्बने ह्येको दृष्टस्तुष्टो जनार्दनः ।।२२
न शृणोति गुणान् दिव्यान् देवदेवस्य चक्रिणः ।
स नरो बधिरो ज्ञेयो सर्वधर्मवहिष्कृतः ।।२३
नाम्नि संकीर्त्तिते विष्णोर्यस्य पुंसो न जायते ।
शरीरं पुलकोद्भासि तद्भवेत्कुणपोपमम् ।।२४

यस्मिन् भक्तिर्द्विजश्रेष्ठ मुक्तिरप्यचिराद्भवेत् ।
निविष्टमनसा पुंसा सर्वथा वृजिनक्षयम् ॥२५
स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥२६
अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥२७
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं स गच्छति ।
विप्रेन्द्र प्रतिजानीहि विष्णुभक्तो न नश्यति ॥२८

मनुष्यों के कर्मों के दुर्गम इस संसार मे भ्रमण करने वाले पुरुषों को हाथ का अवलम्बन देने मे एक परम प्रसन्न होने वाले भगवान् जनार्दन प्रभु जब कृपा करते हैं तो अपने हाथ का अवलम्ब प्रदान करके कर्मों के इस गहन संसार से भी उद्धार कर दिया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा नहीं होता है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य देवों के देव भगवान् विष्णु के दिव्य गुणों का श्रवण नहीं करता है उस मनुष्य को समस्त धर्मों मे बहिष्कृत होने वाला बधिर ही जानना चाहिए ॥ २३ ॥ भगवान् विष्णु के शुभ नामो के सङ्कीर्तन होने पर जिस पुरुष का शरीर रोमाञ्चित नहीं होता है वही कुणप के समान होता है ॥ २४ ॥ हे द्विजो मे श्रेष्ठ ! जिस मनुष्य में विष्णु की सुदृढ भक्ति होती है उसकी मुक्ति भी तुरन्त ही हो जाती है। भगवान् मे निविष्ट मन रखने वाले पुरुषों के सर्वथा पापो का क्षय हो जाया करता है ॥ २५ ॥ कर्मों के दण्ड की व्यवस्था करने वाले यमराज जिस समय अपने दूतों को पाश हाथों में लेकर जीवात्माओं के लाने के लिये प्रस्तुत होते हुए देखते हैं उस समय में वह यमराज उन अपने दूतों के कान मे चुपके से कहा करते हैं कि देखो, तुम इस बात को अच्छी तरह समझ लेना मैं अन्य सभी मनुष्यों को दण्ड देने का स्वामी हूँ किन्तु जो वैष्णव लोग हैं उन पर मेरा कुछ भी प्रभुत्व नहीं है अतएव तुम लोग उनको बिल्कुल ही छोड़ देना जो भगवान् मधुसूदन की प्रपत्ति प्राप्त कर चुके हों अर्थात् वैष्णव बन गये हों। तुम विष्णु-भक्तों को बिल्कुल भी मत छेड़ना ॥ २६ ॥ वह दुराचरण करने वाला भी है और

मेरा फिर अनन्य भक्त बन कर भजन करने लगा है तो उसे भी दुष्ट, दुराचारी न समझ कर पूर्ण साधु ही मानना चाहिए क्योंकि भले ही मेरी भक्ति करने के पूर्व उसने चाहे जितना दुराचरण किया हो किन्तु ज्योंही उसने मेरे भजन का अनन्य भाव से समाश्रय ग्रहण किया है वैसे ही वह भली भाँति व्यवसित हो गया है अर्थात् आगे भविष्य में कोई भी बुरा आचरण न करने का निश्चय कर लिया है ॥ २७ ॥ भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि मेरी अनन्य भाव से भक्ति करने वाला पुरुष शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाया करता है और उसका यह फल होता है कि उसे शाश्वत (सर्वदा रहने वाली) शान्ति प्राप्त हुआ करती है। हे विप्रेन्द्र ! भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि यह प्रतिज्ञा है कि विष्णु का भक्त कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता है ॥२८॥

धर्मार्थकामः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा हरौ ॥२६
दैवी ह्येषा गुणमयी हरेर्माया दुरत्यया ।
तमेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥३०
किं यज्ञाराधने पुंसां सिध्यते हरिमेधसः ।
भक्त्यैवाराध्यते विष्णुर्नान्यस्तत्रापि कारणम् ॥३१
न दानैर्विविधैर्दत्तैः पुष्पैर्नैवानुलेपनैः ।
तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः ॥३२
संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे ।
कदाचित्केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागमः ॥३३
पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वकष्टलभ्येषु सदैव सत्सु ।
भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यैकलाभे क्रियते प्रयत्नः ॥३४
आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः ।
वैष्णवो मत्कुले जातः स नः सन्तारयिष्यति ॥३५

धर्म—अर्थ और काम ये प्राप्त कर लेना उसके लिये क्या बड़ी बात है ? उसके हाथ में तो मुक्ति भी स्थित ही रहा करती है। जिसके हृदय में भगवान् हरि में स्थिर रहने वाली भक्ति होती है जोकि इन समस्त जगतों का

मूल है वह मोक्ष प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी बन जाया करता है ॥ २६ ॥ यह हरि की दैवी माया गुणमयी अर्थात् त्रिगुणात्मिका है और बहुत ही दुरत्यय होती है अर्थात् इसको जान लेना और त्याग देना बहुत ही कठिन है। जो लोग उन्हीं भगवान् हरि की शरण ग्रहण किया करते हैं वे ही इस दैवी माया से तर जाया करते हैं अन्यथा इससे छूटना महान् दुस्तर कार्य है।३०। यज्ञों के यजन द्वारा आराधना करने से पुरुषों की कुछ भी सिद्धि नहीं होती है। जो भगवान् हरि की ही भक्ति किया करते हैं और उनके चरणों में ही अपनी बुद्धि को लगा देते हैं उनका ही कल्याण होता है क्योंकि भगवद्भक्ति ही के द्वारा भगवान् की आराधना की जाया करती है इसके अतिरिक्त उनकी आराधना करने का तथा सन्तुष्ट करने का अन्य कोई भी कारण नहीं है ॥ ३१ ॥ बहुत से अतुल दानों के द्वारा—पुष्पों के समर्पण से और अनुलेपनों से भगवान् जनार्दन कभी भी तोष को प्राप्त नहीं हुआ करते हैं जैसे कि यह महान् आत्मा वाले प्रभु अनन्य भक्ति से प्रसन्न होते हैं ॥ ३२ ॥ इस संसार रूपी विष वृक्ष के दो फल अमृत के तुल्य हुआ करते हैं उनमें एक तो भगवान् केशव में सुदृढ भक्ति है और दूसरा भगवान् के भक्तों के साथ समागम प्राप्त करना है। अन्यथा यह संसार पूर्णतया विषैला एक वृक्ष के ही समान होता है जो सर्वनाश किया करता है। भगवद्भक्ति और सन्तों का सत्सङ्ग ये दो ही इसमें आकर उत्तम श्रेय के सम्पादक फल प्राप्त किये जा सकते हैं ॥ ३३ ॥ पत्र—पुष्प—फल और तोय से तथा अक्रेक लस्य सदा सत्पुरुषों से भक्ति के द्वारा प्राप्त करने के योग्य पुराण पुरुष में मुक्ति से एक के लाभ में प्रयत्न किया जाता है ॥ ३४ ॥ जिस कुल में कोई भी भगवान् विष्णु का भक्त वैष्णव उत्पन्न हो जाता है उसके पितृगण बहुत ही प्रसन्न होते हैं और उसके पितामह आदि सब हर्ष से नृत्य किया करते हैं कि हमारे वंश में वैष्णव पैदा हो गया है वह हम सबका उद्धार कर देगा ॥३५॥

अज्ञानिन सुरवर समधिक्षिपन्तो यत्पापिनोऽपि
शिशुपालसुयोधनाद्या ।
मुक्तिं गता स्मरणमात्रविधूतपापा क संशयःपरमभक्तिमता
जनानाम् ॥३६

सकलमुनिभिराद्यश्चिन्त्यते यो हि सिद्धो निखिलहृदि
निविष्टे वेत्ति यः सर्वसाक्षी ।
तमजममृतमीशं वासुदेवं नतोऽस्मि स्वभयमरणहीनं
नित्यमानन्दरूपम् ।।३७
निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं अतिविमलविशुद्धं
निर्गुणं भावपुष्पैः ।
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपद्मं
सर्वसाक्षी चिदात्मा ।।३८
एवं मयोक्तं परमप्रभावमाद्यन्तहीनस्य परस्य विष्णोः ।
तस्माद्विचिन्त्यः परमेश्वरोऽसौ विमुक्तिमार्गेण नरेण सम्यक् ।३९
बोधस्वरूपं पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं विमलं विशुद्धम् ।
सञ्चिन्त्य विष्णुं परमद्वितीयं कस्तत्र योगी न लयं प्रयाति ।।४०

अज्ञानी पुरुष भी केवल विष्णु—भक्ति के प्रभाव से सुरवर के भी ऊपर पहुँच जाते हैं । जो महापापी शिशुपाल और सुयोधन आदि थे वे भी भगवान् के स्मरण मात्र से पापों का नाश कर मुक्ति को प्राप्त हो गये थे । जो भगवान् विष्णु की परम भक्ति करने वाले भक्तजन हैं उनके मोक्ष प्राप्त करने में तो क्या संशय हो सकता है ? अर्थात् उनके मुक्त होने में तनिक भी सन्देह नहीं है ।। ३६ ।। जो भगवान् का चिन्तन करता है वह समस्त मुनियों में प्रथम है और वह सिद्ध है, जो सबके हृदयों में विराजमान् प्रभु सभी कुछ को जानता है वह सबका साक्षी है उस अज—अमृत—ईश भगवान् वासुदेव को प्रणाम करता हूँ जो भय और मरण से रहित है—नित्य एवं आनन्द स्वरूप हैं ।। ३७ ।। वह समस्त भुवनों का स्वामी है—निरन्तर रहने वाला है—सुप्रसन्न स्वरूप वाला है—अत्यन्त विमल—विशुद्ध और निर्गुण है । वह सुखरूप और सबके उदित करने वाला है उसकी मैं भावरूपी पुष्पों के द्वारा पूजा करता हूँ । वह सबका साक्षी—ज्ञान स्वरूप मेरे हृदय में प्रवेश करें । ।। ३८ ।। इस प्रकार से आदि एवं अन्त से हीन परात्पर भगवान् विष्णु के परम प्रभाव को मैंने बतला दिया है । अतएव विमुक्ति के मार्ग प्राप्त करने की

इच्छा वाले पुरुष को भली भाँति ऐसे परमेश्वर का सदा चिन्तन करना चाहिए ॥ ३९ ॥ ज्ञान के स्वरूप वाले—सूर्य के तुल्य तेज एवं वर्ण वाले—विमल—विशुद्ध—पुराण पुरुष—परम एवं अद्वितीय भगवान् का चिन्तन करके कौन-सा ऐसा योगी है जो लय को प्राप्त नहीं होता है ? अर्थात् सभी को मोक्ष प्राप्त हो जाया करता है ॥४०॥

> इमं स्तवं यः सततं मनुष्यः पठेच्च तद्गतप्रयतः प्रशान्तः ।
> स धौतपाप्मा विततप्रभावः प्रयाति लोकं नितरां मुरारेः ॥४१
> यः प्रार्थयत्यर्थमशेषमौख्यं धर्मञ्च कामञ्च तथैव मोक्षम् ।
> स सर्वमुत्सृज्य परं पुराणं प्रयाति विष्णुं शरणं वरेण्यम् ॥४२
> विभुं प्रभुं विश्वधरं विशुद्धमशेषसंसारविनाशहेतुम् ।
> यो वासुदेवं विमलं प्रपन्नः स मोक्षमाप्नोति विमुक्तसङ्गः ॥४३

इस स्तव को जो मनुष्य पूर्णतया प्रयत्न और प्रशान्त होकर निरन्तर पढ़ता है वह अपने सम्पूर्ण पापों को धो डालने वाला तथा वितत प्रभाव वाला हो जाया करता है एवं वह मुरारि के निरन्तर लोक को प्राप्ति किया करता है ॥ ४१ ॥ जो अत्यन्त एवं सम्पूर्ण सुखों की प्रार्थना करता है तथा धर्म—अर्थ काम और मोक्ष की चाह किया करता है वह इन सबका त्याग कर परम पुराण—वरेण्य एवं शरण (रक्षक) भगवान् की सन्निधि में प्राप्त हो जाता है ॥ ४२ ॥ विभु (सर्व व्यापक)—प्रभु (करने न करने और अन्यथा करने में समर्थ सबके स्वामी)—विश्व को धारण करने वाले—विशुद्ध स्वरूप और इस सम्पूर्ण संसार की रचना के विनाश करने के कारण स्वरूप एवं विमल भगवान् वासुदेव की शरणागति प्राप्त कर लेता है वह सङ्ग से विमुक्त होकर मोक्ष (संसार के जीवन—मरण के बारम्बार आवागमन से छुटकारा पाकर भगवान् के स्वरूप में लय हो जाना) को प्राप्त कर लेता है ॥४३॥

१२२—वेदान्त सांख्य सिद्धान्त ब्रह्मज्ञान

वेदान्तसांख्यसिद्धान्तब्रह्मज्ञानं वदाम्यहम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विष्णुरित्येव चिन्तयन् ॥१

सूर्य्येन्दुव्योम्नि वह्नौ च ज्योतिरेकं त्रिधा स्थितम् ।
यथा सर्पिः शरीरस्थं गवां न कुरुते बलम् ।
निर्गतं कर्मसंयुक्तं दत्तं तासां महाबलम् ॥२
तथा विष्णुः शरीरस्थो न करोति हितं नृणाम् ।
विनाराधनया देवः सर्वगः परमेश्वरः ॥३
आरुरुक्षुमतीनां तु कर्मज्ञानमुदाहृतम् ।
आरूढयोगवृक्षाणां ज्ञानं त्यागं परं मतम् ॥४
ज्ञातुमिच्छति शब्दादीन्रागद्वेषोऽथ जायते ।
लोभमोहः क्रोध एतैर्युक्तः पापं नरश्चरेत् ॥५
हस्तावुपस्थमुदरं वाक्चतुर्थी चतुष्टयम् ।
एतत्सुसंयतं यस्य स विप्रः कथ्यते बुधः ॥६
परवित्तं न गृह्णाति न हिंसां कुरुते तथा ।
नाक्षक्रीडारतो यस्तु हस्तौ तस्य सुसंयतौ ॥७

श्री सूतजी ने कहा—अब हम आप सब लोगों को वेदान्त और सांख्य दर्शनों के सिद्धान्त स्वरूप ब्रह्मज्ञान को बतलाते हैं। मनुष्य को ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि मैं ही परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म एवं विष्णु हूँ ॥१॥ सूर्य, इन्दु (चन्द्र) व्योम और वह्नि में एक ही तेज है जो तीन प्रकार का होकर स्थित हो रहा है। जिस प्रकार से घृत दूध में रहते हुए गौओं के शरीर में ही रहा करता है किन्तु गौओं को बल नहीं दिया करता है। शरीर से दुग्ध के रूप में निकल कर और घृत के सच्चे स्वरूप में प्राप्त होकर वही जब गौओं को दिया जाता है तो महान् बल प्रदान किया करता है ॥२॥ इसी तरह सबके शरीरों में रहने वाला भी भगवान् विष्णु जो कि अन्तर्यामी स्वरूप से सर्वत्र चराचर में विद्यमान है, कोई भी मनुष्य का हित नहीं किया करता है। वह देवदेव सबमें गमन करने वाला अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है तो भी वह परमेश्वर बिना आराधना के किये मानवों की भलाई नहीं करता है। भली-भाँति जब उस सर्वत्र व्यापक प्रभु की आराधना भक्ति-भाव से अनन्य होकर की जाया करती है तो इस जीवात्मा का पूर्ण कल्याण वह किया करते हैं ॥३॥ जिनकी

मति प्राप्त हो जाती है उनके लिये धर्मज्ञान बतलाया गया है और जो योग के पथ पर समारूढ हैं उन मानवों के लिये त्याग और ज्ञान का सबसे परम माना गया है ॥४॥ जो शब्दादि इन्द्रियों के विषयों को जानना चाहता है अर्थात् विषयों में लिप्त रहता है उसे राग और द्वेष समुत्पन्न हो जाया करते हैं और फिर वह लोभ, मोह तथा क्रोध—इनसे युक्त होकर मनुष्य पाप का आचरण किया करता है ॥५॥ मनुष्य की चार इन्द्रियाँ बहुत ही प्रबल हैं—दोनों हाथ, उपस्थ (जननेन्द्रिय) उदर और चौथी वाणी। जिसकी ये चारों सुसंयत होती हैं वही बुध वस्तुतः विप्र कहा जाया करता है ॥६॥ जो कभी भी पराये धन को ग्रहण नहीं किया करता है तथा किसी भी समय में हिंसा का कर्म भी नहीं किया करता है और अक्ष-क्रीडा अर्थात् जूआ के खेल में रति नहीं रखता है अर्थात् जूआ नहीं खेलता है उस पुरुष के दोनों हाथों को भली-भाँति संयत यानी संयम में रहने वाले माने जाते हैं ॥७॥

परस्त्रीवर्जनरतस्तस्योपस्थं सुसंयतम् ।
अलोलुपमिदं भुङ्क्ते जठरं तस्य संयतम् ॥ ८
सत्यं हितं मितं ब्रूते यस्माद्वाक्तस्य संयता ।
यस्य संयतान्यतानि तस्य किं तपसाध्वरैः ॥९
भ्रुवोर्मध्ये स्थिता बुद्धिं विषयेषु युनक्ति यः ।
जीवो जाग्रदवस्थायामेवमाहुर्विपश्चितः ॥१०
हृदि स्थितः स तमसा मोहितो न स्मरत्यपि ।
यदा तस्य कुतो वेति सुषुप्तिरिति कथ्यते ॥११
जाग्रतां तस्य न स्त्री न मोहो न भ्रमस्तथा ।
उत्पद्यते न जानाति शब्दार्थविषयान्वशी ॥१२
इन्द्रियाणि समाहृत्य विषयेभ्यो मनस्तथा ।
बुद्धयाऽहङ्कारमपि च प्रकृत्या बुद्धिमेव च ॥१३
मद्यम प्रवृत्तिश्चापि चिच्छक्त्या केवले स्थितः ।
पश्यत्यात्मनि चात्मानमात्मानमुपचारकम् ॥१४

चिद्रूपममृतं शुद्धं निष्क्रियं व्यापकं शिवम् ।
तुरीयायामवस्थायामास्थितोऽसौ न संशयः ॥१५

पराई स्त्री से संयोग जिसने कभी नहीं किया है और पर स्त्री से सर्वदा वर्जित रहा करता है उस पुरुष का उपस्थ सुसंयत होता है । जो लोलुप न होकर ही शरीर की रक्षा के लिये ही खाता है उसका उदर सुसंयत कहा जाता है ॥८॥ जो सदा सत्य, हित और मित बोला करता है उसकी वाणी सुसंयत होती है । जिसकी ये चारों सुसंयत हों उसे यज्ञ-योगादि और तपश्चर्या करने की क्या आवश्यकता है ?॥९॥ जो भ्रूओं के मध्य में स्थित बुद्धि को विषयों में युक्त किया करता है वह जीव जाग्रत् अवस्था में ही होता है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१०॥ जब हृदय में स्थित होकर वह तम से मोहित होता हुआ कहीं भी नहीं जाता है उस समय में उसकी सुषुप्ति की अवस्था होती है ॥११॥ जाग्रत् दशा में भी उसे न स्त्री का ज्ञान रहता है—न कोई मोह ही होता है तथा किसी भी प्रकार का भ्रम भी नहीं होता है । उस दशा में अपने ही वश में ऐसा रहता है कि शब्दार्थ विषयों का भी उसे कुछ ज्ञान नहीं रहा करता है । अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को भी सब ओर से खींचकर, बुद्धि से अहङ्कार को और प्रकृति से बुद्धि को सयत करके एव अपनी चित् शक्ति के द्वारा प्रकृति को संयमित करके केवल आत्मा में स्थित होकर अपनी आत्मा में उपकार करने वाली आत्मा का दर्शन करता है, वह चिद्रय, अमृत, शुद्ध, निष्क्रिय, व्यापक और शिव स्वरूप वाला है । उस समय में यह तुरीय अवस्था में ही आस्थित होता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥१२॥ ॥१३॥१४॥१५॥

पुर्य्यष्टकस्य पद्मस्य पत्राण्यष्टौ च तानि हि ।
साम्यावस्था गुणाकृता प्रकृतिस्तत्र कर्णिका ॥१६
कर्णिकायां स्थितोदेवो देहे चिद्रूप एव हि ।
पुर्य्यष्टकं परित्यज्य प्रकृतिश्च गुणात्मिकाम् ।
यदा याति तदा जीवो याति मुक्ति न सशयः ॥१७
प्राणायामो जपश्चैव प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
ध्यानं समाधिरित्येते षड्योगस्य प्रसाधकाः ॥१८

पापक्षये देवताना प्रीतिरिन्द्रियसंयम ।
जपध्यानयुतो गर्भे विपरीतस्त्वगर्भक ॥१६
षट्त्रिंशन्मात्रक श्रेष्ठश्चतुर्विंशतिमात्रक ।
मध्यो द्वादशमात्रं तु ओङ्कार सतत जपेत् ॥२०
वाचके प्रणवे ज्ञाते वाच्य ब्रह्म प्रसीदति ।
ॐ नमो विष्णवे । षष्ठाक्षरश्च जप्तव्यो गायत्री द्वादशाक्षरा ॥२१

अष्ट दल वाले पद्म की पुरी मे वे आठ पत्र ही गुणों की की हुई साम्य अवस्था होती है । उसम प्रकृति ही कर्णिका है ॥१६॥ उसम कर्णिका देव स्थित हैं और देह चिद्रूप ही है । उस पुष्पक का परित्याग करके जिस समय में गुणात्मिका प्रकृति को प्राप्त करता है उस समय मैं जीव मुक्ति को प्राप्त किया करता है—इसम कुछ भी संशय नहीं है ॥१७॥ प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ये छै योग के प्रसाधक होते हैं ॥१८॥ पापों के क्षय होने पर देवताओ म प्रीति होती है। यह इन्द्रियों का सयम है। गर्भ म जप और ध्यान से युक्त होता है। अगर्भक इसके विपरीत होता हैं ॥१६॥ छतीस मात्रा वाला श्रेष्ठ होता है—चौबीस मातृक मध्यम होता हैं और बारह मात्रा वाला तीसरी श्रेणी का होता है। निरन्तर ओङ्कार का जप करना चाहिए ॥२०॥ ब्रह्म के वाचक प्रणव के ज्ञान हो जाने पर उसका वाच्य ब्रह्म प्रसन्न होता है। 'ओ नमो विष्णवे"—इस छ अक्षर वाले मन्त्र का जप करना चाहिए। गायत्री बारह की होती है ॥२१॥

सर्वेषामिन्द्रियाणा तु प्रवृत्तिर्विषयेषु च ।
निवृत्तिर्मनसा तस्या प्रत्याहार प्रकीर्तित ॥२२
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य समाहृत्य हितो हि स ।
सहसा सह बुद्धया च प्रत्याहारेषु सस्थित ॥२३
प्राणायामैर्द्वादशभिर्यावत्कालकृतो भवेत् ।
यस्तावत्कालपर्य्यन्त मनो ब्रह्मणि धारयेत् ॥२४
तस्यैव ब्रह्मणा प्रोक्त ध्यान द्वादश धारणा ।
तुष्यत नियता युक्त समाधि. सोऽभिधीयते ॥२५

ध्यायन्न चलते यस्य मनोभिध्यायते भृशम् ।
प्राप्तयावधिकृतं कालं यावत्सा धारणा स्मृता ॥२६

ध्येये सक्तं मनो यस्य ध्येयमेवानुपश्यति ।
नान्यं पदार्थं जानाति ध्यानमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥२७

ध्येये मनो निश्चलतां याति ध्येयं विचिन्तयन् ।
यत्तद्ध्यानं परं प्रोक्तं मुनिभिर्ध्यानचिन्तकैः ॥२८

समस्त इन्द्रियों की विषयों में प्रवृत्ति होती हैं उसमें मन और इन्द्रियों की जो निवृत्ति होती है उसी को प्रत्याहार कहा गया है। विषयों से इन्द्रियों तथा मन का प्रत्याहरण अर्थात् निवृत्त कर लेना यानी हटा लेना ही इसका शब्दार्थ होता है ॥२२॥ इन्द्रियों को इन्द्रियों के अर्थों से यानी विषयों से समाहरण करके स्थित रहने वाला वह सहसा बुद्धि के साथ प्रत्याहारों में संस्थित होता है ॥२३॥ बारह प्राणायामों के द्वारा जितने समय तक वह स्थित रहता है उतने समय तक मन को ब्रह्म में धारण करे ॥२४॥ उसी अवस्था को ब्रह्म का ध्यान बताया गया है। बारह धारणा हैं। जब नियत एवं युक्त बुद्धि प्राप्त करता है तो उसको ही समाधि कहा जाता है ॥२५॥ इस प्रकार से ब्रह्म का ध्यान करते हुए जिसका मन चलित नहीं होता है और मन के द्वारा खूब अच्छी तरह ध्यान किया करता है। जब तक प्राप्तव्य की अवधि का काल होता है तब तक ध्यान का बना चले जाना ही धारणा कही जाती है ॥२६॥ ध्यान करने के योग्य जो लक्ष्य होता है वह ध्येय कहा जाता है, उस ध्येय में जिसका मन सक्त होता है और जो मन केवल ध्येय को ही देखा करता है, उस अपने ध्येय के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं जानता है उसको ही ध्यान कहते हैं ॥२७॥ अपने ध्येय का विशेष रूप से चिन्तन करते हुए जब उस ध्येय में मन निश्चलता अर्थात् स्थिर भाव को प्राप्त हो जाता है तो उस ध्यान को ध्यान के चिन्तन करने वाले मुनियों ने परमोत्तम ध्यान बतलाया है ॥२८॥

ध्येयमेव हि सर्वत्र ध्येयस्तन्मयतां गतः ।
पश्यति द्वैतरहितं समाधिः सोऽभिधीयते ॥२९

मन सङ्कल्परहितमिन्द्रियार्थान चिन्तयन् ।
यस्य ब्रह्मणि सलीन समाधिस्थस्त्वमुच्यस ॥३०
ध्यायत परमात्मानमात्मस्थ यस्य योगिन ।
मनस्तन्मयता याति समाधिस्थ स कीर्तित ॥३१
चित्तस्य स्थिरता भ्रान्तिर्दौर्मनस्य प्रमादता ।
योगिना कथिता दोषा योगविघ्नप्रवर्तका ॥३२
स्थित्यर्थं मनस सर्वं स्थूलरूप विचिन्तयेत् ।
तद्वत निश्चलीभूत सूर्य्यस्थ स्थिरता व्रजेत् । ३३
न विना परमात्मान किञ्चिज्जगति विद्यत ।
विश्वरूप तमवह इति ज्ञात्वा विमुञ्चति ॥३४
ओङ्कार परम ब्रह्म ध्यायदब्जस्थित विभुम् ।
क्षेत्राक्षेत्रज्ञरहित जपेन्मन्त्रद्वयान्वितम् ॥३५

सवत्र केवल एक मात्र ध्येय ही है और उस ध्येय के अतिरिक्त अन्य कहीं भी कुछ है ही नहीं, ऐसा ध्यान करते हुए ध्येय तन्मयता की दशा को प्राप्त हो जाता है। जिस समय द्वैत से रहित सवत्र देखता है अर्थात् ध्येय को छोड़ कर दूसरा कोई नहीं है ऐसा प्रतीत होता है उसी योग की अन्तिम अवस्था का नाम समाधि कहा जाता है ॥२९॥ जब योग के अभ्यासी व्यक्ति का मन सङ्कल्प से रहित हो जाता है और इन्द्रियों के अर्थों (विषयों) का चिन्तन बिल्कुल नहीं करता है तथा जिसका मन ब्रह्म में भली-भाँति लीन होता है तो उसी दशा को समाधिस्थता कहा जाता है ॥३०॥ परमात्मा का ध्यान करने वाले जिस योगी का आत्मा में स्थित मन तन्मय हो जाता है वह पुरुष समाधि में स्थित रहने वाला कहा गया है ॥३१॥ चित्त की अस्थिरता, भ्रान्ति, दौर्मनस्य अर्थात् मन का बुरी ओर जाना—प्रमादता ये योगियों के लिए दोष बताये गये हैं जो कि योगाभ्यास के कार्य में विघ्न करने वाले होते हैं ॥३२॥ मन की स्थिरता के लिये सब स्थूल रूप का विशेषत चिन्तन करना चाहिए। निश्चली भूत वह फिर सूर्य में स्थित होकर स्थिरता को प्राप्त होता है ॥३३॥ परमात्मा के बिना इस जगतीतल में कुछ भी नहीं है। उसी विश्वरूप को यहाँ नहीं है—

ऐसा जानकर त्याग करता है ।।३४।। ओङ्कार परम ब्रह्म है । उस विभु को पद्म पर स्थित रहने वाला ध्यान करे । क्षेत्र और अक्षेत्रज्ञ से रहित दो मन्त्रों से अन्वित का जप करना चाहिए ।।३५।।

हृदि सञ्चिन्तयेत्पूर्वं प्रधानं तस्य चोपरि ।
तमो रजस्तथा सत्त्व मण्डलं त्रितयं क्रमात् ।।३६
कृष्णरक्तसितं तस्मिन्पुरुषं जीवसंज्ञितम् ।
तस्योपरि गुणैश्वर्य्यमष्टपत्रं सरोरुहम् ।।३७
ज्ञानं तु कर्णिका तत्र विज्ञानं केशरं स्मृतम् ।
वैराग्यं नालं तत्कन्दो वैष्णवो धर्म उत्तमः ।।३८
कर्णिकायां स्थित तत्र जीववन्निश्चलं ततः ।
ध्यायेदुरसि संयुक्तमोङ्कारं मुक्तिसाधकम् ।।३९
ध्यायन् यदि त्यजेत्प्राणान्याति ब्रह्मणः सन्निधम् ।
हरिं संस्थाप्य देहाब्जे ध्यायन् योगी च भक्तिभाक् । ४०
आत्मानमात्मना केचित्पश्यन्ति ध्यानचक्षुषा ।
सांख्यबुद्ध्या तथैवान्ये योगेनानेन योगिनः ।।४१
ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं भवबन्धविभेदनम् ।
तत्रैकचित्तता योगो मुक्तिदो नात्र संशयः ।।४२

सर्व प्रथम हृदय में प्रधान का भली-भाँति चिन्तन करना चाहिए । उसके ऊपर तम, रज तथा सत्त्व के इस त्रितय मण्डल का क्रम से चिन्तन करना चाहिए ।।३६।। उसमें कृष्ण-रक्त और सित जीव संज्ञा वाले पुरुष का चिन्तन करे। उसके ऊपर गुणैश्वर्य्य, आठ पत्रों वाले सरोरुह का चिन्तन करना चाहिए ।।३७।। उसमें ज्ञान तो कर्णिका है और विज्ञान उसके केशर बताया गया है । वैराग्य उसका कमल नाल है और उत्तम वैष्णव धर्म उसका कन्द है ।।३८।। उसमें कर्णिका में स्थित जीव की भाँति निश्चल-मुक्ति का साधक संयुक्त ओङ्कार का उरःस्थल में ध्यान करना चाहिए ।।३९।। यदि इस प्रकार से ध्यान करते हुए योगाभ्यासी पुरुष प्राणों को त्याग देता है तो वह ब्रह्म की सन्निधि में चला जाता है । इस देह के कमल में हरि को संस्थापित करके उनका

ध्यान करता हुआ योगी भक्ति को प्राप्त करने वाला माना है ॥४०॥ कुछ योगी जन आत्मा के द्वारा आत्मा का ध्यान रूपी नेत्र से देखा करते हैं। दूसरे साख्य की बुद्धि (ज्ञान) से तथा अन्य लोग (योगीजन) इस योग के द्वारा देखते हैं। ॥४१॥ ब्रह्म के प्रकाश करने वाला ज्ञान भव (संसार) के बन्धनों का विशेष रूप से भेदन करने वाला है। चित्त की एकाग्रता का हो जाना ही योग होता है और मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है—इसमें लेशमात्र भी कोई संशय नहीं है ॥४२॥

जितेन्द्रियात्मकरणो ज्ञानदक्षो हि या भवेत् ।
स मुक्त कथ्यते योगी परमात्मा घवस्थित ॥४३
आसनस्थानविषया न योगस्य प्रसाधका ।
विलम्बजनका सर्वे विस्तरा परिकीर्त्तिता ॥४४
शिशुपाल सिद्धिमाप स्मरणाभ्यासगौरवात् ।
योगाभ्यास प्रकुर्वन्त पश्यन्त्यात्मानमात्मना ॥४५
सर्वभूतेषु कारुण्य विद्वे प विवर्जयेच ।
जुम्हशिश्नोदरादिभ्य मुञ्चन् योगी विमुच्यते ॥४६
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांस्तु न जानाति नरो यदा ।
काष्ठवद् ब्रह्मसलीनो योगी मुक्तस्तदा भवेत् ॥४७
सर्ववर्णा स्त्रिय सर्वा हुत्वा पापानि भस्मसात् ।
ध्यानाग्निनो च मधावी लभन्ते परमा गति म् ॥४८
मन्थनाद् दृश्यते ह्यग्निस्तद्वद् ध्यानेन वै हरि ।
ब्रह्मात्मनायदैक्त्व स योगश्चोत्तमोत्तम ॥४९
वाह्यरूपेन मुक्तिस्तु चान्तस्थे ध्यानयमादिभि ।
साङ्ख्ययज्ञानेन योगेन वेदान्तश्रवणेन च ॥५०
प्रत्यक्षतात्मना या हि सा मुक्तिरभिधीयते ।
अनात्मयात्मरूपत्वमसत सत्स्वरूपता ॥५१

इन्द्रियों को जीतकर आत्म करण जो ज्ञान दक्ष होता है वह परमात्माऽवस्थित योगी मुक्त कहा जाता है ॥४३॥ आसन, स्थान और विषय योग

के प्रसाधक नहीं होते हैं। ये सब विलम्ब के जनक होते हैं और विस्तार ही बताये गये हैं ॥४४॥ स्मरण के अभ्यास के गौरव से शिशुपाल ने सिद्धि को प्राप्त कर लिया था। योगाभ्यास को करते हुए आत्मा के द्वारा आत्मा को देखते हैं ॥४५॥ समस्त भूतों पर करुणा और विषयों में विद्वेष करते हुए शिश्न और उदर आदि को लुप्त करने वाला योगी विमुक्त हो जाता है ॥४६॥ जिस समय में इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियों के अर्थों को मनुष्य नहीं जानता है और एक काष्ठ की भाँति रहकर ब्रह्म में लीन हो जाता है तो उस समय में वह योगी मुक्त हो जाता है ॥४७॥ समस्त वर्णों वाले पुरुष और सब स्त्रियाँ पापों को भस्मसात् करके अर्थात् मेधा वाले ध्यान की अग्नि से समस्त पापों को जलाकर अन्त में परम गति को प्राप्त किया करते हैं ॥४८॥ यागादि में अरणी आदि के मन्थन करने से अग्नि उत्पन्न होकर दिखलाई दिया करती है जो कि मन्थन करने के पूर्व में उसमें नहीं दीखती है उसी भाँति ध्यान के करने से हरि भी प्रकट होकर दिखलाई दिया करते हैं जो कि सर्वत्र विद्यमान रहते हुए भी किसी को ध्यान के पूर्व मालूम नहीं हुआ करते हैं। जो ब्रह्म और आत्मा की एकता होती है वही योग उत्तम से भी उत्तम होता है। योग का शब्दार्थ ही ब्रह्म और आत्मा के एक साथ जुड़ जाने वाला होता है ॥४९॥ बाह्य रूप वाले नहीं बल्कि अन्तःस्थ अर्थात् अन्दर में रहने वाले यम आदि के द्वारा मुक्ति हुआ करती है। साँख्य दर्शन के ज्ञान से, योग से और वेदान्त दर्शन के श्रवण से आत्मा की जो प्रत्यक्षता होती है वही मुक्ति कहलाती है। उसमें अनात्मा में आत्मरूपता और असत् की सत्स्वरूपता होती है ॥५०।५१॥

१२३---गीतासार

गीतासारं प्रवक्ष्यामि अर्जु नायोदितं पुरा ।
अष्टाङ्गयोगयुक्तात्मा सर्ववेदान्तपारगः ॥१
आत्मलाभः परो नान्य आत्मदेहादिवर्जितः ।
रूपादिहीनदेहान्तःकरणत्वादिलोचनम् ॥२
विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्तोऽहं प्रतीयते ।
नाहमात्मा च दुःखादि संसारादिसमन्वयात् ॥३

विधूम इव दीप्तार्चिरादीप्त इव दीप्तिमान् ।
वैद्युताग्निरिवाकाशे हृत्मङ्गे आत्मनात्मनि ॥४
क्षान्तादीनि न पश्यन्ति स्व स्वमात्मानमात्मना ।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी च क्षेत्रज्ञस्तानि पश्यति ॥५
यदा प्रकाशते ह्यात्मा पटे दीपो ज्वलन्निव ।
ज्ञानमुत्पद्यते पुंसा क्षयात्पापस्य कर्मणः ॥६
यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्चकम् ॥७
मनोबुद्धिरहङ्कारमव्यक्तं पुरुषं तथा ।
प्रसंख्याय पराव्याप्तौ विमुक्तो बन्धनैर्भवेत् ॥८

श्री भगवान् ने कहा—अब हम भगवद्गीता का सार तुमको बतलाते हैं जो कि पहिले भगवान् श्रीकृष्ण ने भारत के युद्धस्थल में अर्जुन को बतलाया था। आठ यम-नियम-ध्यान-धारणा आदि अङ्गों वाले योग से युक्त आत्मा सम्पूर्ण वेदान्त का पारग भी आत्म लाभ हो पर है तथा आत्म लाभ आदि वर्णित अन्य नहीं। रूप आदि से हीन देह और अन्तःकरण आदि साधन हैं ॥१।२॥ विज्ञान से रहित प्राण हैं मैं सुषुप्त हूँ—ऐसा प्रतीत होता है। देह आदि और संसार आदि के मध्य बन्ध में मैं आत्मा नहीं हूँ ॥३॥ धूम रहित दीप्त अग्नि की भाँति दीप्तिमान् प्रादीप्त की तरह और आकाश में वैद्युत (बिजली से सम्बन्ध रखने वाली) अग्नि के समान हृत्मङ्ग आत्मा में आत्मा के द्वारा श्रोत्रादिक आत्मा से अपनी आत्मा को नहीं देखते हैं। सबका जानने वाला, सब कुछ को देखने वाला जो क्षेत्रज्ञ है वह ही उनको देखा करता है ॥४।५॥ पट में जलते हुए दीप की भाँति जिस समय में आत्मा प्रकाश किया करता है पाप कर्मों के क्षय से मनुष्य को ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥६॥ जिस तरह से आदर्श (शीशा) तल प्रख्य में आत्मा में आत्मा को देखता है उसी प्रकार से इन्द्रियों इन्द्रियों के अर्थों को, पाँच महाभूतों को, मन बुद्धि अहङ्कार को अव्यक्त और पुरुष को देखता है और पराव्याप्ति में प्रसंख्य के लिए बन्धनों से विमुक्त हो जाता है ॥७।८॥

इन्द्रियग्राममखिलं मनसाभिनिवेश्य च ।
मनश्चैवाप्यहङ्कारे प्रतिष्ठाप्य च पाण्डव ।।९
अहङ्कारं तथा बुद्धौ बुद्धिञ्च प्रकृतावपि ।
प्रकृतिं पुरुषे स्थाप्य पुरुषं ब्रह्मणि न्यसेत् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रसंख्याय विमुच्यते ।।१०
नवद्वारमिदं गेहं तिसृणां पञ्चसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स वरः कविः ।।११
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
ज्ञानयज्ञस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।१२
यमश्च नियमः पार्थ आसनं प्राणसंयमः ।
प्रत्याहारस्तथा ध्यानं धारणार्जुन सप्तमी ।
समाधिरिति चाष्टाङ्गो योग उक्तो विमुक्तये ।।१३
कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।
हिंसाविरामको धर्मो ह्यहिंसा परम सुखम् ।।१४

हे पाण्डव ! सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को मन से अभिनिवेशित करके और मन को अहङ्कार में प्रतिष्ठित करके, अहङ्कार को बुद्धि में और बुद्धि को प्रकृति में तथा प्रकृति को पुरुष में स्थापित करके फिर पुरुष को ब्रह्म में विन्यस्त करना चाहिए। इसके अनन्तर मैं ही परब्रह्म ज्योति स्वरूप हूँ—ऐसा प्रसंख्य करके विमुक्त हो जाता है ।।९।१०।। तीनों का यह नौ द्वारों वाला घर है और पाँच साक्षियों वाला है तथा क्षेत्रज्ञ के द्वारा यह अधिष्ठित है जो विद्वान् इस तरह जानता है वह श्रेष्ठ कवि है ।।११।। एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और एक सौ वाजपेय यज्ञ भी सब ज्ञान यज्ञ की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हो सकते हैं ।।१२।। श्री भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और हे पार्थ ! सातवीं धारणा तथा समाधि में आठ अङ्गों वाला योग होता है जो विमुक्ति के लिये बताया गया है ।।१३।। कर्म-मन और वाणी से समस्त भूतों में सर्वदा हिंसा से विराम रखने वाला धर्म होता है और अहिंसा परम सुख हुआ करता है ।।१४।।

विधिना या भवेद्धिंसा सा त्वहिंसा प्रकीर्त्तिता ।
सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥१५
यच्च द्रव्यापहरणं चौर्याद्वाथ बलेन वा ।
स्तेयं तस्यानाचरणं अस्तेयं धर्मसाधनम् ॥१६
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥१७
द्रव्याणामप्यनादानमापत्स्वपि तथेच्छया ।
अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥१८
द्विधा शौचं मृज्जलाभ्यां बाह्यं भावादथान्तरम् ।
यदृच्छालाभतस्तुष्टिः सन्तोषः सुखमक्षयम् ॥१६
मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च एकाग्र्यं परमं तपः ।
शरीरशोषणं वापि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥२०
वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः ।
सत्वशुद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ॥२१

यागादि में विधि का अङ्ग जो भी कोई हिंसा बताई गई है वह हिंसा न होकर सदा अहिंसा ही कही गई है। सदा सत्य भाषण करना चाहिए और वह सत्य भी सबको श्रोत सुख देने वाला प्रिय हो ऐसा ही बोले। जो सत्य भी अप्रिय हो तो उसे कभी न बोलना चाहिए। ऐसा प्रिय भी कभी न कहे जो मिथ्या है—यह ही सनातन (सर्वदा से चले आने वाला) धर्म होता है ॥१५॥ चोर कर्म के द्वारा या बल पूर्वक जो पराये द्रव्य का अपहरण करता है वही स्तेय कहा जाता है। उस स्तेय कर्म का न करना ही अस्तेय होता है और अस्तेय का आचरण ही धर्म का एक साधन होता है अर्थात् यह भी धर्म का एक अङ्ग होता है ॥१६॥ दश प्रकार के धर्म के अङ्गों में एक ब्रह्मचर्य भी है। कर्म, मन और वाणी से सभी अवस्थाओं में सर्वदा और सर्वत्र जो मैथुन का त्याग कर देना है उसी को ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥१७॥ आपत्ति के समय में भी इच्छा से द्रव्यों का जो न लेना है उसी को अपरिग्रह कहते हैं उसको अर्थात् परिग्रह

को प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए ।।१८।। शौच (शुद्धि) दो प्रकार का होता है । बाह्य शौच मिट्टी और जल से होता है तथा आन्तरिक शौच शुद्ध भाव के रखने से होता है । जो कुछ स्वतः ही बिना किसी प्रयत्न के यदृच्छा से प्राप्त हो जावे उसी से सन्तुष्ट हो जाना सन्तोष कहलाता है और यह अक्षय सुख होता है ।।१६।। मन तथा समस्त इन्द्रियों की जो एकाग्रता होती है वही सबसे श्रेष्ठ परम तप है । कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों के द्वारा जो शरीर का शोषण किया जाता है वह भी तपस्या होती है ।२०। बुध लोग द्वारा वेदान्त शत रुद्रीय और प्रणव आदि का जो जाप तथा पठन होता है वह सत्त्व की शुद्धि करने वाला पुरुषों का होता है उसे स्वाध्याय कहते हैं ।।२१।।

स्तुतिस्मरणपूजादिवाङ्मनःकायकर्मभिः ।
अनिश्चला हरौ भक्तिरेतदीश्वरचिन्तनम् ।।२२
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा ।
प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् ।।२३
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वसत्स्विव ।
नियमं प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु पाण्डव ।।२४
मूर्त्तामूर्त्तब्रह्मरूपचिन्तनं ध्यानमुच्यते ।
योगारम्भे मूर्त्तहरिममूर्त्तमपि चिन्तयेत् ।।२५
अग्निमण्डलमध्यस्थो वायुदेवश्चतुर्भुजः ।
शङ्खचक्रगदापद्मयुक्तः कौस्तुभसंयुतः ।।२६
वनमाली कौस्तुभेन यतोऽहं ब्रह्मसंज्ञकः ।
धारणेत्युच्यते चेयं धार्य्यते यन्मनोलये ।।२७
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिरभिधीयते ।
अहं ब्रह्मास्मि वाक्याच्च ज्ञानान्मोक्षो भवेन्नृणाम् ।।२८
अद्वयानन्दचैतन्यं लक्षयित्वा स्थितस्य च ।
ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म अहं ब्रह्मपदार्थयोः ।।२९

भगवान् की स्तुति, प्रभु का स्मरण, परमात्मा का अर्चन आदि को वाणी, मन और शारीरिक कर्मों के द्वारा करना तथा हरि में अनिश्चल भक्ति

का करना ही ईश्वर का चिन्तन कहा जाता है ॥२२॥ आसनों में स्वस्तिकासन पद्मासन और अर्द्धासन कहे गये हैं। प्राणायाम का तात्पर्य यह है कि स्वदेहज जो प्राण वायु है उसका आयाम अर्थात् उसका निरोध किया जाता है ॥२३॥ असत् विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों का रोकना ही सत्पुरुषों के द्वारा नियम कहा जाता है। विषयों से मन आदि का प्रत्याहरण करने अर्थात् हटाने को ही योग में प्रत्याहार हे पाण्डव! कहा जाता है ॥२४॥ मूर्त तथा अमूर्त स्वरूप वाले ब्रह्म का जो चिन्तन किया जाता है उसी को ध्यान कहते हैं। योग ध्यान के आरम्भ काल में हरि के मूर्त स्वरूप का तथा उनके अमूर्त स्वरूप का भी चिन्तन करना चाहिए ॥२५॥ अग्नि मण्डल के मध्य में स्थित चार भुजाओं वाले वासुदेव हैं जो शङ्ख चक्र गदा और पद्म इन चारों आयुधों से युक्त हैं और कौस्तुभ मणि से समन्वित है।२६। वनमाली और कौस्तुभ से युक्त मैं ही ब्रह्म की संज्ञा वाला हूँ—इस तरह से मनोयोग से जो धारण किया जाया करता है इसीलिये इसको योग में धारणा कहा जाया करता है ॥२७॥ मैं ही ब्रह्म हूँ इस प्रकार का जो अवस्थान है उसी को समाधि कहा जाता है। अहं ब्रह्मास्मि—अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ इस तरह के वाक्य से और इस प्रकार के ज्ञान से मनुष्यों का मोक्ष होता है ॥२८॥ श्रद्धा से स्थित आनन्द चैतन्य को लक्ष्य करके मैं ब्रह्म हूँ, ब्रह्म मैं ही हूँ और ब्रह्म और अहं पदार्थों में ब्रह्म ही है ॥२९॥

१२४ प्राणेश्वर मन्त्र विधान

प्राणेश्वर गारुडञ्च शिवोक्तं प्रवदाम्यहम्।
स्थानानि यादौ प्रवक्ष्यामि नागदष्टो न जीवति ॥१
चितावल्मीकशैलादौ कूपे च विवरे तरौ।
दष्टो रेखात्रयं यस्य प्रच्छन्नं स न जीवति ॥२
षष्ठ्यां च कर्कटे मेषे मूलाश्लेषामघादिषु।
कक्षाश्रोणिगले सन्धौ शङ्खकर्णोदरादिषु ॥३
दण्डी शस्त्रधरो भिक्षुर्नग्नादिः कालदूतकः।
बक्त्रे बाहौ च ग्रीवायां पृष्ठे च न हि जीवति ॥४

पूर्वं दिनपतिर्भुङ्क्ते अर्द्धयामं ततोऽपरे ।
शेषा ग्रहाः प्रतिदिन षट्संख्यापरिवर्त्तनैः ॥५
नागभोगः क्रमाज्ज्ञेयो रात्रौ बाणविवर्त्तनैः ।
शेषोऽर्कः फणिपश्चन्द्रस्तक्षको भौम ईरितः । ६
कर्कोटोज्ञो गुरुः पद्मो महापद्मश्च भार्गवः ।
शङ्खः शनैश्चरो राहुः कुलिकश्चाह्वयो ग्रहाः ॥७
रात्रौ दिवा सुरगुरोर्भागे स्यादमरान्तकः ।
पङ्क्तेः कालो दिवा राहुः कुलिकेन सह स्थितः ।
यामार्द्धार्द्धसन्धिसंस्थः वेला कालवतीञ्चरेत् ॥८

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं शिव के द्वारा कथित प्राणेश्वर गारुड़ को कहता हूँ । सबके आदि में मैं उन स्थानों के विषय में बतलाता हूँ जहाँ पर नाग के द्वारा काटे जाने पर मनुष्य जीवित नहीं रहा करता है ॥१॥ चिता अर्थात् श्मशान भूमि, बल्मीक अर्थात् सर्प के रहने की बाँबी और पर्वत आदि में, कूप में और वृक्ष के विवर अर्थात् खौंतर में दंश करने पर जिसकी प्रच्छन्न तीन रेखाऐं हों वह कभी जीवित नहीं रहता है ॥२॥ षष्ठी तिथि में, कर्क, मेष, मूल, आश्लेषा और मघा आदि नक्षत्रों में, कक्षा, श्रोणि, गला, सन्धि भाग, शङ्खकर्ण और उदर आदि में दण्डी, शस्त्र धारण करने वाला, भिक्षु और नग्न आदि मुख, बाहु, ग्रीवा (गरदन) और पृष्ठ में दशन किये जाने पर जीवित नहीं रहता है ॥३।४॥ पहिले दिनपति सूर्य्य भोग करता है जिसका समय अर्द्ध प्रहर होता है । इसके उपरान्त शेष ग्रह प्रति छै की संख्या के परिवर्त्तनों से भोग किया करते हैं ॥५॥ बाण के विवर्त्तनों के द्वारा क्रम से नाग भोग जानना चाहिए । शेष तो अर्क (सूर्य) है, फणिप चन्द्रमा है और तक्षक को भौम कहा गया है ।६। कर्कोट को बुध तथा पद्म को गुरु (बृहस्पति) और महापद्म को शुक्र, शङ्ख शनैश्चर और कुलिक राहु कहा जाता है । इस रीति से ये अहि ग्रह होते हैं ॥७॥ रात्रि-दिन में अमरान्तक सुर गुरु के भाग में होता है । पङ्क्ति का काल दिवस है और राहु कुलिक के साथ स्थित रहता है । याम के अर्द्धार्द्ध सन्धि में संस्थित होता हुआ कालवती वेला का सञ्चरण किया करता है ॥८॥

वाणाद्विषड्वह्निवाजियुगभूरेकमागत. ।
दिवा षड्वेदनेत्राद्रिपञ्चत्रिमानुपाशके ॥९
पादाङ्गुष्ठे पादपृष्ठे गुल्फे जानुनि लिङ्गके ।
नाभौ हृदि स्तनपुटे कण्ठे नासापुटेऽक्षिणि ।
कर्णयोश्च भ्रुवो शङ्खे मस्तके प्रतिपत्क्रमात् ॥१०
तिष्ठेच्चन्द्रश्च जीवेत्र पुंसो दक्षिणभागके ।
कायस्य वामभागे तु स्त्रिया वायुवहात्करात् ।
अमवत्त्वत्कृतो मोहो निवर्त्तेत च मर्दनात् ॥११
आत्मनः परम बीज हमाख्य स्फटिकामलम् ।
ज्ञातव्य विषपापघ्न बीज तस्य चतुर्विधम् ॥१२
बिन्दुपञ्चस्वरयुग्माद्यमुक्त द्वितीयकम् ।
षष्ठारूढ तृतीय स्यात्सविसर्ग चतुर्थकम् । १३
ॐ कुरु कुन्दे स्वाहा ।
विद्या त्रैलोक्यरक्षार्थं गरुडेन धृता पुरा ॥१४
बध्येत्सुर्नागनागाना मुखेऽथ प्रणव न्यसेत् ।
गले कुरु न्यसेद्धीमान् कुन्दे च गुल्फयो स्मृत. ।
स्वाहा पादयुगे चैव युगहा स्यात ईरित ॥१५

पाँच दो, छः, तीन, सात, चार और एक मास से दिन मे छः, चार, दो सात, पाँच, तीन मानुपाशो के द्वारा पैर के अँगूठे मे, पाद पृष्ठ मे, गुल्फ मे, जानु (घुटना) मे लिङ्ग मे नाभि मे, हृदय में, स्तन पुट मे, कण्ठ म, नासापुट मे नत्र म, कानो मे भ्रूओ मे, शङ्ख म और मस्तक म प्रतिपदा के क्रम से पुरुष के दक्षिण भाग मे चन्द्र स्थित रहता है और वह नहीं जीवित रहता है। स्त्री के शरीर के वाम भाग म तो व यु वह कर से मर्दन करने से अमवत्त्व कृत मोह दूर हो जाया करता है ॥९।१०।११॥ स्फटिक के समान निर्मल हम नाम वाला आत्मा का परम बीज जान लेना चाहिए। उसका विष और पाप का हनन करने वाला बीज है और उसके चार प्रकार हैं ॥१२॥ बिन्दु पञ्च स्वर से युक्त आद्य और द्वितीय बताया गया है, तृतीय षष्ठारूढ होता है तथा

चतुर्थ विसर्ग से समन्वित होता है ॥१३॥ "ॐ कुरु कुन्दे स्वाहा"—यह मन्त्र विद्या का स्वरूप है। प्राचीन समय में गरुड़ ने इस विद्या को धारण किया था ॥१४॥ नागों के वध करने की इच्छा वाले पुरुष को मुख में प्रणव का न्यास करना चाहिए। इसके अनन्तर फिर धीमान् पुरुष को गले में 'कुरु'—इसका न्यास करना चाहिए। "कुन्दे"—इस पद का न्यास दोनों गुल्फों में बताया गया है। और 'स्वाहा'—इसका न्यास दोनों पदों में युग का हनन करने वाला कहा गया है ॥१५॥

गृहेऽपि लिखितो यत्र तन्नागाः सन्त्यजन्ति च।
सहस्रमन्त्रं जप्त्वा तु कर्णे सूत्रं धृतं तथा ॥१६
यद्गृहे शर्करा जप्ता क्षिप्ता नागास्त्यजन्ति तम्।
जप्तलक्षस्य जप्याद्धि सिद्धिः प्राप्ता सुरासुरैः ॥१७
ॐ सुवर्णरेखे कुक्कुटविग्रहरूपिणि स्वाहा।
एवञ्चाष्टदले पद्मे दले वर्णयुगं लिखेत्।
नामैतद्वारिधाराभिः स्नातो दष्टो विषं त्यजेत् ॥१८
ॐ पक्षि स्वाहा।
अँगुष्ठादि कनिष्ठान्तं करे न्यस्याथ देहके।
के वक्त्रे हृदि लिङ्गे च पादयोर्गरुड़ः स हि ॥१९
नाक्रामन्ति च तच्छायां स्वप्नेऽपि विषपन्नगाः।
यस्तु लक्षं जपेच्चास्याः स दृष्ट्वा नाशयेद्विषम् ॥२०
ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं भिरुण्डायै स्वाहा।
कर्णे जप्ता त्वियं विद्या दष्टकस्य विषं हरेत् ॥२१

जिस घर में भी यह लिखा हुआ रहता है उस गृह को भी नाग त्याग दिया करते हैं। इसका महान् प्रभाव होता है। इस मन्त्र का एक सहस्र बार जाप करके कान में सूत्र को धारण करे ॥१६॥ जिस घर में इस उपर्युक्त मन्त्र से शर्करा को अभिमन्त्रित करके उसका प्रक्षेप किया जावे तो उस घर को नाग स्वयं ही त्याग कर चले जाया करते हैं। इस मन्त्र का एक लाख जाप करने पर इस जाप से सुर और असुरों ने सिद्धि की प्राप्ति की है ॥१७॥ दूसरे मन्त्र

का स्वरूप "ॐ सुवर्ण रेखे कुक्कुट विग्रह रूपिणि स्वाहा" यह है। इस प्रकार से अष्ट दल वाले पद्म के दल में दो वर्णों को लिखना चाहिए। इस नाम से जल की धाराओं से स्नान करवाने पर जिस पुरुष को दंशन किया गया है उसका विष नष्ट हो जाता है ॥१८॥ तीसरे मन्त्र का स्वरूप यह है—"ॐ पक्षि स्वाहा" अँगूठे से कनिष्ठिका पर्यन्त कर में न्यास करके देहक में, के मुख में, हृदय और लिङ्ग में तथा दोनों पदों में न्यास करे। वह निश्चय ही गरुड़ है ॥१९॥ बड़े-बड़े विषधारी सर्प भी उसकी छाया को स्वप्न में भी कभी आक्रान्त नहीं किया करते हैं। जो पुरुष इस मन्त्र का एक लाख जाप कर लेता है उसमें तो इसके प्रभाव से ऐसी शक्ति समुत्पन्न हो जाया करती है कि वह सर्प दष्ट पुरुष को देख कर ही उसके विष का नाश कर दिया करता है ॥२०॥ चतुर्थ मन्त्र का स्वरूप यह है—"ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं भिरुण्डायै स्वाहा"। इस मन्त्र की विद्या को कान में जाप करके सुना देने पर ही जिसको सर्प ने काटा है उसका विष नष्ट हो जाता है ॥२१॥

अ आ न्यसेत्तु पादाग्रे इ ई गुल्फेऽथ जानुनि ।
उ ऊ ए ऐ कटितटे ओ नाभौ हृदि औ न्यसेत् ॥२२
वक्त्रे अमुत्तमाङ्गे अः न्यसेच्च हंसमयुता ।
हन्ति विषादि च हंसजप्ता ध्यातोऽयं पूजितः ॥२३
गरुडोऽहमिति ध्यात्वा कुर्य्याद्विषहरीं क्रियाम् ।
हं मन्त्रं गात्रविन्यस्तं विषादिहरमीरितम् ॥२४
न्यस्य हंसं वामकरे नासामुखनिरोधकृत् ।
मन्त्रो हरेद्दष्टकस्य रक्तमांसादिगतं विषम् ॥२५
स वायुना समाकृष्य दष्टानां गरलं हरेत् ।
ततो न्यसेद्दष्टकस्य नीलकण्ठादि सम्मरेत् ॥२६
पीतं प्रत्यङ्गिरामूलं तण्डुलाद्भिर्विषापहम् ।
पुनर्नवाफलिनीनां मूलं नक्तजमीदृशम् ॥२७
मूलं शुक्लबृहत्यास्तु कर्कोटया गैरिकणिकम् ।
अद्भिर्वृष्टं घृतोपेतं लेपोऽयं विषमर्दनः ॥२८

अ और आ इसका न्यास पाद के अग्र भाग में करे तथा इ ई इसका गुल्फ में और इसके अनन्तर जानु (घुटने) में उ ऊ का न्यास करे तथा ए ऐ का कटि तट में, 'ओ' का न्यास नाभि में और औ का न्यास हृदय में करना चाहिए ।।२२।। हंस से संयुत मुख में और उत्तमाङ्ग में 'अः'—इसका न्यास करें। यह हंस जाप किया हुआ, ध्यान किया हुआ और समचित होता हुआ सम्पूर्ण विष आदि का नाश कर दिया करता है। मैं स्वयं ही गरुड़ हूँ—ऐसा ध्यान करके ही विष के हरण कर देने वाली क्रिया को करना चाहिए। हं मन्त्र को जिस समय में गात्र में विन्यस्त किया जाता है तो वह विष आदि के हरण करने वाली कही जाने वाली विद्या है ।।२३।।२४।। वाम कर में हंस का न्यास करके नाक और मुख का निरोध करने वाला होता है। यह मन्त्र दष्ट किये हुए पुरुष के त्वचा और मांस आदि में प्राप्त होने वाले विष का नाश कर देता है। ।।२५।। वह वायु के द्वारा समाकर्षण करके दष्ट किये हुए पुरुष के गरल का उसे हरण करना चाहिए। दष्ट पुरुष के शरीर में न्यास करे और उस समय में नीलकण्ठ आदि का स्मरण करना चाहिए ।।२६।। चावलों के जल के साथ प्रत्यङ्गिरा की जड़ का पान करने से विष का अपहरण हो जाता है। फिर पुनर्नवा (सांठ), फनिनी और वकज के मूल का भी इसी प्रकार से पान करना चाहिए ।।२७।। शुक्लबृहती का मूल, कर्कोटी के साथ गैरिकार्णिक को जल के साथ घिस कर उसका लेप करने से विष का मर्दन हो जाता है ।।२८।।

विषवृद्धि न व्रजेच्च उष्णं पिबति यो घृतम् ।
पञ्चाङ्गन्तु शिरीषस्य मूलं गृञ्जनजं तथा ।।२६
सर्वाङ्गलेपतश्चापि पानाद्वा विषहृद्भवेत् ।
ॐ ह्रीं गोनसादिविषहृत् ।।३०
हृल्ललाटविसर्गान्तं ध्यातं वश्यादिकृद्भवेत् ।
न्यस्तं योनौ बधेत् कन्यां कुर्य्यान्मदजलाविलाम् ।।३१
जप्त्वा सप्ताष्टसाहस्रं गरुत्मानिव सर्वगः ।
कविः स्याच्छ्रुतिधारी च वश्यांस्त्रीं च समाप्नुयात् ।
विषहृत्स्यात् कथातत्त्वं मुनेर्व्यासस्य ते ध्रुवम् ।।३२

जो उष्ण घृत का पान करता है उसके विष की वृद्धि नहीं हुआ करती है। शिरीष वृक्ष के पाँचों अङ्ग अर्थात् मूल, फल, पत्ता, पुष्प और छाल और गाजर के मूल को लेकर मद्य अग पर लेप करने से अथवा पान करने से विष का हरण होता है। 'ॐ ह्रीं'—यह मन्त्र गोतस आदि के विष का हरण करने वाला है ॥२६॥३०॥ हृदय, ललाट और विसर्ग के अन्त पर्य्यन्त ध्यान करने पर वश्य आदि के करने वाला होता है। यदि इसका योनि में न्यास किया जावे तो कन्या को वशीभूत कर देता है और उसे मद जल से प्लावित अर्थात् उन्मत्त कर देता है ॥३१। अष्ठ लाख सहस्र इस मन्त्र का जाप करने से गरुड की भाँति सर्वत्र गमन करने वाला हो जाता है, कवि और श्रुतिधारी हो जाया करता है तथा स्त्री को वश्य बनाकर प्राप्त करता है। यह विष का हरण करने वाला व्यास मुनि का कथास्त्व अपको बतला दिया है ॥३२॥

१२५--सुदर्शन पूजा विधान

सुदर्शनस्य पूजां मे वद शङ्खगदाधर ।
ग्रहरोगादिकं सर्वं यत्कृत्वा नाशमेति वै ॥१
सुदर्शनस्य चक्रस्य शृणु पूजां वृषध्वज ।
स्नानमादौ प्रकुर्वीत पूजयेच्च हरिं ततः ॥२
मूलमन्त्रेण वै न्यासं मूलमन्त्रं शृणुष्व च ।
सहस्रार हुं फट् नमो मन्त्रः प्रणवपूर्वकः ॥
कथितः सर्वदुष्टानां नाशको मन्त्रभेदकः ॥३
ध्यायेत् सुदर्शनं देवं हृदि पद्मेऽमले शुभे ।
शङ्खचक्रगदापद्मधरं सौम्यं किरीटिनम् ॥४
आवाह्य मण्डले देवं पूर्वोक्तविधिना हर ।
पूजयेत् गन्धपुष्पाद्यै रुपचारैर्महेश्वर ॥५
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं नरः ।
एवं यः कुरुते रुद्र चक्रस्यार्चनमुत्तमम् ॥६
सर्वरोगविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं समाप्नुयात् ।
एतत्स्तोत्रं जपेत्पश्चात् सर्वव्याधिविनाशनम् ॥७

श्री रुद्र ने कहा—हे शङ्ख और गदा के धारण करने वाले भगवन् ! अब आप कृपाकर सुदर्शन की पूजा बतला इये जिसके करने से ग्रह रोग आदि समस्त नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥१॥ भगवान् श्री हरि ने कहा—हे वृषध्वज ! अब आप सुदर्शन चक्र की पूजा जो मैं आपको बतलाता हूँ उसका आप श्रवण करो। सबसे प्रथम स्नान करना चाहिए फिर हरि की अर्चना करे ॥२॥ इसके उपरान्त मूल मन्त्र के द्वारा न्यास करना चाहिए। अब मूल मन्त्र को सुनो। पहिले प्रणव (ओम्) लगा कर 'सहस्रारं हुं फट् नमः' यह मूल मन्त्र है। यह मन्त्रों का भेदन करने वाला समस्त दुष्टों का नाश करने वाला मन्त्र बता दिया गया है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर परम शुभ विशुद्ध हृदय में सुदर्शन देव का ध्यान करना चाहिए। सुदर्शन का स्वरूप शङ्ख—चक्र—गदा और पद्म को धारण करने वाला किरीट धारी और सौम्य होता है ॥ ४ ॥ इस स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। हे हर ! मण्डल में सुदर्शन देव का आवाहन करके पूर्व में जो बताई विधि से हे महेश्वर ! गन्ध क्षत पुष्प आदि पूजन के आवश्यक उपचारों के द्वारा सुदर्शन का पूजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ इस तरह से पूजन करने के पश्चात् अष्टोत्तर शत मन्त्र का जाप करे। हे रुद्र ! जो इस प्रकार से सुदर्शन चक्र के उत्तम पूजन को करता है वह सब प्रकार के रोगों से विमुक्त होकर अन्त में भगवान् विष्णु के लोक की प्राप्ति किया करता है। इसके पीछे सब व्याधियों के विनाश करने वाले सुदर्शन के स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥

नमः सुदर्शनायैव सहस्रादित्यवर्चसे ।
ज्वालमालाप्रदीप्ताय सहस्राराय चक्षुषे ॥८
सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने ।
सुचक्राय विचक्राय सर्वमन्त्रविभेदिने ॥९
प्रसवित्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वंसिने नमः ।
पालनार्थाय लोकानां दुष्टासुरविनाशिने ॥१०
उग्राय चैव सौम्याय चाण्डाय च नमो नमः ।
नमश्चक्षुःस्वरूपाय संसारभयभेदिने ॥११

मायापञ्जरभेत्रे च शिवाय च न नमो नम ।
ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणा पतये नमः ॥१२
कालाय मृत्यवे चैव भीमाय च नमो नम. ।
भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोप्त्रे नमो नम. ॥१३
विष्णुरूपाय शान्ताय चायुधाना धराय च ।
विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भूयो नमो नम ॥१४
इति स्तोत्र महापुण्य चक्रस्य तव कीर्तितम् ।
य पठेत्परया भक्त्या विष्णु लोक स गच्छति ॥१५
चक्रपूजाविधि यश्च पठेद्रुद्र जितेन्द्रिय ।
स पाप भस्मसात्कृत्वा विष्णुलोकाय कल्पते ॥१६

भगवान् सुदर्शन देव के लिये मेरा नमस्कार है। जो सुदर्शन भगवान् सहस्र सूर्य के समान वर्चस वाले है। ज्वालाग्रो की माला से दीप्ति समन्वित, सहस्र और चक्षु स्वरूप वाले भगवान् के लिये नमस्कार है॥ ८॥ समस्त दुष्टो के विनाश करने वाले, तथा सम्पूर्ण पातको के मर्दन करने वाले, समस्त मन्त्रो को विशेष रूप से भेदन करने वाले, विचक्र एव सुचक्र के लिये हमारा नमस्कार है॥ ९॥ इस जगत् का प्रसूत करने वाले, जगत् को धारण करने वाले और जगत् का विध्वस करने वाले भगवान् सुदर्शन देव के लिये प्रणाम है। लोको को पालन करने के हेतु अवतीर्ण होने वाले, और दुष्ट असुर के विनाश करने वाले अत्युग्र स्वरूप वाले तथा सौम्य स्वरूप से युक्त और चक्षु रूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है। ग्रहो का अभिभूत करने को ग्रहरूप वाले, ग्रहो के स्वामी श्री सुदर्शन देव के लिये नमस्कार है। चक्षु के स्वरूप वाले और ससार के भय को भेदन करने वाले देव के लिये नमस्कार है ॥१०॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥ माया के पञ्जर को भेदन करने वाले और शिव स्वरूप वाले देव को नमस्कार है। काल रूप, मृत्यु भीम स्वरूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है अपने भक्तो पर कृपा करने वाले, भक्तो की रक्षा करने वाले देव को बारम्बार नमस्कार है॥ १३॥ विष्णु के सदृश स्वरूप वाले—परम शान्त, आयुधो के धारण करने वाले, विष्णु के शस्त्र स्वरूप सुदर्शन चक्र भगवान्

को पुनः पुनः नमस्कार है ।। १४ ।। यही सुदर्शन चक्र का महा स्तोत्र है जिसे आपके समक्ष में बता दिया गया है । जो इसको नित्य ही परम भक्ति भाव से पढ़ता है वह विष्णु लोक को चला जाता है ।। १५ ।। हे रुद्र ! जो कोई भी जितेन्द्रिय होकर चक्र की पूजा विधि से पढ़ता है वह अपने सब पापों को भस्म करके विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है ।।१६।।

१२६–हयग्रीव पूजा विधान

पुनर्देवार्चनं ब्रूहि हृषीकेश गदाधर ।
शृण्वतो नास्ति तृप्तिर्मे गदतस्तव पूजनम् ।।१
हयग्रीवस्य देवस्य पूजनं कथयामि ते ।
तच्छृणुष्व जगन्नाथो येन विष्णुः प्रतुष्यति ।२
मूलमन्त्रं महादेव हयग्रीवस्य वाचकम् ।
प्रवक्ष्यामि परं पुण्यं तदादौ शृणु शङ्कर ।३
ॐ ह्रौ क्षौं शिरसे नमः इति प्रणवसंयुतः ।
अयं नवाक्षरो मन्त्रः सर्वविद्याप्रदायकः ।।४
अस्याङ्गानि महादेव तान् शृणुष्व वृषध्वज ।
ॐ क्षां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहायुक्तं शिरः
प्रोक्तं क्षं वषट् तथा ।।५
ओंकारयुक्ता देवस्य शिखा ज्ञेया वृषध्वज ।
ॐ क्षैं कवचाय हुं वै कवचं परिकीर्त्तितम् ।।६
ॐ क्षौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रं देवस्य कीर्त्तितम् ।
ॐ हः अस्त्राय फट् अस्त्रं देवस्य कीर्त्तितम् ।।७

श्री रुद्र देव ने कहा—हे हृषीकेश ! हे गदाधर ! आप पुनः किसी देव के अर्चन के विषय में बतलाइये । मुझे अभी श्रवण करने से पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है यद्यपि आपने सुदर्शन के पूजन करने का विधान कृपा करके मुझे बतला दिया है ।।१।। भगवान् हरि ने कहा—अब हम आपको हयग्रीव देव के पूजन को बतलाते हैं उसको आप सुनें । इससे जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु परम प्रसन्न

होते है ॥ २ ॥ हे महादेव ! मूल मन्त्र ही हयग्रीव का वाचक है। मैं उसे बतलाता हूँ। यह परम पुण्यमय है। हे शङ्कर ! सबसे आरम्भ मे इसका ही आप श्रवण करें ॥ ३ ॥ प्रणव (ओम्) से युक्त अर्थात् आदि मे 'ॐ'—यह लगा कर ह्लौं क्ष्रौं शिरसे नम " यह नौ अक्षरों वाला मन्त्र है जोकि समस्त विद्याओं के प्रदान करने वाला है ॥ ४ ॥ हे महादेव ! हे वृषध्वज ! इस मन्त्र के अङ्ग बताये जाते है उन्हे सुनो। न्यास इस प्रकार से है—ॐ क्षां हृदयाय नम । ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा ॐ क्षू शिरसे वषट् ॥ ५ ॥ हे वृषध्वज ! हयग्रीव देव की शिखा ओंकार से युक्त जाननी चाहिए। ॐ क्षू कवचाय हुम्—यह कवच कहा गया है ॥ ६ ॥ ॐ क्षौं नेत्र त्रयाय वौषट्—यह देव का नेत्र बतलाया गया है ॐ हं अस्त्राय फट्—यह देव का अस्त्र कीर्तित किया गया है ॥ ७ ।

पूजाविधि प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदत शृणु ।
आदौस्नात्वा तथाचम्य ततो यागगृहं व्रजेत् ॥८
तत प्रविश्य विधिवत् कुर्याद्वै शापणादिकम् ।
य क्षौं रमिति वीजैश्च कठिनीकृत्य लमिति ॥९
अण्डमुत्पाद्य च तत आकारणव भेदयेत् ।
अण्डमध्य हयग्रीवमात्मान परिचिन्तयेत् ॥१०
शङ्खकुन्देन्दुधवल मृणालरजतप्रभम् ।
शङ्ख चक्र गदा पद्म धारयन्त चतुर्भुजम् ॥११
किरीटिन कुण्डलिन वनमालासमन्वितम् ।
सुरक्त सुकपालञ्च पीताम्बरधर विभुम् ॥१२
भावयित्वा महात्मान सवदवै ममन्वितम् ।
अङ्गमन्त्रैस्ततो न्यास मूलमन्त्रेण वै तथा ॥१३
ततश्च दर्शयेन्मुद्रा शङ्खपद्मादिका शुभाम् ।
ध्यायेद् ध्यात्वार्चयेद्विष्णु मूलमन्त्रेण शङ्कर ॥१४

अब मैं हयग्रीव पूजा का विधान बतलाता हूँ उसे मुझ से श्रवण करो। सब से आदि में स्नान करे फिर आचमन करे और इसके उपरान्त यागगृह म

जाना चाहिए ।८। फिर वहाँ प्रवेश करके विधिके साथ शोषण आदि कर्म करे। यं क्ष्रौं र—इन बीजों से कठिनी करण करके र इससे अण्ड का समुत्पादन करके फिर ओंकार से ही भेदन करना चाहिए। उस अण्ड के मध्य में हयग्रीव देव का और अपनी आत्मा का चिन्तन करे ॥ ९ ॥ १० ॥ हयग्रीव देव का स्वरूप ऐसा है जिसका कि ध्यान करना चाहिए। हयग्रीव का वर्ण शख— कुन्द पुष्प और चन्द्र के सदृश धवल है, मृणाल के पराग के तथा रजत के समान श्वेत है। शङ्ख-चक्र-गदा और पद्म इन चारों आयुधों के धारण करने वाले हैं-चार भुजाओं से संयुत हैं ॥ ११ ॥ किरीट और कुण्डलों के धारण करने वाले हैं तथा वनमाला से भूपित वक्षःस्थल वाले हैं। इनके कपोल रक्त वर्ण वाले है तथा पीताम्बर को पहिने हुए हैं ऐसे विभु का रूप है ॥ १२ ॥ समस्त देवगण से युक्त महान् आत्मा वाले प्रभु हयग्रीव हैं—ऐसा ही उनका ध्यान करना चाहिए। इसके पश्चात् अङ्ग मन्त्रों तथा मूल मन्त्र के द्वारा न्यास करे ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर शङ्ख-पद्म आदि शुभ मुद्राओं को दिखाकर ध्यान करे फिर हे शङ्कर! मूल मन्त्र के द्वारा विष्णु का समर्चन करना चाहिए ॥ १४ ॥

ततश्चावाहयेद्र द्र देवता आसनस्य याः ।
ॐ हयग्रीवासनस्य आगच्छत च देवताः ॥१५
आवाह्य मण्डले तास्तु पूजयेत्स्वस्तिकादिके ।
द्वारे धातुर्विधातुश्च पूजा कार्या वृषध्वज ॥१६
समस्तपरिवाराय अच्युताय नम इति ।
अस्य मध्येऽर्च्चनं कार्यं द्वारे गङ्गाञ्च पूजयेत् ॥१७
यमुनाञ्च महादेवीं शङ्खपद्मनिधी तथा ।
गरुडं पूजयेदग्रे मध्ये शक्तिञ्च पूजयेत् ॥१८
आधाराख्या महादेव ततः कूर्मं समर्चयेत् ।
अनन्तं पृथिवीं पश्चाद् धर्मज्ञानौ ततोऽर्च्चयेत् ॥
वैराग्यमथ चैश्वर्यमाग्नेयादिषु पूजयेत् ॥१९

अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यादीस्तु पूर्वत. ।
सत्व रजस्तमश्चैव मध्यदेशेऽथ पूजयेत् ॥२०
नन्द नालञ्च पद्मश्च मध्ये चैव प्रपूजयेत् ।
अर्कसोमाग्निसञ्ज्ञाना मण्डलाना हि पूजनम् ॥
मध्यदेशे प्रकर्त्तव्यमिति रुद्र प्रकीत्तितम् ॥२१

इसके अनन्तर जो आसन के देवता हैं उनका आवाहन करना चाहिए। ॐ हयग्रीवासन के देवताओ आइये ॥ १५ ॥ उन सब देवगणों का आवाहन करके फिर स्वस्तिक आदि मण्डल में उन सबका पूजन करना चाहिए। हे वृषध्वज! द्वार पर धाता और विधाता का यजन करे ॥ १६ ॥ समस्त परिवार वाले भगवान् अच्युत के लिये नमस्कार है—इस अर्थ वाले मन्त्र के द्वारा इसके मध्य में अर्चन करे और द्वार पर गङ्गा का पूजन करना चाहिए ॥ १७ ॥ महादेवी यमुना तथा शङ्ख पद्म निधि और गरुड का आगे पूजन करे और मध्य में शक्ति का यजन करना चाहिए ॥ १८ ॥ हे महादेव! आधाराह्वया का यजन कर फिर कूर्म का समर्चन करे। अनन्त—पृथिवी के यजन के अनन्तर धर्म और ज्ञान का अर्चन करना चाहिए। आग्नेयादि दिशाओं मे वैराग्य एव ऐश्वर्य का यजन करे ॥ १९ ॥ अधर्म-अज्ञान-अवैराग्य और अनैश्वर्य आदि का पूर्व मे यजन करे। इसके उपरान्त सत्त्व-रज और तम का मध्य देश में पूजन करना चाहिए ॥ २० ॥ नन्द—नाल और पद्म को मध्य मे प्रपूजित करे। अर्क—सोम और अग्नि सज्ञा वाले मण्डलों का यजन करना चाहिए। हे रुद्र! इन सबका पूजन मध्य देश मे ही करने का विधान बतलाया गया है ॥२१॥

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियायोगे वृषध्वज ।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहा शक्तयो ह्यमू ॥२२
पूर्वादिषु च पत्रेषु पूज्याश्च विमलादय ।
अनुग्रहा कर्णिकाया पूज्या श्रेयोऽर्थिभिर्नरै. ॥२३
प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च चतुर्थ्यन्तैश्च नामभिः ।
मन्त्रैरेतैर्महादेव आसन परिपूजयेत् ॥२४

स्नानगन्धप्रदानेन पुष्पधूपप्रदानतः ।
दीपनैवेद्यदानेन आसनस्यार्चनं शुभम् ॥२५
कर्त्तव्यं विधिनाऽनेन इति हर प्रकीर्तितम् ।
ततश्चावाहयेत् देवं हयग्रीवं सुरेश्वरम् ॥२६
वामनासापुटेनैव आगच्छन्तं विचिन्तयेत् ।
आगच्छतः प्रयोगेण मूलमन्त्रेण शङ्कर ॥२७
आवाहनं प्रकर्त्तव्यं देवदेवस्य शङ्खिनः ।
आवाह्य मण्डले तस्य न्यासं कुर्यादतन्द्रितः ॥२८

हे वृषध्वज ! विमला—उत्कर्षिणी—ज्ञाना—क्रियायोग में प्राह्वी—सत्या—ईशाना और अनुग्रहा ये शक्तियाँ हैं। पूर्वादि दिशाओं में दलों में इन उपर्युक्त विमला आदि शक्तियों का पूजन करना चाहिए। जो मनुष्य अपने परम श्रेय प्राप्त करने की कामना रखते हैं उनको अनुग्रह शक्ति का पद्म की कर्णिका में यजन करना चाहिए। हे महादेव ! प्रणव आदि में और नमः—यह अन्त में लगाकर नामों के आगे चतुर्थी विभक्ति जोड़कर इन्हीं मन्त्रों के द्वारा आसन का पूजन करे ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ स्नान—गन्ध प्रदान कर पुष्प—धूप प्रदान करे और फिर दीप तथा नैवेद्य के समर्पण के द्वारा आसन का शुभ अर्चन करे ॥ २५ ॥ हे हर ! इसी विधि से पूजन करे—यह सब कीर्तित कर दिया है। इस सबके करने के पश्चात् फिर सुरेश्वर भगवान् हयग्रीव देव का आवाहन करना चाहिए ॥ २६ ॥ वाम नासापुट के द्वारा ही आगमन करने वाले भगवान् का ध्यान करे। हे शङ्कर ! मूल मन्त्र के प्रयोग के द्वारा आते हुए शङ्खधारी देवों के देव का आवाहन करना चाहिए। आवाहन करके फिर आनन्दित होते हुए मण्डल में उसका न्यास करे ।२७।२८।

न्यासं कृत्वा च तत्रस्थं चिन्तयेत्परमेश्वरम् ।
हयग्रीवं महादेवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥२९
इन्द्रादिलोकपालैश्च संयुतं विष्णुमव्ययम् ।
ध्यात्वा प्रदर्शयेन्मुद्राः शङ्खचक्रादिकाः शुभाः ॥३०

पाद्यार्घाचमनीयानि ततो दद्याच्च विष्णवे ।
स्नापयेच्च ततो देव पद्मनाभमनामयम् ॥३१
देव सस्थाप्य विधिवद्वस्त्र दद्याद् वृषध्वज ।
ततो ह्याचमन दद्यादुपवीत तत. शुभम् ॥३२
ततश्च मण्डले रुद्र ध्यायेद्देव परमेश्वरम् ।
ध्यात्वा पाद्यादिक भूयो दद्याद्देवाय शङ्कर ॥३३
दद्याद् भैरवदेवाय मूलमन्त्रेण शङ्कर ।
ॐ क्षां हृदयाय नम अनेन हृदय यजेत् ॥३४
ॐ क्षीं शिरसे नमश्च शिरस. पूजन भवेत् ।
ॐ क्षू शिखायं नमश्च शिखामनेन पूजयेत् ॥३५
ॐ क्षं कवचाय नमः कवच परिपूजयेत् ।
ॐ क्षौं नेत्राय नमश्च नेत्रञ्चानेन पूजयेत् ॥३६
ॐ क्ष अस्त्राय नम इति अस्त्रञ्चानेन पूजयेत् ।
हृदयञ्च शिरश्चैव शिखाञ्च कवच तथा ॥३७
पूर्वादिपु प्रदेशेषु ह्येतास्तु परिपूजयेत् ।
कोणेष्वस्त्र यजेद्रुद्र नेत्र मध्ये प्रपूजयेत् ॥३८

यहाँ पर सस्थित देव का ध्यान करके महान् देव सुरों के स्वामी एव सुरासुरों के द्वारा वन्दित परमेश्वर हयग्रीव का ध्यान करे ॥ २६ ॥ भगवान् हयग्रीव इन्द्र आदि लोक पालों से समन्वित एव अव्यय स्वरूप वाले विष्णु हैं—ऐसा ध्यान करके शङ्ख चक्र आदि परम शुभ मुद्राओं को दिखलावे ॥३०॥ फिर विष्णु के लिये पाद्य अर्घ्य और आचमनीय समर्पित करे। इसके उपरान्त आमय से रहित पद्म नाभ देव का स्नापन कराना चाहिए ॥ ३१ ॥ हे वृष-ध्वज ! इस प्रकार से विधि के सहित देव की सस्थापना करके वस्त्र देवे। फिर आचमन और इसके पश्चात् उपवीत समर्पित करे ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त मडल में परमेश्वर रुद्र देव का ध्यान करना चाहिए। ध्यान के पश्चात् हे शङ्कर ! फिर देव के लिये पाद्यादिक का समर्पण करे ॥ ३३ ॥ हे शङ्कर ! मूल मन्त्र के द्वारा भैरव देव के लिये देवे। 'ॐ क्षां हृदयाय नम.' इस मन्त्र

से हृदय में यजन करे ।। ३४ ।। "ॐ क्षीं शिरसे नमः"—इस से शिर का पूजन होता है। "ॐ क्षूं शिखायै नमः"—इस मन्त्र के द्वारा शिखा का यजन करे ।। ३५ ।। "ॐ क्षैं कवचाय नमः"—इससे कवच को पूजे। "ॐ क्षौं नेत्राय नमः"—इससे नेत्र का पूजन करे ।। ३६ ।। "ॐ क्षः अस्त्राय नमः"—इससे अस्त्र का यजन करे। हृदय—शिर—शिखा तथा कवच इनका पूर्व आदि प्रदेशों में परिपूजन करना चाहिए। हे रुद्र ! कोणों में अस्त्र का और मध्य में नेत्र का पूजन करे ।।३७।।३८।।

पूजयेत्परमां देवीं लक्ष्मीं लक्ष्मीप्रदां शुभाम् ।
शङ्खं पद्मं तथा चक्रं गदां पूर्वादितोऽर्चयेत् ।।३९
खड्गञ्च मुशलं पाशमंकुशं सशरं धनुः ।
पूजयेत् पूर्वतो रुद्र एभिर्मन्त्रैः स्वनामकैः ।।४०
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां तथा पीताम्बरं शुभम् ।
पूजयेत्पूर्वतो रुद्र शङ्खचक्रगदाधरम् ।।४१
ब्रह्माणं नारदं सिद्धं गुरुं परगुरुं तथा ।
गुरोश्च पादुके तद्वत्परमस्य गुरोस्तथा ।।४२
इन्द्रं सवाहनं वाथ परिवारयुतं तथा ।
अग्निं यमं निर्ऋतिञ्च वरुणं वायुमेव च ।।४३
सोममीशाननागञ्च ब्रह्माणं परिपूजयेत् ।
पूर्वादि चोर्ध्वपर्य्यन्तं पूजयेद् वृषभध्वज ।।४४
वज्रं शक्ति तथा दण्डं खड्गं पाशं ध्वजं गदाम् ।
त्रिशूलञ्चक्रपद्मे च आयुधान्यथ पूजयेत् ।।४५
विष्वक्सेनं ततो देवमैशान्यां दिशि पूजयेत् ।
एभिर्मन्त्रैर्नमोऽन्तैश्च प्रणवाद्यैर्वृषध्वज ।।४६
पूजा कार्या महादेव ह्यनन्तस्य वृषध्वज ।
देवस्य मूलमन्त्रेण पूजा कार्या वृषध्वज ।
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।।४७

लक्ष्मी के प्रदान करने वाली परम शुभा देवी लक्ष्मी का पूजन करे और पूर्वादि में शंख, चक्र, गदा और पद्म का यजन करना चाहिए ।।३९।। हे रुद्र !

खड्ङ, मुशल, पाश, अंकुश, शर सहित धनुष इनका अपने नाम वाले इन मन्त्रों से पूर्व में पूजन करे ।।४०।। श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, शुभ पीताम्बर और शंख, चक्र, गदाधर का पूर्व मे पूजन करे ।।४१।। ब्रह्मा, नारद, सिद्ध, गुरु, परगुरु, गुरु की पादुकाऐ और इसी भाँति परम गुरु की पादुकाऐं, सवाहन इन्द्र जो कि अपने सम्पूर्ण परिवार से समन्वित हो, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, नाग और ब्रह्मा का पूजन करना चाहिए। हे वृषध्वज ! पूर्व आदि दिशा से ऊर्ध्व पर्य्यन्त पूजन करे ।।४२।।४३।।४४।। वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश ध्वज, गदा, त्रिशूल, चक्र, पद्म इन समस्त वरायुधों का यजन करना चाहिए ।।४५।। इसके उपरान्त ऐशानी दिशा मे विष्वक्सेन देव का पूजन करे। हे वृषध्वज ! इन मन्त्रो से जिनके आदि में 'ॐ' और अन्त मे 'नम'—इसको सयुक्त करके करे। हे महादेव ! भगवान् अनन्त की पूजा करनी चाहिए। देव की मूल मन्त्र के द्वारा ही पूजा करे। पूजा मे गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य समर्पित करे ।।४६।।४७।।

प्रदक्षिरा नमस्कार जप्य तस्मै समर्पयेत् ।
स्तुवीत चानया स्तुत्या प्रणवाद्यं वृषध्वज ।।४८
ॐ नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नम ।
नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादात्रे नमो नम ।।४९
नम शान्ताय देवाय त्रिगुणायात्मने नम ।
सुरासुरनिहन्त्रे च सर्वदुष्टविनाशिने ।।५०
सर्व लोकाधिपतये ब्रह्मरूपाय वै नम ।
नमश्श्वेश्वरवन्द्याय शङ्खचक्रधराय च ।।५१
नम आद्याय दान्ताय सर्वसत्त्वहिताय च ।
त्रिगुणायागुणायैव ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे ।
कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वगाय नमो नम ।।५२
इत्येव सस्तव कृत्वा देवदेव विचिन्तयेत् ।
हृत्पद्मे विमले रुद्र शङ्खचक्रगदाधरम् ।।५३

सूर्यकोटिप्रतीकाशं सर्वावयवसुन्दरम् ।
हयग्रीवं महेशेश परमात्मानमव्ययम् ।।५४
इति ते कथिता पूजा हयग्रीवस्य शङ्कर ।
यः पठेत् परया भक्त्या स गच्छेत् परमं पदम् ।।५५

इसके अनन्तर प्रदक्षिणा करे और देव के लिये नमस्कार समर्पित करे। हे वृषध्वज! प्रणवादि के द्वारा इस निम्न कथित स्तुति से देव का स्तवन करे। ।।४८।। ॐ हय के समान शिर वाले के लिये नमस्कार है। विद्या के स्वामी देव के लिये प्रणाम है। विद्या के स्वरूप वाले और विद्या के प्रदान करने वाले देव के लिये बारम्बार नमस्कार है।।४९।। परम शान्त स्वरूप देव को प्रणाम है। त्रिगुणात्मा देव के लिये नमस्कार है। सुर और असुरों का निहनन करने वाले तथा समस्त दुष्टों के समूल विनाश कर देने वाले देव को प्रणाम है।।५०।। सम्पूर्ण लोकों के अधिपति और ब्रह्म के स्वरूप वाले देवेश को नमस्कार है। ईश्वर के द्वारा वन्द्यमान और शंख, चक्र के धारण करने वाले देवेश्वर को बारम्बार नमस्कार है। आद्य, दान्त और समस्त जीवों के हित करने वाले, त्रिगुण और गुणों से रहित, ब्रह्मा एवं विष्णु के स्वरूप वाले, सर्वत्र गमन करने वाले, कर्त्ता, हर्त्ता और सुरों के स्वामी देव के लिये पुनः पुनः नमस्कार है।।५१।।५२।। इस प्रकार से स्तवन करके फिर देवों के देव का ध्यान करे। हे रुद्र! मल रहित विशुद्ध हृदय कमल में शंख, चक्र और गदा के धारण करने वाले देव का चिन्तन करना चाहिए जो कि करोड़ों सूर्यों के समान प्रदीप्त हैं और सभी अङ्गों से परम सुन्दर स्वरूप युक्त हैं जो महान् ईशों के भी ईश हैं तथा नित्य परमात्मा हैं। ऐसा ध्यान करे। हे शङ्कर! हमने हयग्रीव देव की पूजा का यह पूरा विधान तुमसे कह दिया है। इस विधान को जो भी कोई परम भक्ति की भावना से युक्त होकर पढ़ेगा वह निश्चय ही परम पद की प्राप्ति कर लेगा। ।।५३।५४।५५।।

१२८—शिवार्चन विधान

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि धर्मकामादिसाधनम् ।
त्रिभिर्मन्त्रै राचामेत्स्वाहान्तैः प्रणवादिकैः ।।१

ॐ हां आत्मतत्त्वाय विद्यातत्त्वाय ह्रीं तथा ।
ॐ हूँ शिवतत्त्वाय स्वाहा हृदा स्यात् श्रोत्रवन्दनम् ॥२
भस्मस्नानं तर्पणञ्च ॐ हां या स्वाहा सर्वमन्त्रका ।
सर्वे देवा सर्वमुनिर्नमोऽन्तो वौषडन्तक ।
स्वधान्ता सर्वपितर स्वधान्ताश्च पितामहा ॥३
ॐ हां प्रपितामहेभ्यस्तथा मातामहादय ।
हां नम सर्वमातृभ्यस्तत स्यात्प्राणसयमः ॥४
आचाम मार्जनश्चाथो गायत्रीश्च जपेत्ततः ।
ॐ हां तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्नो रुद्र
प्रचोदयात् ॥५
सूर्योपस्थापन कृत्वा सूर्यमन्त्रं प्रपूजयेत् ।
ॐ हां ह्रीं हूं हैं हौं ह शिवसूर्याय नम ।
ॐ हं खखोल्काय सूर्य्यमूर्त्तये नम ।
ॐ हां ह्रीं स सूर्याय नम ।
दण्डिने पिङ्गले त्वतिभूतानि नियम स्मरेत् ।
अग्न्यादौ विमलेशानमाराध्य परम सुखम् ॥६
यजेत्पद्मांश्च रा दीप्ता री सूक्ष्मा रू जयाञ्च रें ।
भद्राञ्चरै विभूति रो विमला रौममाधिकाम् ॥७
र विद्युताञ्च पूर्वाद्रौ रो मध्ये रं सर्वतोमुखीम् ।
अर्कासन सूर्यमूर्त्ति हां हूं स सूर्यमर्च्चयेत् ॥८

श्री सूतजी ने कहा—हम अब धर्म कामादि का साधन स्वरूप भगवान् शिव का अर्चन बतलाते हैं। प्रथम आदि में और अन्त में स्वाहा सयुक्त करके तीन मन्त्रों से आचमन करना चाहिए ॥१॥ ॐ हां आत्म तत्त्वाय स्वाहा—ॐ ह्रीं विद्या तत्त्वाय स्वाहा—ॐ हूं शिव तत्त्वाय स्वाहा—इन मन्त्रों के द्वारा हृदय से श्रोत्र वन्दन करे ॥२॥ ॐ हां या स्वाहा—ये सभी मन्त्र हैं। इनसे भस्म स्नान और तर्पण करे। वौषट् अन्त में लगाकर तथा नम —इसे सयुक्त करके समस्त देवगण, सब मुनिगण को नमस्कार करना चाहिए। समस्त पितरों

को स्वधा अन्त में लगाकर तथा पितामहों को भी स्वधा अन्त में लगाकर नमस्कार करना चाहिए ॥३॥ ॐ हां प्रपिता महेभ्य:—इस मन्त्र से तथा इसी प्रकार मातामहादिक को हां नमः' इस मन्त्र से सब माताओं के लिये प्रणाम करे। इसके अनन्तर प्राणों का संयम करना चाहिए ॥४॥ आचमन, मार्जन, और इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए। वह गायत्री मन्त्र निम्नलिखित है—"ॐ हां तन्महेशाय विघ्न हे वाग्नि शुद्धाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्"—यह गायत्री का स्वरूप है ॥५॥ फिर सूर्य का उपस्थान करके सूर्य मन्त्रों के द्वारा पूजन करना चाहिए। वे मन्त्र ये हैं—'ॐ हां हीं हूँ हैं हौं हः शिव सूर्याय नमः। ॐ ह खखोल्काय सूर्य मूर्तये नमः। ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः'। इन्हीं मन्त्रों के द्वारा यजन करे। दण्डी के लिये पिङ्गल में अजिभूत नियम का स्मरण करे। अग्नि आदि दिशा में परम सुख स्वरूप विमलेशान की समाराधना करे ॥६॥ फिर रां पद्मा का—रीं दीप्ता को—रूं सूक्ष्मा को—रें जया को—रैं भद्रा को—रों विभूति को—रौं अमेधिका विमला को—रं विद्युता को पूजित करे और पूर्वादि में इसका यजन करना चाहिए। मध्य में 'रो' और 'रं' को सर्वतोमुखी का यजन करे। अर्क का आसन और सूर्य की मूर्त्ति का तथा 'ह्रां ह्रूं सः' इससे सूर्य का अर्चन करना चाहिये ॥७॥८॥

ॐ आं हृदयार्काय च शिरःशिखाय च भूर्भुवः स्वरोम् ॥६
ज्वालिनीं हूं कवचस्य चास्त्रं राज्ञीञ्च दीक्षिताम्।
यजेत्सूर्यहृदा सर्वान्सों सोम मञ्च मङ्गलम् ॥१०
बं बुधं वृं बृहस्पतिं भं भार्गवं शं शनैश्चरम्।
रं राहुं कं यजेत् केतुं ॐ तेजश्चण्डमर्च्चयेत् ॥११
सूर्यमभ्यर्च्य चाचम्य कनिष्ठातोऽङ्गकान्न्यसेत्।
हां हीं शिरो हूं शिखा हैं वर्म्मं हौं च नेत्रकम्।
होऽस्त्रं शक्तिस्थितिं कृत्वा भूतशुद्धिं पुनर्न्यसेत् ॥१२
अर्घ्यपात्रं ततः कृत्वा तदद्भिः प्रोक्षयेद् यजेत्।
आत्मानं पद्मसंस्थञ्च हौं शिवाय ततो बहिः ॥१३

द्वारे नन्दिमहाकालौ गङ्गा च यमुनाऽथ गीः ।
श्रीवत्स वास्त्वधिपति ब्रह्माणञ्च गणं गुरुम् ॥१४
शक्तयनन्तौ यजेन्मध्ये पूर्वादौ धर्मकादिकम् ।
अधर्माद्यश्च वह्न्याद्यौ मध्ये पद्मस्य कर्णिके ।
वामा ज्येष्ठा च पूर्वादौ रौद्री काली शिवा सिता ॥१५

"ॐ हृदयाय वि च शिरः शिखाय च भूर्भुवः स्वरोम्"—यह मन्त्र का स्वरूप है । ज्वालिनी हु—कवच का और दीक्षिता राज्ञी—अस्त्र यजन करे । सूर्य हृदय से सो सोम का, अ मङ्गल का, व बुध का, बृं बृहस्पति का, भं भार्गव (शुक्र) का, श शनैश्चर का, र राहु का, क केतु का और ॐ तेज. इस प्रकार से सबका यजन करना चाहिए ॥६॥१०॥११॥ इस विधि से सूर्यदेव की अभ्यर्चना करके आचमन करे और फिर कनिष्ठा मे अङ्गों का न्यास करे । हां हीं शिर का, हू शिखा का, है वर्म का, हौं नेत्र का, ह अस्त्र का न्यास करके शक्ति की स्थिति करे और फिर भूत शुद्धि का न्यास करना चाहिए ॥१२॥ इसके अनन्तर अर्घ्य का पात्र करके उसके जलो से प्रोक्षण करे तथा यजन करे । पद्म पर संस्थित आत्मा का और फिर बाहिर हौं शिवाय इससे यजन करे । द्वार मे नन्दी और महाकाल, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, श्री वत्स, वास्तुका अधिपति, ब्रह्मा, गण, गुरु, शक्ति—अनन्त इन सबका यजन करना चाहिए । मध्य मे पूर्वादि दिशा मे धर्मादिका, वह्नि आदि दिशा मे अधर्म आदि का, पद्म की कर्णिका के मध्य में वामा ज्येष्ठा तथा पूर्वा आदि दिशा मे काली, शिवा, सिता का यजन करे ॥१३।१४।१५॥

ॐ हौं वलविकरिण्यै वलविकरिणी ततः ।
वलप्रमथिनी सर्वभूताना दमनी ततः ॥१६
मनोन्मनी यजेदेता पीठमध्ये शिवाग्रतः ।
शिवासनमहामूर्ति मूर्तिमध्ये शिवाय च ॥१७
आवाहनं स्थापनञ्च सन्निधानं निरोधनम् ।
सकलीकरणं मुद्रादर्शनं चार्घ्यपाद्यकम् ॥१८
आचामाभ्यङ्गमुद्वर्तं स्नानं निर्मञ्छनं चरेत् ।
वस्त्र विलेपनं पुष्पं धूपं दीपं चरुं ददेत् ॥१६

आचामं मुखवासञ्च ताम्बूलं हस्तशोधनम् ।
छत्रचामरोपवीतं परमीकरणं चरेत् ॥२०
रूपकल्पनकैकत्वे जपो जपसमर्पणम् ।
स्तुतिर्नतिर्हृदाद्यैश्च ज्ञेयं नामाङ्गपूजनम् ॥२१
अग्नीश रक्षो वायव्ये मध्ये पूर्वादितन्त्रकम् ।
इन्द्रादयांश्च यजेच्चण्डं तस्मै निर्माल्यमर्पयेत् ॥२२

"ॐ ह्रौं कलविकरिण्यै"—इस मन्त्र से कलविकरिणी—बल विकरिणी—फिर बल प्रमथिनी और सर्व भूतों की दमनी तथा मनोन्मनी का यजन करे। इन सबका पीठ के मध्य में शिव के ही आगे करे। मूर्त्ति के मध्य में शिवासन महामूर्त्ति का शिव के लिये आवाहन, स्थापन, सन्निधान, निरोधन, सकलीकरण, मुद्राओं का दर्शन और अर्घ्य तथा पाद्य करे ॥१६।१७।१८॥ फिर आचमन, अभ्यंग, उद्वर्त्तन, स्नान और निर्मञ्छन करना चाहिये। इसके अनन्तर वस्त्र, विलेपन, पुष्प, धूप, दीप और चरु समर्पित करे ॥१९॥ आचमन, मुखवास, ताम्बूल, हाथों को शोधन, छत्र, चामर, उपवीत और परमीकरण करे ॥२०॥ रूप की कल्पना के एकत्व में जप करे तथा उस जाप को समर्पित करे। स्तुति, नमस्कार और हृदाद्य के द्वारा नामाङ्ग पूजन करे ॥२१॥ अग्नि, ईशान, नैऋत्य, वायव्य, पूर्व आदि तन्त्र से इन्द्रादि का यजन करे अर्थात् समस्त दिक्पालों का अपनी-अपनी दिशा के अनुसार पूजन करना चाहिए। चण्ड का यजन कर उसके लिये निर्माल्य का समर्पण करे ॥२२॥

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृत जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव तत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ॥२३
यत्किञ्चित् कर्म हे देव सदा दुष्कृतदुष्कृतम् ।
तन्मे शिवपदस्थस्य क्षयं कुरु यशस्कर ॥२४
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ॥२५
यत् कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं सुकृत तव ।
त्वं त्राता विश्वनेता च नान्यो नाथोऽस्ति मे शिव ॥२६

अथान्येन प्रकारेण शिवपूजा वदाम्यहम् ।
गंगा सरस्वती नन्दी महाकालोऽथ गङ्गया ॥२७
यमुना तु वास्त्वधिपो द्वारि पूर्वादितस्त्विमे ।
इन्द्राद्याः पूजनीयाश्च तत्त्वानि पृथिवी जलम् ॥२८
तेजो वायुर्व्योमगन्धो रसरूपे च शब्दकः ।
स्पर्शो वाक् पाणिपादौ च पायूपस्थ श्रुतित्वचौ ॥२९
चक्षुर्जिह्वा घ्राणमनोबुद्धिश्चाहं प्रकृत्यपि ।
पुमान् रागो द्वेषविद्ये कालाकालौ नियत्यपि ॥३०
माया च शुद्धविद्या च ईश्वरश्च सदाशिव ।
शक्तिः शिवश्च तान् ज्ञात्वा मुक्तो ज्ञानी शिवो भवेत् ॥३१
य शिव स हरिर्ब्रह्मा सोऽहं ब्रह्मास्मि मुक्तित ॥३२

इसके अनन्तर प्रार्थना करे, आप गुह्यातिगुह्य के रक्षा करने वाले हैं। अब आप मेरे द्वारा किए हुए जाप को अङ्गीकार करें। हे देव ! आपके यहाँ सन्स्थित होने पर आपके प्रसाद से मुझे सिद्धि हो जावे ॥२३॥ हे देव ! जो कुछ भी दुष्कृत में भी दुष्कृत सदा मैंने किया है हे यशस्कर ! उस मेरे सबको क्षीण कर दीजिए क्योंकि इस समय मैं आपके चरणों की शरण में स्थित हूँ॥२४॥ भगवान् शिव दाता हैं, शिव ही सबका भोग करने वाले हैं, यह सम्पूर्ण जगत् भी शिव का ही स्वरूप है शिव की सर्वत्र जय होती है, जो शिव है वही मैं हूँ ॥२५॥ जो कुछ मैंने किया और जो कुछ भी भविष्य में करूँगा वह सभी आपका ही सुकृत है। आप ही त्राण करने वाले हैं और इस विश्व के नायक हैं। हे शिव ! मेरा अन्य कोई नाथ नहीं है॥२६॥ इसके अनन्तर अब अन्य प्रकार से शिव की पूजा को बतलाते हैं। गङ्गा, सरस्वती, नन्दी, महाकाल, गङ्गा, यमुना, वास्त्वधिप इन सबका द्वार पर पूर्वादि दिशा के क्रम से यजन करे। इन्द्र आदि का भी पूजन करना चाहिए। तत्त्वों को बतलाते हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, व्योम, गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, श्रुति, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति ये चौबीस तत्त्व हैं। पुरुष, राग-द्वेष, विद्या, कालाकाल, नियति, माया, शुद्ध विद्या,

ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव इनको जानकर मुक्त-ज्ञानी शिव होता है। जो शिव है वही हरि और ब्रह्मा है। मुक्ति के प्राप्त होने से वह मैं भी ब्रह्म हूँ ॥२७ से ३२॥

भूतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि यया शुद्धः शिवो भवेत् ।
हृत्पद्म सद्यो मन्त्रः स्यान्निवृत्तिश्च कला इड़ा ॥३३
पिङ्गला द्वे च नाड्यौ च प्राणोऽपानश्च मारुतौ ।
इन्द्रदेहो ब्रह्मदेहश्चतुरस्त्रश्च मण्डलम् ॥३४
वज्रेण लाञ्छितं दीप्तमेकोद्घातगुणाः शराः ।
हृत्स्थानसातूणहनं शतकोष्ठप्रविस्तरम् ॥३५
ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट् ॐ ह्रूं विद्यायै ह्रूं हः फट् ।
चतुरशीतिकोटीनामुच्छ्रयं भूमितन्त्रकम् ।
तन्मध्ये भववृक्षञ्च आत्मानञ्च विचिन्तयेत् ॥३६

अब मैं भूतशुद्धि को बतलाता हूँ जिसके द्वारा शुद्ध होकर शिव हो जाता है। हृदय कमल, सद्योमन्त्र निवृत्ति होती है। कलाइड़ा और पिङ्गला ये दो नाड़ी हैं, प्राण और अपान दो मारुत हैं, इन्द्र देह और ब्रह्म देह यह चतुरस्र मण्डल हैं ॥३३।३४॥ वज्र से लाञ्छित और दीप्त है, एकोद्घात गुण वाले शर हैं, हृत्स्थान सातूणहन शतकोष्ठ विस्तार वाला है ॥३५॥ "ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट् ॐ ह्रूं विद्यायै ह्रूं हः फट्"—यह मन्त्र का स्वरूप है। चौरासी करोड़ों का उच्छ्रय भूमि तन्त्र है। उसके मध्य में इस संसार के वृक्ष को और अपने आपको चिन्तन करे अर्थात् ध्यान करना चाहिए ॥३६॥

अधोमुखीं ततः पृथ्वीं तत्तत् शुद्धं भवेद् ध्रुवम् ।
वामादेवी प्रतिष्ठा च सुषुम्ना धारिका तथा ॥३७
समानोदानवरुणौ देवता विष्णुकारणम् ।
उद्घाताश्च गुणं वेदाः श्वेता ध्यानं तथैव च ॥३८
एवं कुर्यात्कण्ठपद्ममर्द्धचन्द्राख्यमण्डलम् ।
पद्माङ्कितं द्विशतकं कोटिविस्तीर्णवान्स्मरेत् ॥३९

चतुर्नवत्युच्छ्रयञ्च आत्मानञ्च ह्यधोमुखम् ।
तासु स्थानञ्च पद्मञ्च अघोरो विद्ययान्वितः ॥४०

इनके अनन्तर इस पृथ्वी को नीचे की ओर मुख वाली देखे तो वह सभी शुद्ध हो जाता है। वामा देवी—प्रतिष्ठा, सुषुम्ना तथा धारिका, समानोदान और वरुण दो देवता हैं, विष्णु कारण, उद्धाता और गुण है तथा वेद दर्शन हैं—इसी प्रकार का ध्यान करना चाहिए ॥३७।३८॥ इस प्रकार से कण्ठ पद्म को अर्ध चन्द्राकार मण्डल ध्यान करे। पद्म से मण्डित दो सौ करोड़ विस्तार वाला स्मरण करे ॥ ३६ ॥ चौरानवे उच्छ्रय वाली और नीचे की ओर मुख वाली आत्मा को ध्यान में करे। उनमें स्थान और पद्म है तथा विद्या से समन्वित अघोर है ॥४०॥

नाम्मोष्ठया हस्तिजिह्वा ध्यानो नागोऽग्निदेवता ।
रुद्रहेतुस्त्रिरुद्धातास्त्रिगुणा रक्तवर्णकम् ॥४१
ज्वालाकृते त्रिकोणञ्च चनु कोटिशतानि च ।
विस्तीर्णञ्चसमुत्सेध रुद्रतत्त्व विचिन्तयेत् ॥४२
ललाटे तु तत्पुरुष शक्तिर्य शाद्वल बुधाः ।
कूर्मञ्च कृकरा वायुर्देव ईश्वरकारणम् ॥४३
द्विरुद्धातगुणौ द्वौ च वृष षट्कोणमण्डलम् ।
विन्द्वङ्किनञ्चाष्टकोटिविस्तीर्णञ्चोच्छ्रयस्तथा ।
चतुर्दशाधिक कोटि वायुतत्त्व विचिन्तयेत् ॥४४
द्वादशान्ते सरसिजे शान्त्यतीतास्तथेश्वराः ।
कुहुश्च शङ्खिनी नाड्यो देवदत्तो धनञ्जयः ॥४५
शिवेशानकारणञ्च सदाशिव इति स्मृतः ।
गुणे एकस्तथोद्धात शुद्धस्फटिकवत् स्मरेत् ॥४६
षोडश कोटिविस्तीर्णं पञ्चविंशति चोच्छ्रयम् ।
वर्त्तुलं चिन्तयेद्वाम भूतशुद्धिरुदाहृता ॥४७
गणगुरुर्बीजगुरुः शक्तयनन्तौ च धर्मकः ।
ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यंस्ततः पूर्वादिपत्रके ॥४८

अधोर्द्ध वदने द्वे च पद्मकर्णिककेशरम् ।
वामाद्या आत्मविद्या च सदा ध्यायेत् शिवाह्वयकम् ।
तत्त्वं शिवासने मूर्तिर्ह्रौं ह्रौं विद्यादेहाय नमः ।।४६

नाभि ओष्ठ से युक्त हस्ति जिह्वा, ध्यान, नाग, अग्नि देवता, रुद्रहेतु, तीन उद्घाता, तीन गुण, रक्त वर्ण, ज्वालाकृत में त्रिकोण और चार सौ करोड़ विस्तार वाला समुत्सेध है—ऐसा रुद्र तत्त्व है यह ध्यान करे ।।४१।४२।। ललाट में तत्पुरुष शक्ति है जो बुधों के द्वारा शाव्दल कही जाती है । कूर्म और कृकर नाम वाली वायु हैं तथा ईश्वर कारण देव है ।।४३।। दो उद्घात गुण हैं और दो वृष हैं, षट्कोण वाला मण्डल है । विन्दु से अङ्कित आठ करोड़ विस्तार से युक्त उच्छ्रय है । इस प्रकार से चौदह करोड़ अधिक वायु तत्त्व का विचिन्तन करना चाहिए ।।४४।। द्वादशान्त कमल में शान्ति से भी अतीत ईश्वर हैं । कुहू और शङ्खिनी नाड़ियाँ हैं । देवदत्त और धनञ्जय नाम वाले वायु हैं । शिवेशान कारण सदा शिव कहे गये हैं । गुण में एक उद्घात शुद्ध स्फटिक मणि के समान उनका स्मरण करना चाहिए ।।४५।४६।। सोलह करोड़ विस्तार से युक्त, पच्चीस उच्छ्रय वाला और वर्तुलाकार वह धाम है—ऐसा ध्यान करना चाहिए । यह भूत शुद्धि बतला दी गई है ।।४७।। गण गुरु, बीज गुरु, शक्ति अनन्त, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यो के सहित पूर्वादि पत्रों में दो अधोवदन और ऊर्ध्ववदन, पद्म, कर्णिका, केशर, वामा आदि और आत्मविद्या यह सब शिव नाम वाले हैं इनका सदा ध्यान करना चाहिए । शिवासन पर तत्त्व मूर्ति है । उसका "ह्रौं ह्रौं विद्यादेहाय नमः"—यह मनन का स्वरूप है ।।४८।४६।।

बद्धपद्मासनासीनः सितः षोडशवर्षकः ।
पञ्चवक्त्रः कराग्रैः स्वैर्दशभिश्चैव धारयन् ।।५०
अभयप्रसादशक्ति शूलं खट्वाङ्गमीश्वरः ।
दक्षैः करैर्वामकैश्च भुजगञ्चाक्षसूत्रकम् ।
डमरुकं नीलोत्पलं बीजपूरकमुत्तमम् ।।५१
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिस्त्रिनेत्रो हि सदाशिवः ।
एवं शिवार्च्चनध्यानी सर्वदा कालवर्जितः ।।५२

द्वाहोरात्रिचारेण त्रीणि वर्षाणि जीवति ।
दिनद्वयस्य चारेण जीवेद्वर्षद्वयं नरः ॥५३
दिनत्रयस्य चारेण वर्षमेकं स जीवति ।
नाकाले शीतले मृत्युरुष्णे चैव तु कारके ॥५४

सदाशिव भगवान् का स्वरूप इस प्रकार का है। पद्मासन बाँधकर बैठे हुए हैं, सित वर्ण है और सोलह वर्ष की आयु है। पाँच मुख हैं, अपने दश करों में प्रय भागों में विभिन्न आयुधों को धारण किये हुए हैं ॥५०॥ दाहिने भाग के हाथों में अभय दान—प्रसाद—शक्ति—शूल और खड्वाङ्ग ईश्वर ने धारण कर रक्खे हैं। तथा वाम भाग के करों में भुजग—अक्षसूत्र—डमरू—नीलोत्पल और उत्तम बीज पूरक धारण करने वाले हैं ॥५१॥ भगवान् सदाशिव इच्छा, ज्ञान और क्रिया की शक्ति से सम्पन्न हैं तथा तीन नेत्रों से युक्त हैं। इस प्रकार से शिव की अर्चना और उनका ध्यान करने वाला पुरुष सर्वदा ही काल से वर्जित रहता है ॥५२॥ यहाँ अहोरात्र के चार से मनुष्य तीन वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है। दो दिन के चार से दो वर्ष और तीन दिन के चार से एक वर्ष जीवित रहता है। अकाल—शीतल और उष्णकाल में मृत्यु नहीं होती है ॥५३॥५४॥

१२६-शिवजी की पवित्रारोहण विधि

पवित्रारोहणं वक्ष्ये शिवस्याशिवनाशनम् ।
आचार्य्यं साधकं कुर्य्यात्पुत्रकं समयी हर ॥१
संवत्सरकृता पूजा विघ्नेशो हरतेऽन्यथा ।
आषाढे श्रावणे माघे कुर्य्याद्भाद्रपदेऽपि वा ॥२
सौवर्णरौप्यताम्रञ्च सूत्रं कार्पासिकं क्रमात् ।
ज्ञेयं कृतादौ संगृह्य कन्यया कर्त्तितञ्च यत् ॥३
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ततः कुर्य्यात्पवित्रकम् ।
अन्ययो वामदेवेन सत्येन क्षालयेच्छिव ॥४
अघोरेण तु सशोध्य बद्धस्तत्पुरुषादमवेत् ।
धूपयेदीशमन्त्रेण तन्तुदेवा इति स्मृताः ॥५

ओंकारश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागः शिखिध्वजः ।
रविर्विष्णुः शिवः प्रोक्तः क्रमात्तन्तुषु देवताः ।।६
अष्टोत्तरशतं कुर्य्यात्पञ्चाशत्पञ्चविंशतिम् ।
रुद्रोऽहन्तमादि विज्ञेयं मानञ्च ग्रन्थयो दश ।।७

श्री हरि ने कहा—अब पवित्रारोहण के विषय में बतलाते हैं जोकि शिव के अशिव (अमङ्गल) को नाश करने वाला है। हे हर! साधना करने वाला आचार्य को करना चाहिए। समय पर पुत्र को करना चाहिए ।। १ ।। अन्यथा विघ्नों के ईश संवत्सर में की हुई पूजा का हरण कर लिया करते हैं। आषाढ़—श्रावण—माघ अथवा भाद्रपद मास में यह कर्म्म करना चाहिए ।। २ ।। सुवर्ण से निर्मित, चाँदी का बनाया हुआ, ताम्र से विरचित सूत्र हो या क्रम से कपास के द्वारा इसका निर्माण कराया जावे। कृतादि में संग्रह करके रक्खे और यह किसी कन्या के द्वारा काता हुआ होना चाहिए ।। ३ ।। पहिले इस सूत्र को तीन गुना करे और फिर उसे त्रिगुणित करके पवित्रा की रचना करनी चाहिए। वामदेव मन्त्र से उसकी ग्रन्थियाँ लगावे तथा सत्य के द्वारा हे शिव! उसका क्षालन करे ।। ४ ।। अघोर मन्त्र से इसका संशोधन करके तत्पुरुष से बद्ध करे। ईश मन्त्र से इसको धूप देवे। ये तन्तु देव कहे गये हैं ।। ५ ।। इन तन्तुओं के ओंकार—चन्द्रमा—वह्नि—ब्रह्मा—नाग—शिखिध्वज-रवि—विष्णु—शिव ये क्रम से देवता होते हैं ।। ६ ।। अष्टोत्तर शत—पचास या पचीस बनावे। मैं रुद्र हूँ, उसको आदि जाने तथा उसका मान भी जानना चाहिए, ग्रन्थियाँ दश होती हैं ।।७।।

चतुरंगुलान्तरालाः स्युर्ग्रन्थिनामानि च क्रमात् ।
प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी चापराजिता ।।८
जया च विजया रुद्रा अजिता च सदाशिव ।
मनोन्मनी सर्वमुखी द्व्यंगुलांगुलतोऽथवा ।।९
रञ्जयेत् कुंकुमाद्यैस्तु कुर्य्यादिगन्धैः पवित्रकम् ।
सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां शुक्लपक्षे तथेतरे ।।१०

क्षीरादिभिश्च सस्नाप्य लिङ्ग गन्धादिभियजेत् ।
दद्यादगन्धपवित्रन्तु आत्मने ब्रह्मणे हर ॥११
पुष्प गन्धयुत दद्यान्मूलेनैशानगोचरे ।
पूर्वं च दण्डकाष्ठन्तु उत्तरे चामलकीफलम् ॥१२
मृत्तिका पश्चिमे दद्याद्दक्षिणे भस्मभूतय. ।
नैर्ऋते ह्यगुरु दद्याच्छिखामन्त्रेण मन्त्रवित् ।।
वायव्या सर्षप दद्यात्कवचेन वृषध्वज ॥१३
गृह सवेष्टय सूत्रेण दद्यादगन्धपवित्रकम् ।
होम कृत्वाऽग्नये दत्त्वा दद्याद्भूतबलि तथा ॥१४

इन ग्रन्थियो मे चार अगुल का अन्तर रहना चाहिए क्रम से ग्रन्थियो के नाम ये होते हैं—प्रकृति–पौरपी–वीरा–चौथी अपराजिता—जया विजया—रुद्रा और अजिता, हे सदा शिव ! मनोन्मनी और सर्वमुखी हैं । अथवा दो दो अंगुल से इनकी रचना करे ।। ८ ।। ९ ।। इन ग्रन्थियो को कुकुम आदि के द्वारा रञ्जित करे तथा गन्ध से पवित्र करे । सप्तमी अथवा त्रयोदशी तिथि में, शुक्ल पक्ष में तथा अन्य पक्ष म इनकी रचना करे ।। १० ।। हे हर ! लिङ्ग का दूध आदि स सम्नपन कराके फिर गन्धाक्षतादि मे यजन करना चाहिए । आत्मा और ब्रह्म के लिय गन्ध पवित्र को देवे ॥ ११ ॥ ईशान दिशा में गन्ध से युक्त पुष्प मूल मन्त्र से समर्पित करे । पूर्व दिशा म दण्ड काष्ठ देवे और उत्तर मे आँवले के फल को अर्पित करना चाहिए ॥ १२ ॥ पश्चिम दिशा में मृत्तिका देवे और दक्षिण मे भस्म को भूति देवे । नैर्ऋत्य कोण मे अगुरु देवे । हे वृषध्वज ! मन्त्रो के वेत्ता को शिखा मन्त्र के द्वारा वायव्य कोण मे सर्षप (सरसो) देवे और कवच क द्वारा अर्पण करे ॥ १३ ॥ सूत्र मे गृह को सवेष्टित करके गन्ध पवित्रा को अर्पण करे । फिर हाम करे और अग्नि को देकर भूत बलि देनी चाहिए ॥१४॥

आमन्त्रितोऽसि देवेश गणै सार्द्ध महेश्वर ।
प्रातस्त्वा पूजयिष्यामि ह्यत्र सन्निहिता भव ॥१५

निमन्त्र्यानेन तिष्ठेत्तु कुर्वन्गीतादिकं निशि ।
मन्त्रितानि पवित्राणि स्थापयेद्देवपार्श्वतः ॥१६
स्नात्वादित्यं चतुर्दश्यां प्राग्रुद्रञ्च प्रपूजयेत् ।
ललाटस्थं विश्वरूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूजयेत् ॥१७
अस्त्रेण प्रोक्षितान्येवं हृदयेनार्चितान्यथ ।
संहितामन्त्रितान्येव धूपितानि समर्पयेत् ॥१८
शिवतत्त्वात्मकं चादौ विद्यातत्त्वात्मकं ततः ।
आत्मतत्त्वात्मकं पश्चाद्देवकाख्य ततोऽर्चयेत् ॥
ॐ हौं शिवतत्त्वाय नमः । ॐ हीं विद्यातत्त्वाय नमः ।
ॐ हां आत्मतत्त्वाय नमः ॥१९
ॐ हां हीं हूँ क्षौं सर्वतत्त्वाय नमः ।
ॐ कालात्मना त्वया देव यद् दृष्टं मामके विधौ ॥
कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं हुतं गुप्तञ्च यत्कृतम् ।
सर्वात्मनाऽऽत्मना शम्भो पवित्रेण त्वदिच्छया ॥
ॐ पूरय पूरय मखव्रतं तन्नियमेश्वराय सर्वतत्त्वात्मकाय
सर्वकारणपालिताय ॐ हां हीं हूँ हैं हौं शिवाय नमः ॥२०
पूर्वैरनेन यो दद्यात्पवित्राणां चतुष्टयम् ।
दत्त्वा वह्नेः पवित्रञ्च गुरवे दक्षिणां दिशेत् ॥
बलिं दत्त्वा द्विजान्भोज्य चण्डं प्राच्य विसर्जयेत् ॥२१

इसके उपरान्त यह प्रार्थना करे—हे देवों के ईश ! हे महेश्वर ! आप का अपने गणों के साथ आमन्त्रण किया जाता है मैं आपका कल प्रातःकाल के समय में पूजन करूँगा सो आप यहाँ पर ही सन्निहित होकर विराजमान होवें ॥ १५ ॥ इस भाँति इससे निमन्त्रण देकर रात्रि में गीत-गान आदि करते हुए स्थित रहे। पवित्राओं को अभिमन्त्रित करके देव के समीप में ही स्थापित करना चाहिए ॥ १६ ॥ स्नान करके आदित्य का और चतुर्दशी में प्रथम रुद्र का पूजन करना चाहिए । ललाट में संस्थित विश्व रूप का ध्यान करके आत्मा का यजन करे ॥ १७ ॥ अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षण किये हुए, हृदय मन्त्र से अर्चित,

संहिता से मन्त्रितों को पूपित करके फिर समर्पित करे ॥ १८ ॥ आदि में शिव तत्त्वात्मक को, फिर विद्या तत्त्वस्वरूप को और पीछे आत्म तत्त्वात्मक को और इसके अनन्तर देव कारण्य को अर्चना करनी चाहिए। इसके मन्त्र ये हैं—" ॐ ह्रीं शिव तत्त्वाय नमः, ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वाय नम, ॐ ह्रा आत्मतत्त्वाय नम." ॥ १९ ॥ ' ॐ ह्रा ही हूँ क्षौं सर्वतत्त्वाय नम ' ' ओम् काल स्वरूप आपने हे देव ! मेरे द्वारा सम्पन्न विधि-विधान में जो भी कुछ देखा है। मैंने जो विनष्ट किया है या उत्सृष्ट कर दिया है, होम किया है और जो किया हुआ गुप्त रह गया है, हे शम्भो ! सबको आत्मा, आत्मा से पवित्र मेरे द्वारा आपकी इच्छा से इसे पूर्ण कर देवें। यह मन्त्र कहे—" ॐ पूरय-पूरय मख व्रत तन्नियमेश्वराय सर्वतत्त्वात्मकाय सर्व कारण पालिताय ॐ हा ह्रीं हूँ है हौं शिवाय नम "। पूर्वों के द्वारा इस मन्त्र से जो चार पवित्रामों को समर्पित करता है और वह्नि को पवित्रा देकर फिर गुरु चरण की सेवा में दक्षिणा अर्पित करे। फिर बलि देकर द्विजों को भोजन करावे और चण्ड का समर्चन करके विसर्जन कर देवे ॥२०॥२१॥

१३०—विष्णु भगवान् का पवित्रारोहण

पवित्रारोपणं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं हरे ।
पुरा देवासुरे युद्धे ब्रह्माद्या शरणं ययु ॥
विष्णुश्च तेषां देवानां ध्वजं ग्रैवेयकं ददौ ॥१
एतौ दृष्ट्वा विलङ्घन्ति दानवानब्रवीद्धरि. ।
विष्णूक्तं ह्यब्रवीन्नागो वासुकेरनुजस्तदा ॥२
वृणीत च पवित्राख्यं वरञ्चेद वृषध्वज ।
ग्रैवेयं हरिदत्तं तु तन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ॥
इत्युक्ते तेन देवास्तान्नाम्ना च तद्वरं ददौ ॥३
प्रावृट्काले तु ये मर्त्या नार्चिष्यन्ति पवित्रकं ।
तेषां सांवत्सरी पूजा विफला च भविष्यति ॥
तस्मात् सर्वेषु देवेषु पवित्रारोहणं क्रमात् ॥४

प्रतिपत्पौर्णमास्यान्ता यस्य या तिथिरुच्यते।
द्वादश्यां विष्णवे कार्यं शुक्ले कृष्णेऽथवा हर ॥५
व्यतीपातेऽयने चैव चन्द्रसूर्यग्रहे शिव।
विष्णवे वृद्धिकार्ये च गुरोरागमने तथा॥
नित्यं पवित्रमुद्दिष्टं प्रावृट्काले त्ववश्यकम् ॥६
कौषेयं पट्टसूत्रं वा कार्पासं क्षौममेव वा।
कुशसूत्रं द्विजानां स्याद्राज्ञां कौषेयपट्टकम् ॥७
वैश्यानाश्चौर्णकं क्षौमं शूद्राणां नववल्कजम्।
कार्पासं पद्मजञ्चैव सर्वेषां शस्तमीश्वर ॥८

श्री हरि ने कहा—अब हरि का भुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला पवित्रारोहण का वर्णन करते हैं। पहिले देवासुर संग्राम में जिस समय युद्ध हो रहा था घबड़ा कर ब्रह्मा आदि समस्त देवगण शरण में गये थे। भगवान् विष्णु ने उन देवगणों को ध्वज और ग्रैवेयक प्रदान किया था ॥ १ ॥ इन दोनों को देख कर विलङ्घन करते हुए दानवों से हरि ने कहा। विष्णु के कहने पर वासुकि का अनुज (छोटा भाई) नाग उस समय में बोला था ॥ २ ॥ हे वृषध्वज ! यह पवित्रा नाम वाला वर वृणीत कीजिए। हरि के द्वारा प्रदान किया हुआ ग्रैवेय लोक में उसके नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त करेगा। उसके द्वारा यह कहने पर उन देवों को नाम से वह वरदान दिया था ॥ ३ ॥ वर्षा ऋतु में जो मनुष्य पवित्राओं के द्वारा अर्चन नहीं करेंगे उन मनुष्यों की सांवत्सरी (वार्षिक) पूजा विफल हो जायगी। इसलिये समस्त देवों में क्रम से पवित्रा रोहण करना परम आवश्यक है ॥ ४ ॥ प्रतिपदा से लेकर पौर्णमासी तिथि तक जिसको भी जो विधि कही जाती है। शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष में हे हर ! द्वादशी तिथि में भगवान् विष्णु के लिये यह पवित्रारोहण करना चाहिए ॥ ५ ॥ हे शिव ! व्यतीपात–अयन—चन्द्रमा-सूर्य्य के ग्रहण के अवसर पर–वृद्धि के कार्य्य के समय पर तथा गुरु के आगमन पर भगवान् विष्णु के लिये प्रावृट् काल में पवित्रारोहण नित्य ही आवश्यक रूप से होना चाहिए। ॥ ६ ॥ पवित्राओं के निर्माण करने के लिये कौषेय, पट्ट सूत्र, कपास का सूत्र

या क्षौम सूत्र होना चाहिए। द्विजों को कुश सूत्र होना चाहिए और राजाओं को कौषेय या पट्ट सूत्र होता है ॥ ७ ॥ वैश्य वर्ण वाले मनुष्यों के लिये ऊन का सूत्र क्षौम और शूद्रों के लिए नवीन वल्कल से होने वाला होना चाहिए। हे ईश्वर! कपास से रचित और पद्मज सूत्र सभी के लिये प्रशस्त कहा गया है ॥८॥

ब्राह्मण्या कर्त्तित सूत्र त्रिगुण त्रिगुणीकृतम्।
ओंकारोऽथ शिव सोमो ह्यग्निर्ब्रह्मा फणी रवि. ॥६
विघ्नेशो विष्णुरित्येत स्थितास्तन्तुषु देवता।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिसूत्रे देवता स्मृता ॥१०
सौवर्णं राजत तन्त्र वैणव मृण्मये न्यसेत्।
अंगुष्ठेन चतुषष्टि श्रेष्ठ मध्य तदर्द्धत ॥११
तदर्द्धा तु कनिष्ठा स्यात् सूत्रमष्टोत्तर शतम्।
उत्तम मध्यमश्चैव कन्यस पूर्ववत् क्रमात् ॥१२
उत्तमोऽगुष्ठमात्रेन मध्यमो मध्यमेन तु।
कन्यसे च कनिष्ठेन अंगुल्या ग्रन्थय स्मृता ॥
विमाने स्थण्डिले चैव एतत्सामान्यलक्षणम् ॥१३
शिवोद्धृत पवित्रन्तु प्रतिमायाश्च कारयेत्।
हृन्नाभिरूमानन जानुभ्यामवलम्बिनी ॥१४
अष्टोत्तरसहस्रेण चत्वारो ग्रन्थय स्मृता।
षट्त्रिंशच्च चतुर्विंश द्वादश ग्रन्थयोऽथवा ॥१५
उत्तमादिषु विज्ञेया पर्वभिर्वा पवित्रकम्।
चर्चित कुंकुमेनव हरिद्राचन्दनेन वा ॥१६

ब्राह्मणी के द्वारा कात कर तैयार किया हुआ सूत्र तिगुना हो और फिर उस त्रिगुणित करे। ओंकार-शिव-सोम-अग्नि—ब्रह्मा—फणी—रवि—विघ्नेश और विष्णु ये इतने सब उन पवित्रा के तन्तुओं में देवता होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये त्रि सूत्र में देवता बताये गये हैं ॥ ६ ॥ १० ॥ सौवर्ण (सुवर्ण से रचित), राजत (चाँदी से निर्मित) वैणव (वेणु अर्थात् बाँस से

निमित) और स्नुगमय तन्त्र में न्यास करे । अंगूठे से चौसठ सबसे श्रेष्ठ होता है, इससे आधा परिमाण वाला मध्यम श्रेणी का होता है ॥ ११ ॥ इससे भी आधे परिमाण वाला सबसे कनिष्ठ श्रेणी का होता है । अष्टोत्तर शत सूत्र उत्तम, अध्यम और कनिष्ठ पूर्व की भाँति क्रम से हुआ करता है ॥ १२ ॥ अंगुष्ठ के मान से जो बनाया जाता है वह उत्तम होता है, मध्यमा के द्वारा मध्यम और कनिष्ठा अंगुलि से जो किया जाता है वह कनिष्ठ होता है, इस प्रकार से इसकी ग्रन्थियाँ कही गई हैं । विमान में और स्थण्डिल में करे—यही इनका साधारण लक्षण होता है ॥ १३ ॥ शिवोद्धृत पवित्रा को तो प्रतिमा में ही करावे । हृदय, नाभि और ऊरुओं के परिमाण से जानुओं तक लटकने वाली पवित्रा होनी चाहिए । अष्टोत्तर सहस्र से चार ग्रन्थियाँ बताई गई हैं । अथवा छत्तीस, चौबीस और बारह ग्रन्थियाँ होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥ अथवा पर्वो से पवित्रा उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ समझ लेने चाहिए । इनका पूजन कुंकुम से अथवा हरि चन्दन के द्वारा करना चाहिए ॥१६॥

सोपवासः पवित्रन्तु पात्रस्थमधिवासयेत् ।
अश्वत्थपत्रपुटके अष्टदिक्षु निवेशितम् ॥१७
दण्डकाष्ठं कुशाग्रञ्च पूर्वे सङ्कर्षणेन तु ।
रोचनाकुंकुमेनैव प्रद्युम्नेन तु दक्षिणे ॥१८
युद्धार्थी भलसिद्धयर्थमनिरुद्धेन पश्चिमे ।
चन्दनं नीलयुक्तञ्च तिलभस्माक्षतं तथा ॥
आग्नेयादिषु कोणेषु श्रियादीनां क्रमान्न्यसेत् ॥१९

उपवास पूर्वक पवित्रा को एक पात्र में संस्थित करके उसका अधिवास करना चाहिए । अश्वत्थ (पीपल) के पत्रों के पुटक (दोना) में आठ दिशाओं में उसे निवेशित करे ॥ १७ ॥ पूर्व दिशा में सङ्कर्षण के द्वारा दण्ड काष्ठ और कुशा के अग्र भाग का—दक्षिण दिशा में रोचना कुंकुम से ही प्रद्युम्न से—पश्चिम दिशा में जो युद्ध के करने वाला हो और फल की सिद्धि के लिये करे—चन्दन, नील से युक्त, तिल तथा भस्माक्षत को आग्नेयादि कोणों में श्रियादि का क्रम से न्यास करना चाहिए ॥१९॥

१३१–रक्त पित्त रोग का निदान

अथातो रक्तपित्तस्य निदानं प्रवदाम्यहम् ।
भृशोष्णतिक्तकट्वम्ललवणादिविदाहिभिः ॥१
कोद्रवोद्दालकैश्चान्यैस्तदुक्तैरतिसेवितैः ।
कुपितं पैत्तिकं पित्तं द्रवं रक्तञ्च मूर्च्छति ॥२
तौ मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुवस्तनुम् ।
पित्तरक्तस्य विकृते संसर्गाद्दूषणादपि ॥३
गन्धवर्णानुवृत्तपु रक्तेन व्यपदिश्यते ।
प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत् ॥४
शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लकः ।
छर्दितश्छर्दिवैभत्स्य कासः श्वासो भ्रमः क्लमः ॥५
लोहिता न हिता मत्स्यगन्धास्यत्वञ्च विज्वरे ।
रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ॥६
नीललोहितपीताना वर्णानामविवेचनम् ।
स्वप्ने उन्मादधर्मस्त्व भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब रक्तपित्त नाम वाले रोग का निदान बतलाते हैं। यह रोग अत्यन्त उष्ण, तिक्त, कटु, अम्ल (खट्टा) और लवण आदि विदाही पदार्थों के तथा कोद्रव, उद्दालक और अन्य इसी प्रकार के कहे हुए पदार्थों के अत्यधिक सेवन करने से और पित्त प्रयुत पदार्थों से पित्त कुपित हो जाता है तथा वह द्रव पित्त और रक्त को मूर्छित कर देता है ॥ १ ॥ २ ॥ वे सब आपस में तुल्य स्वरूपता को प्राप्त होकर शरीर में व्याप्त होते हुए विकृत रूप में पित्तरक्त से तथा संसर्ग के दूषण से गन्ध और वर्ण में अनुवृत्त होने पर रक्त के नाम से ही उसका व्यपदेश किया जाता है। वह असृज के स्थान से तिल्ली और यकृत् से उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके होने से शिर का भारीपन—रुचि का न होना—शीत की इच्छा, धूमक, अम्लक—छर्दि—छर्दि वैभत्स्य—खाँसी—श्वास—भ्रम—क्लम—अहित—मत्स्य गन्ध जैसा मुख का

होना—ज्वर के अभाव में लाल हल्दी का सा और हरे वर्ण का होना—नेत्र आदि में नील, लोहित और पीत वर्णों का विवेचना न करना, स्वप्न में उन्माद के धर्म वाला होना ये सभी होते हैं या हो जाँयगे ।।५।।६।।७।।

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ।।८
ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधिलम् ।
बह्वौषधस्य पित्तस्य विरेको हि वरौषधम् ।।९
अनुबन्धी कफो यत्र तत्र तस्यापि शुद्धिकृत् ।
कषायाः स्वादवो यस्य विशुद्धौ श्लेष्मला हिताः ।।१०
कटुतिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफावहाः ।
अधो याप्यञ्च नायुष्मांस्तत्प्रच्छर्दनसाधकम् ।।११
अल्पौषधञ्च पित्तस्य वमनं नवमौषधम् ।
अनुबन्धिबलो यस्य शान्तपित्तनरस्य च ।।१२
कषायश्च हितस्तस्य मधुरा एव केवलम् ।
कफमारुतसंस्पृष्टमसाध्यमुपनामनम् ।।१३
असह्यं प्रतिलोमत्वादसाध्यादौषधस्य च ।
न हि संशोधनं किञ्चिदस्य च प्रतिलोमिनः ।।१४
शोधनं प्रतिलोमञ्च रक्तपित्तेऽभिसर्जितम् ।
एवमेवोपशमनं सशोधनमिहेष्यते ।।१५
संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वथा छर्दनं हितम् ।
तत्र दोषोऽत्र गमनं शिवाश्च इव लक्ष्यते ।।
उपद्रवाश्च विकृतिं फलतस्तेषु साधितम् ।।१६

नाक—नेत्र—कान और मुख से ऊपर तथा मेढ्र—योनि और गुदा से नीचे समस्त रोगों के छिद्रों के द्वारा यह कुपित होकर प्रवृत्त हुआ करता है । ।। ८ ।। ऊपर के भाग में जो रोग होता है वह साध्य हुआ करता है क्योंकि यह कफ से होता है और विरेचन कराने से साधित होता है । बह्वौषध पित्त

को विरेचन ही सबसे श्रेष्ठ औषध होती है ॥ ९ ॥ जहाँ पर कफ अनुबन्धी होता है वहाँ पर उसकी भी शुद्धि के करने वाला होता है। जिसकी विशुद्धि के करने में कषैले स्वाद वाले पदार्थ होते हैं वे श्लेष्मन तथा हितकर हुआ करते हैं ॥ १० ॥ जो कटु—तिक्त और कषाय स्वाद वाले होते हैं और जो स्वभाव से ही कफ के आवह करने वाले होते हैं। आयुष्मान् को उसका अधो मार्ग में पाचन नहीं करना चाहिए। उसका प्रच्छर्दन साधक होता है ॥ ११ ॥ पित्त की अन्य औषध होती है। जिसका पित्त शान्त हो गया है उस मनुष्य का अनुबन्धी बल होता है ॥ १२ ॥ उसका हित कर कषाय ही होता है। मधुर ही केवल होते हैं। कफ और वायु से जो सम्पर्क करने वाला जो रक्तपित्त होता है वह उपनाम वाला असाध्य रोग हुआ करता है ॥ १३ ॥ प्रति लोमत्व के असाध्य होने में यह असह्य होता है और औषध के द्वारा साध्य नहीं होता है। इस प्रतिलोमी का कुछ भी संशोधन नहीं होता है ॥ १४ ॥ शोधन और प्रतिलोम रक्तपित्त में अभिमर्जित होता है। इसी प्रकार से इसका उपशमन और संशोधन यहाँ पर इष्ट होता है ॥ १५ ॥ यदि सभी दोष आपस में मिल हुए समृद्ध हों तो ऐसी स्थिति में छर्दन कराना ही सर्वथा हित करने वाला होता है। उत्तम दोष है यहाँ पर वमन शिव के अस्त्र की भाँति लक्षित होता है। उपद्रव और जो विकृति होती है फल से उन में साधित है ॥१६॥

१३२-काम रोग का निदान

आशुकारी यत काम स एवात प्रवक्ष्यते ।
पञ्च कासा स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ॥१
क्षयायोपेक्षिता सर्वे बलिनश्चात्तरोत्तरम् ।
तपा भविष्यता रूपं कण्ठे कण्डूररोचक ॥२
शुष्ककर्णास्यकण्ठत्व तथाधोविहिताऽनिल ।
ऊर्ध्वं प्रवृत्त प्राप्यारस्तस्मिन्कण्ठे च सञ्जन् ॥३
शिरास्रोतांसि संपूर्य ततोऽङ्गान्युत्क्षिपन्ति च ।
क्षिपन्निवाक्षिणी क्लिष्टस्वर पार्श्वे च पीडयन् ॥४

प्रवर्त्तते स वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमध्वनिः ।
हृत्पार्श्वोरुशिरःशूलमोहक्षोभस्वरक्षयात् ॥५
करोति शुष्ककासञ्च महावेगरुजास्वनम् ।
सोऽङ्गहर्षी कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतां व्रजेत् ॥६
पित्तात्पीताक्षिकता तिक्तास्यत्व ज्वरो भ्रमः ।
पित्तासृग्वमनं तृष्णा वैस्वर्य्यं धूमको मदः ॥७

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—खाँसी बहुत ही शीघ्र होने वाली होती है इसलिये यहाँ पर उसी के विषय में बतलाया जाता है। यह खाँसी पाँच प्रकार की होती है। तीन तो वात्त-पित्त और कफ ये तीनों दोषों वाली होती हैं। चौथी क्षत होने से और पाँचवी क्षय के कारण वाली खाँसी हुआ करती है॥ १ ॥ चाहे किसी भी प्रकार की खाँसी हो यदि इस खाँसी के रोग की उपेक्षा कर दी जाती है अर्थात् इसके हटाने के लिये कोई उचित उपचार न करके लापरवाही कर दी जाती है तो यह बल वाले पुरुष को भी उत्तरोत्तर क्षय के कर देने वाली हुआ करती है आगे होने वाली खाँसी का रूप यह है कि पहिले कण्ठ में खुजली और अरोचकता हो जाती है ॥ २ ॥ कर्ण—कण्ठ और मुख में शुष्कता होती है और उसके नीचे-नीचे के भाग में वायु होती है। ऊपर की ओर प्रवृत्त होकर उरःस्थल को प्राप्त कर कण्ठ में ससृजन करते हुए शिरा के स्रोतों को सम्पूरित करके अङ्गों को उत्क्षिप्त किया करती है। नेत्रों को क्षिप्त करते हुए की भाँति विलष्ट स्वरों वाला होता है और पार्श्व भाग में पीड़ा समुत्पन्न कर देती है॥ ३ ॥ ४ ॥ इसके पश्चात् खाँसी मुख के द्वारा प्रवृत्त होती है और टूटे हुए काँसे के पात्र की ध्वनि के समान शब्द निकला करता है। यह हृदय—पार्श्व भाग—ऊरु—शिरः शूल—मोह—क्षोभ और स्वर की क्षीणता किया करती है। जो सूखी खाँसी होती है वह बड़े भारी वेग से होने वाला रोग है और बहुत शब्द उसमें हुआ करता है। यह खाँसी अङ्गों को हर्षण करने वाली होती है। इसमें कफ सूखा होता है और बड़ी ही कठिनाई से उसका मोचन किया जाता है और अल्पता को प्राप्त होता है॥५।६॥ पित्त से पीली आँखों वाला हो जाता है, तिक्त स्वप्न, ज्वर और भ्रम होता है। पित्त रक्त का वमन, तृष्णा, निस्वरता, धूमक और मद होता है॥७॥

प्रतत कासवेगे च ज्योतिषामिव दर्शनम् ।
कफाद्धरोऽल्परुङ्मूर्ध्नि हृदय स्तिमित गुरु ॥८
कण्ठे प्रलेपमदन पीनसच्छद्य रोचका ।
रामहर्षो घनस्निग्धश्लेष्मणाश्च प्रवर्त्तनम् ॥६
युद्धाद्यै साहसैस्तैस्तै सेवितैरयथावलम् ।
उरस्यन्तःक्षतो वायु पित्तेनानुगतो वली ॥१०
कुपितः कुरुते कास कफ तेन सशोणितम् ।
पीत श्यावञ्च शुष्कञ्च ग्रथित कुपित वहु ॥११
ष्ठीवेत्कण्ठेन रुजता विभिन्नेनेव चोरसा ।
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥१२
दु खस्पर्शेन शूलेन भेदपीडा हि तापिना ।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यकम्पवान् ॥१३
पारावत इवोत्कूजन्पार्श्वशूली ततोऽस्य च ।
कफाद्यैर्वमन पक्तिबलवर्णश्च हीयत ॥१४

जिस समय म कास (खांसी) का बहुत अधिक वेग होता है तो उसमे ज्योतियो का दर्शन-सा हुआ करता है । कफ स वक्ष स्थल मे थोडी पीडा होती है, माथे म दर्द और हृदय स्तिमित हो जाता है ॥ ८ ॥ कण्ठ मे प्रलेप और पीडा-सी नस, छर्दि और अराचक, रोम हृप तथा घना और चिक्कन. कफ की प्रवृत्ति य सब होते हैं ॥ ६ ॥ युद्ध आदि उन,उन साहसिक कार्यों के करने से यथा बल न होने क कारण उर मे अन्दर क्षत हो जाता है तथा पित्त से अनुगत वायु बलवान् हा जाता है ॥ १० ॥ वह कुपित वायु खाँसी उत्पन्न कर देता है और उससे कफ मे रुधिर आने लगता है वह पीत—श्याव (काला)—शुष्क—ग्रथित और बहुत ही कुपित हो जाता है ॥ ११ ॥ उर स्थल के विभिन्न होने क समान रुज युक्त कण्ठ स उस कफ को थूका करता है । इसमें तीक्ष्ण सुइयो स चुभने के समान पीडा युक्त और शूल वाला मनुष्य हो जाता है ॥ १२ ॥ दु ख क स्पर्श करने वाले शूल से भेदन जैसी पीडा होती है और बहुत ताप का अनुभव हुआ करता है । शरीर के पर्वों मे भेदन—ज्वर—श्वास—

तृष्णा—निस्वरता और कम्प वाला मनुष्य होता है ।। १३ ।। कबूतर की तरह काँस वाला मनुष्य उत्कूजन करता है और उसकी पसलियों में शूल होता है। इसके अनन्तर खांसी वाले पुरुष को कफ आदि से वमन हो जाया करता है तथा उसकी शक्ति-बल और वर्ण का क्षय होता रहता है ।।१४।।

क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं श्वासपृष्ठकटिग्रहः ।
वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मणः ।।१५
कुर्वन्ति यक्ष्मायतने कासं ष्ठीवेत्कफं ततः ।
पूतिपूयोपमं पीतं मिश्रं हरितलोहितम् ।।१६
सुप्यते तुद्यत इव हृदयं पचतीव च ।
अकस्माद्दुष्णशीतेच्छा बह्वशित्वं बलक्षयः ।।१७
स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दर्शननेत्रता ।
ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवन्ति च ।।१८
इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ।
याप्यो वा बलिनां तद्वत्क्षतजोऽपि नवौ तु तौ ।।१६
सिद्धयेतामपि सामर्थ्यादसाध्यादौ च पृथक्क्रमः ।
मिश्रा याप्याश्च ये सर्वे जरसः स्थविरस्य च ।।२०
कासश्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः ।
भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तां त्वरया जयेत् ।२१

जब वह इस तरह अत्यन्त क्षीण हो जाता है तो उसको रक्त के सहित पेशाव होता है । श्वास का रोग, पृष्ठ भाग और कमर में पीड़ा होती है । राज-यक्ष्मा रोग के बन जाने से उसकी समस्त धातुऐं वायु की प्रधानता वाली होकर अत्यन्त कुपित हो जाती हैं ।। १५ ।। जब यक्ष्मा रोग का स्थान होता है तो उसमें खाँसी होती है और फिर वह कफ को थूकता रहता है। वह कफ भी दुर्गन्ध से युक्त मवाद के तुल्य पीले रङ्ग का हरे और लोहित रङ्ग से मिला हुआ होता है ।। १६ ।। इस दशा में उसका हृदय सुप्त तथा तुद्यमान सा होकर पचता सा रहता है । अचानक ही कभी गर्मी और कभी शीत की इच्छा होती है। ऐसा रोगी अधिक खाने वाला होता है और उसके बल का क्षय हो जाया

करता है ॥१७॥ इस रोग वाले के मुख पर स्निग्धता और प्रसाद रहा करते हैं और नेत्रों में श्रीमत्ता दिखलाई देती है। इसके अनन्तर इसको सम्पूर्ण क्षय के स्वरूपों का प्राविर्भाव हो जाया करता है ॥१८॥ इस प्रकार का यह क्षय से समुत्पन्न होने वाला कास है जो क्षीणता वाले मनुष्यों के देह को नष्ट कर देने वाला हुआ करता है। जो बलधारी मनुष्य होते हैं उनकी खाँसी हटाये जाने के योग्य होती है और इसी तरह से क्षत से उत्पन्न भी कास दूर कर देने के लायक है क्योंकि ये दोनों नवीन ही हाती है ॥१६॥ सामर्थ्य से ये दूर की जाया करती हैं। साध्य आदि में इसका पृथक् क्रम होता है। ये सब मिश्रित तथा हटाई जाने के योग्य होती हैं। वृद्ध आदमी को बुढ़ापे के कारण भी खाँसी हुवा करती है ॥२०॥ खाँसी—श्वास—क्षय—छर्दि और स्वर साद ये रोग उपेक्षा भाव से प्राय हो जाया करते हैं इसलिये ये रोग हो तो बहुत ही शीघ्रता से इन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए ॥२१॥

१३३—श्वास रोग निदान

अथात श्वासरोगस्य निदानं प्रवदाम्यहम्।
कासवृद्धया भवेत् श्वास पूर्ववां दोषकोपनैं ॥१
आमातिसारवमथुविषपाण्डुज्वरैरपि।
रजोधूमानिलैर्मर्मघातादपि हिमाम्बुना ॥२
क्षुद्रकस्तमकच्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चम।
कफोपरुद्धगमनपवनो विष्वगास्थित ॥३
प्राणोदकान्नवाहीनि दुष्टस्रोतांसि दूषयन्।
उरःस्थ कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम् ॥४
प्राग्रूप तस्य हृत्पार्श्वशूल प्राणविलोमता।
आनाह शङ्खभेदश्च तत्रायामोऽतिभाजनं ॥५
प्रेरित प्रेरयन् क्षुद्र स्वयं स समनं मरुत्।
प्रतिलोम शिरा गच्छेदुदीर्य पवनः कफम् ॥६
परिगृह्य शिरोग्रीवमुर पार्श्वं च पीडयन्।
कास घुर्घुरक मोहरुचिर पीनस भृशम् ॥७

करोति तीव्रवेगश्च श्वासं प्राणोपतापिनम् ।
प्रताम्येत्तस्य वेगेन ष्ठीवनान्ते क्षणं सुखी ।।८

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब हम श्वास रोग का निदान बतलाते हैं। खाँसी की वृद्धि हो जाने से अथवा पहिले दोषों के कोप के होने से श्वास रोग हो जाता है ।।१।। आमातिसार, वमथु, विष, पाण्डु ज्वर, रजोधूम अनिल, मर्मस्थल में चोट, हिमाम्बु से क्षुद्रक स्तनक छिन्न महान् ऊर्ध्व पञ्चम कफ से उपरुद्ध गमन वाला वायु सब ओर आस्थित होता हुआ प्राण, जल और अन्न के वहन करने वाले दुष्ट स्रोतों को दूषित करता हुआ उरःस्थल में स्थित होकर आमाशय में समुत्पत्ति वाला श्वास रोग को कर देता है ।।२।३।४।। इस श्वास का प्राग्रूप यह है कि हृदय, पार्श्व में शूल होता है, प्राण की विलोमता, आनाह, शङ्खभेद और अति भोजन से आयास होता है ।।५।। प्रेरित होता हुआ क्षुद्र प्रेरणा करते हुए स्वयं मल के सहित वायु प्रतिलोम कफ को उदीरित करके शिरा को चला जाता है ।।६।। परिग्रहण करके शिर—गरदन—वक्ष और पार्श्व भागों को पीड़ा देता हुआ घुरघुर करने वाली खाँसी तथा मोह रुचिर पीनस को कर देता है ।।७।। प्राणों को उपताप करने वाले श्वास के वेग को अति-तीव्र कर देता है। उसके वेग से मनुष्य को एक दम संतप्त कर दिया करता है और जब वह ष्ठीवन (थूकने की क्रिया) करता है तो उसे क्षण मात्र को शान्ति प्राप्त होती है ।।८।।

कृच्छ्राच्छयानः श्वसिति निषण्णः स्वास्थ्यमर्हति ।
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्त्तिमान् ।।९
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासः कांक्षत्युष्णं सवेपथुः ।
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ।।१०
स याप्यस्तमकः साध्यो नरस्य बलिनो भवेत् ।
ज्वरमूर्च्छावतः शीतैर्न शाम्येत्प्रथमस्तु सः ।।११
कासश्वसितवच्छीर्णमर्मच्छेदरुजार्दितः ।
सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाहविबोधवान् ।।१२
अधोदृष्टिः प्लुताक्षस्तु स्निह्यद्रक्तैकलोचनः ।
शुष्कास्यः प्रलपन्दीनो नष्टच्छायो विचेतनः ।।१३

महता महता दीनो नादेन श्वसिति क्वथन् ।
उद्धूयमान सरब्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥१४

श्वास से पीडित पुरुष शयन करता हुआ बडी ही कठिनाई और क्लेश से सोता है। जब घबरा उठता है तो वह बैठा हो जाता है उसी समय मे उसे कुछ स्वस्थता प्रतीत होती है। उसकी आँखें ऊपर को चढ जाती हैं और ललाट प्रदेश मे पसीना हो जाया करता है। वह अत्यन्त ही भ्राति से उत्पीडित हो जाता है ॥९॥ विशेष रूप से सूखे हुए मुख वाले उस पुरुष को बार-बार श्वास चलता है और कम्प से युक्त वह उष्णता की आकांक्षा किया करता है। मेघो स होने वाले जल शीत और पूर्व की वायु और श्लेष्मा बढाने वाली वस्तुओ से यह श्वास का रोग अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१०॥ जो बलवान् मनुष्य होता है उसका यह स्तमक श्वास कुछ साध्य तथा हटाये जाने के योग्य होता है। ज्वर मूर्च्छा वाले का प्रथम प्रकार का श्वास शीतोपचारों से शामित नही होता है ॥११॥ कास और श्वास वाला क्षीण मर्मों के छेदन की पीडा से युक्त, पसीने के साथ मूर्च्छित हो जाने वाला, आनाद वाला, वस्ति भाग मे दाह क अनुभव वाला, नीचे की ओर दृष्टि रखने वाला, चढ़ी हुई आँखो वाला, स्निग्ध और रक्त लोचन वाला, सूखे हुए मुख वाला प्रलाप (अनर्थक वचन) करने वाला, दैन्य से युक्त, नष्ट कान्ति वाला, चेतना से शून्य बहुत-बहुत ध्वनि के साथ अत्यन्त दीन होता हुआ कठिनाई से श्वास लेता है। उद्धूयमान और सरब्ध सर्वदा मत्त ऋषभ की भाँति रहता है ॥१२॥१३॥१४॥

प्रनष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः ।
अक्ष समाक्षिपन्वद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥१५
शुष्ककण्ठो मुहुश्चैव कर्णशङ्खशिरोऽतिरुक् ।
यो दीर्घमुच्छ्वसित्यूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः ॥१६
श्लेष्मावृतमुखस्रोत्र क्रुद्धगन्धवहार्दित ।
ऊर्ध्वदिग्वीक्षते भ्रान्तमक्षिणी परित क्षिपन् ॥१७
मर्मसु छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धवाक् ।
एते सिद्धयेयुरव्यक्ता व्यक्ताः प्राणहरा ध्रुवम् ॥१८

जिसका ज्ञान और विज्ञान एक दम नष्ट हो गया है और जो विशेष रूप से भ्रान्त नेत्रों तथा मुख वाला है। अक्ष को समाक्षिप्त करता हुआ बद्ध मूत्र एवं वर्चस वाला है। जिसकी वाणी विशीर्ण प्राय हो गई है ॥१५॥ गला सूखा हुआ है और बार-बार कान—शङ्ख और शिर में अत्यन्त पीड़ा होती है। जो बहुत लम्बा ऊपर को श्वास तो लेता है किन्तु नीचे की ओर फिर प्रत्याहरण नहीं किया करता है ॥१६॥ श्लेष्मा (कफ) से आवृत मुख तथा श्रोत्र वाला है—क्रुद्ध वायु से पीड़ित है, अपनी आँखों को सब ओर फैंकता हुआ ऊपर की दिशा में ही देखता है और भ्रान्त-सा रहता है ॥१७॥ मर्म स्थानों में छिद्यमान होकर अत्यन्त परिदेवन करने वाला है जो बोलने में असमर्थ सा होकर बोलता हुआ रुक जाता है। ये सब अव्यक्त सिद्ध होते हैं, व्यक्त निश्चय ही प्राणों के हरण करने वाले होते हैं ॥१८॥

१३४--हिक्का रोग निदान

हिक्कारोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु ।
श्वासैकहेतु प्राग्रूपं संख्या प्रकृतिसंश्रया ॥१
हिक्का भक्ष्योद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च ।
गम्भीरा च मरुत्तत्र त्वरयाऽयुक्तिसेवितैः ॥२
रूक्षतीक्ष्णखराशान्नैरन्नपानैः प्रपीड़ितः ।
करोति हिक्कां मरुतो मन्दशब्दां क्षुवानुगाम् ।
समं सन्ध्यान्नपानेन या प्रयाति च सान्नजा ॥३
आयासात्पवनः क्रुद्धः क्षुद्रां हिक्कां प्रवर्त्तयेत् ।
जत्रुमूलात्परिसृता मन्दवेगवती हि सा ॥४
वृद्धिमायासतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम् ।
चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते ॥५
परिणामा मुखे वृद्धिं परिणामे च गच्छति ।
कम्पयन्ती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥६
प्रलापच्छर्द्यतीसारनेत्रविप्लुतजृम्भिता ।
यमला वेगिनी हिक्का परिणामवती च सा ॥७

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम हिक्का (हिचकी) रोग के निदान के विषय में बतलाते हैं। तुम इसका श्रवण करो। इस रोग का प्रायः श्वास के हेतु वाला ही होना है। इसकी संख्या प्रकृति के समय वाली है ॥१॥ हिक्का भक्ष्य से उत्पन्न होने वाली—क्षुद्रा—यमला—महती और गम्भीरा होती है। अयुक्त सेवन किये हुए त्वरा के साथ रूक्ष—तीक्ष्ण—खर—असात्म्य अन्न और पानी के द्वारा प्रपीडित होने वाला वायु हिक्का को उत्पन्न कर देता है। यह मन्द शब्द वाली क्षुद्रानुगा होती है और सम मन्थाम पान से जो चलती है वह असमा होती है ॥ २।३ ॥ आयास से क्रुद्ध होने वाला वायु क्षुद्र हिचकी को उत्पन्न कर देता है। यह हिचकी जत्रु के मूल से परिसृत होती हुई मन्द वेग वाली वह होती है ॥४॥ यह आयास (श्रम) से वृद्धि को प्राप्त हो जाती है और भोजन करने मात्र से मृदुता को प्राप्त होती है। चिरकाल से यमल वेगा के द्वारा जो हिचकी सम्प्रवृत्त होती है मुख में परिणाम वाली परिणाम में वृद्धि को प्राप्त होती है। शिर और ग्रीवा को कम्पित करती हुई जो हिचकी होती है उस हिक्का को यमला कहते हैं ॥५।६॥ प्रलाप—छर्दि-अतीसार–नेत्र विप्लुत और जृम्भा वाली हिचकी यमला और वेग वाली तथा परिणाम में सयुत होती है ॥७॥

ध्वस्तभ्रू शङ्खयुग्मस्य श्रुतिविप्लुतचक्षुष ।
स्तम्भयन्ती तनु वाच स्मृति सज्ञाञ्च मुञ्चती ॥८
तुदन्ती मार्गमाणस्य कुर्वती मर्मघट्टनम् ।
पृष्ठतो नमन साऽऽर्यं महाहिक्का प्रवर्तते ॥९
महाशूला महाशब्दा महावेगा महाबला ।
पक्वाशयाद्व नाभेर्वा पूर्ववत्स्या प्रवर्तते ॥१०
तद्रूपा सा महत्कुर्व्याज्जृम्भणाङ्गप्रसारणम् ।
गम्भीरेण निदानन गम्भीरा तु सुसाधयेत् ॥११
आद्ये द्वे वर्जयेदन्ये सर्वलिङ्गाञ्च वेगिनीम् ।
सर्वस्य सञ्चितामस्य स्थविरस्य व्यवायिन ॥१२

व्याधिभिः क्षीणदेहस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ।
सर्वेऽपि रोगा नाशाय नत्वेवं शीघ्रकारिणः ।
हिक्काश्वासौ यथा तौ हि मृत्युकाले कृतालयौ ॥१३

भ्रूशङ्ख के युग्म को ध्वंस्त जिसका कर दिया है और श्रुति विप्लुत चक्षु वाला जो हो गया है ऐसे पुरुष के शरीर को स्तम्भित करती हुई वाणी-स्मृति और संज्ञा को छुड़ा देने वाली, मार्गमार्ग का तोदन करने वाली तथा मर्मों का दाहन करती हुई होती है और पीछे से जिसमें नमन हो हे आर्य्य ! वह महा हिक्का होकर प्रवृत्त होती है । ८।६।। इस हिचकी में महान् शूल होता है और यह महान् शब्द वाली होती है, बहुत अधिक वेग वाली तथा महान् बल से संयुत होती है। यह पक्वाशय से अथवा नाभि से उठकर पूर्व की भाँति ही प्रवृत्त हुआ करती है ॥१०॥ इस रूप वाली हिचकी जो होती है वह जँभाई और अङ्ग का प्रस्तरण अधिक किया करती है गम्भीर नाद से गम्भीर उसको सुसाधित करे ॥११॥ आद्य जो दो हैं उनको वर्जित करे और अन्य जो होती हैं वे सब लिङ्गों से वेग वाली होती हैं । सबकी सञ्चित को तथा व्यवायी वृद्ध, व्याधियों से क्षीण देह वाले, भक्तच्छेद से कृश पुरुष के सभी रोग नाश करने वाले हुआ करते हैं किन्तु इस प्रकार से शीघ्र देह के नाश करने वाले नहीं होते हैं जिस तरह से हिचकी और श्वास ये दो रोग देह को नष्ट करने वाले होते हैं क्योंकि ये दोनों तो मृत्यु के समय में भी हर एक के समुत्पन्न हो जाने वाले ही होते हैं । जब मौत होने को होती है तो ऊर्ध्व श्वास चलने लगता है और हिचकी आकर ही प्राण पखेरू प्रयाण किया करते हैं ॥१२॥१३॥

१३५--यक्ष्मा रोग का निदान

अथातो यक्ष्मरोगस्य निदानं प्रवदाम्यहम् ।
अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः ॥१
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति कथ्यते ।
नक्षत्राणां द्विजानाञ्च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा ।
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः ॥२

देहौषधक्षयकृते क्षयान्ते सम्भवेच्च स ।
रसादिशोषणाच्छोषो रोगराडिति राजवान् ॥३
साहसं वेगसरोध शुक्रौज स्नेहसक्षय ।
अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतव. ॥४
तैरुर्दार्णोऽनिलः पित्त व्यर्थश्चोदीर्य्य सर्वत. ।
शरीरसन्धिमाविश्य ता शिरा प्रतिपीडयन् ॥५
मुखानि स्रोतमा रुद्धा तथैवातिविसृज्य वा ।
मध्यमूर्ध्वमधस्तिर्य्यग्यथा सञ्जनयेद्ग‍दः ॥६
रूप भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृश ज्वरः ।
प्रसेको मुखमाधुर्य्यं मार्दव वह्निदेहयो ॥७

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—अब इसके अनन्तर हम यक्ष्मा रोग के निदान को बतलाते हैं । यह यक्ष्मा रोग ऐसा होता है जिसके साथ पीछे लगे हुए बहुत से रोग हुआ करते हैं और इसके होने के पहिले भी कितने ही रोग हो जाया करते हैं । इस तरह पहिले और पीछे अनेक रोगो को साथ लिकर ही यह महान् यक्ष्मा नाम वाली व्याधि मनुष्य को हुआ करती है । यह राजयक्ष्मा रोग क्षय और मनुष्य का शोषण करने वाला होता है इसीलिये समस्त रोगों का यह राजा है—ऐसा ही कहा जाया करता है । इसका नाम राजयक्ष्मा इसीलिये पड़ा है कि यह पहिले समय में नक्षत्रो, द्विजो और राजाओं को ही होता था । जो राजा है और यक्ष्मा है—इसी से राजयक्ष्मा नाम धारी यह रोग हुआ है ॥१॥२॥ देह और औषध का क्षय करने वाला यह होता है तथा क्षय जब हो जाता है तो उसके अन्त में यह समुत्पन्न होता है । इससे रसादि सभी का पूर्णतया शोषण होता है इसी कारण से इसको शोष भी कहते हैं । रोगों का यह राजा है इसी से 'राज'-शब्द इसके नाम के साथ में लगा हुआ है ॥३॥ इस राजयक्ष्मा महान् व्याधि के उत्पन्न होने के चार मुख्य हेतु हुआ करते है । उनके नाम हैं—साहस अर्थात् करने न करने के योग्य हर काम में बुरी तरह से पिल पड़ने की हिम्मत करना—वेग सरोध अर्थात् भूख-प्यास और मलादि का उत्सर्ग करने आदि के जो वेग शरीर में हुआ करते हैं उनका रोक कर रखना यह

दूसरा इस रोग की उत्पत्ति का हेतु होता है। वीर्य, ओज और स्नेह का शरीर से क्षीण हो जाना भी इसका एक हेतु होता है। अन्न-पान की विधि का त्याग कर देने से भी यह दुर्बलता होकर रोग पैदा हो जाया करता है ॥३॥४॥ इन उपर्युक्त चारों प्रकार के कारणों से वायु उदीर्ण हो जाता है और वह पित्त को उदीर्ण कर देता है फिर वह शरीर की सन्धि में प्रवेश करके समस्त शिराओं को पीड़ित करता हुआ सभी स्रोतों के मुखों का रोध कर देता है और उसी प्रकार से सर्वत्र अति विसृष्ट होकर ऊर्ध्व भाग, मध्य भाग, अधोभाग और तिर्यग्भाग में हृदय को व्यथा उत्पन्न कर दिया करता है ॥५॥६॥ होने वाले इस रोग का जो आरम्भ में स्वरूप बनता है वह यह है कि जुकाम होता है और फिर उसी प्रतिश्याय में अत्यन्त अधिक तेज ज्वर हो जाता है। प्रसेक, मुख का मिठास और वह्नि तथा देह का मार्दव होता है ॥७॥

लौल्यमाग्न्निपानादौ शुचावशुचिवीक्षणः ।
मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रायोऽन्नपानयोः ॥८

हृल्लासच्छर्दिररुचिरस्नातेऽपि बलक्षयः ।
पाण्योरुवक्षःपादास्यकुक्ष्यक्ष्णोरतिशुक्लता ॥६

बाह्वोः प्रतोदो जिह्वायाः काये वैभत्स्यदर्शनम् ।
स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणिता मूर्द्धगुण्ठनम् ॥१०

नखकेशास्थिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिभवो भवेत् ।
पतनं कृकलासाहिकपिश्वापदपक्षिभिः ॥११

केशास्थितुषभस्मादितरौ समधिरोहणम् ।
शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः ।
ज्योतिर्दिवि दवाग्नीनां ज्वलताञ्च महीरुहाम् ॥१२

पीनसश्वासकासश्च स्वरमूर्द्धरुजोऽरुचिः ।
ऊर्ध्वनिःश्वाससंशोषावधश्छर्दिश्च कोष्ठगे ॥१३
स्थिते पार्श्वे च रुग्बोधे सन्धिस्थे भवति ज्वरः ।
रूपाण्येकादशैतानि जायन्ते राजयक्ष्मणः ॥१४

मार्ग और अन्न-पान आदि में चञ्चलता तथा शुचि में अशुचिता का देखना—मक्षिका-तृण और केशादि का पात प्राय. अन्न और पान में होता है। ॥८॥ हृल्लास-छर्दि—अरुचि और अशनात होने पर भी बल की क्षीणता—पाणि-ऊरु—वक्ष स्थल—पाद-मुख-कुक्षि-नेत्र इन शरीर के अङ्गों में अत्यन्त शुक्लता हा जाना ये सब चिह्न इस रोग में हो जाया करते हैं ॥९॥ दोनों बाहुओं में प्रतोद अर्थात् पीडा तथा जिह्वा और शरीर में बीभत्सता का दिखलाई देना—स्त्री प्रसङ्ग, मदिरा पान की ओर दिल का झुकाव होना, घृणिता, मूर्द्ध गुण्ठन, नाखून-केश और अस्थि की वृद्धि, इस प्रकार के स्वप्न देखना जिसमें अपना अभिभान हो, कृकलास, सर्प, बन्दर और पक्षियों का पतन देखना केश, अस्थि, तुष, भस्म तथा वृक्ष पर समाधिरोहण देखना, शून्य ग्राम देशो का तथा जल को सूखा का देखना, दिन में तारों का दिखलाई देना और दावाग्नि से जलते हुए वृक्षों का देखना ये सब इस रोग स पीडित मनुष्य को हुआ करता है ॥१०॥११॥१२॥ पीनस-श्वास-खाँसी-स्वरमूर्द्ध रुक्-अरुचि-ऊर्ध्व नि श्वास-सशोष—अधश्छर्दि कोष्ठगत होते हैं ॥१३॥ पार्श्व भागों में और सन्धियों में पीडा का होना और ज्वर का रहना भी इस रोग में होता है। राजयक्ष्मा महान् रोग के एकादश रूप हुआ करते हैं। १४॥

तेषामुपद्रवान् विद्यात्कण्ठध्वसकरो रुज. ।
जृम्भाङ्गमर्दनिष्ठीववह्निमान्द्यास्यपूतिता ॥१५
तत्र वाताच्छिर पार्श्वशूलञ्च साङ्गमर्दनम् ।
कण्ठरोध स्वरभ्र शो पित्तात्पादासपाणिषु ॥१६
दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगन्धो ज्वरो मद ।
कफादरोचकच्छर्दिकासावर्द्धाङ्गगौरवम् ॥१७
प्रसेक पीनस श्वास स्वरभेदोऽल्पवह्निता ।
दोषैर्मन्दानलत्वेन शोथलेपकफोल्बणैः ॥१८
स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातुषु स्वल्पकेषु च ।
मनस. स्थाने भवन्त्यन्ये ह्युपद्रवा ॥१९

पच्यते कोष्ठ एवान्नमम्लयुक्तं रसैयुतम् ।
प्रायोऽस्य क्षयभागानां नैवान्नं चाङ्गपुष्टये ।।२०
रसो ह्यस्य न रक्ताय मांसाय कुरुते तु तत् ।
उपस्तब्धः समन्ताच्च केवलं वर्तते क्षयी ।।२१

उनके जो उपद्रव होते हैं उनको समझ लेना चाहिए, कण्ठ के ध्वंस करने वाली पीड़ा, जँभाई का आना, शरीर के अङ्गों का टूटना, निष्ठीवन, अग्नि की मन्दता, मुख में दुर्गन्ध का रहना यह सब इस व्याधि में रोगी को हुआ करता है ।।१५।। उसमें जब वात का प्रकोप होता है तो उससे शिर में और पार्श्व भागों में शूल अधिक होता है—शरीरावयवों में टूटन होती रहा करती है। गला रुक जाता है, स्वर का भ्रंश हो जाया करता है। जब पित्त का प्रकोप होता है तो पैर, कन्धे और हाथों में दाह होता है—दस्त होते हैं-रक्त गिरता है—छर्दि—मुख में वास, ज्वर और मद हो जाते हैं। कफ का प्रकोप इस रोग में होता है तो इससे अरोचकता, छर्दि, खाँसी और अर्द्धाङ्ग में भारापन हो जाता है ।।१६।१७।। प्रसेक, पीनस, श्वास, स्वरभेद, अग्नि का कम होना ये सब लक्षण इन दोषों से हो जाया करते हैं। वायु के मन्द हो जाने से शोथ (सूजन) लेप और कफ की उल्बणता हो जाती है। इससे समस्त स्रोतों के मुख रुक जाया करते हैं और शरीर की सभी धातुऐं स्वल्प हो जाया करती हैं। मन में विशेष दाह होता है : इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से उपद्रव हो जाया करते हैं। ।।१८।१९।। कोष्ठ में जो अन्न पहुँचता है वह अम्ल से संयुत रसों के द्वारा परिपाक को प्राप्त हुआ करता है किन्तु इस रोग वाले पुरुष के सभी भाग क्षीण हो जाते हैं। इसलिये उसका खाया हुआ अन्न अङ्गों की पुष्टि नहीं किया करता है। ।।२०।। जो भी भुक्त पदार्थ का रस बनता है उससे न तो फिर आगे चलकर रक्त ही बनता है और न मांस बना करता है। सब ओर से उपस्तब्ध होकर अर्थात् पोषण की सभी क्रियाओं के रुक जाने पर वह केवल क्षय वाला ही होता रहता है ।।२१।।

लिङ्गेष्वल्पेष्वतिक्षीणं व्याधौ षट्करणक्षयम् ।
वर्जयेत्साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा ।।२२

दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात्सर्वस्य मेदसाम् ।
स्वरभेदो भवेत्तस्य क्षामो रूक्षश्चल: स्वर ॥२३
शूकपर्णाभकण्ठत्वं स्निग्धोष्णोपशमोऽनिलात् ।
पित्तात्तालुगले दाह शोषो भवति सन्ततम् ॥२४
लिम्पन्निव कफे. कण्ठ मुख घुरघुरायते ।
स्वय विरुद्धै सर्वैस्तु सर्वलिङ्गै क्षयो भवेत् ॥२५
धूमायतीव चात्यर्थमुदेति श्लेष्मलक्षणम् ।
कृच्छ्रसाध्या क्षयाश्चात्र सर्वैरल्पश्च वर्जयेत् ॥२६

जब ये चिह्न स्वल्प स्वरूप मे होते हैं तभी वह अत्यन्त क्षीणता प्राप्त करने लगता है। इस व्याधि मे षट्करण क्षय होता है। इसलिये उसको सभी से वर्जित होना चाहिए और क्षीणता मे बचन के लिये साधन करना चाहिये, अन्यथा यह परिणाम होता है कि इन समस्त दोषो के अलग-अलग या सबके मिल जाने पर कुपित हो जाने से मेदो का क्षय हो जाता है। उसका स्वर भेद होता है और इसका रोगी अत्यन्त क्षाम—रूक्ष एव चल स्वर वाला हो जाया करता है॥२२।२३॥ शूकपर्ण के समान कण्ठ हो जाता है तथा वात से स्निग्धता एव उष्णता का उपशमन हो जाया करता है। पित्त के प्रकोप से तालु और गले मे बडा भारी दाह होता है और निरन्तर शोषण होता रहा करता है।२४। कफ के प्रकोप से उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो गला लिप्त सा हो रहा है और मुख में कफ की घुरघुराहट सदा होती रहा करती है। इन समस्त दोषो के प्रतिकूल हो जाने पर सभी प्रकार के चिह्न उसके हो जाते हैं और उस रोगी का क्षय होता रहता है ॥२५॥ उस अत्यन्त धुँआ से घुटन की भाँति अनुभव होता है यही श्लेष्मा के लक्षण उसको प्रकट होकर किया करते है। ये क्षय इस प्रकार के हैं जो बहुत ही कठिनाई से साध्य हुआ करते हैं। इनमें सभी को अल्पों से वर्जित कर देना चाहिए ॥२६॥

१३६ — अतीसार रोग का निदान

अतीसारग्रहण्योश्च निदानं वच्मि सुश्रुत ।
दोषैर्व्यस्तै समस्तैश्च भयाच्छोकाच्च षड्विध ॥१

अतीसारः स सुतरां जायतेऽत्यम्बुपानतः ।
विशुष्कान्नवसास्नेहतिलपिष्टविरूढ़कैः ॥२
मद्यरुक्षातिमात्रादिदिवसादिपरिश्रमात् ।
कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितानिलः ॥३
विभ्रंसयत्यधो रक्तं हृत्वा तेनैव चानलम् ।
व्यापद्यग्निशकृत्कोष्ठपुरीषद्रवतादयः ॥४
प्रकल्पतेऽतीसारस्य लक्षणं तस्य भाविनः ।
भेदो हृद्गुदकोष्ठेषु गात्रस्वेदो मलग्रहः ॥५
आध्मानमविपाकश्च तत्र वातेन विज्वरम् ।
स्वल्पाल्पं शब्दशून्याढ्यं विरुद्धमुपवेश्यते ॥६
रुक्षं सफेनमस्वच्छं ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः ।
तथा दग्ध्वा गुदामांसं पिच्छिलं परिकर्त्तयन् ।
सशुष्कभ्रष्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिःश्वसन् ॥७

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—हे सुश्रुत ! अब हम अतीसार और ग्रहणी रोगों के निदान अर्थात् मूल कारण को बतलाते हैं । ये रोग तीनों व्यस्त दोषों के प्रकोप से तथा सबके मिश्रित होकर प्रकुपित होने से, भय के कारण से और शोक से उत्पन्न होने वाला छः प्रकार का होता है ॥१॥ यह जो अतीसार होता है वह सुतरां अत्यधिक जल के पीने से ही जाया करता है । विशेष रूप से शुष्क अन्न, बसा, स्नेह, तिल, पिष्ट और विरूढ़कों से यह हो जाता है ॥२॥ मद्य, रुक्ष, अत्यधिक मात्रा आदि और दिनस के आदि में परिश्रम से, कृमियों के उत्पन्न होने से तथा वेगों के रोक लेने से और इसी प्रकार के अन्य कारणों से वायु कुपित हो जाता है ॥३॥ ऐसा कुपित हुआ वायु उसी के द्वारा अग्नि का हनन करके रक्त को नीचे की ओर विभ्रंशित कर देता है । व्यापरित करके अन्न मल कोष्ठ और पुरीष की द्रवता आदि कर दिया करता है ॥४॥ होने वाले उसका लक्षण अतीसार कहा जाता है । हृदय, गुदा और कोष्ठों में भेदन, गात्र स्वेद और मल ग्रह हो जाता है ॥५॥ उसमें वात से आध्मान, अविपाक, विज्वर और स्वल्पाल्प शब्द शून्यता से युक्त विरुद्ध उपविष्ट होता है ॥६॥ रुक्ष,

फेनों (झागों) से युक्त, स्वच्छता से रहित, प्रयत्न जो कि बार-बार होता है, गुदा के मांस को दग्ध करके विच्छिन्न परिकर्तन करने वाला है। शुष्कता से युक्त परिभ्रष्ट गुदा वाला, हृष्ट रोमों से युक्त विशेष रूप से निःश्वास लिया करता है ॥७॥

पित्तेन पीतमसितं हारिद्रं शाद्वलप्रभम् ।
सरक्तमतिदुर्गन्धं तृण्मूर्च्छास्वेददाहवान् ॥८
सशूलपायुसन्तापपाकवाञ्छ्लेष्मणा घनम् ।
पिच्छिलं तन्तुसारमल्पाल्पं सप्रवाहिकम् ॥९
सरोमहर्षं सोत्क्लेशो गुरुर्बस्तिगुदोदरः ।
कृतेऽप्यकृतसञ्ज्ञश्च सर्वात्मा सर्वलक्षणः ॥१०
भयेन क्षुभिते चित्ते शयितो द्रावयेच्छकृत् ।
वायुस्तता निवार्येत क्षिप्रमुष्णं प्रविप्लवम् ॥११
वातपित्ते समं लिङ्गमभूतद्वच्च शोषतः ।
अतीसारः समासेन द्वेधा सामो निरामकः ॥१२
शकृद्दुर्गन्धमाटोपविष्टम्भार्तिप्रसेकिनः ।
विपरीतो निरामस्तु कफात्काऽपि न मज्जति ॥१३
अतीसारेषु यो नातियत्नवान्ग्रहणीगदः ।
तस्य स्यादग्निनिर्वाणकरैरत्यनुसेवितैः ॥१४

पित्त के कारण होने वाले रोग में पीला—असित—हल्दी के रङ्ग वाला—घास के समान वर्ण से युक्त—रुधिर वाला—अधिक दुर्गन्ध से समन्वित—तृष्णा, मूर्च्छा, स्वेद और दाह वाला होता है ॥ ८ ॥ कफ के प्रकोप से जो यह व्याधि होती है उसमें पायु में शूल होता है, सन्ताप और पाक से युक्त गुदा होती है और घन, पिच्छिल और उसमें तदनुसार अल्प प्रवाहिका के सहित मल का उत्सर्ग होता है ॥ ९ ॥ रोम हर्ष और उत्क्लेश से युक्त बस्ति, गुदा और उदर पर्यन्त भारीपन से युक्त होते हैं। सब के स्वरूप वाला सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त होता है, किये जाने पर भी अकृत सञ्ज्ञा वाला रहता है ॥१०॥ भय से क्षोभ युक्त चित्त होने पर शयन करता हुआ ही मल को द्रवित रूप से

निकाल दिया करता है। शीघ्र ही उष्ण और प्रविप्लव को वायु निवारण कर दिया करता है ॥ ११ ॥ वात और पित्त इन दोनों दोषों के प्रकोप से जो रोग उत्पन्न होता है उसमें समान ही लक्षण भी हुआ करते हैं और इसी भाँति शोक के कारण होने वाले रोग में होता है। संक्षेप में यह अतीसार साम और निराम दो प्रकार का होता है अर्थात् एक तो ऐसा अतीसार होता है जिसमें साथ ही आम (कच्चा अपरिपक्व रस) हुआ करता है और दूसरा बिना आम वाला होता है ॥ १२ ॥ जो आम से युक्त अतीसार होता है उसमें मल दुर्गन्ध से युक्त होता है और आरोप, विष्टम्भ, आर्त्ति (पीड़ा) और प्रत्येक से युक्त रहा करता है। इसके विपरीत बिना आम वाला है। कफ से कोई भी मज्जित नहीं होता है ॥ १३ ॥ अतीसार के हो जाने पर जो इसके निवारण करने के लिये विशेष यत्न करने वाला नहीं होता है वह ग्रहणी रोग का शिकार बन जाया करता है। अधिक समय तक अतीसार के रहने पर पाचन करने वाली जो अग्नि होती है उसका निर्वाण अर्थात् समाप्ति हो जाता है ॥१४॥

सामं शकृन्निरामं वा जीर्णे येनातिसार्य्यते ।
सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः ॥
सामशीर्णमजीर्णेन जीर्णे पक्वं तु नैव च ॥१५
चिरकृद्ग्रहणीदोषः सञ्चयश्चोपवेशयेत् ।
स चतुर्द्धा पृथग्दोषैः सन्निपाताच्च जायते ॥१६
प्राग्रूपाङ्गस्य सदनं चिरात्पवनमल्पकः ।
प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट्समो भ्रमः ॥१७
आवद्धोदरता छर्दिः कर्णे केऽप्यनुकूजनम् ।
सामान्यलक्षणं कार्श्यं धूमकस्तमको ज्वरः ॥१८
मूर्च्छा शिरोरुविष्टम्भः श्वयथुः करपादयोः ।
तन्द्रानिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥
पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुजा तीक्ष्णविसूचिका ॥१९
रुग्णेषु वृद्धिः सर्वेषु क्षुत्तृष्णापरिकर्त्तिकाः ।
जरो जीर्य्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्य समश्नुते ॥२०

कच्चे अपरिपक्व रस आम से युक्त मल अथवा आम से रहित जीर्ण जिसके द्वारा प्रसारित किया जाता है वह अतीसार अति सारण करने से मानुकारी स्वभाव से ही हुआ करता है। साम अर्थात् आम से युक्त जीर्ण होता है और वह अजीर्ण ही हुआ करता है। जब वह जीर्ण हो जाता है पक्व नहीं होता है ॥ १५ ॥ चिरकाल तक अतीसार के रहने पर ग्रहणी का दोष समुत्पन्न हो जाता है और यह सजर को उपवेष्टित किया करता है। यह संग्रहणी का रोग भी चार प्रकार का होता है। वात-पित्त-कफ इन तीनों दोषों के प्रकोप से अलग अलग होने वाले तीन भेद हैं और एक भेद यह होता है जिसमें तीनों दोषों का सन्निपात होता है ॥ १६ ॥ इस ग्रहणी का प्राक् रूप जो होता है उसमें शरीर के अङ्गों में सादन हुआ करता है, और बहुत देर में थोड़ा पचन हुआ करता है। इसमें प्रत्येक मुख की विरसता—अरुचि—प्यास और भ्रम होता है ॥ १७ ॥ उदर में आयद्धता—छर्दि और कानों में गुनगुनाहट का रहना बराबर रहा करता है। इस व्याधि का साधारण लक्षण यह है कि शरीर में कृशता रहती है। भूयक-तमक ज्वर—मूर्छा—शिर और ऊरुओं में विष्टम्भ—ध्यमपु हाथ तथा पैरों में होता है। वात से जब यह रोग होता है तो उसमें तन्द्रा रहा करती है—तालु में शोषण होता है—आँखों के सामने अँधेरा और कानों में आवाज होती रहा करती है। पार्श्व भाग—ऊरु में वक्षण—ग्रन्दन में पीड़ा और अति तीव्रल विसूचिका होती है ॥ १८ ॥ १९ ॥ समस्त रोगों में जब वृद्धि होती है तो क्षुधा और तृष्णा का परिकीर्तन हो जाता है। जब जीर्ण होता है तो आध्मान को भी जीर्ण कर दिया करता है। मुक्त होने पर स्वास्थ्य का लाभ किया करता है ॥२०॥

वाताद्ध्रीगगुल्मार्शो प्लीहपाण्डुत्वमश्निता ।
चिराद्दुःख द्रव शुष्कं तुन्दार शब्दफेनवत् ॥
पुनः पुनः सृजेद्वर्च: पायुरुच्छ्वासकासवान् ॥२१
पीतेन पीतनीलाभ पीताभ सृजति द्रवम् ।
अत्पम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दित ॥२२

श्लेष्मणा पच्यते दुःखे मलश्छर्दिररोचकाः ।
आस्योपदाहनिष्ठीवकासहृल्लासपीनसाः ॥२३
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरुम् ।
उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं संप्रहर्षणम् ॥२४
सम्भिन्नश्लेष्मसंश्लिष्टगुरुवर्चः प्रवर्त्तनम् ।
अकृशस्यापि दौर्बल्यं सर्वजे सवदर्शनम् ॥२५

वात से हृद्रोग—गुल्म—अर्श—प्लीहा—पाण्डु और असंज्ञिता होती है। चिरकाल पर्यन्त दुःख का अनुभव हुआ करता है। द्रव (ढीला)—शुष्क—तुन्दार शब्द और झागों से युक्त बार-बार पायु वर्च्च का उत्सृजन किया करता है और वह उच्छ्वास और खाँसी के उपद्रवों से वह व्यथित समन्वित होता है ॥२१॥ पित्त से पीली और नीली आभा वाले द्रव का उत्सर्ग किया करता है और अत्यन्त खट्टी डकारों से युक्त—हृदय और कण्ठ में दाह—अरुचि और तृषा से पीड़ित रहता है ॥ २२ ॥ श्लेष्मा से मल पचता है और छर्दि तथा अरोचकता होती है। मुख में दाह—निष्ठीव—खाँसी—हृल्लास और पीनस हो जाते हैं ॥ २३ ॥ हृदय स्त्यान और उदर स्तिमित तथा भारी मलुम होता है। दोष युक्त मधुर डकार होती हैं—शरीर में पीड़ा और सम्प्रहर्षण होता है। ॥ २४ ॥ सम्भिन्न कफ से संश्लिष्ट जब होता है तो गुरु वर्च्च की प्रवृत्ति होती है। शरीर कृश नहीं होने पर भी कमजोरी का अनुभव होता है। सभी दोषों से युक्त रोग में सब लक्षण और उपद्रवों का दर्शन हुआ करता है ॥२५॥

१३७-मदादित्य रोग का निदान

वक्ष्ये मदात्ययादेश्च निदानं मुनिभाषितम् ।
तीष्णाम्लरुक्षसूक्ष्माद्यव्यवायाशुकरं लघु ॥१
विकाशि विपदं मद्यं मेदसोऽस्माद्विपर्ययः ।
तीक्ष्णोदयाश्च दिव्युक्ताश्चित्तोपतापिनो गुणाः ॥२
जीवितान्ताः प्रजायन्ते विशेषोत्कर्पवर्त्तिनः ।
तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यान्मान्द्यदीनौजसो गुणाः ॥३

इन्द्रियाणि च सक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ।
आद्ये मद्ये द्वितीयेऽपि प्रमदायतने स्थित: ॥४
दुर्विकल्पहतो मूढ सुखमित्येव मुच्यते ।
मद्यपाने मतिर्यस्य प्राप्य राजासन मदे ॥५
निरकुश इव व्यालो न किञ्चिन्नाचरेत्ततः ।
इय भूमिरवाच्याना दौ शीलस्येदमास्पदम् ॥६
एकोऽय बहुमार्गाया दुर्गतेर्दर्शक पर ।
निश्चेष्ट: सतत याञ्छेत् तीयेऽत्र मदे स्थित ॥७
मरणादपि पापात्मा गत. पापतरा दशाम् ।
धर्माधर्मं सुख दु ख मानामान हिताहितम् ॥८
न वेद शोकमोहार्त्त शोपमोहादिसयुत. ।
समोदभ्रममूर्च्छाया सापस्मार पतत्यध ॥
नालि माद्यन्ति बलिन कृताहारा महाशना: ॥९

भगवान् श्री धन्वन्तरि ने कहा—अब मैं मदात्यय आदि रोग का मुनि के द्वारा भाषित निदान बतलाता हूँ। तीक्ष्ण—अम्ल—रूक्ष—सूक्ष्मादि—अव्यवायाशुकर—लघु—विकाशी और विषद मद्य मे होता है और मेद का जो मदात्यय होता है वह इसस विपरीत हुआ करता है। तीक्ष्णोदय दिव्युक्त और चित्त के उत्ताप करने वाले गुण होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ विशेष रूप से उत्कर्ष का वर्त्तन करने वाले तीक्ष्णादि गुणों के द्वारा मद्य से मन्दता और दीन ओज वाले गुण जीवित के अन्त तक रहने वाले उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३ ॥ समस्त इन्द्रियों को सक्षुब्ध करके चित्त की विक्रिया कर दिया करते हैं। आद्य मद्य में और दूसरे प्रमदाके आयतनमें भी स्थित होता हुआ मूढ बुरे विकल्पोंसे हत होकर उस सुख ही मैं—ऐसा मानता है। जिसकी बुद्धि मद्य के पान मे होती है, मदो से राज्यासन को प्राप्त कर निरकुश व्याल की भाँति फिर कुछ भी आचरण नही करे। यह भूमि अवाच्यों की ही होती है और दुश्शीलता का यह स्थान हुआ करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ यह एक बहुत मार्ग वाली दुर्गति का पर दर्शक होता है। निश्चेष्ट होकर यह सर्वदा इस तीसरे मद मे स्थित होता हुआ

इच्छा किया करता है ॥ ७ ॥ मरण से भी परतर दशा को प्राप्त हो जाने वाला यह पापी धर्म—अधर्म, सुख—दुःख, मान—अपमान, हित—अहित को कुछ भी नहीं जानता है और शोक तथा मोह से आर्त्त होकर शोक मोहादि से युक्त हो जाता है। संमोद के मोह की मूर्च्छा में अपस्मार के सहित अर्थात् स्मरण और ज्ञान की शक्ति को खोते हुए नीचे की ओर भूमि पर गिर जाया करता है। अधिक भोजन करने वाले और आहार किये हुए बलवान् लोग अत्यन्त मद युक्त नहीं हुआ करते हैं ॥८॥९॥

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्भवेद्रोगो मदात्ययः ।
सामन्यलक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथा ॥१०
विभेदप्रततं तृष्णा सौम्यो ग्लानिज्वरोऽरुचिः ।
पुरोविबन्धस्तिमिरं कासः श्वासः प्रजागरः ॥११
स्वेदोऽतिमात्रं विष्टम्भः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः ।
स्वप्नेनैवाभिभवति न चोक्तश्च स भाषते ॥१२
पित्ताद्दाहज्वरस्वेदो मोहो नित्यञ्च हृद्भ्रमः ।
श्लेष्मणश्छर्दिहृल्लासनिद्रा चोदरगौरवम् ॥१३
सर्वजे सर्वलिङ्गत्वं ज्ञात्वा मद्यं पिबेत्तु यः ।
सर्वञ्च रुचिरश्चास्य मतिध्वंसकविक्रिये ॥१४
भवेतां पायिनः काष्ठे द्रव्ये तस्याविशेषतः ।
मारुताच्छ्लेष्मनिष्ठीवकण्ठशोषोऽतिनिद्रता ॥१५
शब्दासहत्वं तच्चित्तविक्षेपोङ्गे हि वातरुक् ।
हृत्कण्ठरोगः सम्मोहः श्वासतृष्णावतिज्वराः ॥१६
निवर्त्यस्तु मद्यस्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत् ।
विकारैः विलश्यते या तु न स शारीरमानसैः ॥१७

वात—पित्त और कफ इन समस्त दोषों से यह मदात्यय रोग हुआ करता है। इस व्याधि का साधारण लक्षण यही होता है कि इस रोग वाले मनुष्यों को प्रकृष्ट मोह और हृदय में व्यथा हो जाती है ॥ १० ॥ विभेदन का विस्तार—तृष्णा—सौम्य—ग्लानि—ज्वर—अरुचि—पुरोविबन्ध—तिमिर—

खांसी—श्वास—प्रजागरण—स्वेद और अत्यधिक विष्टम्भ—अयथुचित्त मे—विभ्रय—स्वप्न की भाँति अभिभव से युक्त होना ये सभी लक्षण मदात्यय रोग में हो जाते हैं और इस रोग वाले पुरुष से कुछ कहा भी जावे तो वह कुछ भी बोलता नहीं है ॥ ११ ॥ पित्त के प्रकुपित होने से जो रोग होता है उसमें दाह-ज्वर स्वेद (पसीना)—मोह और नित्य ही हृदय मे भ्रम होता है। कफ से जो यह रोग उत्पन्न होता है उसमे इस रोग के रोगी को छर्दि—हुल्लास—निद्रा—पेट मे भारापन होना है। सभी दोषों से प्रकोप के कारण जब यह रोग होता है तो सभी दोषों के लक्षण दिखलाई दिया करते हैं—यह जान कर ही जो मद्य पीता है उसकी मति का ध्वंस करने वाली विक्रिया मे इसको सभी कुछ रुचिर प्रतीत हुआ करता है। इसके पीने वाले व्यक्ति को वायु और द्रव्य भी विशेषता प्रतीत नहीं होती है। वायु से श्लेष्मा—निष्ठीव—कण्ठ शोष और अति निद्रा का आना—शब्द को सहन न करना—पित्त विक्षेप—अङ्ग मे वात पीडा—हृत्काय रोग—सम्मोह—श्वास—तृष्णा—वमन और ज्वर होते हैं ॥१२॥ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो मद्य से निवृत्त हो जाता है वह जितात्मा और पूर्व बुद्धि वाला होता है और वह शारीरिक एवं मानसिक विकारों से समेक्षित नहीं होता है ॥१७॥

गरुड़ महापुराण

उत्तरार्ध

(प्रेतकल्प)

१—धर्म कथन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१
धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः ।
क्रतुकुसुमो मोक्षफलः स जयति कल्पद्रुमो विष्णुः ॥२
भवत्प्रसादाद्वैकुण्ठत्रैलोक्यं सचराचरम् ।
मया विलोकितं सर्वमुत्तमाधममध्यमम् ॥३
भूर्लोकात् सत्यपर्य्यन्तं पुरं याम्यं विना प्रभो ।
भूर्लोकः सर्वलोकानां प्रचुरः सर्वजन्तुभिः ॥४
मानुष्यं तत्र भूतानां भुक्तिमुक्त्यालयं शुभम् ।
अतः सुकृतिनां लोको न भूतो न भविष्यति ॥५
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥६
मानुषत्वं लभेत् कस्मात् मृत्युं प्राप्नोति तत् कथम् ।
क्रियते कः सुरश्रेष्ठ देहमाश्रित्य कुत्रचित् ॥७

भगवान् श्री नारायण को प्रणाम करके, नरों में परमोत्तम नर को प्रणाम करके, भगवती सरस्वती का अभिवादन करके तथा भगवान् श्री व्यास

देव को प्रणाम करके फिर जय'—इस शब्द का उच्चारण करना चाहिए ॥१॥ जो भगवान् विष्णु कल्पद्रुम के सदृश हैं उनकी जय हो. इस कल्पद्रुम वृक्ष का दृढ धर्म से बद्ध होने वाला मूल है—वेद ही इस कल्पद्रुम के स्कन्ध है और पुराण रूपी शाखाओं से यह सम्पन्न है। जो क्रतु किये जाते है वे ही इस कल्पद्रुम के कुसुम हैं और परम पुरुषार्थ मोक्ष ही इसका सर्वोत्तम फल है ॥ २ ॥ श्री तार्क्ष्य ने कहा—मैंने आपके प्रसाद से वैकुण्ठ लोक–त्रैलोक्य, चर और अचर के सहित सब देख लिया है जो कि उत्तम–मध्यम और अधम है। हे प्रभो ! भूलोक से सत्य लोक पर्यन्त सभी का अवलोकन किया है किन्तु याम्यपुर अर्थात् यमराज के नगर को नहीं देखा है। यह भूलोक समस्त जन्तुओं से सभी लोकों से प्रचुर है ॥ ३ ॥ ४ ॥ यह मनुष्य लोक मानुष जीवन प्राणियों के भोग और मोक्ष का परम शुभ स्थान है। अतएव सुकृत करने वालों का लोक ऐसा उत्तम है जो कभी न हुआ है और न भविष्य मे भी कभी होगा ॥ ५ ॥ देवगण सब मिल कर गीतों का गायन किया करते हैं कि जो लोग इस परम पवित्र भारतवर्ष की भूमि के भाग मे उत्पन्न हुए हैं वे परम धन्य अर्थात् महाभाग्यशाली हैं। स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के फलों के अर्जन करने के लिये अर्थात् प्राप्त करने के वास्ते देवगण भी अपने देवत्व का त्याग कर पुन भारतवर्ष में मनुष्य जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥ ६ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! यह मानुष जीवन किससे प्राप्त होवे और फिर कैसे मृत्यु को प्राप्त होता है ? कहीं पर देह का आश्रय ग्रहण करके क्या किया जावे ? ॥७॥

मृते क्व यान्तीन्द्रियाणि ह्यस्पृश्य स कथ भवेत् ।
स्वकर्माणि कृतानीह कथ भोक्तु प्रसपति ॥८

प्रसाद कुरु मे मोह छेत्तुमर्हस्यशेषत ।
विनतागर्भसम्भूत काश्यपस्तव वाहन ॥६

इति प्रीततरो भूत्वा कथयस्व यथातथम् ।
यमलोके कथ यान्ति विष्णुलोके च मानवा. ॥
प्रेतमुक्तिप्रद मार्गं कथयस्व प्रसादत ॥१०

वैनतेय महाभाग शृणु सर्वं यथातथम् ।
प्रीत्या कथयतो यस्मात् सुहृदस्ति भवान् मम ॥११

परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य वै ।
अरण्ये निर्जने देशे भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ॥१२

हीनजातौ प्रजायन्ते रत्नानामपहारकाः ।
यं यं काममभिध्यायेत् स तल्लिङ्गोऽभिजायते ॥१३

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥१४

मनुष्य के मृत हो जाने पर इसकी समस्त इन्द्रियाँ कहाँ चली जाया करती हैं और वह स्पर्श न करने के योग्य कैसे हो जाता है ? अपने किये हुए कर्मों का भोग करने के लिये कैसे गमन किया करता है ? आप मुझ पर प्रसन्न होइये और इस मेरे अज्ञान जनित मोह का पूर्णतया छेदन करने के लिये आप योग्य होते हैं । विनता के गर्भ से समुत्पन्न काश्यप आपका वाहन है। इसलिये अधिक प्रसन्न होकर ठीक-ठीक कहने की कृपा कीजिएगा । ये मानव यमलोक में तो कैसे जाया करते हैं और विष्णु के लोक में किस प्रकार से पहुँचा करते हैं ? आप प्रसन्नता पूर्वक प्रेत भाव से मुक्ति प्रदान करने वाला मार्ग क्या है—इसको बतलाइये ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे महान् भाग्यशालिन् ! हे वैन तेय ! आप मेरे परम सुहृत हैं इस कारण से मैं तुमको परम प्रीति के साथ यह सभी बतलाता हूँ उसका तुम ठीक-ठीक श्रवण करो ॥ ११ ॥ जो पुरुष किसी दूसरे की स्त्री का अपहरण किया करते हैं या किसी ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मणों की सम्पत्ति का हरण करते हैं वे किसी निर्जन वन में ब्रह्मराक्षस हुआ करते हैं ॥ १२ ॥ जो मनुष्य रत्नों का अपहरण करते हैं वे किसी हीन (नीच) जाति वाले के यहाँ जन्म लिया करते हैं। जिस-जिस कामना का अभिध्यान किया करता है वह उसी के लिङ्ग से युक्त उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ यह आत्मा तो नित्य एवं अविनाशी है। इस को शास्त्र छेदन नहीं किया करते हैं और अग्नि इसका दाह नहीं कर सकता

है। जल इसको क्लेदित नहीं करता है तथा वायु इसका शोषण नहीं किया करता है ॥ १४ ॥

वक्चक्षुर्नासिके कर्णौ गुदो मूत्रपुरीषयो ।
अण्डजादिकजन्तूना छिद्राण्येतानि सर्वश. ॥१५
नाभेस्तु मूर्द्धपर्यन्तमूर्ध्वेच्छिद्राणि चाष्ट वै ।
सन्त. सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते ॥१६
अधश्छिद्रेण ये यान्ति ते यान्ति विगर्ति नरा ।
मृताहाद्वापिक यावद्यथोक्तविधिना खग ॥१७
कार्य्याणि सर्वकर्माणि निर्धनैरपि मानुषैः ॥१८
देहे यत्र वसेज्जन्तुस्तत्र भुङ्क्ते शुभाशुभम् ।
मनोवाक्कायज नित्य तत्र तत्र खगेश्वर ॥१९
मृत सुखमवाप्नोति मायापाशैर्न वध्यते ।
पाशबद्धनरस्येह विकर्मणि मनो भ्रमेत् ॥२०

वाक्–चक्षु–नासिका–दोनों कान–गुदा और मूत्र त्याग करने वाली इन्द्रिय ये सभी अण्डज आदि जन्तुओ के छिद्र मात्र ही होते हैं ॥ १५ ॥ नाभि से लेकर मस्तक पर्यन्त ऊपर के भाग मे आठ छिद्र हुआ करते हैं। जो सन्त एव पुण्यात्मा पुरुष होते हैं इन ऊर्ध्व छिद्रों के भाग से ही जाया करते हैं ॥ १६ ॥ नीचे के छिद्रो के मार्ग से जो जाते हैं वे मनुष्य विगति को प्राप्त होते हैं। हे खग ! जिस दिन में मृत्यु हो उस दिन से वर्ष पर्यन्त जितने भी कर्म होते हैं वे सब कर्म यथावत् उक्त विधि के अनुसार निर्धन मनुष्यों के द्वारा भी मृतक के अवश्य ही करने चाहिए ॥ १७ ॥ १८ ॥ जिस देह में भी यह जन्तु निवास किया करता है वहाँ पर ही शुभ और अशुभ का भोग किया करता है। हे खगेश्वर ! मन–वाणी और शरीर से समुत्पन्न सबको यहाँ–वहाँ पर ही नित्य भोग किया करता है ॥ १९ ॥ मृतात्मा सुख की प्राप्ति किया करता है और माया के पाशों से बद्ध नही होता है। जो पाशो से बद्ध मनुष्य होता है यहाँ पर उसका मन विकर्म मे भ्रमण किया करता है ॥२०॥

२–जन्मान्तर गति कथन

एवं ते कथितं तार्क्ष्य जीवितस्य विचेष्टितम् ।
मनुष्याणां हितार्थाय प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥१
चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदैश्च जन्तवः ।
अण्डजाः स्वेदजाश्चैव ह्युद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥२
एकविंशतिलक्षाणि त्वण्डजाः परिकीर्त्तिताः ।
स्वेदजाश्च तथैवोक्ता उद्भिज्जाश्च क्रमेण तु ॥३
जरायुजास्तथाऽसंख्या मानुषाद्याः प्रचक्षते ।
सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं हि दुर्लभम् ॥४
पञ्चेन्द्रियनिधानं तु बहुपुण्यैरवाप्यते ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ह्यन्त्यजजातयः ॥५
रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड़ एव च ।
कैवर्त्तभेदभिल्लाश्च सप्तैताश्चान्त्यजातयः ॥६
म्लेच्छडुम्बविभेदेन जातिभेदास्त्रयोदश ।
जन्तूनामिह सर्वेषां भेदाश्चैव सहस्रशः ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! इस प्रकार से हमने तुमको जीवित प्राणी का विचेष्टित बतला दिया है जोकि मनुष्यों के हित सम्पादन करने के लिये और प्रेतत्व से छुटकारा पाने के लिये होता है ॥ १ ॥ चौरासी लाख योनियाँ हैं । उनमें चार प्रकार के जन्तुगण जन्म ग्रहण किया करते हैं—कुछ तो उन चार प्रकार के जन्तुओं में अण्डे से जन्म लेने वाले अण्डज होते हैं । कुछ स्वेदज जीव हैं जिनका जन्म स्वेद (पसीना) से ही हुआ करता है । कुछ उद्भिज्ज होते हैं जो जमीन से उद्भेदन कर वृक्षादि के रूप में जन्म लेते हैं । और चौथी प्रकार के वे जन्तु हैं जो जरा में लिपटे हुए अर्थात् जेर से ढके हुए उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य आदि हैं । ये जरायुज कहे जाते हैं ॥ २ ॥ इनमें इक्कीस लाख अण्डज जन्तु बताये गये हैं । उसी प्रकार से स्वेदज और उद्भिज्ज भी क्रम से कहे गये हैं । जो जरायुज मनुष्य आदि हैं वे असंख्य कहे

जाते हैं। इन समस्त प्रकार के जन्तुओं में मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का निधान मनुष्य जन्म बहुत अधिक पुण्यों के सञ्चय से प्राप्त हुआ करता है। इस मनुष्य योनि में भी ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र और अन्त्यज ये जातियाँ होती हैं ।५। अन्त्यज जातियाँ ये सात जातियाँ मानी गई हैं—रजक (धोबी)—चर्मकार (चमार)—नट—बरुड—कैवर्त—भेद और भील ये उनके नाम हैं ॥ ६ ॥ म्लेच्छ और डुम्ब के विशेष भेद से जातियों के भेद तेरह होते हैं। यहाँ पर समस्त जन्तुओं के सहस्रों भेद होते हैं ॥७॥

आहारो मैथुनं निद्रा भय क्रोधस्तथैव च ।
सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः ॥८
एकपादादिरूपेश्च दश भेदा हि मानवाः ।
कृष्णसारो मृगो यत्र धर्मदेशः स उच्यते ॥९
ब्रह्माद्या देवता सर्वे मुनयः पितरः खग ।
धर्मः सत्यञ्च विद्या च तत्र तिष्ठन्ति सर्वदा ॥१०
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिनां मतिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥११
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥१२
मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ।
द्वयोर्न साधयेदेकं तेनात्मा वञ्चितो ध्रुवम् ॥१३
इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते ।
कर्तुं लक्षाधिपती राज्यं राज्येऽपि सकलचक्रवर्त्तित्वम् ॥१४

आहार (भोजन करना)—मैथुन (स्त्री जाति के साथ रमण करना) निद्रा (नींद लेना)—भय और क्रोध ये सभी जन्तुओं को हुआ करते हैं किन्तु विवेक का होना परम दुर्लभ होता है ॥ ८ ॥ एक पाद आदि रूपों से मानवों के दश भेद होते हैं। जहाँ पर कृष्ण सार मृग होता है वह धर्म का देश कहा जाता है ॥ ९ ॥ हे खग ! ब्रह्मा से आदि लेकर सम्पूर्ण देवगण, सब मुनि मण्डल और पितृगण—धर्म—सत्य और विद्या ये सब वहाँ पर ही सर्वदा

स्थित रहा करते हैं ।। १० ।। प्राणियों को समस्त भूतों में श्रेष्ठ माना जाता है और प्राणियों में भी जो मति (बुद्धि) के उपयोग से जीवन बिताने वाले हैं वे श्रेष्ठ होते हैं । उन बुद्धिमानों में भी मनुष्य श्रेष्ठ होता है और नरों में भी ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ कहा गया है ।। ११ ।। ब्राह्मणों में जो विद्वान् विद्या सम्पन्न होता है वह श्रेष्ठ होता है । विद्वानों में भी कृत बुद्धि श्रेष्ठ है तथा कृत बुद्धियों में कर्त्ता (करने वाले) और कर्त्ताओं में ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं ।। १२ ।। यह मनुष्य योनि में जन्म प्राप्त करना जोकि स्वर्ग और मोक्ष का प्रसाधक है । इन दोनों में से जिसने किसी भी एक की साधना नहीं की है जिसने निश्चय ही मनुष्य जन्म ग्रहण करके भी अपनी आत्मा का प्रवञ्चन ही किया है ।।१३।। मनुष्य का स्वभाव होता है कि जिसके पास सौ रुपये होते हैं वह सहस्र की इच्छा करता है और जिसके पास सहस्र हो जाते हैं वह लक्ष का अधिपति होना चाहता है जो लक्ष का स्वामी बन जाता है वह एक विशाल राज्य प्राप्त करने की इच्छा रखता है और राज्य भी प्राप्त हो जावे तो चक्रवर्त्ती सम्राट् बनने की लालसा हृदय में हुआ करती है ।।१४।।

चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरत्वलाभे सकलसुरपतित्वम् ।
भवितुं सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्त्तते तृष्णा ।।१५
तृष्णया चाभिभूतस्तु नरकं प्रतिपद्यते ।
तृष्णामुक्तास्तु ये केचित्स्वर्गवासं लभन्ति ते ।।१६
आत्माधीनः पुमान् लोके सुखी भवति निश्चितम् ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ।।
तथा च विषयाधीनो दुःखी भवति निश्चितम् ।।१७
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीनाहताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ।।१८
पितृमातृमयो बाल्ये यौवने दयितामयः ।
पुत्रपौत्रमयः पश्चान्मूढो नात्ममयः क्वचित् ।।१९
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान्बद्धो विमुच्यते ।
पुत्रदारमयैः पाशैर्बद्धो नैव प्रमुच्यते ।।२०

मृत्योर्न मुच्यते मूढो बालो वृद्धो युवापि वा ।
सुखदु खाधिको वापि पुनरायाति याति च ॥२१

एक साम्राज्य का अधीश्वर मानव सुरत्व के पाने की अभिलाषा करता है तथा सुरत्व के पद की प्राप्ति हो जाने पर सुर पति इन्द्र के पद को चाहना उत्पन्न होती है। सुरपति के पद को भी पाकर उर्ध्वगति होने की इच्छा जागृत हो जाती है और यह तृष्णा बढ़ती हुई चली जाया करती है और इस तृष्णा की शान्ति नहीं हुआ करती है ॥ १५ ॥ तृष्णा से अभिभूत जन्तु नरक की प्राप्ति करता है। जो इस पिशाचिनी तृष्णा से कोई मुक्त होते हैं वे स्वर्ग का निवास प्राप्त किया करते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष इस लोक में आत्माधीन हैं वही निश्चित रूप से सुखी होता है। शब्द—स्पर्श—रूप—रस और गन्ध ये उसके गुण होते हैं। जो पुरुष विषयों के अधीन होता है वह निश्चित रूप से दु खी होता है ॥ १७ ॥ कुरङ्ग (हिरण)—मातङ्ग (हाथी)—पतङ्ग—भृङ्ग (भौंरा) और मीन (मछली) ये पाँचों एक-एक ही विषय मे इतने उन्मत्त होकर सेवन करने वाले होते हैं किन्तु मनुष्य एक ही ऐसा प्रमादी होता है कि जो पाँचो इन्द्रियों से पाँचो विषयों के सेवन मे निमग्न रहा करता है तो यह क्यों नहीं हनन किया जावे ॥ १८ ॥ यह मानव बचपन मे तो पिता-माता के वात्सल्य में डूबा रहता है—यौवन में पत्नी के प्रणय पाश में बद्ध हो जाता है। इसके पश्चात् वार्धक्य मे पुत्र-पौत्रादि के स्नेह में डूबा रहता है। इसे अपने पूरे जीवन मे आत्मामय होने का कोई भी अवसर ही नहीं होता है अर्थात् आत्म चिन्तन कभी भी नहीं किया करता है ॥ १९ ॥ लौह और काष्ठ की पाशों से बँधा हुआ भी पुरुष विमुक्त हो जाया करते हैं किन्तु यह पुत्र और पत्नी की पाश ऐसी हैं कि इनसे बँधा हुआ पुरुष कभी भी छुटकारा नहीं पा सकता है ॥२०॥ यह मनुष्य मूढतावश मृत्यु से कभी भी मुक्त नहीं होता है चाहे बालक हो—युवा हो अथवा वृद्ध हो। अधिक सुख या दु ख से युक्त होकर यहाँ से चला जाता है अर्थात् मर जाता है और फिर यहीं आकर जन्म ग्रहण किया करता है। अर्थात् आवागमन बराबर लगा रहता है—मोक्ष नहीं होता है ॥२१॥

एक· प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एको हि भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२२

सर्वेषां पश्यतामेव मृतः सर्वं जहाति च ।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमन्वितम् ॥२३
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।
गृहेष्वर्था निवर्त्तन्ते श्मशाने मित्रबान्धवाः ॥२४
शरीरं वह्निरादत्ते सुकृतं दुष्कृतं व्रजेत् ।
शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहस्थितम् ॥२५
शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः ।
अनस्तमित आदित्ये न दत्तं धनमर्थिनाम् ॥२६
न जानामीति तद्वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति ।
रोरवीति धनं तस्य को मे भर्त्ता भविष्यति ॥२७
न दत्तं द्विजमुख्यानां नाग्नौ तीर्थे सुहृज्जने ।
पूर्वजन्मकृतात्पुण्याद्यल्लब्धं बहु चाल्पकम् ॥२८

यह जीवात्मा अकेला ही उत्पन्न होता है और एक ही इस लोक से प्रलय को प्राप्त होता है अर्थात् मर कर भी अकेला ही चला जाता है। यह जो कुछ भी सुकृत कर्म करता है उसका फल या जो कुछ भी पाप कर्म करता है उसका कुफल भी यह अकेला ही भोगता है। इस भोग में और आवागमन में कोई भी अन्य साथी नहीं होता है ॥ २२ ॥ सभी लोगों के देखते हुए जब इसका समय आ जाता है मृत्यु को प्राप्त होकर चला जाया करता है और सभी कुछ यहीं छोड़ जाता है। उस समय में विशाल वैभव और प्राणों से भी अधिक प्रिय मित्र–बन्धु कोई भी आड़े नहीं आते हैं। मृत शरीर को काष्ठ और लोष्ठ से समन्वित कर अर्थात् दाह करके या दफना कर बान्धव लोग छोड़ कर विमुख होते हुए चले जाते हैं। उस समय में यदि कुछ धर्म का काम किया है तो वही उसके साथ जाया करता है। धन, वैभव तो घर में ही रह जाता है और मित्र तथा बान्धव श्मशान में छोड़कर वहीं से चले जाते हैं ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ इस शरीर को अग्नि ग्रहण कर नष्ट कर देती है केवल सुकृत और दुष्कृत ही जो उसने अपने जीवन में किया है साथ जाया करता हैं। धन—बान्धव और शरीर वह्नि से जला हुआ सब नष्ट होकर केवल किया हुआ

एक मात्र कर्म साथ में रहता है ॥ २५ ॥ शुभ कर्म हो या पाप कर्म हो उसका फल अकेला ही मानव सर्वत्र भोगा करता है। सूर्य के अस्त न होने के समय में याचकों को धन का दान नहीं किया है—मैं यह नहीं जानता हूँ कि यह धन जिसका सञ्चय किया है वह कल प्रात काल में किसका होगा ? धन भी बराबर रुदन करता है कि कल मेरा स्वामी कौन होगा ? ॥ २६ ॥ पूर्व जन्म के किये हुए पुण्य के फल से जो भी अधिक या कम धन प्राप्त किया है उसे न तो ब्राह्मणों को दान में दिया और न अग्नि की सेवा में हवन के रूप में ही समर्पित किया है—न कोई उस धन से तीर्थाटन किया और न किसी मित्र आदि के हित में ही व्यय किया या उसका विनियोग उपकारार्थ किया है ॥२८॥

तदीदृश परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम् ।
धनेन धार्य्यते धर्म श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥२६
श्रद्धाविहीनो धर्मस्तु नेहामत्र च वृद्धिभाक् ।
धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते ॥३०
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत् ।
श्रद्धया धार्य्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभि ॥३१
अकिञ्चना हि मुनय श्रद्धावन्तो दिवङ्गताः ।
अश्रद्धया हुत दत्त तपस्तप्तं कृतश्च यत् ॥
असदित्युच्यते पक्षिन्प्रेत्य नेह न तत्फलम् ॥३२

सो इस धन की ऐसी स्थिति का भली भाँति ज्ञान करके धर्म के लिये धन का विनियोग किया जाता है। श्रद्धा से युक्त चित्त से धन के द्वारा धर्म को धारण किया जाता है ॥ २६ ॥ जो बिना श्रद्धा के धर्म किया जाता है उससे न तो यहाँ कुछ वृद्धि होती है और न परलोक में ही उसका सहारा प्राप्त होता है। धर्म से ही अर्थ होता है और धर्म से ही काम होता है ॥३०॥ धर्म ही अपवर्ग के लिये सहायक होता है। इसलिये धर्म का आचरण करना चाहिए। श्रद्धा से धर्म धारण किया जाता है अत्यधिक धन के समूह से धर्म को अर्जित नहीं किया जाता है ॥ ३१ ॥ अकिञ्चन मुनिगण श्रद्धा वाले होने

के कारण स्वर्ग गामी हुए थे। मुनियों के पास कुछ भी धन नहीं था। धन का कुछ भी महत्त्व नहीं है— महत्त्व है श्रद्धा का—श्रद्धा ही धन-धर्म का निर्वाहक होता है। अश्रद्धा से हवन किया हुआ—तपस्या की हुई और जो कुछ भी किया गया है वह सभी असत् कहा जाता है। हे पक्षिन्! मरने के पश्चात् ऐसे हवन—दान—धर्म और तप से कुछ भी फल प्राप्त नहीं हुआ करता है। यह सब व्यर्थ ही हो जाता है ।।३२।।

३—दान फल कथन

कर्मणा केन देवेशं प्रेतत्वं नैव जायते ।
पृथिव्यां सर्वजन्तूनां तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ।।१।।
शृणु वक्ष्यामि सङ्क्षेपात्क्रियाञ्चैवौर्ध्वदैहिकीम् ।
स्वहस्तेनैव सा कार्या मोक्षकामैस्तु मानवैः ।।२
स्त्रीणामपि विशेषेण पञ्चवर्षाधिके शिशौ ।
वृषोत्सर्गादिकं कर्म प्रेतत्वविनिवृत्तये ।।३
वृषोत्सर्गादृते नान्यत्किञ्चिदस्ति महीतले ।
जीवन्वापि मृतो वापि वृषोत्सर्गं करोति यः ।।
प्रेतत्वं न भवेत्तस्य विना दानैर्विना मखैः ।।४
कस्मिन्काले वृषोत्सर्गं जीवन्वापि मृतोऽपि वा ।
कुर्यात्सुरवरश्रेष्ठ ब्रूहि मे मधुसूदन ।
किं फलं तु भवेज्जन्तोः कृतैः श्राद्धैस्तु षोडशैः ।।५
अकृत्वा तु वृषोत्सर्गं कुरुते पिण्डपातनम् ।
नोपतिष्ठति तच्छ्रेयो दत्तं प्रेतस्य निष्फलम् ।।६
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः ।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ।।७

श्री गरुड़ ने कहा—हे सुरेश्वर! हे देवेश! ऐसा कौनसा कर्म है जिसके करने से प्रेतत्व की प्राप्ति नहीं होती है? आप कृपा करके मुझे यही बताइये कि जिस कर्म से पृथ्वी में समस्त जन्तुओं को प्रेतत्व न हो ।।१।। श्री भगवान्

ने कहा—अब हम ऊर्ध्व देह से सम्बन्ध रखने वाली और्ध्व देहिकी क्रिया अर्थात् देह के नाश हो जाने पर की जाने वाली क्रिया संक्षेप में बतलाते हैं उसका श्रवण करो। मोक्ष की कामना रखने वाले मानवों को वह अपने ही हाथ से सम्पन्न करनी चाहिये ॥२॥ स्त्रियों की भी शिशु के पाँच वर्ष से अधिक हो जाने पर विशेष रूप से वृष का उत्सर्ग आदि कर्म प्रेतत्व के निवारण करने के लिये करना चाहिए ॥३॥ इसी महीतल में वृष के उत्सर्ग से अधिक अर्थात् इसके बिना अन्य कुछ भी नहीं है। जीवित रहते हुए अथवा मृत होने के बाद जो वृष का उत्सर्ग करता है उसे बिना किसी अन्य दान और मखों के ही अर्थात् यज्ञादि किये बिना ही प्रेतत्व नहीं होता है ॥४॥ गरुड ने कहा—हे सुरवरों में श्रेष्ठ! हे मधुसूदन! यह वृष का उत्सर्ग (त्याग) किस समय में जीवित अथवा मृत की दशा में करना चाहिए ?-यह कृपया बतलाइये। इसका जन्तु को तथा षोडश श्राद्धों के करने का क्या फल होता है ? ॥५॥ श्री कृष्ण भगवान् ने कहा—वृष के उत्सर्ग के बिना अर्थात् बिजार छोड़ने के बिना जो कोई भी पिण्डों का पातन करता है उसका कुछ भी श्रेय प्रेत को दिया हुआ नहीं होता है और वह सब निष्फल ही होता है ॥६॥ मृत्यु के ग्यारहवें दिन जिस प्रेत के लिये वृष का उत्सर्ग नहीं किया जाता है उसको प्रेतत्व सुस्थिर होता है चाहे उसके लिये सैकड़ों ही श्राद्ध क्यों नहीं दिये जावें ॥७॥

पुत्रा यस्य न विद्यन्ते न माता न च बान्धवा ।
न पत्नी न च भर्त्ता च कथं स्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥८
केन मुक्तिं प्रपद्यन्ते नरा नार्यो गतापद ।
एतन्मे सदाय देव छेत्तुमर्हस्यशेषत. ॥६
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।
येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननञ्चरेत् ॥१०
सपुत्रा वा ह्यपुत्रो वा नरो नारी पतिस्तथा ।
जीवन्नेव स्वयं कुर्यान्मृतो ह्यक्षयमाप्नुयात् ॥११
यानि कानि च दानानि स्वयं दत्तानि मानवै ।
तानि तानि च सर्वाणि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रत. ॥१२

व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ।
स्वयं हस्तेन दत्तानि देहान्ते चाक्षयं फलम् ॥१३
गोभूहिरण्यवासांसि भोजनानि पदानि च ।
यत्र तत्र वसेज्जन्तुस्तत्र तत्रोपतिष्ठति ॥१४

गरुड़ ने कहा—जिस पुरुष के कोई भी पुत्र न हो और माता और कोई बान्धव भी न हो—पत्नी-भर्त्ता आदि भी कोई न हो उसके लिए ऑर्ध्व दैहिक कर्म कैसे हो सकता है ? क्योंकि इसे करने वाला तो कोई रहता ही नहीं है ? ॥८॥ हे भगवन् ! ऐसे गतापद नर और नारी किस प्रकार से मुक्ति को प्राप्त होते हैं ? यह मेरा बहुत अधिक संशय है । कृपाकर इसका निवारण करने में आप योग्य होते हैं ॥९॥ श्री भगवान् ने कहा—जो पुत्र से रहित है उसकी तो गति होती ही नहीं है । उसे स्वर्ग तो प्राप्त ही नहीं होता है । किसी भी उपाय से पुत्र की उत्पत्ति तो अवश्य ही करनी चाहिए ॥१०॥ जो अपुत्र है अर्थात् पुत्र से रहित होता है वह चाहे नर हो या नारी हो उसे जीवित रहते ही स्वयं अपनी और्ध्व दैहिकी क्रिया कर लेनी चाहिये जिससे मृत होकर वह अक्षय पद को प्राप्त कर लेवे ॥११॥ जो भी कोई दानादि मानवों के द्वारा स्वयं दिये गये हैं वे सब आगे उपस्थित रहा करते हैं ॥१२॥ विविध भाँति के विचित्र व्यञ्जन और भक्ष्य-भोज्य पदार्थ जो स्वयं हाथ से दिए गए हैं वे सब देह के अन्त हो जाने पर अक्षय फल प्रदान किया करते हैं ॥१३॥ गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, भोजन और पद ये सभी यह जन्तु जहाँ-जहाँ पर भी वास किया करता है वहाँ वहाँ पर ही उपस्थित मिला करते हैं ॥१४॥

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् ।
अस्वस्थः प्रेरितश्चान्यैर्न किञ्चित्कर्त्तुमुत्सहेत् ॥१५
यावत्तस्य मृतस्येह न भूतं चौर्ध्वदेहिकम् ।
वायुभूतः क्षुधाविष्टो भ्रमते च दिवानिशम् ॥१६
कृमिकीटपतङ्गो वा जायते म्रियतेऽपि सः ।
असद्गर्भे वसेत्सोऽपि जातः सद्यो विनश्यति ॥१७

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो ।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य्यः प्रयत्नो महान् ।
सदीप्ते भवने हि कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥१८

जब तक इस शरीर में स्वस्थता विद्यमान रहती है तभी तक धर्म का काम कर लेना चाहिए। जब यह स्वयं अस्वस्थ हो जाता है तो फिर अन्यों के द्वारा प्रेरित होकर कुछ भी करने का उत्साह नहीं किया करता है अर्थात् उस अशक्तावस्था में इसमें कुछ भी नहीं बन पड़ता है ॥१५॥ इस लोक में मृत जन्तु का जब तक और्ध्व दैहिक कर्म नहीं होता है तब तक यह क्षुधा से आविष्ट होकर वायुभूत होता हुआ रात दिन भ्रमण किया करता है ॥१६॥ अथवा कोई कृमि, कीट या पतङ्ग बनकर उत्पन्न होता है और मर जाया करता है। वह ऐसे असत् गर्भ में वास किया करता है कि तुरन्त ही विनष्ट हो जाता है ॥१७॥ अतएव जब तक यह शरीर रोगों से रहित है और जब तक बुढ़ापा इसको प्राप्त नहीं होता है, जिस समय तक इसकी इन्द्रियाँ अप्रतिहत शक्ति से सम्पन्न रहती हैं और आयु का क्षय नहीं होता है तभी तक विद्वान् और ज्ञानयुक्त पुरुष को अपनी आत्मा के कल्याण के लिए महान् प्रयत्न करना चाहिए। जब घर में अग्नि लगकर खूब प्रदीप्त हो जाती है उस समय उस बुझाने के लिये कुएँ का खोदने का उद्यम करना क्या कर सकता है ? अर्थात् वह उद्यम तो व्यर्थ सा ही होता है। जब तक कुआ तैयार होगा तब तक अग्नि सभी को भस्मसात् कर देता है ॥१८॥

४—और्ध्व दैहिक क्रिया कथन और वृषोत्सर्ग

स्वहस्तं किं फलं देव परहस्तैश्च तद्वद ।
स्वस्थावस्थैरसज्ञैर्वा विधिहीनमथापि वा ॥१
एका गौ स्वस्थचित्तस्य ह्यस्वनस्थस्य च गोशतम् ।
सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं वित्तविवर्जितम् ॥२
मृतस्यैव पुनर्लक्षं विधिहीनञ्च निष्फलम् ।
तीर्थपात्रसमायोगादेका वै लक्षपुण्यदा ॥३

पात्रे दत्तं खगश्रेष्ठ ह्यहन्यहनि वर्द्धते ।
दातुर्दानमपापाय ज्ञानिनां न प्रतिग्रहः ।
विषशीतापहौ मन्त्रं वह्निः किं दोषभाजिनौ ।।४
दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः ।
नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ।।५
अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत् ।
कुलैकविंशतियुतं गृहीतारञ्च पातयेत् ।
देहान्तरं यदावाप्य स्वहस्तसुकृतञ्च यत् ।।६
धनं भूमिगतं यद्वत्स्वहस्तेन निवेशितम् ।
तद्वत्फलमवाप्नोति ह्यहं वच्मि खगेश्वर ।।७

गरुड़ ने कहा—हे देव ! अपने ही हाथों से किये हुए का क्या फल होता है और दूसरों के द्वारा किये हुए का क्या फल है ? स्वस्थ अवस्था में रहते हुए या अस्वस्थ एवं संज्ञा-शून्यों के द्वारा किये हुए का क्या फल है ? जो कुछ भी किया जावे वह विधि से रहित हो तो उसका क्या फल होता है ?—यह कृपया सब बताइये ।।१।। श्री कृष्ण ने कहा—जो स्वस्थ चित्त वाला हो उसकी दान की हुई एक गौ और जो अस्वस्थ चित्त वाला है उसकी दी हुई एक सौ गौ—मरने के जो निकट हो उसकी दी हुई एक हजार गौ का दान बराबर होता है क्योंकि उस समय तो उसका चित्त स्थिर ही नहीं रहता है । मृत होने पर एक लाख गौ का दान बराबर होता है । जो दान आदि विधि से रहित है वह तो बिल्कुल फल से शून्य हुआ करता है । तीर्थ और सत्पात्र के समायोग होने पर एक ही गौ का दान एक लाख गौ के दान के समान पुण्य-फल के देने वाला हुआ करता है । दान के पात्र और स्थान का बड़ा महत्त्व होता है ।।२।३।। हे खगश्रेष्ठ ! सत्पात्र में दिया हुआ दान दिनों-दिन बढ़ा करता है । दाता का दान अपाप के लिये होता है ज्ञानियों का प्रतिग्रह नहीं होता है । विष और शीत का अपहरण करने वाला वह्नि मन्त्र होता है फिर क्या दोष है ? ।।४।। प्रति-दिन पात्र में ही दान देना चाहिए और विशेष करके निमित्त में भी दान देवे । जो अपना श्रेय चाहता है उसे विद्वान् पुरुष को कभी भी किसी अपात्र को दान

नहीं देना चाहिए ॥५॥ यदि किसी सत्पात्रता से रहित पुरुष को गौ का दान दिया जाता है तो वह दाता को नरक में ले जाता है। जो दान ग्रहण करता है उसके भी इक्कीस कुलों का वह पातन किया करता है। अपने हाथ से जो भी सुकृत किया गया है वह दूसरे देह में प्राप्त होता है ॥६॥ जिस प्रकार से अपने हाथ से भूमि में रक्खा हुआ धन प्राप्त होता है उसी तरह फल की प्राप्ति हुआ करती है। हे खगेश्वर! मैं यह बतलाता हूँ ॥७॥

अपुत्रोऽपि विशेषेण क्रियञ्चौर्ध्वदेहिकीम् ।
प्रकुर्यान्मोक्षकामश्च निर्धनश्च विशेषतः ॥८
स्वल्पेनापि हि वित्तेन स्वय हस्तेन यत्कृतम् ।
अक्षय याति तत्सर्वं यथाज्यञ्च हुताशने ॥९
एका एकस्य दातव्या शय्या कन्या पयस्विनी ।
सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तम कुलम् ॥१०
तस्मात्सर्वं प्रकुर्वीत चञ्चले जीविते सति ।
गृहीतदानपाथेय सुख याति महाध्वनि ॥११
अन्यथा क्लिश्यते जन्तु पाथेयरहित पथि ।
एव ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ वृषयज्ञ समाचरेत् ॥१२
अकृत्वा म्रियते यस्तु सपुत्रोऽपि न मुक्तिभाक् ।
अपुत्रोऽपि हि य. कुर्यात्सुख याति महापथे ॥१३
अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि ।
न ता गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण या भवेत् ॥१४

जिसके कोई भी पुत्र न हो वह भी विशेष रूप से अपनी और्ध्व दैहिकी क्रिया करे। जो मोक्ष की कामना करने वाला है और विशेष रूप से निर्धन हो उसे भी और्ध्व दैहिकी क्रिया अवश्य ही अपने आप ही करनी चाहिए ॥८॥ चाहे बहुत थोड़ा ही धन हो उसी से अपने आप स्वय हाथ से जो कुछ भी किया गया है वह सब अक्षय होता है, जिस तरह अग्नि में दिया हुआ अर्थात् हवन किया हुआ घृत अक्षय होता है ॥९॥ एक को एक ही कन्या, शय्या और पयस्विनी देनी चाहिए। यदि उसका कोई विक्रय तथा विभाग करता है तो वह

सात कुलों का दाह किया करता है ।।१०।। इस कारण से यह सभी कुछ अपने इस चंचल एवं अस्थिर जीवन में हो कर लेना चाहिए जिसने जीवित रहते हुए ही दान का पाथेय ग्रहण कर लिया है वह मरने के पश्चात् उस यमपुरी के महामार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करता है ।।११।। जैसे कोई मार्ग में खाने की सामग्री से रहित मनुष्य यात्रा में दुःखित होता है वैसे ही यह जन्तु भी दान के पाथेय से रहित होकर सदा क्लेश भोगा करता है । हे खग श्रेष्ठ ! इस प्रकार से समझ कर वृष यज्ञ का समारम्भ करना चाहिए ।।१२।। जो इस वृषयज्ञ को न करके यों ही मृत्युगत हो जाता है वह चाहे सुन्दर पुत्र वाला भी क्यों न हो किन्तु मुक्ति को प्राप्त नहीं किया करता है । जो बिना पुत्र वाला भी हो और इस वृषयज्ञ को कर लेता है वह उस महामार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करता है ।।१३।। अग्निहोत्र आदि से, यज्ञों से और विविध प्रकार के दानों से भी मनुष्य उस गति को प्राप्त नहीं होता है जो गति वृषोत्सर्ग से प्राप्त हो जाती है ।।१४।।

सर्वोषामेव यज्ञानां वृषयज्ञस्तथोत्तमः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत् ।।१५
कथयस्व प्रसादेन वृषयज्ञक्रियां तथा ।
कस्मिन्काले तिथौ कस्यां विधिना केन तद्भवेत् ।।
कृत्वा किं फलमाप्नोति ह्येतन्मे वद साम्प्रतम् ।।१६
कार्त्तिकादिषु मासेषु ह्युत्तरायणगे रवौ ।
शुक्लपक्षे तथा कृष्णे द्वादश्यादिशुभे तिथौ ।।
शुभे लग्ने मुहूर्ते वा शुचौ देशे समाहितः ।।१७
ब्राह्मणान्तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम् ।
जपहोमैस्तथा दानैः प्रकुर्य्याद्देहशोधनम् ।।१८
पूण्येऽह्नि शुभनक्षत्रे ग्रहान्देवान्समर्चयेत् ।
होमं कुर्य्याद्यथाशक्ति मन्त्रैश्च विविधैः शुभैः ।।१९
ग्रहाणां स्थापनं कुर्य्यात्पूजनञ्च खगेश्वर ।
मातृणां पूजनं कुर्य्याद्वसोर्धाराञ्च कारयेत् ।।२०

वह्नि सम्स्थाप्य तत्रैव पूर्णहोमञ्च कारयेत् ।
शालग्रामञ्च सम्स्थाप्य वैष्णव श्राद्धमाचरेत् ॥२१

समस्त प्रकार के यज्ञों में वृषयज्ञ सबसे उत्तम यज्ञ होता है। इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्न से वृषयज्ञ को करना चाहिये ॥१५॥ गरुड ने कहा—भगवन् ! कृपाकर वृषयज्ञ की सम्पूर्ण क्रिया का वर्णन कीजिये। किस समय में और किस तिथि में, किस विधान से इसे किया जाता है ? इसके करने से किस फल की प्राप्ति होती है ?—यह सब अब मुझे बतलाइये ॥१६॥ श्रीकृष्ण ने कहा—कार्तिक आदि मासों में जब कि सूर्य उत्तरायण हो जावें—शुक्ल पक्ष में अथवा कृष्ण पक्ष में द्वादशी आदि शुभ तिथि के दिन, शुभ लग्न में और उत्तम मुहूर्त में, किसी पवित्र स्थल में समाहित होकर स्थित हो जाना चाहिये ॥१७॥ फिर किसी विधि के ज्ञाता शुभ लक्षणों से समन्वित ब्राह्मण को बुलवा कर जाप, होम और दानों के द्वारा सर्व प्रथम देह का शोधन करना चाहिये ॥१८॥ पुण्य दिन में और शुभ नक्षत्र में समस्त ग्रहों का तथा देवताओं का अर्चन करे। अनेक शुभ मन्त्रों के द्वारा शक्ति भर होम करना चाहिये ॥१९॥ हे खगेश्वर ! वहाँ की स्थापना करे और उनका सविधि पूजन करे। षोडश मातृकाओं का यजन करके वसुधारा करे ॥२०॥ वहाँ पर ही अग्नि की स्थापना करके पूर्ण होम करावे। भगवान् शालग्राम को सम्स्थापित करके वैष्णव श्राद्ध करे ॥२१॥

वृष सम्पूज्य तत्रैव वस्त्रालङ्कारभूषणै ।
चतस्रो वत्सतर्य्यस्ता पूर्व समधिवासयेत् ॥२२
प्रदक्षिणा प्रकुर्वीत होमान्ते तु विसर्जयेत् ।
इम मन्त्र समुच्चार्य्य ह्युत्तराभिमुख स्थित ॥२३
धर्मस्त्व वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मित पुरा ।
वृषोत्सर्गप्रभावेण मामुद्धर भवार्णवात् ॥२४
अनेनैव वृषोत्सर्ग रुद्रकुम्भोदकेन तु ।
दर्भमूले घट स्थाप्य उदक शिरसि न्यसेत् ॥२५
अभिषिच्य शुभैर्मन्त्रै पावनैर्विधिपूर्वकम् ।
तेन कीटेति मन्त्रेण वृषोत्सर्गे कृते मति ॥२६

आत्मश्राद्धं ततः कुर्याद्दत्त्वा चान्नं द्विजोत्तमे ।
उदके चैव गन्तव्यं जलं तत्र प्रदापयेत् ॥२७
यदिष्टं जीवितस्यासीत्तद्द्याञ्च स्वशक्तितः ।
सुतृप्तो दुस्तरं मार्गं मृतो याति सुखेन हि ॥२८

वहाँ पर ही उपर्युक्त समस्त क्रिया करने के पश्चात् वृष का पूजन करे और वस्त्रालङ्कारों से सुसज्जित करे । चार वत्सतरियों को पहिले लाकर उनका अधिवास करे ॥२२॥ प्रदक्षिणा करे और होम के अन्त में निम्नाङ्कित मन्त्र का उच्चारण करता हुआ उत्तर की ओर मुख करके स्थित हो विसर्जन करे । मन्त्र –आप धर्म हैं ब्रह्मा ने पहिले वृष के रूप में आपका निर्माण किया था । अब वृषोत्सर्ग के प्रभाव से मुझको इस संसार रूपी समुद्र से उद्धार करो ॥२३।२४॥ शुभ मन्त्रों के द्वारा जो कि परम पावन मन्त्र हैं, विधि के सहित अभिषेक करें। फिर "लेन क्रीड"—इस मन्त्र से वृषोत्सर्ग किये जाने पर फिर अपना श्राद्ध करे और किसी श्रेष्ठ द्विज को अन्न दान करे । फिर जलाशय पर जाकर वहाँ जल देवे ॥२५।२६।२७॥ जो अपने जीवित का इष्ट हो उस पदार्थ को भी यथाशक्ति देना चाहिये । इस प्रकार से सुतृप्त होवे । ऐसा करने पर जब भी मृत होगा तो यमपुरी के महान् दुस्तर मार्ग में परम सुख से चला जाता है । ॥ २८ ॥

यावन्न दीयते जन्तोः श्राद्धञ्चैकादशाह्निकम् ।
स्वदत्तं परदत्तं वा नेहामुत्रोपतिष्ठति ॥२९
त्रयोदश तथा सप्त पञ्च त्रीणि यथाक्रमम् ।
पददानानि कुर्वीत श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥३०
तिलपात्राणि कुर्वीत त्रीणि पञ्च च सप्त वा ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्गामेकाञ्च प्रदापयेत् ॥३१
वामे चक्रं प्रकर्त्तव्यं त्रिशूलं दक्षिणे तथा ।
माल्यं दत्त्वा तथैवास्य वृषमेकं विसर्जयेत् ॥३२
एकोद्दिष्टविधानेन स्वाहाकारेण बुद्धिमान् ।
कुर्यादेकादशाहं तु द्वादशाहं प्रयत्नतः ॥३३

सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्य्याच्छ्राद्धानि षोडश ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु पददानानि दापयेत् ॥३४
कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रे तथाच्युतम् ।
वस्त्रेणाच्छाद्य तत्रस्थमर्घ्यं दद्याच्छुभं फलं ॥३५

जब तक एकादशवें दिन का श्राद्ध जन्तु को नहीं दिया जाता है चाहे वह अपने आप से ही किया जावे या दूसरे के द्वारा दिया जावे । इसके बिना यहाँ और परलोक में उपस्थित नहीं होता है ॥२९॥ त्रयोदश तथा सात-पाँच और तीन यथा क्रम श्रद्धा-भक्ति से युक्त होकर पदों का दान करना चाहिए ॥ ॥३०॥ तीन पाँच अथवा सात तिल के पात्र बनावे और दान करे । पीछे ब्राह्मणों को भोजन करावे और एक गौ का दान करे ॥३१॥ वाम भाग में चक्र बनावे और दक्षिण में त्रिशूल करे फिर मात्य इसको देकर एक वृष का उत्सर्ग करना चाहिए ॥३२॥ बुद्धिमान् पुरुष को एकोद्दिष्ट विधान से स्वाहाकार से एकादशाह करना चाहिए तथा फिर प्रयत्न पूर्वक द्वादशाह करे ॥३३॥ सपिण्डी कर्म करने से पूर्व ही षोडश श्राद्ध करे । ब्राह्मणों को भोजन करा कर उन्हें पदों का दान देवे ॥३४॥ कार्पास के ऊपर संस्थापित करके ताम्र के पात्र में अच्युत भगवान् को वस्त्र से आच्छादित करे, शुभ फलों से वहाँ पर स्थित को अर्घ्य देवे ॥३५॥

नावमिक्षुमयीं कुर्य्यात्पट्टसूत्रेण वेष्टितम् ।
कांस्यपात्रे घृतं स्थाप्य वैतरण्या निमित्तकम् ॥३६
नावमारोहयेद्गन्तु पूजयेद्गरुडध्वजम् ।
आत्मवित्तानुसारेण तस्या दानमनन्तकम् ॥३७
भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदुःखिनाम् ।
धर्मप्लवविहीनानां तारको हि जनार्दनः ॥३८
तिललोहं हिरण्यञ्च कार्पासं लवणं तथा ।
सप्तधान्यं क्षितिर्गावि एकैकं पावनं स्मृतम् ॥३९
तिलपात्राणिकुर्वीत शय्यादानञ्च कारयेत् ।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥४०

एवं यः कुरुते तार्क्ष्य पुत्रवानप्यपुत्रवान् ।
स सिद्धि समवाप्नोति यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥४१
नित्यं नैमित्तिकं कुर्याद्यावज्जीवति मानवः ।
यत्किञ्चित् कुरुते धर्ममक्षय फलमाप्नुयात् ॥४२

एक इक्षुमयी नौका की रचना करावे। यह सूत्र से वेष्टित कांसे के पात्र में वैतरणी नदी के निमित्त घृत स्थापित करना चाहिए ॥३६॥ उस नौका से गमन करने के लिये आरूढ़ करावे और भगवान् गरुड़ध्वज का पूजन करे। अपने धन की शक्ति के अनुसार उसके अनन्त दान होते हैं ॥३६॥ तिलपात्रों का दान करे और शय्या का दान करे। दीन, अनाथ और विशिष्टों को यथा-शक्ति दक्षिणा देनी चाहिए ॥४०॥ इस प्रकार से जो सम्पूर्ण विधि को साङ्ग सम्पादित किया करता है, हे तार्क्ष्य ! वह चाहे पुत्र वाला हो या अपुत्री हो, जिस तरह ब्रह्मचारी प्राप्त किया करते हैं वैसे ही सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ ॥४१॥ मनुष्य जब तक जीवित रहता है उसे सभी नित्य कर्म और नैमित्तिक कर्म करने चाहिए। जो भी कुछ मनुष्य धर्म करता है उसका अक्षय फल प्राप्त किया करता है ॥४२॥

तीर्थयात्राव्रतानाञ्च श्राद्धे सांवत्सरादिके ।
देवतानां गुरूणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च ॥४३
पुण्यं देयं प्रयत्नेन प्रत्यहं वर्द्धते खग ।
अस्मिन्यज्ञे हि यः कश्चिद्भूरिदानं प्रयच्छति ॥४४
तत्तस्य चाक्षयं सर्वं वेदिकायां यथा किल ।
यथा पूज्यतमा लोके यतयो ब्रह्मचारिणः ॥४५
तथैव प्रतिपूज्यन्ते लोके सर्वे च नित्यशः ।
वरदोऽहं सदा तस्य चतुर्वक्त्रस्तथा हरः ॥४६
ते यान्ति परमाल्लकानिति सत्यं वचो मम ।
पौर्णमास्याञ्च रेवत्यां नीलमेकं प्रमुञ्चयेत् ॥४७
संक्रान्तीनां सहस्राणि सूर्यपर्वशतानि च ।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तद्वै नीलविसर्जने ॥४८

वत्सतरी प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्य पदानि च ।
तिलपात्राणि देयानि शिवभक्तद्विजेषु च ।।४६

तीर्थों की यात्रा—व्रत आदि को वार्षिक श्राद्ध मे देवताओं के और गुरुओ के तथा माता—पिता के लिये जो किया जाता है देने के योग्य पुण्य प्रयत्न पूर्वक प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है हे खग ! इस वृषोत्सर्ग यज्ञ में जो कोई भी बहुत अधिक दान देता है उसका वह सभी अक्षय हो जाता है जिस प्रकार से वेदिका मे किया हुआ कर्म अक्षय होता है । जिस तरह लोक मे यति वर्ग और ब्रह्मचारी गण पूज्यतम होते हैं उसी भाँति ये दान देने वाले सभी लोक मे पूजित हुआ करते हैं और मैं तथा ब्रह्मा एव हर सदा नित्य ही उनको वरदान देने वाले होते हैं ।। ४३ ।। ४४ ।। ४५ ।। ४६ ।। वे लोग सब परम श्रेष्ठ लोकों मे गमन करते हैं—यह मेरा वचन बिल्कुल सत्य एव ध्रुव है। पूर्णमासी तिथि के दिन और रेवती नक्षत्र मे एक नील का विसर्जन करे ।।४७।। सहस्रा सक्रान्ति और सैकड़ो सूय पव करके जो फल प्राप्त होता है वही एक नील के विसर्जन करने का पुण्य—फल हुआ करता है ।। ४८ ।। ब्राह्मणो को वत्सतरी का दान करना चाहिए और पद भी देवे—तिलो से परिपूर्ण पात्रों का दान करे । जो ब्राह्मण शिव के भक्त हों उनको दान करे ।। ४६ ।।

उमा महेश्वरञ्चैव परिधाप्य प्रयत्नत ।
अतसीपुष्पसकाश पीतवाससमच्युतम् ।।५०
ये नमस्यन्ति गोविन्द न तेषा विद्यते भयम् ।
प्रेतत्वान्मोक्षमिच्छन्ति ये करिष्यन्ति स्वक्रियाम् ।।५१
एतत्ते सर्वमाख्यात मया त्वञ्चौर्ध्व दैहिकम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापैर्विष्णुलोक स गच्छति ।।५२
श्रुत्वा माहात्म्यमतुल गरुडो हर्षमागतः ।
भूय. पप्रच्छ देवेश कृत्वा चाननकन्धरम् ।।५३

उमा और महेश्वर का प्रयत्न पूर्वक परिधान करके अलसी के पुष्प के सदृश—पीत वस्त्र धारी भगवान् अच्युत् गोविन्द को जो नमन किया करते हैं उनको कुछ भी भय नहीं होता है । जो प्रेतत्व से छुटकारा पाने की इच्छा

रखते है वे अपनी क्रिया को करेंगे ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मैंने तुमको यह सब अपनी और्ध्व दैहिक क्रिया का पूर्ण वर्णन कर दिया है । इसका जो श्रवण करता है वह पापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में विष्णु लोक में जाता है ॥ ५२ ॥ इसका अतीव अतुल माहात्म्य को सुनकर गरुड़ बहुत ही हर्षित हुए और फिर अपनी कन्धरा आनत करके उसने देवेश्वर से पूछा था ॥ ५३ ॥

५ – और्ध्व दैहिक कर्मादि संस्कार

भगवन्ब्रूहि मे सर्वं यमलोकस्य निर्णयम् ।
प्रमाणं विस्तरं तस्य माहात्म्यञ्च सुविस्तरम् ॥१
शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यमलोकस्य निर्णयम् ।
प्रमाणकानि सर्वाणि भुवनानि च षोडश ॥२
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ।
यमलोकस्य चाध्वा वै अन्तरो मानुषस्य च ॥३
सुकृत दुष्कृत वापि भुक्त्वा लोके यथार्जितम् ।
कर्मयोगात्तदा कश्चिद् व्याधिरुत्पद्यते खग ॥४
निमित्तमात्रः सर्वेषां कृतकर्मानुसारतः ।
यो यस्य विहितो मृत्युः स तं ध्रुवमवाप्नुयात् ॥५
कर्मयोगात्तदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः ।
तदा भूमिगतं कुर्य्याद्गोमयेनोपलिप्य च ॥६
तिलान्दर्भा विकीर्य्याथ मुखे स्वर्णं विनिक्षिपेत् ।
तुलसीसन्निधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा ॥७
एवं सामादिसूक्तैश्च मरणं मुक्तिदायकम् ।
शलाकास्वर्णविक्षेपः प्रेतप्राणगृहेषु च ॥८

गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! अब आप कृपा करके मुझे यमलोक का प्रमाण—विस्तार और उसका विस्तृत माहात्म्य बतलाइये ॥ १ ॥ श्री भगवान् ने कहा—हे तार्क्ष्य ! मैं अब यमलोक का निर्णय तुम्हें श्रवण कराता हूँ । ये सोलह भुवनों का प्रमाण है । इन मनुष्य लोक से यमलोक की मध्या

का मार्ग छयासी हजार योजन के प्रमाण वाला है। इतना लम्बा इन दोनों लोकों का अन्तर होता है ॥ २ ॥ ३ ॥ इस लोक में जो भी सुकृत या दुष्कृत किया है उसका फल भोग करते हैं खग ! कर्म के योग से उसे मृत्यु के प्राप्त होने के लिये कोई रोग उत्पन्न हो जाया करता है ॥ ४ ॥ किये हुए कर्म के अनुसार सभी को कुछ व्याधि आदि मृत्यु का एक निमित्त मात्र हुआ करता है। जिसको जिस भी समय में मृत्यु के आने का योग विदित है वह उसको उसी समय में निश्चित रूप से प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ कर्मों के योग से यह शरीरधारी जीव अवश्य ही इस अपने पाँच भौतिक शरीर का त्याग किया करता है। उस समय में जबकि इस शरीर को त्याग कर परलोक गमन का समय प्राप्त होता है गोबर से भूमि का लेपन कर उसे भूमि पर ही ले लेना चाहिए ॥ ६ ॥ इधर-उधर भूमि में तिल और डाभों को फैला देना चाहिए और मृत्यु को प्राप्त होने वाले के मुख में सुवर्ण डाल देना चाहिए। उसके समीप में तुलसी को रक्खे तथा भगवान् शालग्राम को विराजमान करे। इस प्रकार से सामवेद के सूक्तों का श्रवण कराते हुए जो मृत्यु होती है वह मुक्ति को प्रदान कराने वाली हुआ करती है। प्रेत के प्राण गृहों में सुवर्ण की शलाकाओं का विक्षेप करे ॥७॥८॥

एका वक्त्रे तु दातव्या घ्राणयुग्मे तथा पुनः ।
अक्ष्णोश्च कर्णयोश्चैव द्वे द्वे देये यथाक्रमम् ॥६

अथ लिङ्गे तथा चैका चैका ब्रह्माण्डके क्षिपेत् ।
करयुग्मे च कण्ठे च तुलसीश्च प्रदापयेत् ॥१०

वस्त्रयुग्मश्च दातव्यं कुङ्कुमैश्चार्चयेत् ।
पुष्पमालायुतं कुर्य्यादिन्यद्वारेण सन्नयेत् ॥११

पुत्रस्तु बान्धवैः सार्द्धं विप्रस्तु पुरवासिभिः ।
पितुः प्रेतगतं पुत्रः स्कन्धमारोप्य बान्धवैः ॥१२

गत्वा श्मशानदेशे तु प्राङ्मुखञ्चोत्तरामुखम् ।
अदाधपूर्वा या भूमिश्चिता तत्रैव कारयेत् ॥१३

श्रीखण्डतुलसीकाष्ठसमित्पालाशसम्भवाम् ।
एवं सामादिसूक्तैश्च मरणं मुक्तिदायकम् ॥१४

एक शलाका को मुख में देवे। दो घ्राणों में देवे। आँखों में और कानों में दो-दो यथाक्रम रक्खे। इसके पश्चात् एक लिङ्ग में देवे और एक को ब्रह्माण्ड में विक्षिप्त कर देवे। मृत्यु को प्राप्त होने वाले के दोनों हाथों में और कण्ठ में तुलसी रक्खे ॥ ९ ॥ १० ॥ उस मृत को दो वस्त्र धारण करावे और कुंकुम तथा अक्षतों के द्वारा उसका यजन करे। पुष्पों की मालाओं से युक्त करके उसे अन्य द्वार से भली भाँति ले जाना चाहिए ॥ ११ ॥ पुत्र को अपने बान्धवों के साथ विप्र को पुरवासियों के साथ प्रेतगत पिता को कन्धों पर आरोपित करे और इस रीति से उसे श्मशान में पहुँचावे ॥ १२ ॥ वहाँ श्मशान में पहुँच कर जो भूमि पहिले अदग्ध हो वहाँ पर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख दाह करने के लिये चिता की रचना करे ॥ १३ ॥ उस चिता में श्री खण्ड—तुलसी काष्ठ और पलाश की समिधाओं को लगा कर निर्मित करे। इस प्रकार से सामादि सूक्तों के पाठ पूर्वक जो मृत्यु एवं दाह कर्म होता है वह मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है ॥१४॥

विमलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जड़ताङ्गते।
प्रचलन्ति ततः प्राणा यामैर्निकटवर्त्तिभिः ॥१५
वीभत्सं दारुणं रूपं प्राणैः कण्ठसमाश्रितैः ।
फेनमुद्गिरते सोऽपि मुखं लालाकुलं भवेत् ॥१६
दुरात्मानश्च ताड्यन्ते किङ्करैः पाशवेष्टिताः ।
सुखेन कृतिनस्तत्र नीयन्ते नाकनायकैः ॥१७
दुःखेन पापिनो यान्ति यममार्गं सुदुर्गमम् ।
यमश्चतुर्भुजो भूत्वा शङ्खचक्रगदादिभृत् ॥१८
पुण्यकर्मरतान्सम्यक्स्नेहान्मित्रवदाचरेत् ।
आहूय पापिनः सर्वान्यमो दण्डेन तर्जयेत् ॥१९
प्रलयाम्बुदनिर्घोषो ह्यञ्जनाद्रिसमप्रभः ।
महिषस्थो दुराराध्यो विद्युत्तेजःसमद्युतिः ॥२०

योजनत्रयविस्तारदेहो रुद्रोऽतिभीषण ।
लोहदण्डधरो भीम पाशपाणिर्दु राकृति ॥२१

विमल इन्द्रियो के समूह और चैतन्य के जडता को प्राप्त होने पर इसके पश्चात् निकटवर्त्ती यामो से प्राण प्रचलित हो जाते हैं ॥ १५ ॥ जिस समय में निकलने वाले प्राण कण्ठ गत होते हैं उस मृत होने वाले जन्तु का रूप बहुत ही वीभत्स और दारुण हो जाता है। उसके मुख से झाग निकलने लगते हैं और मुख मे लार भर जाया करती है ॥ १६ ॥ जो दुष्ट आत्मा वाले होते हैं वे यम के दू ो के द्वारा ताडित होते हैं और पाशो मे बाँध लिये जाया करते हैं और जो पुण्यात्मा होते हैं वे स्वर्ग के दूतो के द्वारा बहुत ही सुख पूर्वक वहाँ मे ले जाए जाया करते हैं ॥ १७ ॥ पापी लोग बहुत ही कष्ट सहन करते हुए उस यमपुरी के महान् विशाल मार्ग की यात्रा पूरी किया करते हैं। यह याम मार्ग बहुत दुगम होता है। वहाँ पर यमराज चार भुजाओ वाले विराजमान् रहते हैं जो अपने चारो हाथो मे शङ्ख—चक्र और गदा आदि आयुधो को धारण किये रहते हैं ॥ १८ ॥ जो पुण्य कर्मों मे रति रखने वाली आत्माऐ होती हैं उनस वे बहुत ही स्नेह के साथ एक मित्र की भाँति आचरण किया करते हैं। जो पापी होते हैं उन्हे उस सुदुर्गम यमराज के मार्ग में बडे ही दुःख के साथ जाना पडता है और उन्हे यमराज अपने निकट बुलाकर दण्ड से तर्जित किया करते हैं ॥ १६ ॥ यमराज की ध्वनि ऐसी भयानक होती है जैसे प्रलय काल मे होने वाले मेघ की गर्जना होती है। उसके शरीर की कान्ति अञ्जन गिरि के समान एक दम कृष्ण वर्ण वाली है—महिष (भैंसा) उनका वाहन है बहुत ही कठिनाई के साथ उनके सामने ठहरा जाता है तथा विद्युत् के तेज के सदृश उसक शरीर की द्युति होती है ॥ २० ॥ उसके शरीर का विस्तार तीन योजन के प्रमाण वाला है (एक योजन ४ कोस का होता है) यमराज का स्वरूप अत्यन्त रौद्र एव भीषण होता है। हाथ मे एक लोहे का दण्ड धारण किये रहते है—परम भयानक और पाश हाथ मे रखने वाले हैं। यमराज की आकृति बहुत ही भय देने वाली होती है ॥२१॥

रक्तनेत्रोऽतिभयदो दर्शनं याति पापिनाम् ।
अंगुष्ठमात्र. पुरुषो हाहा कुर्वन्क.लेवरात् ॥२२
यदैव नीयते दूतैर्याम्यैर्वीक्षन् स्वकं गृहम् ।
निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर्मुक्तं जुगुप्सितम् ॥२३
अस्पृश्यं जायते तूर्णं दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम् ।
त्रिधावस्थाऽस्य देहस्य क्रिमिविड्भस्मरूपतः ॥२४
को गर्वः क्रियते तार्क्ष्य क्षणविध्वंसिभिर्नरैः ।
दानं वित्ताद्यो न कुर्य्यात्कीर्त्तिधर्मौ तथायुषः ॥२५
परोपकरणं कायादसारात्सारमुद्धरेत् ।
तस्यैव नीयमानस्य दूताः सन्तर्जयन्ति हि ॥२६
दर्शयन्ति भय तीव्रं नरकाणां पुनः पुनः ।
शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् त्वं यास्यसि यमालयम् ॥२७
कुम्भीपाकादिनरकान्त्वां नयिष्यामि माचिरम् ।
एवं वाचस्तदा शृण्वन्बन्धूनां रुदितं तथा ॥२८
उच्चैर्हहेति विलपन्नीयते यमकिङ्करैः ।
मृतस्योत्क्रान्तिसमयात्षट्पिण्डान् क्रमतो ददेत् ॥२९
मृतस्थाने तथा द्वारे चत्वरे तार्क्ष्य कारयेत् ।
विश्रामे काष्ठचयने तथा सञ्चयने च षट् ॥३०

यमराज के नेत्र रक्त वर्ण के होते है जिन्हें देखने से ही अत्यन्त भय लगता है। पापी लोग उन्हें देखते ही डर से काँपने लगते हैं। यह एक अँगुष्ठ मात्र कलेवर वाले यमराज के सामने जन्तु हाहाकार करने लगते है ॥ २२ ॥ यमराज के दूतों के द्वारा जिस समय अपने घर को देखते हुए इसे ले जाया जाता है प्राणों से मुक्त यह शरीर अत्यन्त बुरा एवं चेष्टा हीन हो जाया करता है ॥ २३ ॥ प्राणों के निकलते ही यह शरीर शीघ्र स्पर्श करने के योग्य हो जाता है। इससे दुर्गन्ध निकला करती है और सभी को यह बहुत बुरा लगने लगता है। इस मृत शरीर की फिर तीन प्रकार की दशा होती हैं–कृमि–विट और भस्म ये तीन अवस्था हुआ करती हैं। कीड़े हो जाते हैं या कोई

जानवर खाकर विड् (मल) बनता है अथवा जला देने पर इस की भस्म हो जाती है ॥ २४ ॥ हे तार्क्ष्य ! एक ही क्षण में अच्छा-भला मनुष्य विध्वस्त हो जाया करता है। ऐसे क्षणभर में विध्वंस को प्राप्त होने वाले मनुष्यों का गर्व करना व्यर्थ ही है। ऐसे क्षणभंगुर शरीर का अभिमान क्या करना है ? जो अपने धन से दान नहीं करता है और इस मनुष्य शरीर की आयु से कीर्ति तथा धर्म का अर्जन नहीं करता है उस शरीर से क्या लाभ है ? इस सार शून्य शरीर से दूसरों की भलाई करना ही एक सार का संग्रह है उसे अवश्य ही करना चाहिए। इस प्रकार से यमपुरी को ले जाये जाने वाले इसको यम के दूत बुरी तरह धमकाते हैं और फटकार लगाया करते हैं ॥२५॥२६॥ वे पापियों को बारम्बार नरकों का अत्यन्त भीषण भय दिखाते हैं। वे कहा करते हैं—"अरे ओ दुरात्मा ! शीघ्र चल, तुझको यमराज के पुर में जाना होगा ॥ २७ ॥ हम तुझको बहुत ही शीघ्र—कुम्भीपाक आदि नरकों में ले जायेंगे"। इस तरह से यमदूतों से फटकारे खाने वाला यह अपने वियुक्त बन्धु-बान्धवों का इधर घर में होने वाले रुदन को सुनता रहता है। यह जो जब यमदूतों के द्वारा पाश में बाँधकर बरबस ले जाया जाता है तो हाय हाय करके बहुत ऊँचे स्वर से विलाप करता है। उसे अपने शरीर को और भरे पूरे घर को जिसमें सभी परिवारी लोग हैं छोड़ते हुए महान् क्लेश होता है। मृत की उत्क्रान्ति के समय में क्रम से छै पिंड देने चाहिए ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ जहाँ उसकी मृत्यु होती है उस स्थल पर—घर के द्वार पर—आँगन में—बीच में जहाँ उसे विश्राम देते हैं उस स्थान पर—काष्ठों के चयन में और सञ्चयन में इस तरह से छैं जगह पिंड देना आवश्यक है ॥३०॥

> शृणु तत्कारणं तार्क्ष्य षट्पिण्डपरिकल्पने ।
> मृतस्थाने शवो नाम तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३१
> तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता ।
> द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३२
> तेन दत्तेन तुष्यन्ति गृहवास्त्वधिदेवताः ।
> चत्वरे खेचरो नाम तमुद्दिश्य प्रदीयते ॥३३

तेन तत्रोपघाताय भूतकोटिः पलायते ।
विश्रामे भूतसंज्ञोऽयं तेन नाम्ना प्रदीयते ।।३४
पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिशिवासिनः ।
तस्य होतव्यदेहस्य नैवायोग्यत्वकारकाः ।।३५

हे ताक्ष्र्य ! इन उपर्युक्त छै स्थलों पर पिंड देने का क्या कारण है ? उसका अब तुम श्रवण करो । मृत के स्थान पर उसका "शव" नाम होता है अतएव उस नाम से पिंड दिया जाता है ।। ३१ ।। इसके देने से वह भूमि तुष्ट होती है । द्वार देश में इसलिये पिंड प्रदान किया जाता है कि उसके अधिष्ठातृ देवता तुष्टि को प्राप्त होते हैं । मार्ग में वह पान्थ होता है इसलिये उसी नाम से पिंड दिया जाता है ।। ३२ ।। इससे गृह के वास्तु—अधिदेवता सन्तुष्ट होते हैं । आँगन में उसका खेचर नाम है अतः उसी का उद्देश्य करके पिंड यातन किया जाता है ।। ३३ ।। इससे वहाँ पर उपघात के लिये भूतकोटि पलायन करती है । विश्राम में यह भूत संज्ञा वाला होता है अतः इसी नाम से पिंड प्रदान किया जाता है ।। ३४ ।। पिसाच—राक्षस—यक्ष और अन्य जो दिशिवासी होते हैं उस होतव्य देह के अयोग्यत्व करने वाले नहीं होते हैं ।। ३५ ।।

चितामोक्षप्रभृति च प्रेतत्वमुपजायते ।
चितायां साधकं नाम वदन्त्येके खगेश्वर ।।३६
केऽपि तं प्रेतमेवाहुर्यथा कल्पविदस्तथा ।
तदा हि तत्र तत्रापि प्रेतनाम्ना प्रदीयते ।।३७
इत्येवं पञ्चपिण्डैर्हि शवस्याहुतियोग्यता ।
अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि ।।३८
उत्क्रामे प्रथमं पिंडं तथा चार्द्धपथेन च ।
चितायां तु तृतीयं स्यात्त्रयः पिंडाश्च कल्पिताः ।।३९
विधाता प्रथमे पिंडे द्वितीये गरुडध्वजः ।
तृतीये यमदूताश्च प्रयोगः परिकीर्त्तितः ।।४०

दत्त तृतीये पिण्डेऽस्मिन्देहदोषै. प्रमुच्यते ।
आधारभूतजीवस्य ज्वलन ज्वालयेच्चिताम् ॥४१
समृज्य चोपलिप्याथ उल्लिख्योद्धृत्य वेदिकाम् ।
अभ्युक्षीय समाधाय वह्निं तत्र विधानत ॥४२

चिता मोक्ष आदि प्रेतत्व उपजात होते हैं मत चिता मे कुछ लोग साधक नाम उसका है खगभ्वर कहा करते हैं कुछ लोग उसको प्रेत ही कहते हैं ये कल्प के वेत्ता होते हैं उस समय में भी वहाँ पर 'प्रेत'—इसी नाम से पिंड का प्रदान किया जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार से ये पाँच पिंड शव की आहुति की योग्यता के होते हैं अन्यथा ये जो पूर्व मे कहे गये हैं वे सब उपघात के लिये हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ उत्क्रमण मे शव के उठाने के समय मे प्रथम पिंड होता है तथा दूसरा पिंड मार्ग के आधे समाप्त हो जाने पर दिया जाता है और तीसरा पिंड चिता म समारूढ़ करने के समय में दिया करते हैं। इस तरह तीन पिंड कल्पित किये जाया करते हैं। प्रथम पिंड मे विधाता—द्वितीय पिंड मे गरुडध्वज और तीसरे पिंड मे, यमदूत—इस प्रकार से प्रयोग कहा गया है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इस तीसरे पिण्ड के देने पर वह देह के सम्पूर्ण दोषो स प्रमुक्त हो जाया करता है। जीव के आधार भूत इस देह को फिर अग्नि चिता मे जला दिया करता है ॥ ४१ ॥ समृजन करके—उपलेपन को और उल्लेखन करके उद्धरण करे फिर वेदिका का अभ्युक्षण वहाँ पर वह्नि का समाधान करे और विधान के सहित लावे ॥४२॥

पुष्पाक्षतैं सुसम्पूज्य देव क्रव्यादसञ्ज्ञकम् ।
त्व भूतकृज्जगद्याने त्व लोकपरिपालक ॥४३
सहारकारकस्तस्मादेन स्वर्गं मृत नय ।
एव क्रव्यादमभ्यर्च्य शरीराहुतिमाचरेत् ॥४४
अर्द्धदेहे तथा दग्धे दद्यादाज्याहुति तत ।
लोमभ्यस्त्वनुवाक्येन कुर्याद्धोम यथाविधि ॥४५
चितामारोप्य त प्रेत हुनेदाज्याहुति ततः ।
यमाय चान्तकायेति मृत्यवे ब्रह्मणे तथा ॥४६

जातवेदोमुखे देया ह्येका प्रेतमुखे तथा ।
ऊर्ध्वं तु ज्वालयेद्वह्निं पूर्वभागे चितां पुनः ॥४७

ग्रस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।
ग्रसौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलति पावकः ॥४८

एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम् ।
ततो दाहः प्रकर्त्तव्यः पुत्रेण किल निश्चितम् ॥४९

फिर क्रव्याद संज्ञा वाले देव का पुष्प—ग्रक्षतों से भली-भाँति पूजन करे ग्रौर प्रार्थना करे—ग्राप ही मृत्यु के करने वाले हैं ग्रौर ग्राप इस जगत् की योनि हैं। ग्राप इस समस्त लोक के परिपालक हैं ॥ ४३ ॥ ग्राप संहार के करने वाले हैं। इससे हमारी यह विनती है कि इस मृतक की ग्रात्मा को स्वर्ग में ले जाइये। इस रीति से क्रव्याद की ग्रभ्यर्चना एवं प्रार्थना करके फिर शरीर की ग्राहुति करे ॥ ४४ ॥ जब मृतक का ग्राधा देह जल जावे तो घृत की ग्राहुति देवे। 'लोमस्यः'—इस ग्रनुवाक्य से यथाविधि होम करना चाहिए ॥ ४५ ॥ उस प्रेत को चिता पर समारोपित करके घृत की ग्र हुतियाँ द्वारा हवन करे। यम के लिये—ग्रन्तक, मृत्यु ग्रौर ब्रह्मा के लिये ग्राहूतियाँ देवे ॥ ४६ ॥ एक ग्राहूति जात वेदा (ग्रग्नि) के मुख में देवे तथा एक प्रेत के मुख में देनी चाहिए। इसके ऊपर ग्रग्नि को जलावे ग्रौर चिता के पूर्व भाग में ग्रग्नि को जलाना चाहिए ॥ ४७ ॥ इससे तुम ग्रधिजात हुए हो सो यह पुनः जायमान हो। यह स्वर्ग के लिये ग्रौर लोक के लिये स्वाहा है ग्रर्थात् ग्राहुति समर्पित की जाती है। पावक ज्वलित होता है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार से मन्त्र के सहित तिलों से मिश्रित घृत की ग्राहुति देनी चाहिए। इसके ग्रनन्तर दाह पुत्र के द्वारा निश्चित् रूप से करना चाहिए ॥४९॥

रोदितव्यं ततो गाढं एवं तस्य सुखं भवेत् ।
दाहस्यानन्तरं तत्र कृत्वा सञ्चयनक्रियाम् ॥५०

प्रेतपिंडं प्रदद्याच्च दाहार्त्तिशमनं खग ।
तेन दूताः प्रतीक्षन्ते तं प्रेतं बान्धवार्थिनम् ॥५१

दद्यादनन्तर कार्य्यं पुत्रैः स्नान मचेलयम् ।
तिलोदक ततो दद्यान्नामगोत्रेण चाश्मनि ॥५२
ततो जनपदैः सर्वैर्दातव्या करताडनी ।
विष्णुर्विष्णुरिति ब्रूयाद्गुणं प्रेतमुदीरयेत् ॥५३

इसके पश्चात् खूब गहराई के साथ रुदन करे। इस प्रकार से उस मृतक जन्तु को सुख होता है। दाह करने के अनन्तर वहीं पर सञ्चयन की क्रिया का सम्पादन करे ॥ ५० ॥ हे खग ! प्रेत को पिंड प्रदान करे जोकि दाह की पीड़ा का विनाश करने वाला होता है। इससे दूर प्रतीक्षा किया करते हैं यम बान्धवों के घर्षों प्रेत को अतएव इसे बाद में देना चाहिए। इसके पश्चात् पुत्रों को वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए। इसके पश्चात् नाम और गोत्र का उच्चारण करके तिलोदक देवे। घर में सब जन पदों के द्वारा करताडनी देनी चाहिए। तीन बार विष्णु का उच्चारण करे और प्रेत के गुणों का उदीरण (बखान) करना चाहिए ॥५१॥५२॥५३॥

जना सर्वे समास्तस्य गृहमागत्य सर्वदा ।
द्वारस्य दक्षिणे भागे गोमय गोरसर्षपान् ॥५४
निधाय वरुण देवमन्तर्द्धाय स्ववेश्मनि ।
नक्षत्रनिम्बपत्राणि घृत प्राश्य गृह व्रजेत् ॥५५
केचिद् ध्वेन मिश्वन्ति चिन्तास्थान खगेश्वर ।
अश्रुपात न कुर्वीत दत्त्वा चाथ जलाञ्जलिम् ॥५६
श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्त प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः ।
अतो न रोदितव्य हि क्रिया कार्य्या स्वशक्तितः ॥५७
दुग्धञ्च मृन्मये पात्रे तोय दद्याद्दिनत्रयम् ।
सूर्येऽस्तमागते तार्क्ष्य वलभ्याञ्चत्वरे तथा ॥५८
बद्ध समूढहृदयो देहमिच्छन्कृतानुग ।
श्मशानचत्वर गेह वीक्षन्यास्यं स नीयते ॥५९
गर्त्तपिण्डान्दशाहानि प्रदद्याच्च दिने दिने ।
जलाञ्जल्यः प्रदातव्या. प्रेतमुद्दिश्य प्रत्यहम् ॥६०

तावद्वृद्धिश्च कर्त्तव्या यावत्पिण्डं दशाह्निकम् ।
पुत्रेण हि क्रिया कार्य्या भार्य्यया तदभावतः ॥६१

इसके अनन्तर सभी मनुष्य जो दाह कर्म के लिये श्मशान तक गये थे समान रूप से घर पर लौट कर आवें। द्वार के दक्षिण भाग में गोबर और श्वेत सर्षप (सरसों) रख कर घर के भीतर वरुणदेव का अन्तर्धान करे। नीम के पत्रों को भक्षण करे और घृत का पान करके घर को जाना चाहिए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे खगेश्वर ! कुछ लोग दूध से चिता का सिञ्चन किया करते हैं। जलाञ्जलि देकर के फिर अश्रुपात नहीं करे ॥ ५६ ॥ बान्धवों के द्वारा छोड़े हुए श्लेष्माश्रुओं को प्रेत विवश होकर खाता है। इसीलिये रुदन नहीं करना चाहिए और अपनी शक्ति से समस्त क्रिया का सम्पादन करे ॥५७। मिट्टी के पात्र में दुग्ध और जल तीन दिन पर्य्यन्त देवे। हे तार्क्ष्य ! सूर्य के अस्त हो जाने पर वलभी में तथा चत्वर में इस क्रिया को करे ॥५८॥ पाशों से बद्ध एवं संमूढ़ हृदय वाला कृतानुग होकर देह की इच्छा रखता हुआ श्मशान चत्वर और घर को देखता हुआ यम के दूतों के द्वारा ले जाया जाता है ॥५९॥ दिन-दिन में अर्थात् प्रतिदिन गर्त्त पिण्डों को दश दिन तक देवे और प्रेत का उद्देश्य करके प्रतिदिन जलाञ्जलि देनी चाहिये ॥६०॥ तब तक वृद्धि करे जब तक दशाह्निक कर्म होवे अर्थात् दशवें दिन में किये जाने वाली क्रिया होवे। यह सभी क्रिया पुत्र के द्वारा ही की जानी चाहिये। यदि पुत्र न होवे तो उसके अभाव में भार्या को करनी चाहिये ॥६१॥

तदभावे च शिष्येण शिष्याभावे सहोदरः ।
श्मशाने चान्यतीर्थे वा जलं पिडञ्च दापयेत् ॥६२
ओदनानि च सक्तूंश्च शाकमूलफलादि वा ।
प्रथमेऽहनि यद्द्यात्तद्दद्यादुत्तरेऽहनि ॥६३
दिनानि दश पिंडानि कुर्वन्त्यत्र सुतादयः ।
प्रत्यहं ते विभज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम ॥६४
भागद्वयं तु देहार्थे प्रीतिदं भूतपञ्चकम् ।
तृतीयं यमदूतानाञ्चतुर्थेनोपजीवति ॥६५

अहोरात्रैस्तु नवभि प्रेतो निष्पत्तिमाप्नुयात् ।
जन्तोर्निष्पन्नदेहस्य दशमे तु भवेत्क्षुधा ॥६६
न द्विजो नैव मन्त्रश्च न स्वधा वाहनाशिष ।
नामगोत्रे समुच्चार्य्य यद्दत्तञ्च दशाह्निकम् ॥६७
दग्धे देहे पुनर्देह प्राप्नोत्येव खगेश्वर ।
प्रथमेऽह्नि य पिङस्तेन मूर्द्धा प्रजायते ॥६८
ग्रीवास्कन्धौ द्वितीये तु तृतीये हृदय भवेत् ।
चतुर्थेऽह्नि भवेत्पार्ष्णिर्नाभिर्वै पञ्चमे तथा ॥६९
षष्ठे च सप्तमे चैव कटिर्गुह्य प्रजायते ।
ऊरू चाष्टमके चैव जान्वङ्घ्री नवमे तथा ॥७०
नवभिर्देहमासाद्य दशमेऽह्नि भवेत्क्षुधा ।
देहभूत क्षुधाविष्टो गृहद्वारे स तिष्ठति ॥७१

यदि भार्या भी न हो तो इसके अभाव मे शिष्य को क्रिया करनी चाहिये । शिष्य के अभाव में सहोदर भाई करे । श्मशान मे, अन्य तीर्थ मे जल और पिण्ड दान करे ॥६२॥ ओदन, सत्तू शाक-मूल और फल प्रथम दिन में जो खावे वही उसके दूसरे दिन म भी खाना चाहिये ॥६३॥ यहाँ पर सुत आदि को दश दिन तक दश पिण्ड करने चाहिये । प्रतिदिन हे खगोत्तम ! चतु॰ र्भागो म उनका विभ ग किया जाता है ॥६४॥ दो भाग तो देह क लिये होते हैं जो पाँच भूतों के प्रीति देने वाले होते है। तीसरा भाग यम के दूतो का होता है और चौथे से उपजीवित होता है ॥६५॥ नौ अहोरात्रो (दिन-रात्रियो) म प्रेत निष्पत्ति को प्राप्त होता है । जब जन्तु की देह की निष्पत्ति हो जाती है तो दशम दिन मे इसको क्षुधा लगा करती है ॥६६॥ उसमें द्विज, मन्त्र, स्वधा अथवा आशिष कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है । केवल नाम और गोत्र का उच्चारण करके दशवें दिन में जो भी कुछ दिया जावे हे खगेश्वर ! देह के दग्ध हो जाने पर वह प्रेत पुन दह की प्राप्ति किया करता है । प्रथम दिन में जो पिण्ड दिया जाता है उससे इसका मस्तक उत्पन्न होता है ॥६७॥६८॥ द्वितीय म गरदन और कन्धे होते हैं । तीसरे में हृदय बन जाता है । चौथे दिन

में पाष्णि, पाँचवें में नाभि, छठे और सातवें में कटि (कमर) और गुह्य बनते हैं। आठवें दिन में दिये हुए पिण्ड से जानु (घुटने) और पैर तथा नवम दिन में यह बन जाया करते हैं ॥६६॥७०॥ इस प्रकार से नौ पिण्डों से वह प्रेत अपने पूरे देह को प्राप्त करके दशम दिन में उसे भूख उत्पन्न हो जाती है। वह प्रेत देहधारी के स्वरूप में होकर क्षुधा से आविष्ट होता हुआ घर के द्वार पर स्थित हो जाया करता है ॥७१॥

दशमेऽहनि यः पिंडस्तं दद्यादामिषेण तु ।
यतो देहः समुत्पन्नः प्रेतस्तीव्रक्षुधान्वितः ॥७२
अतस्त्वामिषवाह्यं तु क्षुधा तस्य न नश्यति ।
एकादशाहं द्वादशाहं प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम् ॥७३
योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्द समुच्चरेत् ।
दीपमन्नं जलं वस्त्रमन्यद्वा दीयते तु यत् ॥७४
प्रेतशब्देन यद्दत्तं मृतस्यानन्ददायकम् ।
त्रयोदशेऽह्नि वै प्रेतो नीयते च महापथे ॥७५
पिण्डजं देहमाश्रित्य दिवारात्रौ क्षुधान्वितः ।
मार्गे गच्छति स प्रेतो ह्यसिपत्रवनान्विते ॥७६
क्षुत्पिपासार्दितो नित्यं यमदूतैः प्रपीड़ितः ।
अहन्यहनि स प्रेतो योजनानां शतद्वयम् ॥७७
चत्वारिंशत्तथा सप्त अहोरात्रेण गच्छति ।
गृहीतो यमपाशैस्तु जनो हाहेति रोदिति ॥७८
स्वगृहं सम्परित्यज्य याम्यं पुरमनुव्रजेत् ।
क्रमेण गच्छति सः प्रेतः पुरं वैवस्वतं शुभम् ॥७९

दशम दिन में जो आमिष से पिण्ड देवे तो जिससे देह समुत्पन्न हुआ है वह प्रेत तीव्र क्षुधा से युक्त हो जाता है ॥७२॥ इसलिये आमिष से आवाह्य उसकी भूख नष्ट नहीं हुआ करती है। ग्यारहवें और बारहवें दिन में वह प्रेत दो दिन खाया करता है ॥७३॥ स्त्री हो या पुरुष उसको प्रेत शब्द से ही उच्चारण करे। दीप, अन्न, जल, वस्त्र अथवा अन्य जो कुछ भी दिया जाता है, प्रेत

इस शब्द से जो कुछ भी दिया जाया करता है उससे उस मृत प्राणी को बहुत आनन्द उत्पन्न होता है। तेरहवें दिन में वह प्रेत उस यमपुरी के विशाल मार्ग में ले जाया जाता है ॥७४।७५॥ पिण्डों से समुत्पन्न देह को प्राप्त कर दिन-रात भूख से युक्त असि पत्र के वन से संयुत उस मार्ग में वह प्रेत जाता है ॥७६॥ वह नित्य ही भूख, प्यास से पीडित होकर यम के दूतों से सताया जाता है। प्रतिदिन वह प्रेत दो सौ योजन तक चला करता है। इस तरह सैंतालीस दिन-रात में वह चलकर जाता है। यम के पाशों से गृहीत होता हुआ वह हाहाकार करके रोया करता है ॥७७।७८॥ अपने घर का त्याग करके यम के पुर को जाया करता है। इस प्रकार से क्रम से यह प्रेत धर्मराज के उस शुभ नगर को जाता है ॥७९॥

याम्य सौरिपुर सुरेन्द्रभवन गन्धर्वशैलागम।
क्रूर क्रौञ्चपुर विचित्रभवन वह्वापद दुःखदम्।
नानाक्रन्दपुर सुतप्तभवन रौद्र पयोवर्षणं।
शीताढ्य बहुभीति धर्मभवन याम्य पुरञ्चाग्रत ॥८०
त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो नीयते यमकिङ्करैः।
तस्मिन्मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कट ॥८१
तथैव स व्रजन्मार्गे पुत्र पुत्र इति ब्रुवन्।
हाहेति क्रन्दते नित्य कीदृश तु मया कृतम् ॥८२
मानुषत्व लभे कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति।
महता पुण्ययोगेन मानुष जन्म लभ्यते ॥८३
तत्र प्राप्य न प्रदत्त याचकेभ्य स्वक धनम्।
पराधीनमभूत्सर्वमिति ब्रूते स गद्गद।
किङ्करै पीड्यमानोऽत्यर्थं स्मरते पूर्वदैहिकम् ॥८४
सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुराकृत कर्म सदैव भुज्यते शरीर हे निस्तरय त्वया कृतम् ॥८

वह यमराज का पुर—सौरि नगर अर्थात् सूर्यपुर—सुरेन्द्र का भवन—गन्धर्वों के शैल का आगम (आना)—क्रूर क्रौञ्च का पुर विचित्र भवनों वाला

है जहाँ बहुत-सी आपत्तियाँ भरी हुई हैं और परम दुःख देने वाला है। अनेक प्रकार के आक्रन्दों (रुदन) से पूर्ण वह पुर है जहाँ सुतप्त भवन हैं और वह रौद्र है। बराबर पानी की वर्षा होती है, शीत से युक्त, बहुत से भयों से परिपूर्ण, घाम से युक्त जिसमें भवन हैं ऐसा वह यमराज का नगर आगे मिलता है ॥८०॥ तेरहवें दिन में यह प्रेत वहाँ ले जाया जाता है और यम के दूत उसे ले जाया करते हैं। उन विशाल बड़े लम्बे मार्ग में कर्कट की भाँति पकड़ा हुआ अकेला ही जाया करता है ॥८१॥ उस मार्ग में वह जाता हुआ 'हा पुत्र ! हा पुत्र !'—इस तरह से विलाप करता हुआ और हाहाकार के स्वर में रुदन करता हुआ नित्य जाता है और कहता रहता है कि यह मैंने कैसा पाप किया है? जिससे यह कष्ट मुझे हो रहा है।॥८२॥ अब मुझे फिर वह मनुष्य शरीर कैसे प्राप्त होगा ? यही कहता हुआ वह दौड़ लगाता जाता है। बहुत ही बड़े पुण्यों के योग से यह मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ करता है ॥८३॥ मैंने इस मनुष्य के शरीर को प्राप्त करके भी याचकों को अपना धन दान में नहीं दिया था। अब तो सभी कुछ पराये अधीन हो गया है, अब मैं क्या कर सकता हूँ ?—ऐसे वह गद्गद् होकर बराबर बोलता रहा करता है। यम के दूतों के द्वारा वह खूब पीड़ित किया जाता है तब वह अपने पहिले देह की सब बातों का स्मरण किया करता है ॥८४॥ इस सुख का और दुःख का दूसरा अन्य कोई भी देने वाला नहीं है। दूसरा हमें दुःख देता है—यह विचार एक कुबुद्धि का ही होता है। यह प्राणी पहिले जन्म में किये हुए ही कर्मों का फल सदा भोगा करता है। हे शरीर ! तूने जो किया है उसे अब भोग। यह सभी तेरा ही किया हुआ है ॥ ८५ ॥

मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे ।
न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं शरीर हे निस्तरस्व त्वया कृतम् ।८६
जलाश्रयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे ।
गोवृत्तिहेतोर्न कृतं हि गोचरं शरीर हे निस्तरस्व त्वया कृतम् ।८७
न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम् ।
पुरा न इष्टो न च सेवितोऽध्वा शरीर हे निस्तरस्व त्वयाकृतम् ।८८

मासोपवासैर्न च शोषितं वपुश्चान्द्रायणैर्वा नियमैश्च सुव्रतैः।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः ॥८९

उक्तानि वाक्यानि मया नराणां मत्तः शृणुष्वावहितो हि पक्षिन्।
क्षीणाश्च देहं त्ववलम्ब्य देही ब्रवीति कर्माणि कृतानि पूर्वम् ॥९०

उसे उस समय में यह ज्ञान होता है और फिर पश्चात्ताप किया करता है कि मैंने कभी कुछ भी दान नहीं दिया—मैंने अग्नि में हवन भी नहीं किया—कोई भी तपश्चर्या नहीं की कि किसी पर्वत पर या सागर तट तथा गुफा में बैठकर कुछ तप ही कर लेता। कभी मैंने गङ्गा का जैसा महा पावन जल का सेवन भी नहीं किया था। हे शरीर! तूने जैसा भी किया है उसे अब तू भोग। ये सब तेरे ही किये हुए का फल है ॥८६॥ मैंने किसी निर्जल स्थान में कोई जलाशय नहीं बनवाया है जिसमें मनुष्य पशु और पक्षी सब जलपान कर सकते। गायों की तृप्ति के लिए मैंने गोचर भूमि भी नहीं बनाई थी। हे शरीर! तूने जैसा किया है अब उसका निस्तारा तू स्वयं ही कर ॥८७॥ मैंने नित्य कुछ भी दान नहीं किया, न मैंने गौओं का आह्निक ही कभी किया था। कभी वेदों का दान नहीं किया, न मैंने कभी किसी भी शास्त्र की पुस्तकों का ही दान किया है। मैंने पहिले कभी किसी का इष्ट नहीं किया और न किसी की सेवा ही की है। अब तक मैंने ऐसे मार्ग का कभी गमन नहीं किया था। हे शरीर! तूने जैसा भी जो कुछ किया है उसका फल अब तुझे ही भोगना है ॥८८॥ मासों के उपवास के द्वारा मैंने कभी अपने शरीर का शोधन नहीं किया। मैंने चान्द्रायण आदि का नियम एवं व्रतों के करने का कष्ट नहीं उठाया था। मैंने बहुत-से दुःखों का आधार नारी के शरीर को पूर्व कृत विकर्मों से प्राप्त किया था ॥८९॥ हे पक्षिन्! मनुष्यों के उस उत्पीडन पाने के समय में ऐसे पश्चात्ताप और दुःख से भरे शब्द होते हैं। मैंने तुमको यह सब बता दिया है। अब तुम सावधान होकर मुझसे सब श्रवण करो। यह देहधारी क्षीयो के शरीर का अवलम्बन लेकर पूर्व में किये हुए कर्मों को बोला करता है ॥९०॥

६—यमलोक वर्णन

एवं प्रचलते प्रेतस्तत्र मार्गे खगेश्वर ।
क्रन्दितश्चैव दुःखार्त्तः श्रान्तश्चाकुललोचनः ॥१
सप्तदशदिनान्येको वायुमार्गेण गच्छति ।
अष्टादशे त्वहोरात्रे पूर्वं याम्यपुरं व्रजेत् ॥२
तस्मिन्पुरवरे रम्ये प्रेतानाञ्च गणो महान् ।
पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः ॥३
पुरे तत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः ।
जायापुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्र दुःखितः ॥४
क्रन्दते करुणैर्वाक्यैस्तृषार्त्तः श्रमपीडितः ।
स्वधनं स्वसुखानीह गृहपुत्रधनानि च ॥५
भृत्यमित्राणि धान्यञ्च सर्वं शोचति वै तदा ।
क्षुधार्त्तस्य पुरे तस्मिन्किङ्करैस्तस्य चोच्यते ॥६
क्व धनं क्व सुता जाया क्व सुहृत्क्व त्वमीदृशः ।
स्वकर्मणार्जितं भुङ्क्ष्व मूढ़चेतश्चिरं पथि ॥७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे खगेश्वर ! इस उपर्युक्त प्रकार से यह प्रेत यमपुरी के मार्ग में चला करता है । वह क्रन्दन करता रहता है—दुःख से बड़ा ही आर्त्त होता है—थक जाता है और इसके नेत्र व्याकुल हो जाया करते हैं ॥१॥ वह सत्रह दिन तक वायुमार्ग से जाता है अठारहवें दिन में फिर पूर्व याम्यपुर को जाया करता है ॥२॥ उस परम रम्य पुर में प्रेतों का एक महान् समुदाय होता है । वहाँ पर पुष्पभद्रा नाम वाली एक नदी है और एक वट का वृक्ष है, जो देखने में बहुत प्रिय लगता है ॥३॥ उस पुर में यम के किङ्करों के द्वारा उसे विश्राम प्राप्त कराया जाया करता है । वहाँ पर फिर वह प्रेत अपनी स्त्री और पुत्र आदि के सुख का स्मरण करता है और बहुत दुःखित होता है ॥४॥ करुणा से भरे हुए शब्द कहता हुआ वह वहाँ पर रोता है । प्यास से पीड़ित होता है और थकान से अत्यन्त दुःखित हुआ करता है । उस समय में वह अपने धन, अपने सुख, गृह, पुत्र, भृत्य, मित्र, धान्य और अतुल वैभव-सम्पत्ति के छूट

जाने का सोच किया करता है। उस पुर में क्षुधा से दुःखित इससे यम के दूतों के द्वारा कहा जाता है ॥५।६॥ यम के किङ्करों ने कहा—अरे ! हे मूर्ख ! अब गई बीती बातों का यहां क्या स्मरण करके यों रो रहा है। यहाँ तेरा वह धन कहाँ है ? न तेरे पुत्र हैं और न भार्या ही है। यहां तेरा कोई मित्र भी नहीं है। तूने जो जैसा कर्म किया है उसे इस लम्बे मार्ग में बहुत काल पर्यन्त भोग। तू बहुत ही मूढ चित्त वाला है ॥७॥

जानासि सम्वलबलं बलमध्वगाना नो सम्वलाय पतित परलोकपान्थ।
गन्तव्यमस्ति तन निश्चितमेवमस्मिन्मार्गे हि चात्र भवत. क्रयविक्रयौ न। ८
यमगीताभव वाक्य नैव मर्त्ये श्रु त त्वया।
एवमुक्तस्तत सर्वैर्हन्यमान. स मुद्गरै ॥९
अत्र दत्त सुतै पौत्रै स्नेहाद्वा कृपयाथवा।
मासिक पिण्डमश्नाति तत सौरिपुर व्रजेत् ॥१०
तत्र नाम्ना तु राजा वै जङ्गम कालरूपधृक्।
त दृष्ट्वा भयभीतस्तु विश्रामे कुरुते मतिम् ॥११
उदकञ्चान्नसयुक्त भुङ्क्ते तस्मिन्पुरे गत'।
त्रिभि पक्षैस्तथा पिण्डैस्तत्पुर स व्यतिक्रमेत् ॥१२
सुरेन्द्रनगरे रम्ये प्रेतो याति दिवानिशम्।
ततो वनानि रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति तत्र स ॥१३
भीषणौ विलक्ष्यमानश्च क्रन्दत्येव पुन पुन।
मासद्वयावसाने तु तत्पुर म व्यतिक्रमेत् ॥१४

तू यह जानता है कि मार्ग में चलने वालों का बल सम्बल के ही अधीन होता है। हे परलोक के मार्ग में गमन करने वाले राहगीर ! तेरे पास सम्बल के लिये कुछ भी नहीं है। तुझे ज्ञात ही है कि इस महान् विशाल मार्ग की यात्रा तो निश्चित रूप से पूरी करनी ही है। यहाँ पर तुझे कोई भी क्रय और विक्रय करने का साधन नहीं है अर्थात् पहिले से ही कोई इस मार्ग की यात्रा

करने का सुकृत जैसा सम्बल नहीं है तो अब कुछ भी नहीं किया जा सकता है ॥८॥ अरे ओ प्राणी ! क्या तूने मनुष्य लोक में रहकर यमगीत के वाक्यों का श्रवण नहीं किया है ?" इस प्रकार से उन सब यमकिङ्करों के द्वारा कहे जाने पर वह जन्तु मुद्गरों से ताड़ित किया जाता है ॥६॥ यहाँ पर पुत्र तथा पौत्र आदि के द्वारा स्नेह से जो पिण्डदान दिया जाता है उसी दया करके दिए हुए मासिक पिण्ड का वह भक्षण किया करता है और इसके अनन्तर सौरिपुर अर्थात् यमराज के नगर में गमन करता है ॥१०॥ वहाँ पर नाम से तो वह राजा है किन्तु वैसे जङ्गम काल के रूप को धारण करने वाला है। उसको देखकर भय से डरकर विश्राम करने में अपनी बुद्धि किया करता है ॥११॥ उस पुर में जाकर जल से युक्त अन्न का भक्षण करता है। तीन पक्षों में तीन पिण्डों से वह उस पुर में समय काटता है। सुरेन्द्र के सुरम्य नगर में प्रेत दिवा-निश जाता है। इसके पश्चात् वह भयानक वनों को देखकर क्रन्दन किया करता है ॥१२।१३॥ बड़े भीषण परिणामों से क्लेश भोगता हुआ यह बार-बार रुदन करता है। इस तरह दो मास के अन्त तक वह उस पुर में समय काटता है ॥ १४ ॥

तृतीये मासि सम्प्राप्ते गन्धर्वनगरे शुभे ।
तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुङ्क्ते स गच्छति ॥१५
शलागमे चतुर्थे च मासि याति खगेश्वर ।
पतन्ति तत्र पाषाणाः प्रेतस्योपरि पृष्ठतः ॥१६
चतुर्थमासिकं श्राद्धं भुक्त्वा तत्र सुखी भवेत् ।
स गच्छति ततः प्रेतः क्रूरं मासे तु पञ्चमे ॥१७
पञ्चममासिकं पिण्डं भुङ्क्ते तत्र पुरे स्थितः ।
ऊनषाण्मासिकं क्रौञ्चैः पञ्चभिः सार्द्धमासिकैः ॥१८
तत्र दत्तेन पिण्डेन श्राद्धेनाप्यायितस्ततः ।
मुहूर्त्तार्द्धं तु विश्राम्य कम्पमानः सुदुःखितः ॥१६
तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः ।
प्रयाति चित्रनगरं विचित्रो नाम पार्थिवः ॥२०

यमस्यैवानुज सौरिर्यत्र राज्य प्रशास्ति हि।
तत्र षण्मासपिण्डेन तृप्त सञ्चरते नर. ॥२१

अब तीसरा मास आरम्भ होता है तो शुभ गन्धर्व नगर में वह आया करता है और वहाँ तीसरे मास का पिण्ड खाता है ॥१५॥ हे खगेश्वर! चौथे मास में शैलागम में यह प्रेत जाता है। वहाँ पर इस प्रेत की पीठ पर और ऊपर पाषाण गिरते हैं ॥१६॥ चतुर्थ मास के दिए हुए श्राद्ध को खाकर यह सुखी होता है। इसके पश्चात् वह प्रेत पाँचवें मास में क्रूर को जाया करता है। ॥१७॥ उस क्रूरपुर में पाँचवें मास में दिये हुए पिण्ड को खाकर सुख पाता है। इसके अनन्तर ऊन षण्मासिक अर्थात् साढ़े पाँच मास का दिया हुआ अन्न प्राप्त करता है ॥१८॥ उसमें दिए हुए पिण्ड से यह प्रेत आप्यायित (तृप्त) होता है और आधे मुहूर्त तक विश्राम करके फिर काँपता हुआ अत्यन्त दुःखित होकर उस पुर का त्याग करता है तथा यम के दूतों के द्वारा फटकारें खाता हुआ यह प्रेत चित्र नगर में जाया करता है। वहाँ विचित्र नाम वाला राजा होता है। ॥१६।२०॥ यह यमराज का ही छोटा भाई सूर्य का पुत्र है जो कि इस राज्य का शासन किया करता है। वहाँ पर फिर छः मास में होने वाले श्राद्ध के पिण्ड से तृप्ति प्राप्त करता है और वहाँ से भी यमदूतों के द्वारा इसे खींचा जाता है ॥ २१ ॥

मार्गे पुन पुनस्तस्य बुभुक्षा जायते भृशम्।
मदीयपुत्र पौत्रो वा बान्धव कोऽपि तिष्ठति ॥२२
ददाति कश्चिन्मा मोहय पतित शोकसागरे।
एव विलपता मार्गे व्रजमानस्य किङ्करैः ॥२३
आयान्ति सम्मुखास्तत्र कैवर्तास्तु सहस्रश ।
वय त्वा तारयिष्यामो महावैतरणी नदीम् ॥२४
शतयोजनविस्तीर्णां पूयशोणितपूरिताम्।
नानापक्षिसमाकीर्णां नानाकृमिसमावृताम् ॥२५
येन तत्र प्रदत्ता गौस्त्रिलोकश्च सा नयेत्।
न दत्ता चेत्स्वगर्तेष्ठ वैतरण्यां स मज्जति ॥२६

स्वस्थावस्थे शरीरे तु वैतरण्या व्रतं चरेत् ।
देया च विदुषे धेनुस्तां नदीं तर्तुमिच्छता ॥२७
अदत्वा मज्जमानस्तु निन्दति स्वं स मूढ़धीः ।
पाथेयार्थं मया किञ्चिन्न प्रदत्तं द्विजातये ।
न तप्तं न हुतं जप्तं न स्नानं न कृतं शुभम् ॥२८

मार्ग में इसको बार-बार बहुत भूख लगा करती है और यह कहा करता है कि संसार में मेरा कोई पुत्र-पौत्र या बान्धव उपस्थित होगा तो शोक सागर में पड़ा हुआ कोई उनमें से मुझे सुख देगा, इस प्रकार से विलाप करता हुआ जाता है और यम के दूतों के द्वारा बाध्यमाण होता है । वहाँ पर सहस्रों कैवर्त्त इसके सामने आ जाया करते हैं और वे कहते हैं कि हम तुमको इस आगे आने वाली महान् वैतरणी नदी से पार करा देंगे ॥२२।२३।२४॥ यह महा वैतरणी नदी एकसौ योजन के प्रमाण वाली है । यह पूय (मवाद) और रक्त से भरी हुई होती है । इसमें अनेक प्रकार के पक्षीगण घिरे हुए रहा करते हैं और बहुत-से विशाल मत्स्य भी इसमें रहते हैं ॥२५॥ जिसने संसार में वास करके गौ का दान किया है वह गौ उस नदी से पार कराकर विष्णु लोक को ले जाया करती है । हे खगश्रेष्ठ ! यदि गौ दान नहीं दिया है तो फिर वह उस वैतरणी में मज्जित हो जाया करता है ॥२६॥ जब तक यह शरीर स्वस्थ दशा में रहे तभी वैतरणी का व्रत कर लेना चाहिए । यदि उस महा नदी वैतरणी को तर कर पार होने की इच्छा रखता है तो किसी विद्वान् सत्पात्र को धेनु का दान अवश्य ही करना चाहिए ॥२७॥ गोदान न करके उस नदी में डूबता हुआ यह मूढ़ उस समय अपने आपकी भूल पर पश्चात्ताप किया करता है । उस वक्त सोचता है कि पाथेय के लिये अर्थात् मार्ग में भोजन एवं सुख पाने के लिये ब्राह्मणों को मैंने कुछ भी नहीं दिया था । न मैंने कोई तप किया और न हवन तथा जाप ही किया है और न तीर्थादि का स्नान ही कभी किया है । अपने परलोक गमन के मार्ग में सुख प्राप्त करने के लिये कुछ भी सत्कर्म नहीं किया है ॥ २८ ॥

यादृशं कर्म चरितं मूढ़ भुङ्क्ष्वाद्य तादृशम् ।
हा दैव इति संमूढ़ो भीषणैस्ताड्यते हृदि ॥२९

पाण्मासिकञ्न यच्छ्राद्ध तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति ।
तार्क्ष्य तत्र विशेषेण भाजयेच्च द्विजाञ्छुभान् ॥३०
चत्वारिंशत्तया सप्तयोजनाना शतद्वयम् ।
प्रयाति प्रत्यह तार्क्ष्य ह्यहोरात्रेण कर्षित ॥३१
सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुर बद्ध्वा पद व्रजेत् ।
तत्र भुक्त्वा प्रदत्त यत् सप्तमासिकसम्भवम् ॥३२
तत् पुर स व्यतिक्रम्य दु खद पुरमाश्रयेत् ।
महद् दु खमनुप्राप्य स्वमार्गे याति वै पुन ॥३३
मास्यष्टमे प्रदत्त यत् तत्र भुक्त्वा स गच्छति ।
नवम मासिक भुङ्क्ते नानाक्रन्दपुर स्थित ॥३४
नानाक्रन्दगणान्दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान् ।
स्वयञ्च शून्यहृदय समाक्रन्दति दु खित ॥३५

उस प्रेत से फिर यम के किङ्कर कहते हैं—अरे मूढ़ ! तूने जैसे भी कर्म किये हैं अब उन सबके फलों का भोग कर । अब पछताने और रोने धोने से क्या होता है ? यह कहते हुए यमदूतों के द्वारा बड़ी भीषणता के साथ हृदय पर ताडित किया जाता है और वह 'हा देव ! —यह कहकर रोता रहता है । ॥२९॥ फिर वहाँ छः मास के दिये हुए श्राद्ध को खाकर आगे को दौड़ लगाता है । हे तार्क्ष्य ! वहाँ पर विशेष रूप से शुभ द्विजों को भोजन कराना चाहिए । ॥३०॥ यह इस तरह से दिन—रात में कर्षित होता हुआ प्रतिदिन दो सौ सैंतालीस योजन जाया करता है ॥३१ । सातवें मास के आरम्भ होने पर पद बाँधकर पुर को जाया करता है और वहाँ पर सातवें मास का दिया हुआ श्राद्ध का अशन किया करता है ॥३२॥ फिर इस पुर से निकल कर अत्यन्त दुःख देने वाले एक पुर का आश्रय लेता है । वहाँ बहुत भारी दुःख भोग कर पुनः अपने मार्ग में चलना जाया करता है ॥३३॥ आठवें मास में जो श्राद्ध दिया जाता है उसका भोजन करके फिर वह आगे जाता है । नवम मास में दिये हुए पिण्ड का अशन करके नानाक्रन्द पुर में स्थित होता है ॥३४॥ वहाँ पर क्रन्दन (रुदन) करते हुए परम सुदारुण नानाक्रन्द गणों को देखकर स्वयं शून्य हृदय वाला होता हुआ दुःखित होकर क्रन्दन किया करता है ॥३५॥

विहाय तत् पुरं प्रेतो याति तप्तपुरं प्रति ।
सुतप्तनगरं प्राप्य दशमे मासि सोऽश्नुते ॥३६
भोजनैः पिण्डदानैस्तु दत्तैस्तत्र सुखी भवेत् ।
मासि चैकादशे पूर्णे रौद्रं स्थानं स गच्छति ॥३७
दशैकमासिकं भुक्त्वा पयोवर्षणमिच्छति ।
मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः ॥३८
न्यूनाब्दिकं तु यच्छ्राद्धं तत्र भुङ्क्ते सुदुःखितः ।
सम्पूर्णे च ततो वर्षे प्रेतः शीतपुरं व्रजेत् ॥३९
शीताढ्यनगरं तत्र महाशीतं प्रवर्त्तते ।
शीतार्त्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशो दश ॥४०
अस्ति मे बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति ।
किङ्करास्तं वदन्त्येवं क्व ते पुण्यं हि तादृशम् ॥४१
श्रुत्वा तेषां तु तद्वाक्यं हा दैव इति भाषते :
दैवञ्च प्राकृतं कर्म यन्मया मानुषे कृतम् ॥४२
एवं सञ्चिन्त्य बहुशो धैर्य्यमालभते पुनः ।
चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि वै तथा ॥४३
धर्मराजपुरं दिव्यं गन्धर्वाप्सरःसकुलम् ।
चतुरशीतिलक्षैश्च मूर्त्तामूर्त्तैरधिष्ठितम् ॥४४

उस पुर का त्याग करके फिर वह प्रेत तप्तपुर की ओर जाया करता है। उस सुतप्त नगर में पहुँच कर दशम मास में दिये हुए श्राद्ध को खाता है। भोजन और पिंड दानों से जोकि दिये गये हैं वहाँ पर वह सुखी होता है। एकादश के पूर्ण हो जाने पर—वह प्रेत रौद्र स्थान में जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ फिर यह दशैक मासिक का अशन कर पयो वर्षण की इच्छा किया करता है। वहाँ पर मेघ वर्षा किया करते हैं जो प्रेतों को दुःख देने वाले होते हैं। ॥ ३८ ॥ वहाँ पर न्यूनाब्दिक जो श्राद्ध होता है उसे वह अतीव दुःखित होता हुआ खाता है। फिर वर्ष के सम्पूर्ण हो जाने पर यह प्रेत शीतपुर में जाया करता है ॥ ३९ ॥ यह शीत से युक्त नगर होता है और वहाँ पर महान् शीत

रहा करता है। शीत से दुःखित तथा क्षुधा से पीडित यह दशों दिशाओं की ओर देखा करता है ॥ ४० ॥ वह सोचता है कि मेरा कोई बान्धव है जो मेरे इस दुःख को दूर हटावे। उससे यम के दूत कहा करते हैं—'तेरा ऐसा पुण्य कहाँ है ? जो तेरी पीडा का निवारण हो"। उनके ऐसे वचन श्रवण कर के वह 'हा दैव !'—यह कहकर विल्लाता है। मैंने मनुष्य लोक मे दैव और प्राकृत कर्म जो कुछ भी था वही किया है अर्थात् कोई शुभ कर्म किया ही नहीं है। इस प्रकार से बहुत सा चिन्तन करके फिर धीरज बाँध लेता है। फिर चौवालीस योजन के विस्तार वाला यमराज का पुर आता है जो परम दिव्य होता है और गन्धर्व तथा अप्सराओं के गण से सकुल (घिरा हुआ) होता है। चौरासी लाख मूर्त्त और अमूर्तों से वह अधिष्ठित होता है ॥ ४० ॥ ४३ ॥ ॥ ४२ ॥ ४४ ॥

द्वादशैव प्रतीहारा धर्मराजपुरे स्थिता ।
शुभाशुभं तु यत् कर्म ते विचार्य्य पुनः पुनः ॥४५
श्रवणा ब्रह्मणः पुत्रा मनुष्याणाञ्च चेष्टितम् ।
कथयन्ति तदा काले पूजताऽपूजता स्वयम् ॥४६
नरैस्तुष्टैश्च रुष्टैश्च यत् प्रोक्तञ्च कृतञ्च यत् ।
सर्वमावेदयन्ति स्म चित्रगुप्त यमे यथा ॥४७
दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम् ।
एवञ्चेष्टास्तु ते सर्वे स्वर्भू पातालचारिणः ॥४८
तेषां पत्न्यास्तथैवोग्रा श्रवणा पृथगाह्वया ।
एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्ये मर्त्योपकारिका ॥४६
व्रतैर्दानैश्च यस्तेषां पूजयेदिह मानवः ।
जायन्ते तस्य ते सौम्या सुखमृत्युप्रदायकाः ॥५०

धर्मराज पुर में बारह प्रतीहार स्थित रहा करते हैं शुभ और अशुभ जो भी कर्म मृत प्राणी (प्रेत) के होते हैं उनपर वे बार-बार विचार करके निर्णय किया करते हैं। ब्रह्मा के पुत्र श्रवण मनुष्यों के चेष्टित अर्थात् कर्म को उस समय में कहते हैं। स्वय पूजित और अपूजित होते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

दुष्ट तथा रुष्ट मनुष्यों के द्वारा जो कहा गया है। वह सभी कुछ यम और चित्र-गुप्त से आवेदित कर देते हैं ॥ ४७ ॥ दूर से श्रवण करने का विशेष ज्ञान और दूर से देखने का प्रत्यक्ष जैसा ज्ञान का होना इनको होता है। वे सभी ऐसी चेष्टा वाले हुआ करते हैं। वे स्वर्ग भूमि और पाताल में चरण करने वाले होते हैं ॥ ४८ ॥ उनसे सब यन्त्र भी वैसे ही उग्र हुआ करते हैं। श्रवण ये इनका एक पृथक् नाम होता है। उनकी ऐसी विशेष शक्ति हुआ करती है जो मनुष्य लोक में मनुष्यों की उपकार करने वाली होती है ॥ ४९ ॥ यहाँ पर जो मनुष्य व्रत तथा दानों के द्वारा उनकी पूजा किया करता है उसके लिये वे बहुत ही सौम्य होते हैं और सुख से मृत्यु के देने वाले हुआ करते हैं ॥५०॥

७—श्रावण गण चरित्र

एको मे संशयो देव हृदयेऽतीव वर्त्तते ।
श्रवणाः कस्य पुत्राश्च कथं यमपुरे स्थिताः ॥१
मानुषैश्च कृतं कर्म कस्माज्जानन्ति ते प्रभो ।
कथं शृण्वन्ति ते सर्वे कस्माज्ज्ञानं समागतम् ॥२
कुत्र भुञ्जन्ति देवेश कथयस्व प्रसादतः ।
पक्षिराजवचः श्रुत्वा भगवान् वाक्यमब्रवीत् ॥३
शृणुष्व वचनं सत्यं सर्वेषां सौख्यदायकम् ।
तदहं कथयिष्यामि श्रवणानां विचेष्टितम् ॥४
एकीभूतं यदा सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
क्षीरोदसागरे पूर्वं मयि सुप्ते जगत्पतौ ॥५
नाभिस्थोऽजस्तपस्तेपे वर्षाणि सुबहून्यपि ।
एकीभूतं जगत् सृष्टं भूतग्रामञ्चतुर्विधम् ॥६
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं विष्णुना पालितं यदा ।
रुद्रः संहारमूर्त्तिश्च निर्मितं ब्रह्मणा ततः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे देव ! मेरे हृदय में एक बड़ा भारी संशय होता है। ये श्रवण किसके पुत्र हैं और ये यमपुर में क्यों रहा करते हैं ? ॥ १ ॥ हे

प्रभो ! मनुष्यों के द्वारा किये हुए कर्मों को ये कैसे जान लिया करते हैं ? यह ऐसा ज्ञान उन्हें कहाँ से प्रा गया है ? हे देवेश ! यह भी कृपा कर बताइये कि ये लोग कहाँ रहा करते हैं ? पक्षिराज के इस वचन को सुनकर भगवान् ने यह वाक्य कहा—॥ २ ॥ ३ ॥ श्री कृष्ण बोले—हे गरुड़ ! अब तुम मेरे सत्य वचनों का श्रवण करो जोकि सभी के लिए सुख देने वाले हैं। मैं श्रवणों के विचेष्टित को बतलाता हूँ ॥ ४ ॥ इस समस्त जगत् के पति मेरे क्षीर सागर में शयन करने पर जब यह स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) जगत् एकीभूत हो गया था अर्थात् सभी कुछ मुझ में लीन हो गया था उस समय मेरी नाभि के कमल में स्थित अज ने बहुत वर्षों तक तपश्चर्या की थी। फिर एकीभूत चार प्रकार का जगत् सृजन किया गया था जोकि भूतों का एक समुदाय था ॥ ५ ॥ ६ ॥ पहिले ब्रह्मा ने इसका निर्माण किया था और विष्णु ने इस निर्मित जगत् का पालन किया था तथा रुद्र इसके संहार करने वाली मूर्त्ति थी। इसके अनन्तर ब्रह्मा ने निर्माण किया था ॥७॥

वायु सर्वगत सृष्ट सूर्य्यस्तेजोविवृद्धिमान् ।
धर्मराजस्तत सृष्टश्चित्रगुप्तेन सयुत ॥८
सृष्ट्वै वैवमादिक सर्व तपस्तेपे तु पद्मज ।
गतानि बहुवर्षाणि ब्रह्मणो नाभिपङ्कजे ॥९
यो यो हि निर्मित पूर्व तत्तत्कर्म समाचरेत् ।
कस्मिश्चित् समये तत्र ब्रह्मलोकसमन्वित ॥१०
रुद्रो विष्णुस्तथा धर्मं शासयन्ति वसुन्धराम् ।
न जानीमो वय किञ्चिल्लोककृत्यमिहोच्यताम् ॥११
इति चिन्तापरा सर्वे देवा विममृशुस्तदा ।
सञ्चिन्त्य ब्रह्मणो मन्त्र विबुधं प्रेरिस्तदा ॥१२
गृहीत्वा कुशपत्राणि सोऽसृजद्द्वादशात्मजान् ।
तेजोराशीन् विशालाक्षान् ब्रह्मणो वचनात्तु ते ॥१३
यो य वदति लोकेऽस्मिन् शुभ वा यदि वाऽशुभम् ।
प्रापयन्ति तत शीघ्रं ब्रह्मण कर्णगोचरे ॥१४

सर्वत्र गमन करने वाले वायु का सृजन किया गया था। तेज की विवृद्धि से युक्त सूर्य का सृजन किया था। इसके अनन्तर चित्रगुप्त से युक्त धर्मराज की सृष्टि की गई थी ॥ ८ ॥ इस प्रकार से इन सबका सृजन करके पद्मज ब्रह्मा ने तप किया था। नाभि से समुत्पन्न कमल में ब्रह्माजी को तपस्या करते हुए बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥ ९ ॥ जो-जो पहिले निर्मित हुए थे वे अपना-अपना कर्म का आचरण करते थे। वहाँ पर किसी समय में ब्रह्म लोक से समन्वित रुद्र–विष्णु तथा धर्म इस वसुन्धरा का शासन करते थे। हम सब लोक के कृत्य को कुछ भी नहीं जानते हैं अतएव यह बतलाओ। इस प्रकार से इस चिन्ता से युक्त समस्त देवों ने परस्पर परामर्श किया था। देवों के द्वारा प्रेरित होकर उस समय में ब्रह्मा के मन्त्र संचिन्तन करके कुशा के पत्र लेकर बारह आत्मजों का सृजन किया था। जोकि बारह पुत्र तेज के राशिभूत थे और विशाल नेत्रों वाले थे। ब्रह्मा के वचन से वे सब इस लोक में जो भी कोई जिसको कुछ बोलता है वह शुभ हो अथवा अशुभ हो उस सबको तुरन्त वे ब्रह्मा के कानों में पहुँचा दिया करते हैं ॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥

दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम् ।
सर्वं शृण्वन्ति यत् पक्षिस्तेनैव श्रवणा मताः ॥१५
स्थित्वा चैव तथाकाशे जन्तूनाञ्चेष्टितं तु यत् ।
तज्ज्ञात्वा धर्मराजाग्रे मृत्युकाले वदन्ति च ॥
धर्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च कथयन्ति ते ॥१६
एको हि धर्ममार्गश्च द्वितीयश्चार्थमार्गकः ।
अपरः काममार्गश्च मोक्षमार्गश्चतुर्थकः ॥१७
उत्तमाधर्ममार्गेण वैनतेय प्रयान्ति हि ।
अर्थदाता विमानैस्तु अश्वैः कामप्रदायकः ॥१८
हंसयुक्तविमानैश्च मोक्षकाङ्क्षी प्रसर्पति ।
इतरः पादचारेण ह्यसिपत्रवनानि च ॥१९
पाषाणैः कण्टकैः क्लिष्टः पाशबद्धोऽथ याति वै ।
यः कश्चिन्मानुषे लोके श्रवणान् पूजयेदिह ॥२०

दूर से ही सभी कुछ के श्रवण करने का विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेना और दूर से ही सभी कुछ के देख लेने का विशेष ज्ञान प्राप्त करना यह इनकी विशेष शक्ति थी। हे पक्षिन्! ये सभी कुछ सुन लिया करते हैं अतएव इनका नाम श्रवण कहा गया है ॥ १५ ॥ आकाश में ही स्थित होकर समस्त जन्तुओं के कर्मों को जान या देख लिया करते हैं और मृत्यु के समय में उन सबको धमराज के आगे वे बतला दिया करते हैं। वे धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष के विषय में भी सब कुछ कह दिया करते हैं ॥ १६ ॥ एक धर्म का मार्ग है—दूसरा अर्थ का मार्ग है—तीसरा काम का मार्ग है और चौथा मोक्ष का मार्ग होता है ॥ १७ ॥ हे विनतेय! वे सब उत्तम और अधम मार्ग से जाया करते हैं। जो अर्थ का दाता होता है वह विमानों के द्वारा गमन करते हैं। काम के प्रदायक अश्वों के द्वारा प्रयाण करते हैं। जो मोक्ष के आकाङ्क्षी होते हैं वे हंसों से युक्त विमानों के द्वारा प्रयाण किया करते हैं। इतर लोग पैरों से ही असिपत्र वनों में होकर पाषाण कण्टकों से क्लेश भोगते हुए पाश से बद्ध होकर गमन किया करते हैं। जो कोई मनुष्य इस मनुष्य लोक में श्रवणों का यजनार्चन करता है उसकी वर्द्धनी पक्वान्न से परिपूर्ण और जल से भरी पूरी होती है। हे खगेश्वर! अतएव वहाँ पर मेरे साथ श्रवणों का पूजन करना चाहिए ॥१७॥१८॥१९॥२०॥

वर्द्धनी जलसम्पूर्णा पक्वान्नपरिपूरिता ।
श्रवणान् पूजयेत्तत्र मया सह खगेश्वर ॥२१
तस्याहं तत्करिष्यामि यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
सम्भोज्य ब्राह्मणान्भक्त्या एकादश शुभाञ्शुचीन् ॥२२
द्वादश सकलश्चञ्च मम प्रीत्यैव पूजयेत् ।
देवैं सर्वैश्च सम्पूज्या स्वर्गं यान्ति सुखेप्सया ॥२३
तैं पूजितैरह तुष्टश्चित्रगुप्तेन धर्मराट् ।
तैस्तुष्टैर्मत्पुरं यान्ति लोका धर्मपरायणा ॥२४
श्रवणानाञ्च माहात्म्यमुत्पत्तिञ्चेष्टितं शुभम् ।
शृणोति पक्षिशार्दूल स न पापैर्न लिप्यते ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२५

उसके हित के लिये मैं वह सब कुछ कर दिया करता हूँ जोकि देवों के लिये भी—दुर्लभ होता है। परम शुभ ग्यारह ब्राह्मणों को जोकि अतीव पवित्र हों भक्ति-भाव के साथ भली-भाँति भोजन करावे। बारहवें ब्राह्मण की पत्नी के सहित मेरी प्रीति के लिये ही पूजा करे। ये समस्त देवों के द्वारा सम्पूज्य होते हैं और सुख की इच्छा से स्वर्ग को जाया करते हैं। उनके पूजित होने से मुझे परम तोष होता है और चित्रगुप्त के द्वारा धर्मराट् सन्तुष्ट होते हैं। उन सबके तुष्ट होने से धर्म परायण लोग मेरे पुर में जाया करते हैं। श्रवणों के इस माहात्म्य को—उत्पत्ति को और शुभ चेष्टित को हे पक्षिशार्दूल ! जो श्रवण करता है वह पापों से कभी भी लिप्त नहीं होता है। इस लोक में सम्पूर्ण सुखों का उपभोग करके अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥२१॥२२॥ ॥२३॥२४॥२५॥

८—प्रेतोद्देश्य से विविध दानों का फल

श्रवणानां वचः श्रुत्वा क्षणं ध्यात्वा पुनर्यमः।
यत्कृतञ्च मनुष्यैश्च पुण्यं पापमहर्निशम् ॥१
तत्सर्वञ्च परिज्ञाय चित्रगुप्तो निवेदयेत्।
चित्रगुप्तस्ततः सर्वं कर्म तस्मै वदत्यथ ॥२
वाचैव यत्कृतं कर्म कृतञ्चैव तु कायिकम्।
मानसञ्च तथा कर्म कृतं भुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥३
एवं ते कथितं तार्क्ष्य प्रेतमार्गस्य निर्णयम्।
विश्रान्तकानि सर्वाणि स्थानानि कथितानि ते ॥४
तमुद्दिश्य ददात्यन्नं सुखं याति महाध्वनि।
दिवारात्रं तमुद्दिश्य स्थाने दीपप्रदो भवेत् ॥५
अन्धकारे महाघोरे स्वपूर्त्ते लक्षवर्जिते।
दीप्तेऽध्वनि च ते यान्ति दीपो दत्तश्च यैर्नरैः ॥६
कार्त्तिके च चतुर्दश्यां दीपदानं सुखाय वै।
अथ वक्ष्यामि संक्षेपाद्यममार्गस्य निष्कृतिम् ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—श्रवणों के वचनों को सुनकर फिर क्षण मात्र ध्यान कर फिर यम, मनुष्यों के द्वारा अहर्निश मे जो भी पाप और पुण्य किया है उस सबको जान कर चित्रगुप्त को निवेदन कर देता है। इसके अनन्तर चित्रगुप्त उसके समस्त कर्मों को उससे बोलते हैं। वाणी से जो कुछ भी बुरा-भला कर्म किया है तथा शरीर के द्वारा जो भी कर्म किया गया है और मन मे जो कर्म का चिन्तन किया है वह चाहे शुभ हो या अशुभ हो उसका वह प्रेत भोग किया करता है॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ हे गरुड! इस प्रकार से वहाँ पर प्रेत के भाग का निर्णय हुआ करता है और वह सब कहा जाता है। विश्रान्तक सभी स्थान तुझे बता दिये गये हैं। इसका उद्देश्य करके ही अन्न का दान किया करता है जिससे उस परम विशाल यमपुरी के मार्ग में वह सुख पूर्वक जाता है। जिन मनुष्यो ने दीपो का दान किया है वे उस महा घोर स्वपूर्त एवं लक्ष वर्जित अन्धकार में दीप्त मार्ग में जाया करते हैं। उसी का उद्देश्य करके दीपों का दान किया जाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ कार्तिक मास में चतुर्दशी के दिन में जो दीपो का दान किया जाता है वह उस समय में सुख के लिये होता है। इसके अनन्तर मैं संक्षेप से यम के मार्ग की निष्कृति बतलाता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥

वृषोत्सर्गस्य पुण्येन पितृलोक स गच्छति ।
एकादशाहपिण्डेन शुद्धदेहो भवेत्ततः ॥८

उदकुम्भप्रदानेन किङ्करास्तृप्तिमाप्नुयु ।
शय्यादानैर्विमानस्थो याति मार्गं खगेश्वर ॥९

तद्दिने दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषत ।
त्रयोदश वरिष्ठानि वस्तुवन्ति पदानि वै ॥१०

यो ददाति मृतस्येह जीवन्नेवात्महेतवे ।
तयाश्रितो महामार्गे वैनतेय स गच्छति ॥११

एक एवास्ति सर्वत्र व्यवहार खगेश्वर ।
उत्तमाधममध्याना तत्तदा वर्जन भवेत् ॥१२

यावद्भाग्यं भवेद्यस्य तावन्मार्गः प्रकीर्त्यते ।
स्वयं स्वस्थेन यद्दत्तं तत्राधिक्यं करोति तत् ॥१३
मृते यद्बान्धवैर्दत्तं तदाश्रित्य सुखी भवेत् ।
इत्युक्तो वासुदेवेन गरुडस्तमथाब्रवीत् ॥१४

वृषोत्सर्ग जिसके विषय में पहिले पूर्ण विधान बता दिया गया है। इसके पुण्य के प्रभाव से प्रेत पितृ-लोक में चला जाता है। ग्यारहवें दिन के पिंड दान से देह की शुद्धि हो जाया करती है ॥ ८ ॥ उदक के कुम्भ के प्रदान करने से किंकर लोग तृप्ति को प्राप्त हुआ करते हैं। हे खगेश्वर ! शय्या के दानों से यह प्रेत विमान में स्थित होकर उस महान् मार्ग की यात्रा किया करता है ॥ ९ ॥ उस दिन में सभी कुछ का दान किया जाता है। बारहवें दिन में विशेष रूप से तेरह विशेष वस्तुओं वाले परम वरिष्ठ पदों का दान दिया जाता है ॥ १० ॥ जो यहाँ मृतक के लिये दान करता है तथा जीवित ही रहते हुए अपने लिये दान किया करता है। उसी प्रकार से आश्रित होता हुआ हे वैनतेय ! उस महामार्ग में वह गमन किया करता है ॥ ११ ॥ हे खगेश्वर ! सर्वत्र एक ही व्यवहार होता है। उस समय में उत्तम—मध्यम और अधमों का वर्जन हुआ करता है ॥ १२ ॥ जिसका जितना भाग्य होता है उसी प्रकार का वैसा मार्ग प्रकीर्त्तित किया जाता है। स्वयं ही स्वस्थता की दशा में जो दान किया है वहाँ पर वह अधिक कर देता है। मृत होने पर बान्धवों के द्वारा जो दिया गया है उसका आश्रय पाकर वह सुखी होता है। इस प्रकार से वासुदेव भगवान् के द्वारा कहे गये गरुड़ ने फिर उनसे कहा था ॥१३॥१४॥

कस्मात् पदानि यानि ते किंविधानि त्रयोदश ।
दीयन्ते देवदेवेश तद्वदस्व यथातथम् ॥१५
छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः ।
आसनं भाजनश्चैव पदं सप्तविधं स्मृतम् ॥१६
आ तपस्तत्र यो रौद्रो दह्यन्ते येन मानवाः ।
छत्रदानेन सुच्छाया जायते प्रेत तुष्टिदा ॥१७

असिपत्रवने घोरे शर्कराकण्टकैर्युते ।
अश्वारूढास्तु ते यान्ति ददति ये ह्युपानहौ ॥१८
आसनं भाजनश्चैव यो ददाति द्विजातये ।
सुखेन भुञ्जमानस्तु पथि गच्छेच्छनैरपि ॥१९
बहुधर्मसमाकीर्णे मार्गे तोयवर्जिते ।
कमण्डलुप्रदानेन सुखी भवति निश्चितम् ॥२०
मृतोद्देशेन यो दद्यादुदपात्रं तु ताम्रजम् ।
प्रपादानसहस्रस्य यत् फलं सोऽश्नुते फलम् ।२१

गरुड ने कहा— हे देवों के भी देवेश ! वे तेरह पद क्यों दिये जाया करते हैं और वे किस प्रकार के होते हैं ? यह आप मुझे कृपा कर ठीक-ठीक बताने की उदारता कीजिये ।। १५ ।। श्री कृष्ण भगवान् ने कहा—ये पद सात प्रकार के हुआ करते हैं—छत्र—उपानत्—वस्त्र—मुद्रिका—कमण्डलु—आसन और पात्र ये सात वस्तुऐं दान को होने से यह भी सात प्रकार के होते हैं ।। १६ ।। वहाँ पर जो भीषण आतप होता है जिससे मनुष्य ताप से दग्ध हो जाया करते हैं छत्र के दान से उस समय में बहुत अच्छी छाया हो जाती है जोकि प्रेत को तुष्टि को प्रदान किया करती है ।। १७ ।। वह मार्ग परम घोर है और असिपत्रवन से युक्त होता है । बालू और काँटों से भी युक्त रहा करता है उस मार्ग में जो उपानह (पाद त्राण) का दान करते हैं वे अश्व पर आरूढ होकर गमन किया करते हैं ।। १८ ।। जो विप्रों को आसन और पात्रों का दान करते हैं वे सुख पूर्वक खाते-पीते धीरे २ उस मार्ग की यात्रा किया करते हैं ।। १९ ।। वह मार्ग बहुत से घर्मों से समाकीर्ण होता है और जल से रहित है उसमें कमंडलु के दान से प्रेत निश्चित रूप से परम सुखी होता है । ।। २० ।। मृतक के उद्देश्य से जो ताम्र का पात्र जल से परिपूर्ण करके दान देता है उसे एक सहस्र प्रपा (प्याऊ) के दान का जो पुण्य फल होता है वह प्राप्त हो जाता है । २१।।

यमदूता महारौद्रा कराला कृष्णपिङ्गलाः ।
न पीडयन्ति दाक्षिण्याद्वस्त्राभरणदानतः ।।२२

सायुधा वहुरूपास्तु नामार्गे दृष्टिगोचरे ।
प्रयान्ति यमदूताश्च मुद्रिकायाः प्रदानतः ॥२३
भाजनासनदानेन ह्यामान्नैर्भोजनेन च ।
आज्ययज्ञोपवीताभ्यां पदं सम्पूर्णतां व्रजेत् ॥२४
एवं मार्गे गम्यमानस्तृषार्तः श्रमपीडितः ।
घटान्नदानयोगेन बन्धुदत्तेन नित्यशः ॥
महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम् ॥२५
मृतोद्देशेन यत् किञ्चिद्दीयते स्वगृहे विभो ।
स गच्छति महामार्गे तद्दत्तं केन गृह्यते ॥२६
गृह्णाति वरुणो दानं मम हस्ते प्रयच्छति ।
अहञ्च भास्करे देवे भास्करात्सोऽश्नुते फलम् ॥२७
विकर्मणः प्रभावेण वंशच्छेदः क्षिताविह ।
सर्वे ते नरकं यान्ति यावत्पापस्य संक्षयः ॥२८

यम के दूत महान् रौद्र अर्थात् भयानक स्वरूप वाले होते हैं। ये बहुत ही कराल, कृष्ण तथा पिङ्गल वर्ण वाले हैं किन्तु वे वस्त्र तथा आभरणों के दान से दाक्षिण्य से उस प्रेत को पीड़ा नहीं दिया करते हैं ॥ २२ ॥ आयुधों के सहित—बहुत प्रकार के स्वरूपों वाले यम के दूत मुद्रिका के प्रदान करने से अमार्ग में दृष्टिगोचर नहीं होते हैं ।२३। पात्र और आसन के दान से-अमान्न और भोजन से—घृत तथा यज्ञोपवीत से पद सम्पूर्णता को प्राप्त होता है ॥२४॥ इस तरह मार्ग में गमन करता हुआ प्यास से दुःखित एवं श्रम से पीड़ा वाला प्रेत बन्धुओं के द्वारा नित्य दिये हुए घटान्न दान के योग से तथा महिषी—रथ और गोदान से निश्चित् रूप से सुखी होता है ॥ २५ ॥ गरुड़ ने कहा—हे विभो ! मृतक का उद्देश्य करके अपने घर में जो कुछ भी दान किया जाता है वह सभी कुछ उस महान् विशाल यमपुरी के मार्ग में चला जाता है तो उसके दिये हुए किस के द्वारा ग्रहण किया जाता है ? ॥ २६ ॥ श्री कृष्ण भगवान् ने कहा—उस दिये हुए दान को वरुण देवता ग्रहण किया करते हैं और फिर वे मेरे हाथ में दे दिया करते हैं। मैं फिर उसको भुवन भास्कर सूर्यदेव को

दे देता हूँ और भास्कर से उसे वह प्रेत प्राप्त किया करता है और उसका फल भोगता है ॥ २७ ॥ विकर्म के अर्थात् बुरे कर्मों के प्रभाव से यहाँ भूलोक में वंश का उच्छेद अर्थात् नाश हो जाया करता है और जब तक उन बुरे कर्म द्वारा समुत्पन्न पाप का क्षय नहीं होता है वे सभी लोग नरकों में निवास किया करते हैं और नाना प्रकार के असह्य उत्पीडन भोगा करते हैं ॥२८॥

कस्मिश्चित्सुखरूपेण महिषासनसंस्थितः ।
नरकान्वीक्ष्य धर्मात्मा नानाक्रन्दसमाकुलान् ॥२६
चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां स ईश्वरः ।
तेषां मध्ये श्रेष्ठतमन्घोरेयांस्त्वेकविंशतिम् ॥३०
तामिस्रं लोहशङ्कुञ्च महारौरवशाल्मलीम् ।
रौरवं कुण्डलम्पूतिमृत्तिकं कालसूत्रकम् ॥३१
सन्ततं लोहतोदञ्च सविषं सम्प्रतापनम् ।
महानरकं कोकोलं सञ्जीवञ्च महापथम् ॥३२
अवीचिमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकं तथैव च ।
असिपत्रवनञ्चैव पतनञ्चैकविंशकम् ॥३३
येषां तु नरके घोरे गतान्यब्दशतानि वै ।
सन्ततिर्नैव विद्येत दूतस्त्वं ते प्रयान्ति हि ॥३४
यमेन प्रेषितास्ते वै मानुषस्य मृतस्य च ।
दिने दिने प्रगृह्णन्ति दीपमन्न घटादिकम् ॥३५

किसी स्थान पर बड़े ही सुख पूर्वक महिष के आसन पर विराजमान धर्मात्मा धर्मराज अनेक प्रकार के रुदन से समाकुल नरकों को देखकर वहाँ संस्थित रहते हैं। वह चौरासी लाख नरकों के अधिपति हैं। उन ढेर सारे समस्त नरकों में सबसे ऊँची श्रेणी के प्रबलतम नरक इक्कीस होते हैं—उनके नाम ये होते हैं—तामिस्र लोहशकु महारौरव शाल्मली-रौरव कुण्डलम् पूति मृत्तिक-काल सूत्रक—सन्तत—लोह तोद—सविप—सम्प्रतापन—महानरक—कोल—सञ्जीव—महा पथ—अवीचि—अन्ध तामिस्र—कुम्भीपाक—असि पत्र वन—पतन ये कुल इक्कीस हैं ॥ २६ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जिनको उस

घोर नरक में सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। उनके सन्तति नहीं होती है वे क्रूर कर्म के करने वाले हो जाया करते हैं ॥ ३४ ॥ वे सब यमराज के द्वारा प्रेषित होकर मृत मनुष्य के प्रतिदिन दीपक–अन्न और घट आदि को ग्रहण किया करते हैं ॥३५॥

प्रेतस्यैव प्रयच्छन्ति ह्यन्नकामस्य सत्तृषः ।
मासान्ते भोजनं पिण्डमेकमिच्छन्ति तत्र वै ॥३६
तृप्तिं प्रयान्ति ते सर्वे प्रत्यहश्चैव वत्सरम् ।
एवमादिकृतैः पुण्यैः क्रमतो वत्सरं व्रजेत् ॥३७
ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये ।
बहुभीतिपुरे रम्ये हस्तमात्रं समुत्सृजेत् ॥३८
दशभिर्दिवसैर्जातं तं देहं दशपिण्डजम् ।
जामदग्नेर्यथा रामं दृष्ट्वा तेजः प्रसर्पति ॥३९
कर्मजं देहमाश्रित्य पूर्वदेहं समुत्सृजेत् ।
अंगुष्ठमात्रः पुरुषः शमीपत्रं समारुहेत् ॥४०
व्रजस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलौकेयं देही कर्मानुगोऽवशः ॥४१
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि गृह्णाति नवानि देहि ॥४२

तृष्णा से युक्त और अन्न की कामना करने वाले प्रेत को ही दिया करते हैं। मास के अन्त में वहाँ पर एक पिंड भोजन की इच्छा करते हैं ॥३६॥ वे सब प्रतिदिन साल भर तक तृप्ति को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के किये हुए पुण्यों के द्वारा क्रम से एक वत्सर व्यतीत हो जाया करता है ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर एक वर्ष के अन्त में यमालय के निकट आ जाने पर उस बहुत से भयों वाले रम्य पुर में हस्त मात्र का समुत्सर्जन करे ॥ ३८ ॥ दश दिनों में दश पिंडों से समुत्पन्न उस देह में श्रीराम को देख कर जमदाग्नि के पुत्र परशुराम की भाँति तेज प्रसर्पित होता है ॥ ३९ ॥ कर्मों से जन्य देह को प्राप्त कर फिर

यह पूर्व देह का त्याग कर देता है। यह एक अँगूठे के बराबर पुरुष शमी के पत्र पर समारूढ़ हो जाता है ॥ ४० ॥ एक पैर से चलता है—स्थित होता है और एक से ही गमन किया करता है। जैसे तृणजनों का होना है वैसे ही यह देही कर्मों का अनुगमन करने वाला अवश हुआ करता है ॥ ४१ ॥ जैसे कोई मनुष्य अपने पुराने जीर्ण–शीर्ण वस्त्रों का त्याग करके पुनः नूतन वस्त्रों को अपने शरीर पर धारण कर लिया करता है उसी भाँति यह देही जीवात्मा अपने पूर्व शरीरों का त्याग कर अन्य नवीन शरीरों को अपना आवास स्थल बनाता हुआ उन्हें धारण कर लेता है। मनुष्य के शरीर की मृत्यु भी यही वस्तु एवं स्थिति होती है। मनुष्य का देह अनित्य है और इसका त्याग अवश्य ही होता है। आत्मा नित्य एवं अविनाशी है वह इसी तरह अपना चोला बदला करता है। ४२॥

६-यमपुर वर्णन

वायुभूत क्षुधाविष्ट कर्मज देहमाश्रयेत् ।
त देह स समासाद्य यमेन सोऽपि गच्छति ॥१
चित्रगुप्तपुर तत्र योजनाना तु विंशति ।
कायस्थास्तत्र पश्यन्ति पापपुण्ये च सर्वश ॥२
महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत् ।
योजनानाश्चतुर्विंशत्पुर वैवस्वत शुभम् ॥३
लोह लवणकार्पास तिलपात्रञ्च ये कृतम् ।
तेन दत्तेन तृप्यन्ति यमस्य पुरवासिन. ॥४
तत्र गत्वा तु ते सर्वे प्रतिहार वदन्ति हि ।
धर्मध्वजप्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा ॥५
सप्तधान्यस्य दानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत् ।
तत्र गत्वा प्रतीहारो ब्रूते तस्य शुभाशुभम् ॥६
धर्मराजस्य यद्रूप सन्त सुकृतिनो जना ।
पश्यन्ति च दुरात्मनो यमरूप दुरासदम् ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—यह देही जीवात्मा वायु के समान है और क्षुधा से आविष्ट रहता हुआ कर्मज इस देह का आश्रय लिया करता है। वह उस देह को प्राप्त कर स्थित रहता है और यम के द्वारा वह भी गमन करता है ।।१।। वहाँ पर बीस योजन के प्रमाण वाला चित्रगुप्त पुर है। वहाँ कायस्थ जाति के लोग सम्पूर्ण पाप और पुण्य का लेखा-जोखा किया करते हैं ।।२।। महादानों के दिये जाने पर वहाँ पर गया हुआ प्राणी सुखी होता है। चौबीस योजनों के विस्तार वाला वैवस्वत शुभ पुर होता है ।।३।। जिन्होंने लोह, लवण, कार्पास और तिलपात्र का दान किया है। इसके देने से यमराज के पुर में निवास करने वाले तृप्त हुआ करते हैं ।।४।। वहाँ पर वे सब जाकर पहिले प्रतिहार को बोलते हैं। वहाँ पर धर्मध्वज प्रतिहार सर्वदा स्थित रहा करता है ।५। सात धान्यों के दान से धर्मध्वज प्रतिहार प्रसन्न हुआ करता है। वहाँ जाकर वह प्रतिहार उसके सब अच्छे-बुरे कर्मों को बतलाता है ।।६।। धर्मराज का जो स्वरूप है उसे सन्त और सुकृत करने वाले लोग अच्छा देखा करते हैं और दुरात्मा लोग उसी धर्मराज के रूप को बहुत ही दुरासद अर्थात् भयावह देखा करते हैं ।।७।।

तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हाहेति वदते जनः ।
कृतं दानं तु यैर्मर्त्यैर्न भयं विद्यते क्वचित् ।।८
प्राप्तं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति सूर्य्यजः ।
एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं हि गच्छति ।।९
दानेन सुलभो धर्मो यममार्गे सुखावहः ।
एष मार्गो विशालोऽत्र न केनाप्यनुगम्यते ।।१०
दानपुण्यं विना सम्यङ् न गच्छेद्धर्ममन्दिरम् ।
अस्मिन्मार्गे तु रौद्रे च भीषणा यमकिङ्कराः ।।११
पाशदण्डधरा घोराः सहस्राणि च षोडश ।
एकैकस्य पुरस्याग्रे सहस्रं कश्च तिष्ठति ।।१२
पापिनं प्राप्य पाच्यन्ते उदके यातनाकराः ।
गृह्णन्ति मासमासान्ते पादशेषं तु यद्भवेद् ।।१३

मौर्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप ।
महाकष्टेन ते यान्ति यस्माद्देयानि शक्तित ॥१४

यमराज के उस परम भयानक स्वरूप को ही देखकर प्राणी भय से डरकर हाहाकार करने लगता है। जिन मनुष्यो ने दान किया है उन्हे कहीं भी कुछ भय नहीं होता है ॥८॥ कोई सुकृती जन्तु जिस समय यमराज के सामने उपस्थित होता है तो उसे आया हुआ देखकर यमराज अपने स्थान से चलित हो जाते हैं कि यह मेरे मण्डल का भेदन करके ब्रह्मलोक को गमन करता है। ॥६॥ दान से धर्म सुलभ होता है जो कि यमपुरी के मार्ग मे सुख देने वाला हुआ करता है। यह इतना विशाल अर्थात् लम्बा मार्ग है जहाँ अन्य कोई भी अनुगमन नहीं किया करता है ॥१०॥ दान-पुण्य के बिना धर्मराज के मन्दिर मे भली भाँति नहीं जाया करता है। यह मार्ग बहुत ही रौद्र होता है और इसमे महाभीषण यमराज के किङ्कर रहा करते हैं ॥११॥ ये सब पाश और दड के धारण करने वाले हैं और सोलह सहस्र होते हैं। एक-एक पुर के आगे एक-एक सहस्र स्थित रहते हैं ॥१२॥ पापी को प्राप्त करके यातना के करने वाले जल मे पाचन किये जाते हैं। प्रत्येक मास के अन्त में जो पाद दोष होता है उसको ग्रहण करते हैं ॥१३॥ हे काश्यप ! जिन्होने और्ध्व दैहिक दान नहीं दिये हैं वे महान् कष्ट से जाया करते हैं। इसलिये और्ध्व दैहिक दान अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य ही देने चाहिये ॥१४॥

अदत्वा पशुवद्याति गृहीतो वधवन्धनै ।
एव कृते च सपश्येत न नर कृतकर्मण ॥१५
दैविकी पैतृकी योनि मानुषी वाथ नारकीम् ।
धर्मराजस्य वचनान्मुक्तिर्भवति वा तत ॥१६
मानुष्यश्च तत प्राप्य सुपुत्रे पुत्रता व्रजेत् ।
यथा यथा इत्त कर्म ता ता योनि व्रजेन्नर ॥१७
तत्तथैव हि भुञ्जानो विचरेत्सर्वलोकत ।
अशाश्वत परिज्ञाय सर्व लोकान्तर सुखम् ॥१८
यदा भवति मानुष्य तदा धर्म समाचरेत् ।
कृमयो भस्म विष्ठा वा देहाना प्रकृति सदा ॥१६

अन्धकूपे महारौद्रे दीपहस्तः पतत्यपि ।
यदा पुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते ।।२०
यस्तं प्राप्य चरेद्धर्मं स गच्छेत्परमां गतिम् ।
अपि जानन्वृथा धर्मं दुःखमायाति याति च ।।२१
जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम् ।
यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ।।२२

और्ध्व दैहिक दानों को न देने वाला एक पशु की भाँति ग्रहण किया हुआ वध और बन्धनों से पूर्ण कष्ट भोगता हुआ वहाँ जाया करता है। ऐसा होने पर वह मनुष्य जिसके कर्म किये गये हैं वह सब कुछ भी नहीं देखता है। ।।१५।। धर्मराज के वचन से दैविकी, पैतृकी, मानुषी अथवा नारकी योनि प्राप्त होती है अथवा इन सबसे छुटकारा पाकर मुक्ति हो जाती है ।।१६।। मानुष्य अर्थात् मनुष्य योनि में जन्म पाकर सुपुत्र में पुत्रता को प्राप्त होवे। यह मनुष्य जैसा-जैसा भी कर्म करता है उस-उस योनि को प्राप्त किया करता है। तात्पर्य यह है कि सर्वदा कर्मों के अनुसार ही जीवन की प्राप्ति होती है ।।१७।। और उसी प्रकार से भोगों को भोगता हुआ सभी लोकों में वह जीवात्मा विचरण किया करता है। लोकान्तर का समस्त सुख का परिज्ञान करके जो कि शाश्वत नहीं होता है फिर जब यह मनुष्य जीवन प्राप्त करता है तो उस समय में इसे धर्म का आचरण करना चाहिए। इस मानव शरीर की सदा तीन ही गति होती हैं, वे तीन कृमि, भस्म अथवा विष्ठा ये हैं ।।१८।१९।। महारौद्र अन्ध कूप में दीपक हाथ में लेने वाला भी पतित हो जाता है। जब महान् पुण्य का प्रभाव होता है तभी यह मनुष्य देह मिला करता है ।।२०।। जो इसे प्राप्त करके धर्म का आचरण करता है वह परम गति को प्राप्त कर लेता है। यह सब जानता हुआ भी धर्म कृत्य को व्यर्थ समझता है उसको दुःख आता रहता है और चला जाया करता है। दुःख से नितान्त निवृत्ति कभी नहीं होती है ।।२१।। यह मानुषत्व सैकड़ों जातियों के बाद बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है अतएव

इस मनुष्य योनि को ही परम दुर्लभ बतलाया जाता है। इस मनुष्य जन्म को भी पाकर हे खग ! द्विजत्व की प्राप्ति तो और भी अधिक दुर्लभ होती है। जो मनुष्य और उसमें भी द्विज जीवन पाकर उसका यथार्थ रूप से पालन नहीं करता है और केवल अपनी इन्द्रियों के सुख में निमग्न रहता है, उसके हाथ में रखा हुआ अमृत उसके प्रमाद के कारण ही क्षरित हो जाया करता है अर्थात् उत्तम गति के प्राप्त करने का अमृत के समान सुयोग उसके हाथ से लापरवाही के कारण यों ही नष्ट हो जाया करता है। तात्पर्य यह है कि यह अति दुर्लभ मनुष्य जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है ॥२२॥

१०-प्रेत पीड़ा वर्णन

ये केचित्प्रेतरूपेण तत्र वास लभन्ति ते।
प्रेतलोकाद्विनिर्मुक्ता कथ भुञ्जन्ति किल्विषम् ॥१
चतुरशीतिलक्षैश्च नरके पर्युपासिता।
यमेन रक्षिताश्चैव दूतैश्चैव सहस्रधा ॥२
विचरन्ति कथ लोके नरकाच्च विनि सृता।
रक्षिता रक्षपालैश्च विचरन्ति दिवानिशम्।
पक्षीन्द्रेण त्विद पृष्टो लक्ष्मीनाथोऽब्रवीदिदम् ॥३
पक्षिराज शृणुष्व त्व यथा प्रेताश्चरन्ति वै।
परस्वहरणार्था ये पत्न्यन्वेषणतत्परा ॥४
तथैव सर्वपापिष्ठा ग्रात्मजान्वेषणे रता।
विचरन्त्यशरीरास्ते क्षुत्पिपासार्दिता भृशम् ॥५
बन्दीगृहविनिर्मुक्ता यथा नश्यन्ति जन्तव।
तथा नश्यन्ति ते प्रेता वध कृत्वा सहोदरे ॥६
पितृद्वाराणि रुन्धन्ति तन्मार्गच्छेदकास्तथा।
पितृभागाश्च गृह्णन्ति पथिकास्तस्करा इव ॥७

गरुड ने कहा—जो कोई वहाँ पर प्रेत की अवस्था में निवास किया करते हैं वे प्रेत लोक से कैसे विनिर्मुक्त होते हैं और अपने किये हुए

पापों को किस प्रकार से भोगा करते हैं ? ॥१॥ चौरासी लाख नरकों में रहते हुए और यमराज के द्वारा रक्षित होते हुए तथा सहस्रों यम के दूतों के निरीक्षण में रहकर वे नरक से निकल कर कैसे लोक में विचरण किया करते हैं ? क्योंकि वे तो रात दिन रक्षा करने वालों के द्वारा रक्षित रहने वाले होते हैं। इस प्रकार से पक्षियों के स्वामी गरुड़ के द्वारा पूछे गये, भगवान् लक्ष्मीनाथ यह बोले—श्रीकृष्ण ने कहा—हे पक्षिराज ! जिस तरह से वहाँ प्रेतगण विचरण किया करते हैं उसका तुम अब श्रवण करो। जो पराये धन के हरण करने वाले हैं और पत्नी के अन्वेषण में तत्पर रहने वाले हैं तथा आत्मजान्वेषण में रति रखने वाले सब महा पापिष्ठ वे बिना ही शरीर वाले भूख-प्यास से पीड़ित होकर बहुत ही दुःखित होकर विचरण किया करते हैं ॥२।३।४।५॥ बन्दीगृह से विनिर्मुक्त जन्तु जिस तरह नष्ट हो जाया करते हैं उसी भाँति वे देवगण भी सहोदर का वध करके नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥६॥ पितृगण के द्वारों का रोध कर दिया करते हैं तथा उनके मार्ग के छेदक हो जाते हैं। वे पितृगण के भागों को मार्ग में पथिकों को तस्करों की भाँति ग्रहण कर लेते हैं ॥७॥

स्ववेश्म पुनरागत्य मूत्रोत्सर्गं विशन्ति ते।
तत्र स्थिता निरीक्षन्ते रोगशोकादिना जनम् ॥८
ज्वररूपेण पीडयन्ते ह्येकान्तरामिषेण तु।
चिन्तयन्ति सदा तेषामुच्छिष्टादिस्थलस्थिताः ॥९
आत्मजानां छलं लोके भूतजातैश्च रक्षिताः।
पिबन्ति तत्र पानीयं भोजनोच्छिष्टयोजितम्।
सदा पापरताः पापा एवं पीडां प्रकुर्वते ॥१०
कथं कुर्वन्ति ते प्रेताः केन रूपेण कस्य किम्।
ज्ञायन्ते केन विधिना जल्पन्ति न वदन्ति वा ॥११
एवं छिन्धि मनोमोहं मम चेदिच्छसि प्रियम्।
कलिकाले हृषीकेश प्रेतत्वं जायते बहु ॥१२
स्वकुलं पीड़येत्प्रेतः परं छिद्रेण पीड़येत्।
जीवंश्च कुरुते स्नेहं मृतो दुष्टत्वमाप्नुयात् ॥१३

रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजक ।
सत्यवाग्प्रियवादी च न स प्रेतैश्च पीडयते ॥१४

अपने घर मे फिर आकर वे मूत्रोत्सर्ग में प्रवेश किया करते हैं । वहाँ पर संस्थित होकर रोग और शोक आदि के द्वारा जनों को देखा करते हैं ॥८॥ ज्वर के रूप में एकान्तरा के बहाने से पीडित किये जाते हैं । उच्छिष्ट आदि के स्थलों में स्थित होते हुए उनका सदा चिन्तन किया करते हैं ॥९॥ आत्मजों के छल से लोक में भूत जातो के द्वारा रक्षित हुए भोजन के उच्छिष्ट से योजित पानी को वहाँ पर पीते हैं । सदा पाप कर्मों में रत रहने वाले पापी इस प्रकार से पीडा प्राप्त किया करते हैं ।१०॥ गरुड ने कहा—वे प्रेत पाप किस रूप से किसका क्या कैसे किया करते हैं ? वे किस विधि से जाने जाते हैं और कैसे बोलते या कहा करते हैं ? हे प्रभो ! यदि मेरे प्रिय करने की कृपा करते हैं तो यह जो मेरे मन में बडा भारी मोह है उसका छेदन करने का अनुग्रह करें । हे हृषीकेश! इस कलिकाल में तो बहुत से प्रेत होते हैं । श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—प्रेत अपने कुल को पीडा दिया करता है । दूसरे को कोई छिद्र देखकर पीडा दिया करता है । यह जीवित रहता हुआ तो स्नेह करता है किन्तु मरने के बाद दुष्टता को प्राप्त हो जाता है ॥११॥१२॥१३॥ जो रुद्र के मन्त्र का जाप करने वाला होता है, धर्म में रति रखने वाला है, देवगण तथा अतिथियों के सत्कार एवं यजन करने वाला है और सत्य व्रत को धारण करने वाला तथा प्रिय बोलने वाला है वह प्रेतों के द्वारा कभी भी पीडित नहीं किया जाता है अर्थात् उक्त प्रकार के व्यक्ति पर प्रेत की पीडा कभी नहीं हो सकती है ॥१४॥

गायत्रीजाप्यनिरतो वैश्वदेवरतो गृही ।
श्राद्धकृत्तीर्थसेवी च न स प्रेतैश्च पीडयते ॥१५
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको देवनिन्दक ।
असत्यवादनिरतो नर प्रेतैं प्रपीडयते ॥१६
कलौ प्रेतत्वमाप्नोति तार्क्ष्याशुद्धक्रियापर ।
कृतादौ द्वापर यावन्न प्रेतो नैव पीडनम् ॥१७

बहूनामेकजातीनामेकः सौख्यं समश्नुते ।
एको दुष्कृतकर्मा च ह्येकः सन्ततिवर्जितः ॥१८
एकः संपीडयते प्रेतैरेकः पुत्रसमन्वितः ।
एकस्य पुत्रनाशः स्यात्पुत्रो न लभते सदा ॥१९
विरोधो बन्धुभिः सार्द्धं प्रेतदोषोऽस्ति तत्र वै ।
सन्ततिर्नैव दृश्येत समुत्पन्नो विनश्यति ॥
पशुद्रव्यविनाशश्च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२०
प्रकृतिश्च विवर्त्तेत विद्वेषः सह बन्धुभिः ।
अकस्माद्व्यसनप्राप्तिः स पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२१

जो गायत्री मन्त्र के जप में निरत रहा करता है और जो गृहस्थी बलि वैश्वदेव करने वाला है, श्राद्धों के करने वाला, तीर्थ का सेवी होता है वह भी कभी प्रेतों के द्वारा नहीं सताया जा सकता है ॥१५॥ जो सब प्रकार की क्रियाओं से परिभ्रष्ट होता है अर्थात् जिसमें कोई भी कर्म की क्रिया नहीं होती है—जो ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता है, जो देवगण की निन्दा करने वाला होता है, जो सदा मिथ्या भाषण करने में ही डूबा रहा करता है अर्थात् हर समय ही अनर्गल झूँठ बोलता है ऐसा मनुष्य प्रेतों के द्वारा सताया जाया करता है ॥१६॥ हे ताक्ष्र्य ! इस कलियुग में जो अशुद्ध क्रियाओं में अहर्निश तत्पर रहा करता है वही प्रेत योनि को प्राप्त होता है। सत्ययुग और द्वापर पर्यन्त युग में कोई भी प्रेतत्व को प्राप्त नहीं होता था और न किसी को प्रपीड़ित हो किया जाता था ॥१७॥ एक जाति वाले बहुतसों का एक ही सुख प्राप्त किया करता है। कोई एक दुष्कृत कर्मों का करने वाला होता है और कोई एक ही सन्तति से रहित होता है ॥१८॥ प्रेतों के द्वारा एक संपीड़ित किया जाता है। एक पुत्र से समन्वित होता है। एक के पुत्र का नाश हो जाता है और वह सदा पुत्र की प्राप्ति नहीं किया करता है ॥१९॥ जहाँ बन्धुओं के साथ आपस में विरोध होता है वहाँ पर ही प्रेत का दोष हुआ करता है। वहाँ सन्तति भी दिखाई नहीं देती है और हो भी जाती है तो विनष्ट हो जाया करती है ॥२०॥ प्रेत से होने वाली पीड़ा में पशुओं का नाश और द्रव्य का विनाश हुआ करता

है। प्रकृति ही विवर्त्तित हो जाया करती है और स्वभाव के परिवर्त्तन होने से बन्धुओं के साथ विद्वेष हो जाया करता है। अचानक ही व्यसनों का सम गम उपस्थित हो जाया करता है—यह सभी प्रेत के द्वारा की जाने वाली पीडा हुआ करती हैं ॥२१॥

नास्तिक्य व्रतलोपश्च महालोभस्तथैव च ।
दम्भश्च कलहा नित्य सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२२
मातापित्रोश्च हन्ता च देवब्राह्मणदूषक ।
हत्यादोषमवाप्नोति सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२३
नित्यकर्मविमुक्तश्च जपहोमविवर्जित ।
परद्रव्यापहर्त्ता च सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२४
तीर्थ गत्वा परासक्त स्वकृत्यञ्च परित्यजेत् ।
धर्मकार्ये न सम्पत्ति सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२५
सुभिक्षे कृषिनाश स्याद्व्यवहारो विनश्यति ।
लोके कलहकारी च सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२६
मार्गे तु गच्छतश्चैव पीडयद्वाथ मण्डली ।
यश सपीड्यत प्रेतैरिति सत्य वचो मम ॥२७
हीनजातिषु सम्बन्धो हीनकर्म करोति च ।
अधर्मे रमते नित्य सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२८

प्रेत के द्वारा उत्पन्न जो पीडा होती है उसमे नास्तिक पने की भावना पैदा हो जाती है—जितने नियम एव व्रत होते हैं वे सब छूटकर उनका एक दम लोप हो जाता है—हृदय म एक महान् लोभ उत्पन्न हो जाया करता है—दम्भ और कलह नित्य प्रति होता है ॥ २२ ॥ प्रेत से समुत्पन्न पीडा यह किया करती है कि वह व्यक्ति अपने ही माता पिता का हनन एव ताडन करने लगता है—देवता तथा ब्राह्मणो को दूषित किया करता है—पराये धन का अपहरण करने वाला हो जाता है।२३। प्रेत स उत्पन्न जब पीडा किसी को होती है तो वह नित्य कम को छोड देता है—मन्त्रो का जाप होम सब छोड देता है—हत्या के दोष का भागी हो जाता है ॥ २४ ॥ तीर्थों म जाकर भी परम असक्त

हो जाता है और अपने कृत्य को त्याग देता है—धर्म के कार्य में सम्पत्ति का विनियोग नहीं करता है—ये सब बातें तभी होती हैं जब कि किसी प्रेत के द्वारा पीड़ा होती है ॥ २५ ॥ प्रेत का जब किसी पर प्रभाव होता है तो उसका ऐसा नाश होता है कि सुभिक्ष में भी कृषि का नाश हो जाता है और जितना भी सद्व्यवहार होता है वह सब विनष्ट हो जाया करता है। लोक में कलह करने वाला हो जाया करता है ॥ २६ ॥ मार्ग में गमन करते हुए पीड़ा उत्पन्न हो जाती है अथवा प्रेतों के द्वारा मण्डली को प्रपीड़ित किया जाता है। यह सब मेरा पूर्णतः सत्य वचन है ॥ २७ ॥ प्रेत के द्वारा जब किसी को पीड़ा होती है तो उसका हीन जाति वालों में सम्पर्क होता है और वह हीन कर्मों को किया करता है। सर्वदा अधर्म में उसकी रति होती है ॥२८॥

व्यसनैर्द्रव्यनाशः स्यादुपक्रान्तश्च नश्यति।
चौराग्निराजभिर्हानिः स पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२९
महारोगोपपत्तिश्च स्वतनोः पीड़नं तु यत्।
जाया सपीड्यते यत्र सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३०
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु धर्मकार्य्येषु चैव हि।
अभावो जायते येषां सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३१
देवतीर्थं द्विजातीनां भावशुद्धया न मन्यते।
प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा दूषयेत्प्रेतभावतः ॥३२
स्त्रीणां गर्भविनाशः स्यान्न पुष्पं दृश्यते तथा।
बलानां मरणं यत्र सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३३
पुष्पं प्रदृश्यते यत्र फलं नैव प्रदृश्यते।
विरोधो भार्य्यया सार्द्धं सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३४
भावशुद्धया न कुरुते श्राद्धं सांवत्सरादिकम्।
स्वयमेव न कुर्वीत सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३५

ऐसे बहुत से व्यसन लग जाया करते हैं कि उनमें अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का विनाश कर देता है और स्वयं उपक्रान्त होकर नष्ट हो जाया करता है। चोर–अग्नि और राजा के द्वारा हानि होती है—ये सभी उपद्रव

प्रेत के द्वारा की जाने वाली पीडा से हुआ करते हैं ।। २६ ।। किसी महान् रोग की उत्पत्ति—अपने शरीर की पीडा का होना—अपनी स्त्री का सताया जाना—ये सभी बातें प्रेत के द्वारा होने वाली पीडा से हुआ करती हैं ।।३०।। श्रुति—स्मृति और पुराणों मे तथा धर्म के कार्यों में अश्रद्धा तथा अभाव का हो ना जिनको हो जाता है वे सब प्रेतो के द्वारा उत्पन्न हुई पीडा से ही हुआ करते हैं ।। ३१ ।। देव तीर्थ और द्विजा को शुद्ध भावना से नहीं मानना और प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से प्रेत भाव के कारण इनको दूषित किया करना है ।। ३२ ।। स्त्रियों के गर्भ का विनाश हो जाता है तथा रजो दर्शन ही नहीं होता है । बालकों का मर जाना ये सब उपद्रव प्रेतों के द्वारा उत्पन्न होने वाली पीडा के कारण हुआ करते हैं ।। ३३ ।। पुष्प जहाँ दिखाई देता है वहाँ फल नहीं होता है और अपनी भार्या के साथ विरोध रहना—ये सभी प्रेत के द्वारा ही सम्भव होते हैं ।। ३४ ।। सावत्सर श्राद्ध खाना-पूरी के लिये करता तो है किन्तु प्रेत की पीडा के कारण उसके भावों में शुद्धि नहीं रहा करती है । स्वयमेव कुछ भी नहीं करता है यह प्रेत पीडा से ही होता है ।३५।

कलहो घातकाश्चैव पुत्रा शत्रुमिवात्मजा ।
न प्रीतिर्न च सौख्यश्च सा पीडा प्रेतसम्भवा ।।३६

गृहे दन्तकलिश्चैव भोजने कोपसयुत ।
परद्रोहमतिश्चैव सा पीडा प्रेतसम्भवा ।।३७

पित्रोर्वाक्य न कुरुते स्वपत्नी न च सेवते ।
परदारापकर्षी च सा पीडा प्रेतसम्भवा ।।३८

विकर्मणा भवेत्प्रेतो विधिहीनक्रियस्तथा ।
तत्काले दुष्टसंसर्गाद्वृषोत्सर्गादृते तथा ।।३९

दुष्टमृत्युवशाद्वापि ह्यदग्धवपुषस्तथा ।
प्रेतत्व जायते तार्क्ष्य पीडयन्ते येन जन्तव ।।४०

दाहक्रियादिलोपश्च खट्वादिमृतिदोषत ।
प्रेतत्व सुस्थिर तस्य वाक्चेष्टादिविवर्जितम् ।।४१

एवंज्ञात्वा खगश्रेष्ठ प्रेतमुक्ति समाचरेत् ।
यो वै न मन्यते प्रेतान्मृतः प्रेतत्वमाप्नुयात् ।।४२

जिसके यहाँ प्रेत के द्वारा पीड़ा दी जाती है वहाँ रात-दिन कलह रहता है और पुत्र एक शत्रु के ही समान-घात करने वाले हो जाया करते हैं। न वहाँ कोई आपसी प्रीति भाव होता है और न कोई सुख ही हुआ करता है ।। ३६ ।। जिसके घर मे दन्त कलह हो और भोजन के समय में कोप का आवेश होता हो—सदा दूसरों के साथ द्रोह करने की बुद्धि रहे—ये सभी दुष्परिणाम प्रेत के द्वारा दी हुई पीड़ा से हुआ करते हैं ।। ३७ ।। जिस पर प्रेत का असर होता है वह माता-पिता के वचन का पालन कभी नहीं करता है और अपनी पत्नी में रमण नहीं करता है। ऐसा पुरुष पराई स्त्रियों के अपवर्गण किया करता है ।। ३८ ।। विकर्मों के कारण ही प्रेत होता है। तथा विधि से शून्य क्रिया करने वाला होता है। दुष्टों के उस समय में संसर्ग से, वृषोत्सर्ग के न करने से प्रेतत्व की प्राप्ति होती है ।। ३९ ।। दुष्ट मृत्यु के कारण भी प्रेत योनि मिलती है तथा मृत के शरीर के दाह न होने के कारण भी प्रेतत्व की प्राप्ति होती है। हे तार्क्ष्य ! इसी कारण से जन्तुओं को सताया जाता है ।। ४० ।। दाह आदि की क्रिया का जहाँ लोप होता है तथा खाट पर ही जिसकी मृत्यु हो जाती है उसका प्रेत होना सुनिश्चित ही समझना चाहिए जो प्रेतत्व की दशा ऐसी होती है कि वाणी और चेष्टा आदि सब से शून्य हुआ करती है ।। ४१ ।। हे खगश्रेष्ठ ! इस तरह से जान कर प्रेत की मुक्ति करनी चाहिए। जो आदमी प्रेतों को नहीं मानता है वह मर कर स्वयं प्रेतत्व को प्राप्त हो जाता है ।।४२।।

प्रेतदोपः कुले यस्य सुखं तत्र न विद्यते ।
मतिः प्रीति रतिर्बु द्धिर्लक्ष्मीः पञ्चविनाशनम् ।।४३
तृतीये पञ्चमे पुंसि वंशच्छेदोऽभिजायते ।
दरिद्रो निर्धनश्चैव पापकर्मा भवे भवे ।।४४
ये केचित्प्रेतरूपा धिक्कृतमुखदृशो रौद्रदंष्ट्राः कराला
मन्यन्ते नैव गोत्रं सुतदुहितृपितृन्भ्रातृजायाश्च बन्धून् ।

हृत्वा काम्यञ्च रूप सुखगतिरहिता भाषमाणा यथेष्टं
हा कष्टं भोक्तुकामा विधिवशपतिता सस्मरन्ति स्वपापम् ।४५

जिसके कुल में प्रेत का दोष विद्यमान रहा करता है वहाँ सुख नहीं रहता है। उस कुल में बुद्धि—प्रीति—रति—मति और लक्ष्मी इन पाँचों का विनाश हुआ करता है ॥ ४३ ॥ तीसरे तथा पाँचवें पुरुष (पीढ़ी) में वंश का उच्छेद भी हो जाया करता है और ऐसा पुरुष जन्म जन्म में बहुत दरिद्र एवं धन से हीन तथा पाप कर्म करने वाला होता है ॥ ४४ ॥ जो कोई भी प्रेत के रूप वाले होते हैं उनके मुख और नेत्र विकृत हुआ करते हैं अर्थात् बहुत विकराल होते हैं। रौद्र (भीषण) दाढ़ा वाले होते हैं तथा बहुत कराल (भयानक स्वरूप से युक्त) होते हैं। वे अपने गोत्र को भी कुछ नहीं माना करते हैं और सुत—पुत्री—पिता—भातृजाया (भाभी) तथा बन्धुओं को भी नहीं माना करते हैं। ये लोग अपनी इच्छा के अनुरूप अपना स्वरूप बना लिया करते हैं। ये सुखमय गति से रहित होते हैं अर्थात् इनकी योनि में कुछ भी सुख नहीं मिलता है। ये प्रेत गण जो चाहे सो बोलते रहा करते हैं। ये "हाय हाय ! बड़ा कष्ट है—हम कुछ खाना चाहते हैं, भूखे हैं—भाग्य वश हम अब प्रेत योनि में आ गये हैं —ऐसा चिल्लाते-चीखते रहते हैं और अपने किये हुए पापों का स्मरण किया करते हैं जोकि मनुष्य के रूप में रह कर किये थे ।।४५।।

११—प्रेतों का स्वरूप और चरित्र

मुक्ति यान्ति कथं प्रेतास्तदहं प्रष्टुमुत्सुकः ।
यन्मुक्तौ च मनुष्याणां न पीडा जायते तु सा ।।१
एतैश्च लक्षणैर्देव पीडा प्रेतसमुद्भवा ।
तेषां कदाभवेन्मुक्तिः प्रेतत्वं न कथं भवेत् ।।२
प्रेतत्वे हि प्रमाणञ्च कतिवर्षाणि सङ्ख्यया ।
चिरं प्रेतत्वमाप्नोति कथं मुक्तिमवाप्नुयात् ।।३
मुक्तिं प्रयान्ति ते प्रेतास्तदहं कथयामि ते ।
यथत्कुर्वन्ति ते प्रेताः पिशाचत्वे व्यवस्थिताः ।।४

तेषां स्वरूपं वक्ष्यामि चिह्नं स्वप्नं यथातथम् ।
क्षुत्पिपासार्दितास्ते वै प्रविशेयुः स्ववेश्मनि ॥५
प्रविष्टा वायुदेहेन शयानान्स्वस्ववंशजान् ।
तत्र लिङ्गानि यच्छन्ति निर्दिशन्ति खगेश्वर ॥६
स्वपुत्रस्वकलत्राणि स्वबन्धूँस्ते प्रयान्ति वै ।
गजो हयो वृषो भूत्वा दृश्यन्ते विकृताननः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! ये प्रेत योनि में रहने वाले किस तरह मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ?—अब मैं यह आपसे पूछने के लिये उत्सुकता रखता हूँ। जिसकी मुक्ति हो जाने पर फिर मनुष्यों को उनके द्वारा की हुई यह पीड़ा नहीं होती है ॥१॥ हे देव ! इन लक्षणों से यह ज्ञात होता है कि यह प्रेत के द्वारा उत्पन्न की हुई पीड़ा है तो फिर यह बताइये कि उनकी पीड़ा नष्ट कब होती है ? और मनुष्यों को प्रेतत्व किस प्रकार से नहीं होता है ? प्रेतत्व के होने पर संख्या से कितने वर्षों का प्रमाण होता है ? चिरकाल तक यदि प्रेतत्व प्राप्त करता है तो फिर उसकी मुक्ति कैसे हुआ करती है ? ॥३॥ श्री भगवान् ने कहा—वे प्रेत जैसे प्रेतत्व से छुटकारा पाया करते हैं उसे अब हम तुमको बतलाते हैं। जो-जो भी वे प्रेत किया करते हैं उससे वे पिशाच जैसे व्यवस्थित हो जाया करते हैं ॥४॥ अब हम उनका स्वरूप–चिह्न और स्वप्न सभी ठीक-ठीक बतलाते हैं। भूख और प्यास से अत्यन्त उत्पीड़ित होकर वे अपने घर में प्रवेश किया करते हैं ॥५॥ ये अपने वायु तत्त्व से निर्मित देह से प्रविष्ट हो जाते हैं अर्थात् इनका देह एक प्रकार की वायु जैसा ही होता है जो कि किसी को दिखलाई नहीं दिया करता है। वहाँ घर में सोते हुए अपने ही वंश वालों को हे खगेश्वर ! ऐसे चिह्न दिया करते हैं कि जिनसे वे अपने आपका निर्देश कर देवे ॥६॥ वे अपने पुत्र, कलत्र और अपने बन्धुओं के पास जाते हैं तथा हाथी, अश्व, वृष होकर एक विकृत मुख वाले हो जाते हैं ॥७॥

शयनं विपरीतं वा आत्मानञ्च विपर्य्ययम् ।
उत्थितः पश्यति तु यः स प्रेतैः पीड्यते भृशम् ॥८

निगडैर्बध्यते यस्तु वध्यते बहुधा यदि ।
अन्नञ्च याच्यते स्वप्ने कुरुते पापमात्मना । ६
भुञ्जमानस्तु य स्वप्ने गृहीत्वाऽन्न पलायते ।
आत्मनस्तु परस्यापि तृषार्त्तस्तु जल पिवेत् ।।१०
वृषभारोहण स्वप्ने वृषभै सह गच्छति ।
उत्पत्य गगन याति तीर्थे याति क्षुधातुर. ।।११
स्वकलत्र स्वबन्धू श्च स्वसुत स्वपति विभुम् ।
विद्यमान मृत पश्येत्प्रेतदोषेण निश्चितम् ।।१२
यस्तपो याच्यते स्वप्ने क्षुत्तृषाभ्या परिप्लुतः ।
तीर्थे गत्वा ददेत्पिण्डान्प्रेतदार्षेन सशय ।।१३
निर्गच्छन्तो गृहाद्भार्यो स्वप्ने पुत्रास्तथा पशून् ।
पितृभ्रातृकलत्राणि प्रेतदोषे स पश्यति ।।१४

जो शयन के विपरीत अथवा अपनी आत्मा का विपर्यय देखता है और उठकर देखा करता है अर्थात् स्वय को नीचे और शय्या को अपने ऊपर में उठने के समय दिखाई देता है वह प्रेतो के द्वारा बहुत पीडित किया जाता है। ।।८।। यदि कोई बहुधा रस्सियो या जजीरो से बाँधा जाया करता है और स्वप्न में अन्न की याचना जो कोई करता है—अपने द्वारा पाप करता है—स्वप्न मे खाता हुआ अपने आपको देखता है और अन्न को ग्रहण कर भाग जाता है—अपने तथा दूसरे के जल को अत्यन्त प्यास से दु खित होकर पी लेता है—जो स्वप्न मे वृषभ पर सवारी किया करता है और बैलो के साथ गमन करता है—जो उछल कर आकाश म जाता है तथा भूख से उत्पीडित होकर तीर्थ मे जाता है—अपनी स्त्री को, अपने बन्धुओ को, अपने पति को और विभु को, विद्यमान को मृत देखता है तो समझ लेना चाहिए कि यह सब स्वप्न मे देखना प्रेत के द्वारा उत्पन्न दोष से ही निश्चित रूप से होना है ।।६।१०।११।१२।। जो स्वप्न मे भूख और प्यास से बहुत आर्त्त होकर जल की याचना किया करता है और तीर्थ में जाकर पिण्डो का दान किया करता है ऐसा स्वप्न मे देखना भी प्रेत के दोषो के कारण ही हुआ करता है—इसमे तनिक भी सशय नहीं है ।।१३।।

रात्रि में गृह से स्वप्न में जो निकलते हुए पुत्रों को तथा पशुओं को देखा करता है, अथवा अपने पिता को, भाई को और पत्नी को निकलते हुए देखता है— यह सब भी प्रेत के दोषों से ही होता है कि उसे इस तरह के स्वप्न दिखलाई दिया करते हैं—ऐसा समझ लेना चाहिए ॥१४॥

चिह्नान्येतानि पक्षीन्द्र गणकाय निवेदयेत् ।
कृत्वा स्नानं गृहे तीर्थे श्रीवृक्षे तर्पणञ्चरेत् ॥१५
कृष्णधान्यानि सम्पूज्य प्रदद्याद्वेदपारगे ।
सर्वविघ्नानि संत्यज्य मुक्त्युपायं करोति यः ॥१६
तस्य कर्मफलं साधु प्रेततृप्तिश्च शाश्वती ।
शृणु सत्यमिदं तार्क्ष्य यो ददाति स तृप्यति ॥१७
आत्मैव श्रेयसा युज्येत्प्रेतस्तृप्तिं व्रजेच्चिरम् ।
ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति स्वात्मबन्धुषु सर्वदा ॥१८
अन्ये पापा दुरात्मानः क्लेशयन्ति स्ववशजान् ।
निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुपद्रवान् ॥१९
पश्चात्ते मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते तु पुत्रतः ।
सदा बन्धुषु यच्छन्ति ऋद्धिं वृद्धिं खगाधिप ॥२०
दर्शनाद्घ्राणाद्यस्तु चेष्टनात्पीडनादगतिम् ।
न प्रापयति मूढात्मा प्रेतशापैः स लिप्यते ॥२१

हे पक्षीन्द्र ! इन समस्त चिह्नों को किसी गणक अर्थात् ज्योतिषी को बतलाना चाहिए और घर में या तीर्थ में स्नान करके श्रीवृक्ष पर तर्पण करना चाहिए ॥१५॥ किसी वेद के पारगामी अर्थात् पूर्ण विद्वान् को भली-भाँति पूजन करके कृष्णधान्य का दान करे । समस्त विघ्नों का त्याग करके जो प्रेत की मुक्ति का उपाय करता है उसे ऐसा ही करना चाहिए । उसके इस कर्म का बहुत उत्तम फल होता है और प्रेत की निरन्तर होने वाली इससे तृप्ति हो जाती है । हे गरुड़ ! तुम इसको अच्छी तरह से श्रवण कर लो—यह मेरा वचन बिल्कुल सत्य है । जो ऐसा दिया करता है तो वह इससे पूर्णतः तृप्त हो जाया करता है ॥१६-१७॥ दान और तर्पण करने वाले की आत्मा ही श्रेय से

युक्त होती है और इससे प्रेत भी चिरकाल पर्यन्त तृप्ति को प्राप्त हो जाता है। जो प्रेत तृप्त हो जाया करते हैं वे फिर सदा अपने बन्धुओं की शुभकामना किया करते हैं ॥१८॥ अन्य जो तृप्त नहीं होते हैं वे दुरात्मा प्रेत अपने ही वंश में उत्पन्न होने वालों को सदा वेदित किया करते हैं अर्थात् किसी न किसी प्रकार से बराबर सताया करते हैं। जब वे पूर्णतया तृप्त हो जाते हैं तो फिर उत्पन्न हुए सभी दोषों को निवारित कर दिया करते हैं ॥१९॥ इसके पीछे काल प्राप्त होने पर पुत्र से वे मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं। हे खगों के स्वामी गरुड ! सत्कृत हुए प्रेत सर्वदा अपने बन्धुओं को ऋद्धि सिद्धि प्रदान किया करते हैं ॥२०॥ दर्शन में—आपत्ति से—चेष्टाएँ करने से और पीड़ा करने से भी प्रेत के दोषों का जानकर जो मूढ आत्मावाला व्यक्ति उसकी सद्गति नहीं कराया करता है वह प्रेत के शाप से पूर्णतया लिप्त हो जाता है। अर्थात् प्रेत जब इस तरह से उसे अपनी दुर्गति का ज्ञान अच्छी तरह करा दिया करता है और ऐसे प्रेत-दोष समझकर भी जो मूढ उसकी तृप्ति सुगति और मुक्ति का उपाय नहीं करता है उसे प्रेत शाप ऐसा दे देते हैं कि उससे वह अच्छी तरह लिप्त होकर अतीव पीडित रहा करता है ॥२१॥

अपुत्रकोऽपशुश्चैव दरिद्रो व्याधितस्तथा।
वृत्तिहीनश्च दीनश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥२२
सत्रं कुर्वन्ति ते प्रेता पुनर्याम्य समाश्रिता.।
तस्मात्स्थानाद्भवेन्मुक्ति स्वकाले कर्मसंक्षये ॥२३
नामगोत्र न दृश्येत प्रतीतिर्नैव जायते।
केचिद्वदन्ति दैवज्ञा पीडा प्रेतसमुद्भवाम् ॥२४
न स्वप्न विहित नैव दर्शन न कदाचन।
किं कर्त्तव्य सुरश्रेष्ठ तत्र मे ब्रूहि निश्चितम् ॥२५
सत्यमेवामृत नैव वदन्ति क्षितिदेवता।
तदा सञ्चिन्त्य हृदये सत्यमेतद्द्विजेरितम् ॥२६
भावभक्ति पुरस्कृत्य पितृभक्तिपरायण।
कृत्वा विष्णुबलि तत्र पुरश्चरणपूर्वकम् ॥२७

जपैर्होमैस्तथा दानैः प्रकुर्य्याद्देहशोधनम् ।
कृतेन तेन विघ्नानि विनश्यन्ति खगेश्वर ।।२८

प्रेत से शाप पाकर वह फिर बिना पुत्र वाला—पशुओं से रहित—दरिद्र—व्याधियुक्त—वृत्ति से हीन और दीन होकर ही जन्म-जन्म में रहा करता है ।।२२।। वे प्रेत फिर याम्य स्थान में अर्थात् यम के लोक में पहुँचकर यह सभी कुछ किया करते हैं । जब उनके अपना समय समाप्त कर कर्मों का संक्षय हो जाता है तब वे उस स्थान से मुक्ति पाया करते हैं ।।२३।। गरुड़ ने कहा—नाम और गोत्र तो दिखलाई नहीं दिया करता है और पूर्ण विश्वास भी नहीं होता है किन्तु कुछ दैवज्ञ (ज्योतिषी) उसे प्रेत के कारण उत्पन्न होने वाली पीडा बतला दिया करते हैं । न तो कभी कोई स्वप्न ऐसा दिखाई देता है न कोई ऐसी चेष्टा ही प्रतीत होती है और न कभी प्रेत का दर्शन ही किसी भी रूप में होता है । हे सुरश्रेष्ठ ! ऐसी दशा में क्या करना चाहिए ? कृपा कर यह निश्चित रूप से बतलाइये ।।२४।२५।। भगवान् श्रीकृष्ण बोले—क्षिति के देवता अर्थात् ब्राह्मण लोग सदा सत्य ही बोला करते हैं वे कभी भी मिथ्या नहीं बोलते हैं । उस समय में मन में भली-भाँति विचार करके यह समझ लेना चाहिए कि यह ब्राह्मणों का कथन बिल्कुल यथार्थ ही है ।।२६।। अपनी भावना और भक्ति को पूर्ण तृप्त करके और पितृ भक्ति में अच्छी तरह से तत्पर होकर वहाँ पर पुरश्चरणपूर्वक विष्णु भगवान् की बलि करनी चाहिए ।।२७।। जप-होम और दानों के द्वारा देह का शोधन करे । हे खगेश्वर ! इसके करने से जितने भी विघ्न होते हैं वे सब विशेष रूप से नष्ट हो जाया करते हैं ।।२८।।

भूतप्रेतपिशाचैर्वा स तदान्यैर्न पीड्यते ।
पितृनुद्दिश्य यः कुर्य्यान्नारायणबलिं शुभम् । २९
विमुक्तः सर्वपीडाभ्य इति सत्यं वचो मम ।
पितृपीड़ा भवेद्यत्र कृत्यैरन्यैर्न मुच्यते ।।३०
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तिपरो भवेत् ।
नवमे दशमे वर्षे पितृनुद्देशेन यः पुमान् ।।३१

गायत्र्या ह्ययुत जप्त्वा दशांशेनैव होमयेत् ।
कृत्वा विष्णुबलिं पूर्वं वृषोत्सर्गादिकाः क्रियाः ॥३२
सर्वोपद्रवहीनस्तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात् ।
उत्तमं लोकमाप्नोति ज्ञातिप्राधान्यमेव च ॥३३
पितृमातृसमो लोके नास्त्यन्यद्दैवतं परम् ।
प्रभुः शरीरप्रभवं प्रत्यक्षदैवतं पिता ॥३४
हितानामुपदेष्टा च प्रत्यक्षो गुरुदेवता ।
अन्या या देवता लोके शरीरप्रभवा मता ।३५

उस समय में अन्य भी भूत-प्रेत अथवा पिशाचों के द्वारा वह कभी भी नहीं सताया जाया करता है जो पितृगण का उद्देश्य करके परम शुभ नारायण-बलि किया करता है उसे फिर कोई भी बाधा, पीडा नहीं, देती है । ॥ २९ ॥ वह समस्त पीडाओं से विमुक्त हो जाया करता है—यह मेरा वचन पूर्ण सत्य है । जहाँ पितृगण के द्वारा की हुई पीडा होती है वह अन्य किसी भी कृत्य से युक्त नहीं हुआ करती है ॥ ३० ॥ इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा पितृगण का परम भक्त एवं उनकी भक्ति में परायण होना चाहिए । नवम या दशम वर्ष में जो पितृगण के उद्देश्य से पुरुष दश हजार गायत्री मन्त्र का जाप करके उस जप का दशम अंश होम करे और पहिले विष्णु बलि और वृषोत्सर्ग आदि की क्रिया करे तो सम्पूर्ण उपद्रवों से हीन होकर सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति किया करता है । अन्त में परम उत्तम लोक की प्राप्ति करता है ज्ञाति में प्राधान्य भी उसे प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इस संसार में अपने माता-पिता के समान अन्य कोई भी देवता नहीं है । पिता इस शरीर के देने का कारण है अतएव वह प्रत्यक्ष देवता होता है । पिता न होता तो यह शरीर ही प्राप्त नहीं होता ॥ ३४ ॥ हितों में युक्त कर्मों के करने का उपदेश देने वाला गुरु भी प्रत्यक्ष देवता है । इनके अतिरिक्त अन्य जो लोक में देवता हैं वे सब इस शरीर से ही होने वाले होते हैं ॥३५॥

शरीरमेव जन्तूनां नरकस्वर्गमोक्षदम् ।
शरीरं सम्पदो दारा सुता लोकाः सनातनाः ॥३६

यस्य प्रसादात्प्राप्यन्ते कोऽन्यः पूज्यतमस्ततः ।
एवं सञ्चिन्त्य हृदये पितृणां यः प्रयच्छति ॥
तत्सर्वमात्मना भुङ्क्ते दान वेदविदो विदुः ॥३७.
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते तु यः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेकस्त्वहं ब्रुवे ॥३८
अपमृत्युमृतौ स्यातां पिता माता च कस्यचित् ।
धर्मं तीर्थं विवाहादि श्राद्धं सांवत्सरं त्यजेत् ॥३९
स्वप्नाध्यायमिमं यस्तु प्रेतलिङ्गेन दर्शितम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि प्रेतचिह्नं न पश्यति ॥४०

यह शरीर ही मुख्यतया जन्तुओं के नरक–स्वर्ग तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला होता है। ऐसा यह उत्तम शरीर–सम्पत्ति–दारा–सुत–सनातन लोक आदि सभी कुछ जिसके प्रसाद से प्राप्त होते है उससे अन्य कौन सर्वाधिक पूजा के योग्य हो सकता है? इस प्रकार से अपने हृदय में भली-भाँति चिन्तन करके जो पितृगण के उद्देश्य से दिया करता है उस दान को सर्वात्मा के द्वारा मुक्त किया जाता है—ऐसा वेद के विद्वान् कहते हैं और समझते हैं ॥३६॥ ॥ ३७ ॥ पुन्नाम वाले नरक से जो अपने पिता का त्राण किया करता है इसलिये उसे 'पुत्र'—इस नाम से कहा गया है। मैं स्वयं एक ही हूँ—ऐसा बोले ॥ ३८ ॥ किसी के माता–पिता अपमृत्यु से मृत हुए हों उसे धर्म–तीर्थ, विवाह आदि में तथा वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए। इस स्वप्नाध्याय को जो प्रेत लिङ्ग से दिखाया गया है जो पठन–श्रवण करता है वह प्रेत चिह्न को नहीं देखता है ॥३९॥४०॥

१२–प्रेतत्व प्राप्ति का कारण और उनका आहार

सम्भवन्ति कथं प्रेताः केन मृत्युवशाङ्गता ।
कीदृक्तेषां भवेद्रूपं भोजनं किं भवेद्विभो ॥१
सुप्रीतास्ते कथं प्रेताः क्व तिष्ठन्ति सुरेश्वर ।
प्रसन्नः कृपया देव प्रश्नमेनं वदस्व मे ॥२

ये केचित्पापकर्माण पूर्वकर्मवशानुगा ।
जायन्ते ते मृता प्रेता शृणुत्व त्व वदाम्यहम् ।।३
वापीकूपतडागानि ह्यारामश्च सुरालयम् ।
प्रपा सद्य सुवृक्षाश्च तथा भोजनशालिका: ।।४
पितृपैतामह धर्म विक्रीणाति स पापकृत् ।
मृत प्रेतत्वमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ।।५
गोचर ग्रामसीमाश्च तडागारामगह्वरम् ।
कर्पयन्ति च ये लोभात्प्रेतास्ते सम्भवन्ति हि ।।६
चाण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्य तात्तया ।
दष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरण पापकमणाम् ।।७

गरुड ने कहा—हे विभो ! कृपा कर अब यह बतलाइये कि वे किसके द्वारा मृत्यु गत हुए किस प्रकार स प्रेत हो जाया करते हैं ? उन प्रेतों का स्वरूप कैसा होता है और उनका भोजन क्या हुआ करता है ? ।। १ ।। हे सुरेश्वर ! वे प्रेतगण परम प्रसन्न किस तरह होते हैं और किस स्थान में रहा करते हैं ? हे देव ! आप प्रसन्न होते हुए मेरे इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करने की कृपा करें ।। २ ।। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—जो कोई पाप कर्मों के करने वाले होते हैं और अपने पूर्व जन्म के कर्मों के वश मे जो पडे होते हैं अर्थात् पहिले जन्मो म जो बुरे-भले कर्म किये हैं उनके वश वर्ती होत हुए वे मृत होकर प्रेत उत्पन्न हुआ करते हैं । मैं सब बतलाता हूँ तुम इसका श्रवण करो ।। ३ ।। वापी (बावडी)—कूप (कुआ)—तडाग (तालाब)—आराम (बाग)—देव स्थान—प्रपा (प्याऊ)—सुन्दर फल छाया समन्वित वृक्ष और भोजनशाला इनका एव पिता-पितामह के समय स चले आने वाले धर्म का जो स्वरूप बिगाड देते हैं अर्थात् नष्ट भ्रष्ट कर दिया करते हैं वे पाप के करने वाले होत हैं और मर कर वे प्रेतत्व की योनि प्राप्त किया करते हैं और जब तक भूत सम्प्लव (महा प्रलय) होता है तब तक प्रेत योनि म रहा करते हैं ।। ४ ।। ५ ।। गोचर भूमि—ग्राम की सीमा—तालाब—आराम और गह्वर (घना जगल)—इनका जो कर्षण लोभ स किया करते हैं वे प्रेत हो जाते हैं ।। ६ ।। पाप युक्त

कर्म करने वालों की मृत्यु चाण्डाल से—जल से—सर्प दंशन से—ब्राह्मण से—बिजली से—दाढ़ वाले जीवों से और पशुओं से हुआ करती है। उपर्युक्त जिनकी मौत होने के कारण होते हैं वे पापी होते हैं ॥७॥

उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये ।
आत्मोपघातिनो ये च विसूच्यग्निहताश्च ये ॥८
महारोगैर्मृता ये च पापरोगैश्च दस्युभिः ।
असंस्कृतप्रमृताश्च विहिताचारवर्जिताः ॥९
वृषोत्सर्गादिसंस्कारैर्लुप्तैः पिण्डैश्च मासिकैः ।
यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च ॥१०
पतनं पर्वतादिभ्यो भित्तिपातेन ये मृताः ।
रजस्वलादिदोषैस्तु न भूमौ म्रियते यदि ॥११
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्जिताः ।
सूतकादिषु सम्पर्का दुष्टशल्यमृतास्तथा ॥१२
एवमादिभिरन्यैश्च कुमृत्युवशगास्तु ये ।
ते सर्वे प्रेतयोनिस्था विचरन्ति महीस्थलीम् ॥१३
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
युधिष्ठिरस्य सवादं भीष्मेण सह सुव्रत ॥
तदहं कथयिष्यामि यच्छ्रुत्वा सौख्यमाप्नुयात् ॥१४

जो उद्बन्धन के होने के कारण मृत हो जाते हैं—जो पाप के कारण से होने वाले रोगों से मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं—जो डाकू तथा चोरों के द्वारा मार दिये जाते हैं—जो असंस्कृत ही मृत्यु गत हो जाते हैं तथा अपने शास्त्र विहित आचर से रहित होते हैं। वृषोत्सर्ग के संस्कारों के लोप होने से तथा मासिक पिंडों के लुप्त हो जाने से बुभुक्षित दशा में रहते हैं—जिसके लिये शूद्र अग्नि, तृण, काष्ठ और हवि का साहित्य लाया करता है—जो पर्वत आदि समुच्च स्थान से पतन होने से मर जाते हैं तथा भीत-मकान आदि के नीचे दबकर मौत के मुँह में चले जाया करते हैं—जो रजस्वला आदि के दोषों से भूमि में नहीं मरते हैं—जो अधर ही अन्तरिक्ष में मृत हो जाते हैं—जो

भगवान् विष्णु के स्मरण से रहित होते हुए मर जाते हैं—सूतक आदि में मरने वाले तथा दुष्ट शल्य आदि से जो मृत होते हैं—एवमादि तथा अन्य भी मृत्यु के हेतु जिनके ऐसे ही हुआ करते हैं वे सब कुमृत्यु के वशीभूत कहे गये हैं। ऐसे कुमौत से मरने वाले सभी प्रेत यानि में स्थित होकर इस भू-मण्डल में विचरण किया करते हैं। हे सुव्रत ! अब हम तुम्हारे समक्ष में एक परम प्राचीन इतिहास बतलाते हैं। यह युधिष्ठिर का भीष्म के साथ सम्वाद में आया था। उसे मैं तुमको श्रवण कराता हूँ। इसे सुन कर तुमको परम सुख प्राप्त होगा ॥८। से ॥१४॥

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वमुपजायते।
केनोपायेन मुच्यन्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१५
अहं ते कथयिष्यामि सर्वमेतदशेषतः।
यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहमेव यास्यसि सुव्रत ॥१६
येन यो जायते प्रेतो येन चैव विमुच्यते।
प्राप्नोति नरकं घोरं दुस्तरं दैवतैरपि ॥१७
सततं श्रवणाद्विप्रो पुण्यतीर्थानुकीर्त्तनात्।
प्रेतभावा विमुच्यन्ते आपत्सु प्रेतयानिषु ॥१८
श्रूयते हि पुरा वत्स ब्राह्मणः शंसितव्रतः।
नाम्ना सन्तप्तकः ख्यातस्तपोऽर्थं वनमाश्रितः ॥१९
स्वाध्याययुक्तो होमे च योगयुक्तो दयान्वितः।
स यजेत्सकलान्यज्ञान्युक्त्या कालं क्षिपेद्विजम् ॥२०
ब्रह्मचर्यं सदा युक्तो युक्तस्तपसि मार्दवे।
परलोकभये युक्तः सत्ये शौचे तु नित्यशः ॥२१

धर्मराज राजा युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा था—हे पितामह ! किस कर्म के विपाक होने से प्रेत की योनि प्राप्त हुआ करती है और वह फिर किस उपाय के करने से छूटा करती है ? इसे मुझे बतलाइये। तब राजा युधिष्ठिर के इस प्रश्न को सुनकर भीष्म पितामह बोले—भीष्म ने कहा—मैं इसे तुमको पूर्ण रूप से बतलाता हूँ। हे सुव्रत ! इसका श्रवण कर इस प्रकार

से फिर तुमको कभी मोह ही नहीं होगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ जिस कारण से जो कोई प्रेत हो जाता है और जिस कारण से इससे मुक्ति प्राप्त किया करता है और देवों के द्वारा भी दुस्तर घोर नरक को प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ निरन्तर भगवान् विष्णु के परम पुण्य तीर्थों के अनुकीर्त्तन करने से तथा श्रवण करने से प्रेत भाव से विमुक्ति हो जाती है जोकि प्रेत योनि परम आपत्ति स्वरूप हुआ करती है ॥१८॥ हे वत्स ! ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन समय में पहिले संशित व्रत वाला संतप्त नाम वाला एक ब्राह्मण प्रसिद्ध था जोकि तप करने के लिये वन में आश्रय करने वाला था ॥ १९ ॥ वह स्वाध्याय से युक्त और होम में योग से संयुत—दया से समन्वित था। वह युक्ति से अपने समय का क्षेप करता हुआ समस्त यज्ञों का यजन किया करता था ॥ २० ॥ वह सर्वदा ब्रह्मचर्य में युक्त रहा करता था और मार्दवन्च तपश्चर्या में युक्त रहता था। उसे परलोक का भय रहा करता था और नित्य ही सत्य तथा शौच में स्थित रहता था ॥२१॥

युक्तो हि गुरुवाक्ये च युक्तस्त्वतिथिपूजने ।
आत्मयोगेषु यो युक्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥२२
योगाभ्यासे सदा युक्तः संसारविजिगीषया ।
एववृत्तसमाचारो मोक्षाकाङ्क्षी जितेन्द्रियः ॥२३
बहून्यब्दानि विजने वने तस्य गतानि वै ।
तस्य बुद्धिस्ततो जाता तीर्थानुगमनं प्रति ॥२४
पुण्यैस्तीर्थजलरेव शोषयिष्ये कलेवरम् ।
स तीर्थे त्वरितं स्नात्वा तपस्वी भास्करोदये ॥२५
कृतजाप्यनमस्कारो ध्यानञ्चक्रे जगद्गुरोः ।
एकस्मिन्दिवसे विप्रो मार्गभ्रष्टो महातपाः ॥२६
ददर्श त्वरितो गच्छन्पञ्च प्रेतान्सुदारुणान् ।
अरण्ये निर्जने देशे कण्टके वृक्षवर्जिते ॥२७
पञ्चं तान्विकृताकारान्दृष्ट्वा वै घोरदर्शनान् ।
दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयस्तिष्ठन्मीलित लोचनः ॥२८

वह गुरु के वचनों में सर्वदा युक्त रहा करता था तथा अतिथियों के पूजन में निरत रहता था। वह आत्म योगों में युक्त रहा करता था और सभी द्वन्द्वों से रहित था ॥ २२ ॥ इस प्रकार की विजिगीषा अर्थात् जय प्राप्त करने की इच्छा से वह सदा योगाभ्यास में युक्त रहता था। इस प्रकार के चरित्र और समाचार वाला वह मोक्ष की इच्छा वाला और विशेष रूप से इन्द्रियों को जीतने वाला था ॥ २३ ॥ इस तरह से रहते हुए उस वियावान जङ्गल में उसको बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये थे। इसके अनन्तर उसका विचार तीर्थों में अनुगमन करने को उत्पन्न हुआ था ॥ २४ ॥ उसने सोचा कि अब मैं परम पवित्र तीर्थों के जल से ही कलेवर का शोषण करूँगा। वह तीर्थ में शीघ्र स्नान करके भगवान् भास्कर के उदय काल में वह तपस्वी जप और नमस्कार करके जगद्गुरु का ध्यान किया करता था। एक दिन उस मार्ग से घाए महा तपस्वी विप्र ने शीघ्रता से गमन करते हुए अत्यन्त दारुण पाँच प्रेतों को देखा जबकि वह उस काँटों से परिपूर्ण निर्जन वृक्षों से रहित वन में थे। ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इन पाँचों प्रेतों को जोकि बहुत ही भयानक दिखलाई देने वाले, विकृत आकार वाले थे, देखकर वह सन्त्रस्त हृदय वाला हो गया था और अपने नेत्र मूँदकर एक ही स्थान पर स्थित हो गया था ॥२८॥

अवलम्ब्य ततो धैर्यं त्रासमुत्सृज्य दूरतः ।
पप्रच्छ मधुराभाषी के यूयं विकृता भृशम् ॥२९
किन्त्वाशुभं कृतं कर्म येन प्राप्ताः स्म वैकृतम् ।
कथं वा एककर्माणः प्रस्थिता कुत्र निश्चितम् ॥३०
स्वैः स्वैः कर्मभिरुत्पन्नं प्रेतत्वं नो द्विजोत्तम ।
परद्रोहरताः सर्वे पापमृत्युवशङ्गताः ॥३१
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं प्रेतत्वं समुपागताः ।
हतवाक्या वयं सर्वे नष्टसंज्ञा विचेतसः ॥३२
न जानीमो दिशं तात विदिशश्चातिदुःखिताः ।
गच्छाम कुत्र यं मूढा पिशाचाः कर्मजा वयम् ॥३३

न माता न पितास्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः ।
प्राप्ताः स्म सहसा तद्वे दुःखोद्वेगसमाकुलाः ।।३४
दर्शनेन च ते ब्रह्मन्ह्लादिताप्यायिता वयम् ।
मुहूर्त्तं तिष्ठ वक्ष्यामि वृत्तान्तं सर्वमादितः ।।३५

इसके अनन्तर कुछ समय में धीरज का सहारा लेकर और अपने भय को दूर कर उनसे उसने मधुर भाषण करते हुए पूछा था—आप इतने विकृत स्वरूप वाले कौन हैं ?।। २९ ।। आप लोगों ने ऐसा क्या अशुभ कर्म किया था जिसके कारण से ऐसा यह विकृत स्वरूप आपको प्राप्त हुआ है ? आप लोग सभी पाँचों क्या एक ही जैसा कर्म करने वाले हैं जोकि किसी एक निश्चित स्थान पर रवाना हो रहे हैं ? आप कहाँ को प्रस्थान कर रहे हैं वह कौन-सा स्थान है ? ।। ३० ।। प्रेतों ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! हम सबको अपने-अपने कर्मों के ही कारण यह प्रेतत्व की योनि प्राप्त हुई है । हम सब पराये द्रोह में रति रखने वाले थे और पाप पूर्ण मृत्यु के वशंगत हो गये थे ।। ३१ ।। अब हम सब क्षुधा और प्यास से पीड़ित नित्य ही रहा करते हैं और इस प्रेतत्व को प्राप्त हो गये हैं । हम सब हृत वाक्य हैं और नष्ट संज्ञा वाले अर्थात् मूच्छित तथा असावधान चित्त वाले हो रहे हैं ।। ३२ ।। हे तात ! हम इस समय में इतने दुःखित हो रहे हैं कि दिशाओं और विदिशाओं को भी नहीं पहिचान रहे हैं । हम अब कहाँ जावें ?—इसे भी नहीं बता सकते हैं क्योंकि इसमें भी हम मूढ़ हो रहे हैं । हम कर्मों से उत्पन्न हो जाने वाले पिशाच हैं ।। ३३ ।। हमारा न कोई पिता है और न कोई माता है । हम अपने ही कर्मों से प्रेत योनि में आ गये हैं । और जब इस योनि में आ गये हैं तो सहसा दुःख के उद्वेग से परम व्याकुल हो रहे हैं । हे ब्रह्मन् ! आपके दर्शन से हम ह्लादित (प्रसन्न) और अत्यन्त तृप्त हुए हैं । मुहूर्त्त मात्र आप यहाँ ठहरिये तो हम सब आदि से अपना पूर्ण वृत्तान्त आपको बता देंगे ।।३४।।३५।।

मम पर्य्युषितं नाम एष सूचीमुखः स्मृतः ।
शीघ्रगो रोहकश्चैव पञ्चमो लेखकस्तथा ।।
एवं नाम्ना च सर्वे वै सम्प्राप्ताः प्रेततां वयम् ।।३६

प्रताना कर्मजातानां कथं वै नामसम्भव ।
किञ्चित्कारणमुद्दिष्ट येन ब्रूत स्वनामकान् ॥३७
मया स्वादु सदा भुक्त दत्त पर्य्युषित द्विजे ।
तन पर्य्युषित नाम जात मे ब्राह्मणात्तम ॥३८
सूचिता बहवोऽनन्त विप्रा अन्नादिकाक्षया ।
एतत्कारणमुद्दिश्य ह्यय सूचीमुख स्मृत ॥३९
शीघ्र गच्छति विप्रेण याचित क्षुधितन वै ।
एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगोऽय द्विजात्तम ॥४०
एकाकी मिष्टमश्नाति दैव पश्यञ्च नित्यश ।
ब्राह्मणानामभावेन रोहकस्तेन चोच्यत ॥४१
पुराय मौनमास्थाय याचितो विलिखन्महीम् ।
तन कर्मविपाकेन लेखरा नाम नामत ॥४२

उन पाँचो प्रेतो म स एक न कहा—मेरा नाम तो पर्युषित है और यह दूसरा जो है उसका नाम सूची मुख है—तीसरा शीघ्रग, चौथा रोहक और पाँचवाँ लेखक नाम वाला है। इस प्रकार स इन सब नामो वाले हम प्रेतत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण ने कहा—कम स उत्पन्न होने वाले प्रेतों के नाम कैसे उत्पन्न हुए हैं अर्थात् इनका नाम कैसे रक्खा गया है ? इसका कुछ कारण अवश्य ही होगा जिससे कि आप अपने नामों को बता रहे हैं। ॥ ३७ ॥ प्रेतराज बोला—मैंने हमेशा स्वादु युक्त भोजन किया था और जो बासी भोजन होता था वह ब्राह्मण को खिला दिया था। हे ब्राह्मणोत्तम ! इसीलिए मेरा नाम पर्युषित पड गया है ॥ ३८ ॥ इस प्रेत ने अन्नादि की आकाङ्क्षा से बहुत से विप्रों को सूचित किया था इसी कारण का उद्देश्य करके यह सूची मुख इस नाम से कहा गया है ॥ ३९ ॥ भूखे ब्राह्मण के द्वारा जब इससे याचना की जाती तो यह शीघ्रता से चला जाया करता था इसी कारण के उद्देश्य से हे द्विजोत्तम ! इसका नाम शीघ्रग पड गया है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणों के अभाव के कारण यह देवता और पितृगण सबको भी मिष्ट पदार्थ को अकेला ही नित्य खा जाया करता था इस कारण से इसे रोहक कहा जाता

है ॥ ४१ ॥ यह पहिले जब याचना किया करता था तो मौन होकर भूमि पर लिखने लगता था उसी कर्म के विपाक से इसको लेखक इस नाम से कहा जाता है ॥ ४२ ॥

प्रेतत्वं कर्मभावेन प्राप्य नामानि च द्विज ।
मेषाननो लेखकोऽयं रोहकः पर्वताननः ॥४३
शीघ्रगः पशुवक्त्रश्च सूचकः सूचिवक्त्रवान् ।
पर्युषितो बलग्रीवः पश्य रूपविपर्ययम् ॥४४
धृत्वा मायामयं रूपं विद्रुता नरकार्णवात् ।
सर्वे च विकृताकारा लम्बोष्ठा विकृताननाः ॥४५
बृहच्छरीरदशना वक्रास्याः स्वेन कर्मणा ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं प्रेतत्वे कारणं मया ॥४६
ज्ञानिनो हि वयं सर्वे सञ्जाता दर्शनात्तव ।
यदि ते श्रवणे श्रद्धा पृच्छास्मान्यद्यदिच्छसि ॥४७
ये जीवा भुवि जीवन्ति सर्वेऽप्याहारमूलकाः ।
युष्माकमपि चाहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥४८
यदि ते श्रवणे श्रद्धा आहारं श्रोतुमिच्छसि ।
अस्माकं तु महाभाग शृणुष्व सुसमाहितः ॥४९

हे द्विज ! कर्मो की भावना से प्रेतत्व प्राप्त किया और नाम भी प्राप्त हुए हैं। यह लेखक मेष के समान मुख वाला है और रोहक पर्वत के तुल्य मुख वाला है ॥४३॥ शीघ्रग का मुख पशु के समान है और सूचक सूची जैसा मुख वाला है। पर्युषित बलग्रीव है। इस तरह इन सबके रूप का विपर्यय है उसे तुम देख लो ॥४४॥ इस माया से परिपूर्ण रूप को धारण कर हम नरक के सागर से विद्रुत हुए हैं। हम सभी विकृत आकार वाले, लम्बे ओठों से युक्त और बिगड़े हुए मुखों वाले हैं। हम बड़े शरीर और दाँतों वाले हैं, टेढ़े मुख से युक्त अपने ही कर्मो के कारण हैं। मैंने यह सब प्रेतत्व प्राप्त करने का कारण तुमको बतला दिया है ॥४५।४६॥ तुम्हारे दर्शन से हम सब ज्ञान वाले हो गये हैं। यदि तुमको श्रवण करने की इच्छा है और श्रद्धा है तो हमसे और कुछ

पूछिए ॥४७॥ ब्राह्मण ने कहा—इस मही मण्डल में जो भी जीव हैं उन सभी का मूल आहार होता है क्योंकि आहार के बिना कोई भी जीवित नहीं रह सकता है। अब मैं आप लोगों का भी क्या आहार है ?—यह तत्त्व पूर्वक श्रवण करना चाहता हूँ ॥४८॥ प्रेतगण बोले—यदि तुम्हारी श्रवण करने की इच्छा है और हमारा आहार सुनना चाहते हो तो हे महाभाग ! हमारा आहार क्या होता है ?—इसे सावधान होकर सुनो ॥४९॥

कथय प्रेतराज त्वमाहारश्च पृथक् पृथक् ।
इत्युक्ता ब्राह्मणेनेदमूचु प्रेता पृथक् पृथक् ॥५०
शृणुष्वाहारमस्माकं सर्वसत्त्वविगर्हितम् ।
यच्छ्रुत्वा गर्हसे ब्रह्मन् भूयो भूयोऽपि कुत्सितम् ॥५१
श्लेष्ममूत्रपुरीषैश्च रेचकं समलं मह ।
उच्छिष्टैश्च व पक्वान्नं प्रेताना भाजन भवेत् ॥५२
गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रकीर्णोपस्कराणि च ।
मलिनान्यपि भूतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५३
नास्ति शौच गृहे यस्य न सत्य न च सयम ।
पतितैर्दस्युभिर्भुक्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५४
बलिमन्त्रविहीनानि होमहीनानि यानि च ।
स्वाध्यायव्रतहीनानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५५
न लज्जा न च मर्य्यादा यत्र वै कुत्सितो गृही ।
सुराश्चैव न पूज्यन्ते प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५६
यत्र लोभो ह्यतिक्रोधो निद्रा शोको भय मद ।
आलस्य कलहो माया प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५७
भर्तृहीना च या नारी परवीर्य्यं निषेवते ।
वीर्य्यमूत्रसमायुक्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५८

ब्राह्मण ने कहा—हे प्रेतराज ! आप अपना पृथक् पृथक् आहार बतलाओ। ब्राह्मण के द्वारा इस तरह से कहे गये वे प्रेत अलग-अलग बोले ॥५०॥ *प्रेत बोले—आप हमारे आहार का श्रवण करो जो सब प्रकार के सत्त्वों से*

विशेष रूप से बुरा होता है । हे ब्रह्मन् ! उसे आप सुन करके बारम्बार उसकी निन्दा करेंगे कि वह ऐसा कुत्सित होता है ।।५१।। श्लेष्मा (कफ), मूत्र, पुरीष (मल), रेचक (वमन किया हुआ पदार्थ) ये सब मल सहित तथा उच्छिष्ट (झूँठे) पक्वान्न इनसे प्रेतों का भोजन हुआ करता है ।।५२।। जिनमें शौच छोड़ा गया हो और पवित्रता से रहित हों, जिनमें मनवा आदि उपस्कर बिखरे पड़े हैं, मलिन गृह इन भूत-प्रेतों के भोजन करने के स्थान हुआ करते हैं । ये प्रेतगण हम सभी वहाँ पर भोजन किया करते हैं ।।५३।। जिस घर में अत्यन्त पवित्रता नहीं होती है, न सत्य है और न किसी प्रकार का कोई संयम ही होता है जो पतित और दस्युओं के द्वारा मुक्त होता है उसी स्थल या घर में प्रेतगण भोजन किया करते हैं ।।५४।। जो घर बली मन्त्र और होम से रहित हुआ करते हैं तथा स्वाध्याय और व्रतों से हीन हुआ करते हैं प्रेत लोग वहीं पर भोजन करते हैं ।।५५।। न किसी तरह की कोई लज्जा होती है और न कोई मर्यादा का ही पालन किया जाता है तथा जहाँ पर गृहस्थी पूर्णतया कुत्सा (बुराई) से युक्त रहा करता है एवं सुरगण का कभी भी कोई यजन-अर्चन नहीं किया जाता है वहीं पर प्रेतगण भोजन करते हैं ।।५६।। जिस जगह अत्यन्त लोभ, अतीव क्रोध, निद्रा की प्रचुरता, शोक का बाहुल्य, भय की विशेषता और मद की अधिकता तथा आलस्य, कलह और माया का आधिक्य हुआ करता है उन्हीं घरों तथा स्थानों में प्रेत भोजन किया करते हैं ।।५७।। स्वामी से रहित नारी पर पुरुष के साथ रमण कर उसी के वीर्य का सेवन किया करती है वहाँ वीर्य-मूत्र से सम युक्त उसी पदार्थ को प्रेतगण खाया करते हैं ।।५८।।

लज्जा मे जायते तात वदतो भोजनं स्वकम् ।
यत्स्त्रीरजो योनिगतं तल्लिहामो द्विजोत्तम ।।५९
निर्विण्णाः प्रेतभावेन पृच्छामि त्वां दृढव्रतम् ।
यथा च न भवेत्प्रेतस्तन्मे वद तपोधन ।
नित्यं मृत्युर्वरं जन्तोः प्रेतत्वं मा भवेत्क्वचित् ।।६०
उपवासरतो नित्यं कृच्छ्रचान्द्रायणे रतः ।
किमन्यैः सुकृतैः प्रेत न प्रेतो जायते नरः ।।६१

दृष्ट्वा चैवाश्वमेधादीन् दान दत्वा तु यो नर ।
मठारामप्रपादीना गोष्ठ्यादेश्चैव कारक ॥६२
कुमारी ब्राह्मणाश्चैव विवाहयति शक्तित ।
विद्यादोऽभयदश्चैव न प्रेता जायते नर ॥६३
पतितान्नेन भुक्तेन जठरस्थेन यो मृत ।
पापमृत्युवशाद् यो वै स प्रेतो जायते नर ॥६४
अयाज्ययाजकश्चैव याज्यानाञ्च विवर्जक ।
कुत्सितैश्च रता नित्य स प्रेतो जायते नर ॥६५
ब्रह्मस्व देवद्रव्यञ्च गुरुद्रव्य हरेत्तु य ।
कन्या ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नर ॥६६
मातर भगिनी भार्या स्नुषा दुहितर तत ।
अदृष्टदोषास्त्यजति स प्रेतो जायते नर ॥६७

हे तात ! मुझे अपना भोजन बताते हुए भी बडी भारी लज्जा होती है। हे द्विजोत्तम ! जो रज स्त्री की योनिगत होता है हम उसी को चाटा करते हैं ॥५६॥ अब हम इस प्रेतभाव से बहुत ही विरक्त हो गये हैं और दृढ व्रत वाले आपस पूछते हैं। हे तप के धन वाले महाभाग ! ऐसा उपाय बताइये जिससे मुझे यह प्रेतभाव न रहे, जन्तु की नित्य ही मृत्यु का हो जाना भी परम श्रेष्ठ है किन्तु यह प्रेतत्व कभी भी न हो—यह नित्य की मौत से भी बुरा है ॥ ॥६०॥ ब्राह्मण ने कहा—नित्य उपवासों में रति रखने वाला और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि महाव्रतों का करने वाला पुरुष हे प्रेत ! कभी भी प्रेतत्व को प्राप्त नहीं हुआ करता है फिर अन्य युक्तों की कोई आवश्यकता ही नहीं है ॥६१॥ जो पुरुष अश्वमेध आदि यज्ञों का यजन करके दान देता है तथा मठ आराम और प्रपा (प्याऊ) आदि का एवं गोष्ठी आदि का निर्माण किया करता है। जो अपनी शक्ति के अनुसार कुमारी कन्याओं का तथा ब्राह्मणों का विवाह करा देता है। जो विद्या का दान करता है और जो किसी के भय की मुक्ति कर उसे अभय का दान किया करता है वह पुरुष कभी प्रेत की योनि प्राप्त नहीं किया करता है ॥६३॥ किसी भी पतित पुरुष के अन्न को खाकर उस अन्न को अपने

उदर में रखते हुए ही मृत हो जाता है। उस पापयुक्त मृत्यु के वशीभूत होता हुआ वह नर अवश्य ही प्रेत हो जाया करता है ॥६४॥ जिसका यजन नहीं कराने के योग्य हो उसका याजन तथा जो यजन के योग्य हों उनका वर्जन करने वाला एवं नित्य ही कुत्सित कर्मों में रति रखने वाला नर प्रेत हुआ करता है ॥६५॥ जो ब्राह्मण का धन, देवता का द्रव्य और गुरु की सम्पत्ति का हरण किया करता है और शुल्क लेकर अर्थात् धन प्राप्त करके जो कन्या का विक्रय किया करता है वह मनुष्य प्रेतत्व प्राप्त करता है ॥६६॥ अपनी माता, भगिनी, भार्या, स्नुषा (पुत्र वधू) तथा पुत्री को कोई दोष बिना ही देखे देता है वह मनुष्य भी प्रेत हो जाता है ॥६७॥

न्यासापहर्त्ता मित्रध्रुक्परदाररतः सदा।
विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नरः ॥६८
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः।
कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतेषु सदा रतः।
हर्त्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः ॥६९
एवं वदति विप्रे च आकाशे दुन्दुभिस्वनः।
पपात पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता द्विजोपरि ॥७०
पश्च देवविमानानि प्रेतानामागतानि च।
स्वर्गं गता विमानैस्ते पुण्यं सम्भाष्य तं मुनिम् ॥७१
तस्य विप्रस्य सम्भाषात्पुण्यसङ्कीर्त्तनेन च।
प्रेताः पापविनिर्मुक्ताः परं पदमवाप्नुयुः ॥७२
इदमाख्यानकं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपर्णवत्।
मानुषाणां हितार्थाय पुनः पृच्छति पक्षिराट् ॥७३

न्यास (धरोहर) के अपहरण करने वाला अपने मित्रों से द्रोह करने वाला और सदा पराई स्त्रियों में रमण करने वाला, विश्वास का घात करने वाला और कूट पुरुष प्रेतत्व की प्राप्ति करता है ॥६८॥ भाई से द्रोह करने वाला, ब्राह्मण का हनन करने वाला, गौ का वध कर्त्ता, मदिरा का पान करने वाला, गुरु की शय्या पर गमन करने वाला और अपने कुल के परम्परागत मार्ग

का त्याग कर जो सर्वदा मिथ्या कर्म तथा मिथ्या भाषण में रति रखता है एवं भूमि और सुवर्ण का हरण करने वाला पुरुष है वह भी अवश्य ही प्रेत होता है ।।६६।। श्री भीष्म पितामह ने कहा—जिस समय इस तरह से उन पाँचों प्रेतों से वह ब्राह्मण कह रहा था उसी समय में आकाश में देवों की दुन्दुभि की ध्वनि हुई और देवों के द्वारा छोड़ी हुई पुष्पों की वृष्टि उस द्विज पर हुई थी ।।७०।। देवताओं के पाँच विमान उन पाँचों प्रेतों के लिये आ गये थे। उस महामुनि के साथ थोड़े समय तक यह जो परम सुन्दर सम्भाषण किया था इसी के महा- पुण्य से वे सब देखते देखते स्वर्ग को चले गये थे। सद्भाषण और सत्पुरुष के सङ्ग का कैसा अद्भुत माहात्म्य हुआ करता है ।।७१।। उस विप्र के साथ सम्भा- षण में और पुण्य कर्म के सङ्कीर्तन से वे प्रेत पापों से निर्मुक्त हो गये और परम पद को प्राप्त हो गये थे ।।७२।। इस आख्यान का श्रवण करके पक्षियों का राजा गरुड़ पीपल के पत्र की भाँति कम्पित हो गया और मनुष्यों के हित के लिये उसने फिर पूछा था। ७३।।

१३—मृत्यु के कारणों का वर्णन

नाकाले म्रियते कश्चिदिति वेदानुशासनम् ।
कस्मान्मृत्युमवाप्नोति राजा वा श्रोत्रियोऽपि वा ।
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमनृतं तत्प्रदृश्यते ।।१
वेदवाक्यं तु यद्वाक्यं शतञ्जीवति मानवः ।
तत्कालो न च दृश्येत कस्मादेव समादिश ।।२
साधु साधु महाप्राज्ञ यत्त्वं भक्तोऽसि मे दृढ ।
श्रूयतां मत वाक्यं तु नानापापविनाशनम् ।।३
विधानविहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति ।
तं प्रवक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते ।।४
मनुष्यः शतजीवी च पुरा वेदेन भाषितम् ।
विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रञ्चापि विनश्यति ।।५
वेदानभ्यसते नैव कुलाचारं न सेवते ।
आलस्यात्कर्मणां त्यागं कुरुते पापमाचरन् ।।६

यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतो यदि ।
एतैरन्यैश्च बहुशो जायते ह्यायुपः क्षयः ॥७

गरुड़ देव ने कहा—हे भगवन् ! वेदों का यह तो अनुशासन है कि कभी कोई भी अकाल में नहीं मरा करता है फिर राजा अथवा श्रोत्रिय किस प्रकार से मृत्यु को प्राप्त होता है ? क्या ब्रह्मा ने पहिले जो कुछ भी कहा है वह मिथ्या दिखलाई देता है ? ॥१॥ वेदों ने जो यह वाक्य कहा है कि मानव सौ वर्ष तक जीवित रहता है यह बात अब इस कराल कलियुग के समय में नहीं दिखलाई दिया करती है । इस प्रकार से यह विपरीतता क्यों किस कारण से हो रही है ? कृपा कर इसे समझाइये ॥२॥ श्री भगवान् ने कहा—हे महान् पण्डित ! बहुत अच्छा प्रश्न किया है, यह ठीक है । तुम मेरे बड़े ही दृढ़ भक्त हो अतएव मेरे निम्न वाक्य का श्रवण करो जो कि अनेक प्रकार के पापों के नाश करने वाला है ।।३।। विधाता के द्वारा निहित किया हुआ मृत्यु शीघ्र ही आकर चला जाता है । हे पक्षियों के स्वामिन् ! हे काश्यपेय ! हे महान् द्युति वाले ! मैं इसे अब बतलाता हूँ ॥४॥ मनुष्य वस्तुतः सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहने वाला है जो कि पहिले वेद भगवान् ने कहा है । बुरे कर्मों के प्रभाव से वही सौ वर्ष तक जीवित रहने वाला मनुष्य शीघ्र ही विनष्ट हो जाया करता है ॥५॥ यह मानव वेदों का अभ्यास नहीं किया करता है और अपने कुल में चले आने वाले आचारों का भी सेवन नहीं करता है । इसमें आलस्य इतना भर गया है कि उसके कारण से यह अपने कर्त्तव्य कर्मों का त्याग कर दिया करता है तथा पाप कर्मों का आचरण करता रहता है ॥६॥ जहाँ-तहाँ दिल में आया वहीं खा लिया करता है और खाने-पीने कुछ भी भले-बुरे का इसके दिल में विचार नहीं होता है । पराये क्षेत्र में अर्थात् दूसरे की नारी में रति करता है तो ऐसे ही कर्मों से तथा इसी भाँति के अन्य बुरे कर्मों से मनुष्य की आयु का क्षय हो जाया करता है ॥७॥

अश्रद्दधानमशुचिमजपं त्यक्तमङ्गलम् ।
तं यति सुरासक्तं ब्राह्मणं यमशासनम् । ८
अरक्षितारं राजानं नित्य धर्मविवर्जितं होते हैं । जब वह जन्तु
क्रूरं व्यसनिनं मूर्ख वेदवादबहिष्कृतम् आकर इसके ऊपर गिरते

प्रजापीडक सन्तप्त राजानं यमशासनम् ।
प्रापयन्त्यपमृत्युं वै युद्धे चैव पराङ्मुखम् ॥१०
स्वकर्माणि परित्यज्य निषिद्धं वैश्य आचरेत् ।
परकर्मरतो नित्यं यमलोकं स गच्छति ॥११
शूद्रः करोति यत्किञ्चिद्द्विजसेवाविवर्जितम् ।
करोति कर्म यच्चान्यद्यमेनालोक्यते सदा ॥१२
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
यस्मिन्दिने न सेव्यन्ते वृथा स दिवसो नृणाम् ॥१३
अनित्यमध्रुवं देहमनाधारं रसोद्भवम् ।
अन्नपिण्डमयं देहे गुणानेतान्वदाम्यहम् ॥१४

श्रद्धा न रखने वाले—अशुचि (अपवित्र) जाप न करने वाले, मङ्गलमय शुभ कर्मों को त्याग देने वाले मदिरा पान में आसक्ति रखने वाले ब्राह्मण को यमराज के शासन में पहुँचाया करते हैं ॥८॥ जो राजा प्रजाजन की रक्षा न करने वाला होता है और नित्य ही धर्म से रहित रहा करता है—क्रूर व्यसनों में लिप्त मूर्ख और वेद वाद से बहिष्कृत प्रजा को प्रपीडित करने वाला सन्ताप देने वाले राजा को यमराज के दण्ड भोगने को प्राप्त करा देते हैं। जिसकी अपमृत्यु होती है तथा जो युद्ध में पराङ्मुख होता है उस राजा को यम के शासन में जाना पड़ता है ॥९।१०॥ जो वैश्य अपने शास्त्रोक्त कर्मों का त्याग करके निषिद्ध कर्मों का आचरण करने वाला होता है तथा सदा पापयुक्त कर्मों का करने वाला होता है वह वैश्य भी यमराज के लोक में जाया करता है ॥११॥ जो शूद्र द्विजगण की सेवा को त्याग कर जो कुछ भी दिल में आया कर्म किया करता है वह यमराज के यहाँ पहुँच कर उसके शासन का भोग भोगता है ॥१२॥ स्नान दान जप, होम स्वाध्याय, देवों का अर्चन आदि जिस दिन में नहीं किये जाते हैं वह पूरा दिन मनुष्यों का व्यर्थ ही व्यतीत हुआ करता है। ये उपर्युक्त कर्म प्रत्येक दिन में अनिवार्य रूप से करने के योग्य होते

—वेदानभ्यसते नव [illegible] ‍गार तो अनित्य है, अध्रुव है अर्थात् कब तक यह आलस्यात्स्मरणा [illegible] निश्चय नहीं है। यह देह किसी भी आधार से युक्त

नहीं है। इस देह की उत्पत्ति रस से ही हुआ करती है और यह अन्न के एक पिण्ड से परिपूर्ण होता है। ऐसे इस देह में इन गुणों को मैं बताता हूँ ॥१४॥

यत्प्रातः संस्कृतं सायं नूनमन्नं विनश्यति ।
तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥१५
गतं ज्ञात्वा तु पक्षीन्द्र स्वकर्मबन्धनं वपुः ।
पापनिर्दहनं पुंभिः कार्य्यं भवति नाशनम् ॥१६
अनेकजन्मसम्भूतं पातकं त्रिविधं कृतम् ।
यदा हि मानुषावाप्तिस्तदा सर्वं पतत्यपि ॥१७
मनुष्योदरवासी च यदा भवति पापभाक् ।
अण्डजादिषु भूतेषु यत्र तत्र प्रसर्पति । १८
मानुषे जन्मनि कृते तत्र तत्र समाप्नुयात् ।
अवेक्ष्य गर्भवासांश्च कर्मजा गतयस्तथा ॥१९
आधयो व्याधयः क्लेशा जरारूपविपर्य्ययः ।
गर्भवासे तु यज्ज्ञानं जातं मासात्तु सप्तमात् ॥२०
तेन पश्यति सर्वं तु प्राकृतं यच्छुभाशुभम् ।
गर्भवासाद्विनिर्मुक्तो ह्यज्ञानतिमिरावृतः ॥२१
न पश्यति खगश्रेष्ठ बलभाव समाश्रितः ।
यौवने वनितान्धश्च यः पश्यति स मुक्तिभाक् ॥२२

जो अन्न प्रातःकाल में संस्कार करके बनाया जाता है और रक्खा रहे तो वह पाक किया हुआ अन्न सायङ्काल तक निश्चय ही नष्ट जाया करता है। उसी अन्न के रस से इस शरीर की संपुष्टि होती है। जिसके कारण की ऐसी दशा है उसके द्वारा होने वाले कार्य स्वरूप शरीर में कैसे नित्यता हो सकती है ? ॥१५॥ हे पक्षीन्द्र ! अपने कर्मों के बन्धन से युक्त इस शरीर को तो गत समझ कर मनुष्यों को अपने कृत पापों का नाश तथा दहन अवश्य ही इस शरीर द्वारा करना चाहिए ॥१६॥ यही इस शरीर का मुख्य कार्य होता है। पहिले अनेक जन्मों में समुत्पन्न पातक तीन प्रकार के होते हैं। जब वह जन्तु मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है तभी वे सब पातक आकर इसके ऊपर गिरते

हैं ॥१७॥ मनुष्य के उदर में वास करने वाला जन्तु जब पापों का भागी होता है तब वह अण्डज आदि भूतों में जहाँ-तहाँ प्रसर्पण किया करता है ॥१८॥ मानुष जन्म करने पर वहाँ-वहाँ प्राप्त किया करता है। गर्भ के वासों को तथा कर्मों से जान गतियों का दर्शन, आधि (मानसिक व्यथा), व्याधि (रोग), जरा और वृद्धावस्था में रूप का विपर्यय इन सबको भली भाँति अवेक्षण किया करता है। गर्भवास में जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह सातवें मास में ही हो जाया करता है। उस समय से फिर वह गर्भ का वासी सभी कुछ शुभ और अशुभ प्राकृत को देखा करता है। जब गर्भ के वास से निर्मुक्त होकर यहाँ जन्म कर लेता है तभी उस अज्ञान का अन्धकार से वृत कर लेता है ॥२०।२१॥ हे खग-श्रेष्ठ ! फिर तो यह बालभाव में आश्रित होकर कुछ भी नहीं देखता है—यौवन में प्यारी पत्नी के प्रणय में अन्धा हो जाता है, उसे कुछ भी अन्य उस समय नहीं सूझता है। जो कोई उस समय में उक्त बातों को देखता या समझता है वह निश्चय ही मुक्ति प्राप्त करने वाला होता है ॥२२॥

१४—अशौच और प्रेतकृत्य वर्णन

आधानान्मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा।
सधनो निर्धनश्चैव सुकुमारः कुरूपवान् ॥१
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणस्त्वितरो जनः।
तपोरता योगशीला महाज्ञानी च यो नरः ॥२
महादानरतः श्रीमान्धर्मात्माऽतुलविक्रमः।
विना मनुष्यदेहं तु सुखञ्च न तु विन्दति ॥३
प्राक्तनैः कर्मपापैस्तु सुखं प्राप्नोति मानवः।
आधानात्पञ्चवर्षाणि स्वल्पपापैर्विपद्यते ॥४
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर्विपद्यते।
योनिं पूरयते यस्मान्मृतोऽप्यायाति याति च ॥५
व्रतदानप्रभावेण चिरञ्जीवति मानवः।
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा गरुडो वाक्यमब्रवीत् ॥६

मृते बाल्ये कथं कुर्य्यात्पिण्डदानादिकाः क्रियाः ।
गर्भेषु च प्रपन्नानामाचूड़ाकरणाच्छिशोः ॥७
कृते चूड़े व्रतादर्वाक् मृतस्य को विधिः स्मृतः ।
गरुड़स्य वचः श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥८

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा— बालक हो—युवा हो या वृद्ध हो आधान से मृत्यु को प्राप्त हुआ करता है अर्थात् यह गर्भ में आता है और जन्म ग्रहण करता है तो इसकी मृत्यु भी अवश्य ही होती है। चाहे धन से पूर्ण सम्पन्न हो या धन से रहित निर्धन हो—भले ही पूर्ण सुकुमार हो अथवा कुरूप वाला हो—चाहे बिना पढ़ा लिखा अविद्वान् हो किम्बा पूर्ण विद्या से परिपूर्ण महान् विद्वान् हो—भले ही ब्राह्मण जाति में समुत्पन्न होने वाला परम श्रेष्ठ हो या कोई हीन जाति में जन्म लेने वाला अन्य हो या जो भी कोई मनुष्य तपस्या में रत रहने वाला—योगाभ्यास के स्वभाव से समन्वित— महान् ज्ञान से युक्त होता है तथा महादान करने में रति रखता है वह श्रीमान्—धर्मात्मा और अतुल विक्रम सम्पन्न होता है। बिना इस मनुष्य देह के धारण किये कभी सुख की प्राप्ति नहीं हुआ करती है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ प्राक्तन अर्थात् पुराने पहिले जन्मों में किये हुए कर्मों के विपाक से यह मनुष्य सुख प्राप्त किया करता है। आधान अर्थात् गर्भ में आने से पाँच वर्ष तक तो छोटे २ पापों से यह विपन्न होता है ॥ ४ ॥ जब यह पाँच वर्ष से अधिक आयु वाला हो जाता है तो फिर महान् पापों से विपत्तियों का भोग किया करता है, मृत होता है और फिर आ जाया करता है अर्थात् संसार से मर कर चला जाया करता है और फिर जन्म लेकर यहाँ आ जाता है इस तरह यह योनियों को पूरी करता रहता है ॥ ५ ॥ व्रतों और दानों के प्रभाव से ही यह मानव चिर काल तक जीवित रहा करता है। इस प्रकार के भगवान् श्री कृष्ण के वचनों का श्रवण कर फिर गरुड़ यह वाक्य बोले ॥ ६ ॥ गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! बाल्यावस्था में मृत्यु गत हो जाने पर उसके लिये पिण्ड दान आदि की क्रिया किस प्रकार से करनी चाहिए। गर्भों में आये हुए शिशु का जब तक चूड़ाकरण संस्कार न हो तब तक और चूड़ा के किये जाने के पश्चात् जो मृत हो जाता

है उसके लिये क्या विधि—विधान होता है ? गरुड के इस वचन का श्रवण कर भगवान् विष्णु ने कहा—॥७॥८॥

यदि गर्भो विपद्येत स्रवन्ते वापि योषित: ।
यावन्मासगतो गर्भस्तद्दिनानि च सूतकम् ॥६
तस्य किञ्चिन्न कर्त्तव्यमात्मन श्रेय इच्छता ।
ततो जाते विपन्ने तु आचूडाद्भुवि निक्षिपेत् ॥१०
दुग्धं देयं यथाशक्ति बालाना तुष्टिहेतवे ।
आचूडात्पञ्चवर्षे तु देहदाहो यथाविधि ॥११
दुग्धं तस्य प्रदातव्यं बालाना भोजनं शुभम् ।
पञ्चवर्षस्य कर्माणि स्वजातिविहितानि च ॥१२
कुर्यात्तस्मिन्मृते सर्वमुदकुम्भादिपायसम् ।
दातव्यश्च खगश्रेष्ठ ऋणसम्बन्धकस्तु स ॥१३
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
स्वल्पायुर्निर्धना भूत्वा रतिभुक्तिविवर्जित ॥१४

श्री कृष्ण ने कहा—यदि स्त्री के गर्भ का स्राव हो जावे या गर्भ का पात हो जाता है तो जितने दिन या मास का गर्भ होता है उतने ही दिनों का सूतक अर्थात् मृत का शौच उसको हुआ करता है ॥ ६ ॥ उसके लिये अपने श्रेय की इच्छा से कुछ भी नहीं करना चाहिए । गर्भ के द्वार से बाहिर जन्म ग्रहण कर लेने पर मृत्यु गत होता है तो जब तक चूडा कर्म न हो तब तक तो उसको भूमि में गाड़ देना चाहिए ॥ १० ॥ उस मृतात्मा की तुष्टि के लिये यथा शक्ति बालकों को दूध पिलाना चाहिए । चूडा कर्म के संस्कार हो जाने के पश्चात् तो पाँच वर्ष में उसका यथाविधि दाह संस्कार करना चाहिए ॥ ११ ॥ उसको भी तृप्ति के लिये दुग्ध देवे तथा छोटे २ बालकों को परम शुभ भोजन भी देवें । पाँच वर्ष के बालक के अपनी जाति में विहित सभी कर्म करने चाहिए । उसके मृत हो जाने पर सभी जल का कुम्भ आदि पायस देना चाहिए । हे खग श्रेष्ठ ! वह ऋण सम्बन्धक होता है । अर्थात् कोई ऋण देने वाला ही होता है जो उसे लेने के लिये ही इस सम्बन्ध से समुत्पन्न होकर

यहाँ से चल बसा करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ जो जन्म ग्रहण किया करता है उसकी निश्चय ही मृत्यु होती है और जो मृत्यु गत होता है वह अवश्य ही पुनः जन्म ग्रहण किया करता है—ऐसा यह इस संसार में जन्तुओं के लिये एक परम ध्रुव नियम होता है। जो स्वल्प आयु वाला ही मर जाता है वह निर्धन होकर रति भोग से रहित रहा करता है ॥१४॥

पुनर्जन्म विशेज्जन्तुस्तस्माद्देयं मृते शिशौ ।
कर्त्तव्यं पक्षिशार्दूल पुनर्देहक्षयाय वै ॥१५

एवं मे रोचतेऽदत्त्वा जायते निर्धने कुले ।
पुराणे गीयते गाथा सर्वथा प्रतिभाति मे ॥१६

मिष्टान्नं भोजनं देयं दानशक्तिः सुदुर्लभा ।
भोज्ये भोजनशक्तिस्तु रतिशक्तिर्वरस्त्रियाः ॥१७

विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ।
दानाद्भोगमवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात् ॥
सुभाषणात्परे लोके विद्वांश्च धर्मवित्तमः ॥१८

अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्रभावात्प्रकरोति पापम् ।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रो पुनरेव पापी ॥१९

वह जन्तु पुनः जन्म में प्रवेश किया करता है इसलिये शिशु के मृत हो जाने पर हे पक्षिशार्दूल ! उसके पुनर्देह के क्षय के लिये करना चाहिए और धन देना चाहिए ॥ १५ ॥ मुझे यह प्रिय लगता है कि उसके लिये भी अवश्य ही करे। जो उसको एक छोटा शिशु समझ कर कुछ भी नहीं दिया करते हैं वह निर्धन कुल में जन्म लेता है। पुराण में यह गाथा गाई जाती है और मुझे सर्वथा ठीक प्रतीत होती है ॥ १६ ॥ भोजन में मिष्टान्न देना चाहिए। दान की शक्ति बहुत ही सुदुर्लभ होती है। भोजन के योग्य पदार्थ प्राप्त हों और उन्हें भोजन करने की शक्ति भी प्राप्त हो—रति करने की शक्ति विद्यमान् हो और सुन्दरी नारी भी प्राप्त हो—वैभव प्राप्त हो और वैभव के होने पर दान देने की शक्ति भी हृदय में विद्यमान हो—ये सब बातों का होना किसी

भी साधारण एवं स्वल्प तप का फल नहीं होता है अर्थात् इन सब वस्तुओं और शक्तियों का पाना महान् तपश्चर्या का ही पुण्य फल हुआ करता है। दान से ही भोगों की प्राप्ति होती है। सुन्दर भाषण से परलोक में विद्वान् और धर्म के ज्ञाता होते हैं ॥१७॥ ॥१८॥ दान के न देने से दरिद्रता होती है तो उस अवस्था में यह जीव पाप कर्म किया करता है। पापों के प्रभाव से नरकों की प्राप्ति होती है। फिर यह दरिद्र होकर जन्म लेता है और पुनः धनाभाव वश पाप कर्म किया करता है तथा पापी बन जाता है। तात्पर्य यह है कि दान करना महान् शुभ कर्म होता है ॥१९॥

१५-प्रेतकृत्य और पुनार्निर्णय

अतः परं प्रवक्ष्यामि पुरुषस्य विनिर्णयम्।
जीवन्नापि मृता वापि पञ्चवर्षाधिको हि यः ॥१
पूर्णे तु पञ्चमे वर्षे पुमांश्चैव प्रतिष्ठितः।
सर्वेन्द्रियाणि जानाति रूपारूपविनिर्णयम् ॥२
पूर्वकर्मविपाकेन प्राणिना वधबन्धनम्।
विप्राद्यानन्त्यजान्सर्वान्मापम्पारयति ध्रुवम् ॥३
गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते।
घटाश्च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥४
एकादशाहे द्वादशाहे वृषोत्सर्गविधिं विना।
महादानविहीनन्तु कुमारे कृत्यमाचरेत् ॥५
कुमाराणाञ्च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम्।
बाले वा तरुणे वृद्धे घटो भवति देहिनाम् ॥६
भूमौ निक्षेपणं बालमावर्षद्वयमेव च।
ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो विधीयते ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—इसके आगे मैं पुरुष के विषय में विशेष रूप से निर्णय करता हूँ जो पाँच वर्ष से अधिक बड़ा होता है वह जीवित हो या मृत हो उसका वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥ पाँचवें वर्ष के पूर्ण हो जाने

पर पुरुष प्रतिष्ठित हो जाया करता है। वह सभी इन्द्रियों को जानता है और उसे रूप तथा अरूप का भी विशेष निर्णय हो जाता है ॥ २ ॥ पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों के विपाक से ही प्राणियों का यह संसार का बन्धन हुआ करता है। विप्र से आदि लेकर अन्त्यज पर्यन्त सभी माप को यह निश्चय पार कर देता हैं ॥ ३ ॥ गर्भ के नष्ट हो जाने पर तो कोई क्रिया के करने का विधान ही नहीं है। शिशु की अवस्था में मृत हो जाने पर दूध देना चाहिए। जब बालक का स्वरूप प्राप्त कर लेवे तो उसके निमित्त घट-पायस—क्षीर ये सभी देना चाहिए जिससे उसकी तुष्टि एवं तृप्ति होती है ॥ ४ ॥ एकादशाह में अर्थात् ग्यारहवें दिन में और द्वादशाह में वृषोत्सर्ग विधि के बिना महादान से विहीन कृत्य कुमार के लिये करना चाहिए ॥ ५ ॥ कुमारों और बालकों को भोजन तथा वेष्टन वस्त्र का दान करे। बाल अथवा तरुण तथा वृद्ध के देह धारियों को घर होता है॥ ६ ॥ दो वर्ष तक के बच्चे को तो भूमि में गड्ढा करके निक्षेपण कर देना चाहिए। हे खगश्रेष्ठ ! इससे बड़ी उम्र वालों के देह का दाह करने का विधान होता है ॥७॥

शिशुरादन्तजननाद्बालः स्याद्यावदाशिखम् ।
कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥८

मृतो हि पञ्चमे वर्षे अव्रतः सव्रतोऽपि वा ।
पूर्वोक्तमेव कर्त्तव्यमीहृते दशपिण्डजम् ॥९

स्वल्पकर्मप्रसङ्गाच्च स्वल्पाद्विषयबन्धनात् ।
स्वल्पे वपुषि वासाच्च क्रियां स्वल्पामपीच्छति ॥१०

यावच्च पञ्चवर्षे तु बालकस्य भवेन्मृतिः ।
यद्यद्यस्योपजीव्यं स्यात्तत्तद्देयमिहेच्छति ॥११

ब्रह्मवीर्य्योद्भवाः पुत्रा देवर्षीणाञ्च वल्लभाः ।
यमेन यमदूतैश्च मन्यन्ते निश्चितं खग ॥१२

बालो वृद्धो युवा वापि वयो भवति देहिनाम् ।
सुखं दुःखं समाप्नोति देही सर्वगतस्त्विह ॥१३

परित्यज्य तदात्मानं जीर्णान्त्वचमिवोरगः ।
अगुष्ठमात्रपुरुषो वायुभूत क्षुधार्दितः ॥१४
तस्माद्यानि दानानि मृते तस्मिन्सुनिश्चितम् ।
जन्मत पञ्च वर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसस्कृतम् ॥१५

जब तक दाँत नही निकलते हैं तब तक वह शिशु कहा जाता है। जब तक चूडा कर्म नहीं होता है वह बाल इस नाम से पुकारा जाया करता है। मौञ्जी बन्धन होने से समस्त शास्त्रो मे यह 'कुमार'—इस नाम से सम्बोधित किया जाया करता है ॥ ८ ॥ पाँचवें वष में मृत चाहे वह अव्रत हो या सव्रत हो पूर्व मे कहा हुआ ही कर्त्तव्य कर्म दश पिण्डज करना चाहिए ॥ ९ ॥ स्वल्प कर्म के प्रसङ्ग से और स्वल्प विषयो के बन्धन से स्वल्प उम्र मे या शरीर में वास करने से वह स्वल्प ही क्रिया भी चाहा करता है। अर्थात् छोटे के लिये बडी क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती हैं ॥ १० ॥ जब तक बालक पाँच वष मे रहता है और उसकी मृत्यु हो जाती है तो जो-जो भी उसके जीवन मे उप जीव्य पदार्थ हो वही-वही दान स्वरूप मे उसकी तुष्टि एव तृप्ति के लिये अवश्य ही देने चाहिए। मृतात्मा यही इच्छा भी करता है ॥११॥ ब्राह्मण के वीर्य से समुत्पन्न पुत्र और देवर्षियो के प्रिय जो होते हैं वे यमराज तथा यम के दूतो के द्वारा सत्कृत हुआ करते हैं। हे खग ! यह बिल्कुल निश्चय है ॥ १२ ॥ देह धारियों मे बालक हो—वृद्ध हो अथवा युवा हो ये तीन ही अवस्था हुआ करती हैं। यहाँ पर सर्वगत देही अर्थात् सभी मे रहने वाला आत्मा सुख और दुःख की प्राप्ति किया करता है ॥ १३ ॥ जब इसके परलोक गमन का समय उपस्थित होता है उस समय मे यह आत्मा इस अपने शरीर को इस तरह त्याग देता है जैसे कोई सर्प अपनी कैंचुली का परित्याग कर दिया करता है जबकि उसे जीर्ण समझ लेता है। फिर अंगुष्ठ प्रमाण वाला पुरुष वायुभूत होकर क्षुधा से अत्यन्त पीडित हुआ करता है। इसीलिये उसकी तृप्ति के निमित्त उसके मृत हो जाने पर दानादि अवश्य ही देने चाहिए—यह सुनिश्चित् सिद्धा त है। जन्म से पाँच वष तक बिना सस्कार किया हुआ ही वह खाता है ॥१४॥१५॥

पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते ।
वृषोत्सर्गादिकं कर्म सपिण्डीकरणं विना ॥१६
अहन्येकादशे पुत्रः कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ।
उदकुम्भप्रदानन्तु अन्यदानानि यानि च ॥१७
भोजनानि द्विजे दद्यान्महादानानि शक्तितः ।
दीपदानानि यत्किञ्चित्पञ्चवर्षाधिके सदा ॥१८
कर्त्तव्य तु खगश्रेष्ठ क्रियादि प्रेततृप्तये ।
यदा न क्रियते सर्वं पिशाचत्वं स गच्छति ॥१६
एवं कृते तु स प्रेतस्ततो याति परां गतिम् ।
पुनश्चिरायुर्भूत्वा च कुले तस्य वसेद् ध्रुवम् ॥२०
सर्वसौख्यप्रदः पुत्रः पित्रोः प्रीतिविवर्द्धनः ।
आत्मा वै जायते पुत्र इति वेदेषु निश्चितम् ॥२१

पाँच वर्षकी अवधि वाले बालक की यदि मृत्यु हो जाती है तो सपिण्डीकरण कर्मके बिना वृषोत्सर्ग आदि कर्मकरे ।१६। ग्यारहवें दिनमें पुत्रको षोडश श्राद्धकरने चाहिए । उदकके कुम्भका प्रदान तथा अन्य जोभी दान होंवे देवे ।१७। ब्राह्मणोंको भोजन करावे और महादान जोभी हों अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें करे । दीप दान करे और सदा पाँच वर्ष से अधिक उम्र वाले के लिये जो कुछ भी हो वह सब सभी करे ॥१८॥ हे खगश्रेष्ठ ! प्रेत की पूर्णतया तृप्ति के लिये क्रिया आदि सब करनी चाहिए । जब ये क्रिया और देय दान आदि सभी नहीं किया जाता है तो वह प्रेत फिर पिशाच की योनि को प्राप्त कर लिया करता है । ॥ १६ ॥ ऐसा सब कुछ कर देने पर तो वह प्रेत फिर परम गति को प्राप्त हो जाता है और फिर चिर आयु होकर उसके कुल में निश्चय ही निवास किया करता है ॥ २० ॥ पितृगण की प्रीति का बढ़ाने वाला पुत्र सब प्रकार के सुखों वाला होता है । वेदों में यह निश्चय रूप से कहा गया है कि यही आत्मा पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ करता है ॥२१॥

आकाशमेकं हि यथा चन्द्रादित्यौ तथैव च ।
घटादिषु पृथक्सर्वं दृष्ट्वा रूपे च तत्समम् ॥२२

आत्मा तथैव सर्वेषु पुत्रेषु विचरेत्सदा ।
या यस्य प्रकृति पूर्वं शुक्रशोणितसङ्गमे ॥२३
तस्य तद्भावयोगेन पुत्रास्तत्कर्मकारिणः ।
पितृरूप समादाय कस्यचिज्जायते सुतः ॥२४
पितृत कामरूपश्च गुणज्ञो दानतत्पर ।
ईदृश कोऽपि लोकेऽस्मिन्न भूतो न भविष्यति ॥२५
अन्धादन्धो न भवति मूकान्मूको न जायते ।
बधिराद्बधिरो नैव मूर्खान्मूर्खो न जायते ॥२६
औरसक्षेत्रजाद्याश्च पुत्रा दशविधा. स्मृता ।
सगृहीतसुतो यश्च दासीपुत्रश्च तेन किम् ॥२७
का का गतिमवाप्नोति जातैर्मृत्युवशङ्गतैः ।
भवन्ति दुहितरा यस्य दौहित्रो न भवेत्सुतः ॥
श्राद्ध तस्य तु क कुर्याद्विधिना केन तद्भवेत् ॥२८

जिस तरह आकाश एक है और जैसे चन्द्र तथा आदित्य होते हैं । घटादि मे सभी पृथक् दिखलाई दिया करते हैं किन्तु रूप मे वे सभी समान ही होते है ॥ २२ ॥ उसी तरह यह आत्मा सदा समस्त पुत्रो मे विचरण किया करता है । रजो वीर्य का जब गर्भाधान के समय मे सगम होता है उस समय में जिसकी जो प्रकृति होती है उसके उसी भाव के योग से पुत्र उस कर्म के करने वाले होते हैं । किसी का पुत्र पितृरूप को लेकर समुत्पन्न होता है ॥२३॥ ॥२४॥ पिता से इच्छारूप गुणों का ज्ञाता और दान मे परायण होता है । इस प्रकार का लोक में कोई भी न हुआ और न होगा ही ॥ २५ ॥ किसी अन्धे पिता से कभी कोई अन्धा तथा मूक पिता से मूक पुत्र नही होता है । बहरे से बहरा और मूर्ख पिता से मूर्ख पुत्र भी कभी उत्पन्न नही हुआ करता है ॥२६॥ गरुड ने कहा—हे भगवन् ! औरस और क्षेत्रज आदि दश प्रकार के पुत्र कहे गये हैं । और जो सगृहीत सुत होता है तथा दासी पुत्र होता है उससे क्या होता है ? ॥ २७ ॥ इन सबके उत्पन्न होने से और मृत्युगत हो जाने से कौन-कौन सी गति को प्राप्त होता है ? जिस के लड़कियाँ ही होती हैं । उस दुहिता

का पुत्र दौहित्र (धेवता) तो पुत्र नहीं होता है। उसका श्राद्ध किसको करना चाहिए ? उस केवल पुत्रियों वाले श्राद्ध की क्या विधि होती है ? ॥२८॥

मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात् ।
अन्ये क्षेत्रादयः पुत्रा मुक्तिमात्रप्रदायकाः ॥२९
कुर्वीत पार्वणं श्राद्धमौरसो विधिवत्सुतः ।
कुर्वन्त्यन्ये तथा श्राद्धमेकोद्दिष्टं सुता नव ॥३०
पौत्रस्य दर्शनाज्जन्तुर्मुच्यते स ऋणत्रयात् ।
लोकान्ते च दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ॥३१
ब्रह्मपुत्र उन्नयति संगृहीतस्त्वधो नयेत् ।
श्राद्धं सांवत्सरं कुर्वन्जायते नरकाय वै ॥३२
सर्वदानानि देयानि ह्यन्नदानानि वै खग ।
संगृहीतसुतेनैव ह्येकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥३३

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—पुत्र के मुख का दर्शन करने ही से जो पतृक एक ऋण रहता है उससे मनुष्य छुटकारा पा जाया करता है। अन्य जो क्षेत्रादि पुत्र होते हैं वे तो केवल मुक्ति मात्र के प्रदायक हुआ करते हैं ॥ २९ ॥ जो औरस पुत्र होता है अर्थात् अपनी सवर्णा पाणि प्रगिणीता पत्नी से उत्पन्न होने वाला पुत्र है उसे पार्वणश्राद्ध विधि पूर्वक करना चाहिए। अन्य जो नौ प्रकार के पुत्र हैं उन्हें एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही करना चाहिए ॥३०॥ जब मनुष्य पौत्र का दर्शन कर लेता है तो वह फिर देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण इन तीनों तरह के ऋणों से मुक्त हो जाया करता है। पुत्र-पौत्र और प्रपौत्र के प्राप्त होने पर वह इस लोक के अन्त में दिवलोक को प्राप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ ब्रह्म पुत्र उन्नयन किया करता है और जो संगृहीत पुत्र होता है वह अधोभाग में ले जाया करता है। सांवत्सर श्राद्ध करता हुआ वह नरक में जाता है ॥ ३२ ॥ हे खग ! संगृहीत सुत के द्वारा अन्य सम्पूर्ण दान तथा अन्न दान देने चाहिए किन्तु एकोद्दिष्ट और पार्वण श्राद्ध नहीं करना चाहिए ॥३३॥

प्रत्यब्दं पितृमातृभ्यां श्राद्धं कृत्वा न लिप्यते ।
एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते यदि ॥३४

तदात्मान पितृ श्चैव स नयेद्यमशासनम् ।
सगृहीताश्च ये केचिद्दासीपुत्रादयस्तथा ।।३५
तीर्थे गत्वा तु य श्रद्धमामान्न्च ददेद्द्विजे ।
सगृहीतसुतो भूत्वा पाकञ्चैव प्रयच्छति ।।३६
वृथा श्राद्ध विजानीयाच्छूद्रान्नेन यथा द्विजः ।
तेन दत्त न गृह्णन्ति पितामहमुखाश्च ये ।।३७
ऐव ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातिसुतान्त्यजेत् ।
यस्तु प्रव्रजिताज्जातो ब्राह्मण्या शूद्रतश्च य ।।३८
द्वाविमौ विद्धि चाण्डालौ स्वगोत्राद्यस्तु जायते ।
स्वजातिविहितान्पुत्रान्समुत्पाद्य खगेश्वर ।।३९
तं सुवृत्तं सुख प्राप्तो दुर्वृत्तै र्नरक व्रजेत् ।
हीनजातिसमुत्पन्नं सुवृत्तं सुखमेधते ।।४०
कलिकनुपविमुक्त पूजित सिद्धसङ्घैरमरचमरमाला-
वीज्यमानोऽप्सरोभि ।
पितृशतमपि बन्धून् पुत्रपौत्रप्रपौत्रानपि नरकनिमग्ना-
नुद्धरेदेव एव ।।४१

प्रति वर्ष माता-पिता के लिये श्राद्ध करने वाला पुरुष कभी लिप्त नहीं होता है। यदि एकोद्दिष्ट श्राद्ध का परित्याग करके पार्वण श्राद्ध करता है तो अपने आपको और पितृगण को भी यमराज के शासन मे ले जाता है। और जो सगृहीत सुत हैं तथा वृद्ध दासी पुत्र आदि है उन्हें तीर्थ में जाकर जो श्राद्ध करे उसमे कच्चा (अपरिपक्व) अन्न द्विज को देना चाहिए। सगृहीत सुत होकर पाक का भी दान देता है ॥ ३६ ॥ श्राद्ध को वृथा ही समझना चाहिए जिस प्रकार से शूद्रान्न से द्विज होता है उसी भाँति उसके द्वारा दिये हुए को पितामह मुख जो होते हैं ग्रहण नही किया करते हैं ॥ ३७ ॥ हे खग ! इस तरह से जान कर जो हीन जाति के पुत्र होते हैं उनका त्याग कर देना चाहिए। जो प्रव्रजित से (सन्यासी से) ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ या शूद्र से समुत्पन्न हुआ है वे दोनो चाण्डाल समझने चाहिए और जो अपने गोत्र वाले से

उत्पन्न होता है वह भी चाण्डाल होता है। हे खगेश्वर ! अपनी जाति से विदित पुत्रों को समुत्पन्न करके उन सुन्दर आचरण वालों से ही मनुष्य सुख को प्राप्त किया करता है। जो दुराचारी होते हैं उनसे नरक की प्राप्ति हुआ करती है। जो हीन जाति से भी समुत्पन्न हों और चरित्र एवं आचार से अच्छे होते हैं उनसे भी सुख की वृद्धि होती है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ कलियुग के कलुष (पाप) से विमुक्त होता हुआ सिद्धों के समुदायों के द्वारा पूजित होकर तथा अप्सराओं के द्वारा देवों के चमरों से वीज्यमान होकर अर्थात् चमर डुराये जाने वाला सैकड़ों की संख्या में पितृ गण तथा बन्धु वर्ग और अपने पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्रों को भी ऐसा यह एक ही पुरुष नरकों में निमग्न रहने वालों का उद्धार कर दिया करता है ॥४१॥

१६ — सपिण्डीकरण तथा श्राद्ध

सत्यं ब्रूहि सुरश्रेष्ठ कृपां कृत्वा ममोपरि ।
मृतानाञ्चैव जन्तूनां कदा कुर्य्यात्सपिण्डनम् ॥१
सपिण्डत्वे कुतो यान्ति ह्यसपिंडे कुतो गतिः ।
केन चैव सपिण्डत्वं स्त्रीपुंसां वक्तुमर्हसि ॥२
पतिपत्नी सपिण्डत्वं प्राप्नुतः कथमुत्तमम् ।
जीवद्भर्त्तरि नारीणां सपिण्डीकरणं कृतः ॥३
भर्त्तलोके कथं याति स्वर्गलोके सुरेश्वर ।
अग्न्यारोहे कथं श्राद्धं वृषोत्सर्गन्तु तद्दिने ॥४
घटदानं कथं कार्य्यं सपिण्डीकरणे कृते ।
कथयस्व प्रसादेन हिताय जगतां प्रभो ॥५
सत्यं हि कथयिष्यामि सपिंडीकरणं यथा ।
वर्ष यावत्खगश्रेष्ठ मार्गे गच्छति मानवः ॥६
ततः पितृगणैः सार्द्धं पितृलोके स गच्छति ।
तस्मात्पुत्रैः कर्त्तव्यं सपिंडीकरणं पितुः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! आप मेरे ऊपर कृपा करके यह सत्य २ बतलाइये कि जो जन्तु मृत हो जाया करते हैं उनको सपिण्डन क्रिया

किस समय में करनी चाहिए ? ॥ १ ॥ सपिण्डत्व होने पर वे कहाँ जाया करते हैं और सपिण्डत्व न होने पर उनकी कैसे गति होती है ? स्त्री और पुरुषों में किसके द्वारा सपिण्डत्व होता है—यह सब बतलाने के योग्य होते हैं ॥ २ ॥ पति और पत्नी किस तरह से उत्तम सपिण्डत्व को प्राप्त होते हैं। भर्त्तार के जीवित रहने पर नारियों का सपिण्डत्व कैसे होता है ? ॥ ३ ॥ हे सुरेश्वर ! यह नारी स्वर्ग लोक में अपने स्वामी के निकट मर्त्यलोक में किस प्रकार से जाया करती है ? अग्नि में आरोहण करने पर श्राद्ध कैसे होता है और उस दिन में वृषोत्सर्ग किस तरह से हुआ करता है ॥ ४ ॥ सपिण्डी करण करने पर घट का दान कैसे किया जाता है ? हे प्रभो ! जगत् में लोगों के हित के लिये आप प्रसन्न होकर यह सब वर्णन करिये ॥ ५ ॥ श्री भगवान् ने कहा—मैं सर्वथा सत्य २ बतलाता हूँ कि जिस तरह से सपिंडीकरण कर्म किया जाता है। हे खगश्रेष्ठ ! एक वर्ष पर्यन्त यह मानव मृत्यु गत होने के पश्चात् उस महान् विशाल मार्ग की यात्रा करता रहता है ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर फिर वह पितृगण के साथ पितृ लोक में जाया करता है। इससे पुत्रों के द्वारा पिता का सपिंडी करण कर्म करना चाहिए ॥७॥

संवत्सरेण तु सम्पूर्णे कुर्यात्पिडप्रवेशनम् ।
पिंडप्रवेशविधिना तस्य नित्य मृताह्निकम् ॥८
निश्चित पक्षिशार्दूल वर्षान्ते पिण्डमेलनम् ।
सह पिण्डे कृते प्रेतस्तो याति पराङ्गतिम् ॥९
सत्ताम सपरिस्यज्य तत पितृगणो भवेत् ।
त्रिपक्षे वाथ षण्मासे मेलयेच्च पितामहै ॥१०
ज्ञात्वा वृद्धिविवाहादि स्वगोत्रविहितानि च ।
विवाह नैव कुर्वीत मृते च गृहमेधिनि ॥
भिक्षुर्भिक्षा न गृह्णाति यावन्न कुर्यात्सपिण्डनम् ॥११
स्वगोत्रेष्वशुचिस्तावद्यावत्पिण्ड न मेलयेत् ।
मेलनात्प्रेतशब्दश्च निवर्त्तेत खगेश्वर ॥१२

आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् ।
अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते ॥१३

निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे सपिंडयेत् ।
द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा ॥१४

एक संवत्सर के सम्पूर्ण हो जाने पर पिंड प्रवेश न करना चाहिए। पिंड प्रवेश की विधि से उसका नित्य मृताह्निक होता है ॥८॥ हे पक्षिशार्दूल ! वर्ष के अन्त में पिंडों का मेलन निश्चत् रूप से होता है। पिंडों के साथ कर देने पर फिर वह प्रेत परम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥ ९ ॥ फिर वह अपना 'प्रेत'—इस नाम का परित्याग करके पितृ गण हो जाया करते हैं। तीन पक्ष में अथवा छै मास में पितामहों के साथ उसका सपिंडी करण कर्म करके मेलन अवश्य ही करा देना चाहिए ॥ १० ॥ अपने गोत्र में वृद्धि और विवाह आदि को जानकर जोकि स्वगोत्र में विदित हों तो गृहमेधी के मृत हो जाने पर विवाह नहीं करना चाहिए। जब तक सपिंडी करण क्रिया नहीं होती है और मृत जन्तु प्रेत रूप में विद्यमान रहता है किसी भिक्षु को भी उस घर से भिक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिए ॥ ११ ॥ अपने गोत्र में तब तक अशुचिता रहा करती है जब तक पिंडों का मेलन नहीं होता है अर्थात् सपिंडी करण क्रिया सम्पन्न नहीं हुआ करती है। हे खगेश्वर ! पिंडों के मेलन हो जाने से प्रेत शब्द की निवृत्ति हो जाया करती है ॥ १२ ॥ कुलों के धर्मो की अनन्तता होने से अर्थात् अत्यधिक संख्या वाले कुलों में धर्म हुआ करते हैं और पुरुषों की आयु की क्षीणता होने के कारण से तथा इस शरीर की कोई भी स्थिरता के न होने से सपिंडी करण के कर्म को करने के लिये द्वादशाह अर्थात् बारहवाँ दिन ही परम प्रशस्त होता है ॥ १३ ॥ चाहे मृतात्मा निरग्निक हो अथवा साग्निक हो बारहवें दिन में उसका सपिंडी करण कर देना चाहिए। ये सभी काल ठीक हैं—द्वादशवें दिन में—तीन पक्ष में—छै मास में अथवा संवत्सर के अन्त में पिंडों का मेलन कर देवे जिससे मृत जीव की प्रेत संज्ञा मिटकर पितृ संज्ञा प्राप्त हो जावे ॥१४॥

सपिंडीकरण प्रोक्तं ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभि ।
सपुत्रस्य न कर्त्तव्यमेकोद्दिष्ट कदाचन ॥१५
सपिंडीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते ।
तत्र तत्र त्रय कार्य्यं वर्जयित्वा क्षयेऽहनि ॥१६
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
एकोद्दिष्ट त्रयाणा स्यादन्यथा पितृघातक ॥१७
त्रिभि, कुर्य्यादशक्तस्तु पार्वण मुनिनोदितम् ।
तद्दिने तद्दिने कुर्य्यात्पितामहमुखान्यत । १८
अज्ञानाद्दिनमासाना तस्मात्पार्वणमिष्यते ।
अनुत्पन्नशरीरस्य न दान पितृभि. सह ॥१९
दत्ते षोडशभि. श्राद्धै पितृभि सह मोदते ।
पितु पुत्रेण कर्त्तव्य सपिंडीकरण सदा ॥२०
पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे सहोदर ।
भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्ड शिष्य एव वा ॥
सपिंडनक्रिया कृत्वा कुर्य्यादभ्युदय तत ॥२१

तत्त्वों के देखने वाले ऋषियों ने य उपर्युक्त सभी समय सपिंडी करण क्रिया के सम्पन्न करने के लिये बताये हैं । जो सपुत्र हो उसका कभी भी एकोद्दिष्ट नहीं करना चाहिए ॥ १५ ॥ सपिंडी करण से पहिले जहाँ-जहाँ पर प्रदान किया जाता है वहाँ वहाँ पर क्षय दिन को त्याग कर त्रय करे अर्थात् तीनों का करे ॥ १६ ॥ वे तीन ये होते हैं—पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीनों का एकोद्दिष्ट होना है अन्यथा वह पितृ घातक होता है। इन तीनों का एकोद्दिष्ट न करने पर पितृ गण के घात करने का महा पाप होता है ॥१७.. तीनों से करे यदि अशक्त हो तो मुनि गण ने फिर उसके लिये पावण श्राद्ध बताया है । उस-उस दिन में पितामह प्रमुखों का श्राद्ध करना चाहिए ॥ १८ ॥ दिन तथा मासों का ज्ञान न होने के कारण से ही पार्वण श्राद्ध अभीष्ट माना जाता है । जिसके शरीर की उत्पत्ति ही नहीं हुई है उसको पितृगण के साथ दान आदि कुछ भी नही होता है ॥ १९ । षोडश श्राद्धों के दे देने पर ही वह

मृत प्रेत फिर पितृगण के साथ मुदित होकर निवास किया करता है। पुत्र को अपने पिता का सपिंडी करण सदा करना चाहिए ॥ २० ॥ यदि किसी के कोई पुत्र ही न होवे तो उसकी पत्नी को सपिंडी करण करना चाहिए और पत्नी भी न हो तो सहोदर भाई का यह कर्म कर्त्तव्य होता है। भाई भी न हो तो भाई का पुत्र करे अथवा कोई भी न हो तो जो कोई भी सपिंड जन हो वह करे या शिष्य को ही अवश्य सपिंडी करना चाहिए। सपिंडी करण की क्रिया को करके इसके अनन्तर अभ्युदय होता है ॥२१॥

ज्येष्ठस्यैव कनिष्ठेन भ्रातृपुत्रेण भार्य्यया ।
सपिंडीकरणं कार्य्यं पुत्रहीने खगेश्वर ॥२२
भ्रातृणामेकजातानां एकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ।
सर्वे वै तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥२३
सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्य्यात्सपिण्डनम् ।
ऋत्विजः कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा ॥२४
कृतचूडैः सुतैश्चापि पितृश्राद्धञ्च कारयेत् ।
उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराणि वै ॥
भर्त्तादिभिस्त्रिभिः कार्य्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ॥२५
पितृवद्भ्रातृपुत्रेण सोदरेण कनीयसा ।
अर्वाक्संवत्सराद्रूर्ध्वं पूर्णे संवत्सरेऽपि वा ॥२६
ये सपिण्डीकृताः प्रेतास्तेषां स्यान्न पृथक्क्रिया ।
सपिंडने कृते वत्स पृथक्त्वन्तु विगर्हितम् ॥२७
यस्तु कुर्य्यात्पृथक्पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते ।
पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कुर्य्यात्सपिंडताम् ॥२८

ज्येष्ठ का सबसे छोटे भाई के पुत्र के द्वारा अथवा भार्या के द्वारा पुत्र के अभाव होने पर हे खगेश्वर ! सपिंडी करण की क्रिया अवश्य ही करना चाहिए क्योंकि इस क्रिया के पूर्ण न होने पर मृतात्मा का प्रेतत्व निवारण नहीं हुआ करता है। सपिंडी करण के होने पर ही वह पितृगण के साथ मिला करता है ॥ २२ ॥ भाइयों में यदि कोई एक ही भाई पुत्र वाला होवे तो वे

सभी उस एक अपने के पुत्र से ही पुत्र वाले होते हैं—ऐसा मनु ने कहा है। ॥ २३ ॥ यदि सभी भाई ऐसे हों कि किसी के भी कोई पुत्र न हो तो फिर सुन त्मा की पत्नी के द्वारा ही सपिंडी करण कम करना चाहिए अथवा किसी ऋत्विज के द्वारा तथा पुरोहित के द्वारा उसे पूर्ण करा देना चाहिए ॥ २४ ॥ जिनका चूड़ा करण संस्कार हो गया हो उस पुत्र के द्वारा भी पितृ श्राद्ध करा देवे। वह केवल स्वधाकार का उच्चारण करे और अनाधिकारी उस समय तक होने से वेद के अक्षरों का उच्चारण नहीं करे। स्त्री का सपिंडी करण स्वामी आदि तीनों के द्वारा सम्पन्न होना चाहिए ॥ २५ ॥ पितृ की तरह भाई के पुत्र के द्वारा तथा छोटे सहोदर के द्वारा सम्वत्सर से अर्वाक् या इसके ऊर्ध्व में अथवा सम्वत्सर के पूर्ण हो जाने पर सपिंडी करण करे ॥ २६ ॥ जिन प्रेतों का सपिंडी करण हो गया है फिर उनके लिये कोई पृथक् क्रिया नहीं होती है। हे वत्स ! सपिंडन किये जाने पर फिर उनका पृथक्त्व विगलित हो जाता है। अर्थात् पिंडों के मिल जाने पर उनकी पृथकता ही नहीं रहती है अत अलग से कुछ करना भी अनावश्यक होता है ॥ २७ ॥ जो कोई फिर उनका पृथक् पिंड किया करता है वह पितृ घातक हो जाता है। यदि फिर कोई पृथक् पिंड आदि करता है तो उसे पुन सपिंडना करनी चाहिए ॥२८॥

सपिंडीकरणं कृत्वा ह्येकोद्दिष्टं करोति यः ।
आत्मानञ्च तथा प्रेतं स नयेद्यमशासनम् ॥२९
वर्षं यावत्क्रिया सर्वा प्रेतत्वविनिवृत्तये ।
ता सर्वाश्चैकतः कुर्यान्नामगोत्रेण धीमता ॥३०
घटाद्यं भोजनं नित्यं दीपदानानि यानि च ।
सपिंडीकरणे वृत्ते एकस्यैव तु दापयेत् ॥३१
अन्नं पानीयसहितं सख्या कृत्वाब्दिकस्य च ।
दातव्यं ब्राह्मणे पक्षिन्घटादेर्निष्क्रयं तथा ॥३२
पिंडान्ते तस्य सकरपो वर्षाद् वृत्तिं स्वशक्तितः ।
दिव्यदेहो विमानस्थ सुतृप्तो धर्मशासने ॥३३
जीवमाने च पितरि न हि पुत्रे सपिण्डता ।
स्त्रीणां सपिण्डनं नास्ति भर्तृमातरि जीवति ॥३४

मृता माता पिता तिष्ठेज्जीवेदपि पितामही ।
सपिण्डनं ततः कुर्य्यात्प्रपितामह्या सहैव च ।।३५

सपिंडीकरण कर्म करने के पश्चात् यदि कोई एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया करता है वह अपने आपको और प्रेत को दोनों को यम के शासन का अधिकारी बना दिया करता है ।। २६ ।। एक वर्ष पर्यन्त प्रेतत्व की निवृत्ति के लिये समस्त क्रियाऐं हुआ करती हैं । वे सम्पूर्ण क्रियाऐं धीमान् पुरुष के द्वारा नाम-गोत्र के द्वारा एक बार ही कर देनी चाहिए ।। ३० ।। घटादि का दान—भोजन—नित्य दीप दान और जो भी अन्य दान आदि हैं वे सभी सपिंडीकरण के पूर्ण हो जाने पर एक ही जगह करने चाहिए क्योंकि फिर पृथक्त्व तो रहता ही नहीं है ।। ३१ ।। वर्ष की संख्या करके ब्राह्मण को पानी के साथ अन्न देना चाहिए तथा हे पक्षिन् ! घटादि का निष्क्रय देना चाहिए ।। ३२ ।। पिंड के अन्त में उसका सङ्कल्प करे और वर्ष से अपनी शक्ति के अनुसार वृत्ति करे । इससे वह जन्तु दिव्य देह धारण कर विमान में स्थित होकर धर्म शासन में भली-भाँति तृप्त होता है ।। ३३ ।। पिता के जीवित रहते हुए पुत्र में सपिंडता नहीं होती है । अपने स्वामी की माता के जीवित रहते हुए स्त्रियों की सपिंडता नहीं हुआ करती है ।। ३४ ।। माता की तो मृत्यु हो जावे और पितृ स्थित रहें तथा पिता मही भी जीवित होवें तो ऐसी दशा में प्रपिता मही के साथ ही सपिंडी कर देना चाहिए ।।३५।।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं श्रूयतां वचनं मम ।
न पिण्डो मेलितो येषां मृतानां तु नृणां भुवि ।।३६
उपतिष्ठेन्न वै तेषां पुत्रैर्दत्तमनेकधा ।
हन्तकारस्तदुद्देशे श्राद्धं नैव जलाञ्जलिः ।।३७
हुताशं या समारूढा चतुर्थेऽह्नि पतिव्रता ।
तस्या भर्तृदिने कार्य्यं वृषोत्सर्गादिसूतकम् ।।३८
पुत्रिका पतिगोत्रा स्यादधस्तात्पुत्रजन्मतः ।
पुत्रानुत्पाद्य पश्चात्तु सापि गोत्रं व्रजेत्पितुः ।।३९

पतिपत्न्यो सदैकत्र हुताशं याधिरोहति ।
पुत्रेणैव पृथक्श्राद्ध क्षयाहे तस्य वासरे ॥४०
अपुत्रौ चेन्मृतौ स्याता एकचितया समेऽह्नि ।
पृथक्श्राद्ध न कुर्वीत सपिण्ड पतिना सह ॥४१
पृथक्पिण्डे तु संयोज्य दम्पती पतिना सह ।
स लिप्यति महादोषैरिति सत्य वचो मम ॥४२

यह मेरा वचन पूर्णतया सर्वथा सत्य है—इसका तुम श्रवण करो, इस भूमण्डल मे मरे हुए जिन पुरुषों का पिण्ड मेलिन नहीं किया जाता है अर्थात् सपिण्डता नही की जाती है उनके पुत्रों के द्वारा अनेक बार भी दिया हुआ उनको कुछ भी नहीं पहुँचता या मिलता है । उसके उद्देश्य मे हन्तकार है श्रद्धा और जलाञ्जलि नहीं होते हैं ॥३६।३७॥ जो पतिव्रता चौथे दिन में अग्नि में समारूढ हो जावे उसका उसके स्वामी के दिन में ही वृषोत्सर्ग आदि सूतक करना चाहिए ॥३८॥ जो पुत्री होती है वह पाणिग्रहण के पश्चात् अपने पति के गोत्र वाली हो जाया करती है । जो पति का गोत्र होता है वही उसका भी हो जाता है । पुत्र जन्म के पीछे पुत्रों को समुत्पन्न करके वह भी पीछे से पिता के गोत्र में चली जाया करती है ॥३९॥ पति और पत्नी जब एक ही अग्नि में अर्थात् चिता मे अधिरोहण करते हैं तब पुत्र के द्वारा ही क्षय होने के दिन में पृथक् श्राद्ध करना चाहिए ॥४०॥ यदि पति-पत्नी दोनो बिना पुत्र वाले ही मृत हो जावें और एक ही चिता मे सम दिन मे ही दाह किया जावे तो उसका पृथक् श्राद्ध नहीं करे क्योंकि पति के साथ ही सपिण्डता हो जाती है ॥४१॥ दम्पती हों और पति के साथ पृथक् पिण्डों का ऐसी दशा में संयोजन करे तो वह करने वाला पुरुष महान् दोषों से लिप्त हो जाया करता है—यह मेरा वचन बिल्कुल सत्य है ॥४२॥

एकचितया समारूढौ म्रियेते दम्पती यदि ।
एकपाक प्रकुर्वीत पिण्डान्दद्यात्पृथक्पृथक् ॥४३
वृषोत्सर्ग नवश्राद्धं पृथक्श्राद्धानि षोडश ।
घटादिपददानानि महादानानि यानि च ।
वर्ष यावत्पृथक्कुर्यात्प्रेतस्तृप्तिं व्रजेच्चिरम् ॥४४

एकगोत्रमृतानाञ्च स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ।
स्थण्डिलञ्चैकतः कुर्य्याद्धोमं कुर्य्यात्पृथक्पृथक् ॥४५
एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं पृथक्पिण्डांश्च भोजनम् ।
पाकैक्येन पतिस्त्रीणां अन्येषाञ्च विगर्हितम् ॥४६
एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुते बहु ।
विकिरं त्वेकतः कुर्य्यात्पिण्डान्दद्याद्बहून्यपि ।
तीर्थे वाऽपरपक्षे वा चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ॥४७
नारी भर्त्तारमासाद्य कुणपं दहते यदि ।
अग्निर्दहति गात्राणि ह्यात्मानं नैव पीड़येत् ॥४८
दह्यते धम्यमानानां धातूनां हि यथा मलम् ।
तथा नारी दहेद्देहं हुताशे ह्यमृतोपमे ॥४९

एक ही चिता में समारूढ़ होकर यदि दम्पती मरते हैं तो एक पाक करे और दोनों के लिये पृथक्-पृथक् पिण्डों को देवे । ४३॥ वृषोत्सर्ग–नवश्राद्ध और षोड़श श्राद्ध–घटादि पदों का दान एवं जो भी अन्य महादान आदि होवें वे सब पृथक् पृथक् ही करे । जब तक पूरा वर्ष समाप्त हो सब अलग-अलग ही करे । इससे प्रेत को बहुत समय पर्य्यन्त तृप्ति हुआ करती है ॥४४॥ जो एक ही गोत्र के हों और मर जावें चाहे वे पुरुष हों या स्त्री होवें तो स्थाण्डिल तो एक बनावे किन्तु उनके लिये होम पृथक् पृथक् करना चाहिये ॥४५॥ ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध दिया जाता है उसमें अलग पिण्ड और भोजन देवे । पति और पत्नी के लिये तो एक ही पाक किया जा सकता है किन्तु इनके अतिरिक्त कोई हों तो उनका एक ही जगह पर पाक करना भी निषिद्ध एवं दूषित हुआ करता है ॥४६॥ एक ही स्थान पर एक ही पाक करके जो बहुत-से श्राद्ध करता है वहाँ पर विकिर तो एक ही करे और पिण्ड बहुत-से देवे । ऐसा तीर्थ में अथवा अपर पक्ष में तथा चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में करना चाहिये ॥४७॥ नारी अपने स्वामी को पाकर यदि उसके कुणप (मृत देह) का दाह करे तो अग्नि शरीर के अङ्गों का दाह किया करती है उसकी आत्मा को कुछ भी पीड़ा नहीं करती है । ॥४८॥ जिस तरह से धमन की जाने वाली धातुओं का मल ही दग्ध हुआ

करता है उसी तरह से अमृत के समान अग्नि में नारी स्वामी के देह का ही दाह किया करती है ।।४६।।

दिव्यादौ दिव्यदेहस्तु शुद्धो भवति ते यथा ।
तप्ततैलेन लोहेन वह्निना नावदह्यते ।।५०
तथा सा पतिसयुक्ता दह्यते न कदाचन ।
अन्तरात्मा मृतस्तस्मिन्मृतेऽप्येकत्वमागताः ।।५१
भर्तृ सङ्ग परित्यज्य याऽन्यत्र म्रियते यदि ।
पतिलोक न सा याति यावदाभूतसंप्लवम् ।।५२
नारी सुतान्परित्यज्य मातर पितरं तथा ।
मृत पतिमनुव्रज्य सा चिर सुखमाप्नुयात् ।।५३
दिव्यवर्षप्रमाणेन तिस्र कोटयोऽर्द्धकोटय· ।
तावत्काल वसेत्स्वर्गे नक्षत्रै. सह सर्वदा ।।५४
तदन्ते च मृते लोके कुले भवति भोगिनाम् ।
महाप्रीतिमवाप्नोति भर्त्रा सह पतिव्रता ।।५५
एव न कुरुते नारी धर्मोढा पतिसङ्गमम् ।
सप्तजन्मनि दु खार्त्ता दुःशीलाऽप्रियवादिनी ।।५६
सा नारी गृहगोधा वा गोधा वा द्विमुखी भवेत् ।
स्वभर्त्तार परित्यज्य परपु सानुवर्त्तिनी ।।५७

दिव्यादि में दिव्य देह जिस प्रकार से शुद्ध होता है तप्त तैल से, लौह से और वह्नि से वह भवदग्ध नहीं होता है ।।५०।। उसी भाँति पति से सयुक्त वह नारी कभी भी दग्ध नहीं हुआ करती है। उसके मरने पर मृत अन्तरात्मा एकत्व को प्राप्त हो जाता है ।।५१।। अपने पति के सङ्ग का त्याग कर जो नारी यदि कहीं अन्यत्र मरती है तो जब तक भूत सप्लव (प्रलय) होता है तब तक वह नारी पति लोक को प्राप्त नहीं होती है ।।५२।। जो नारी अपने पुत्रों को, माता को और पिता को त्याग करके अपने मृत पति का अनुगमन किया करती है अर्थात् पति के साथ ही प्राणों को त्याग दिया करती है वह नारी चिरकाल तक सुख की प्राप्ति किया करती है ।।५३।। दिव्य वर्षों के प्रमाण से साढ़े तीन

करोड़ वर्ष के समय तक सर्वदा नक्षत्रों के साथ वह स्वर्ग में निवास प्राप्त करती है ।।५४।। उसके अन्त में मृत होने पर वह भोगियों के लोक में और कुल में होती है । वह पतिव्रता नारी अपने भर्त्ता के साथ महान् प्रीति का लाभ प्राप्त किया करती है ।।५५ । धर्म पूर्वक विवाहिता नारी इस प्रकार से पति का संगम नहीं करती है वह सात जन्मों तक दुःख से पीड़ित होती हुई दुःशीला और अप्रियवादिनी होती है ।।५६।। वह नारी गृह गोधा-गोधा अथवा द्विमुखी हुआ करती है जो अपने स्वामी का त्याग करके पराये पुरुष की अनुवर्त्तिनी रहा करती है ।।५७।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं सेवयेत्सदा ।
कर्मणा मनसा वाचा मृते जीवति तद्गता ।।५८
जीवमाने मृते वापि किल्विषं कुरुते तथा ।
तेन नाप्नोति भर्त्तारं पुनर्जन्मनि दुर्भगा ।।५९
यद्देवेभ्यो यत्पितृभ्योऽतिथिभ्यः कुर्य्याद्भर्त्तुर्म्यर्चनं सत्क्रियाश्च ।
तस्यार्धं केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ।।६०
एवं कृते तु सा नारी भर्तृलोके वसेच्चिरम् ।
यावदादित्यचन्द्रौ च तावद्देवोपमा दिवि ।।६१
पुनश्चिरायुषी भूत्वा जायेते विपुले कुले ।
पतिव्रता तु सा नारी भर्तृदुःखं न विन्दति ।।६२
सर्वमेतद्धि कथितं मया तव खगेश्वर ।
विशेषं कथयिष्यामि मृतस्यैव सुखप्रदम् ।।६३
द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं यावत्सपिण्डनम् ।
पुनः कुर्य्यात्तथा नित्यं घटान्नं प्रतिमासिकम् ।।६४
कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्य्यादृते पुनः ।
चेत्करोति पुनः सम्यक्पूर्वकृत्यं विनश्यति ।।६५
मृतस्यैवं पुनः कुर्य्यात्प्रेतोऽप्यक्षयमाप्नुयात् ।
अर्वाग्वृद्धेश्च करणात्पक्षिराज सपण्डिताम् ।।६६

पूर्वोक्तक सर्वविधि सुयुक्त सपिण्डन यो हि करोति पुनः ।
तथापि मास प्रति पिण्डमेकमन्न सकुम्भ सजलञ्च दद्यात् ॥६७

इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से नारी को अपने स्वामी का सदा सेवन करना चाहिए। जब तक स्वामी जीवित रहे तब तक अच्छी तरह कर्म, मन और वचन से उसकी सेवा करे और मरने पर उसके ही साथ अनुगमन करे ॥५८॥ जीवित रहने पर या मृत हो जाने पर जो सदा किल्बिष किया करती है अर्थात् पापाचरण करती है। इसका परिणाम यह होता है कि वह दुर्भाग्य वाली फिर दूसरे जन्म में स्वामी की प्राप्ति नहीं किया करती है ॥५९॥ जो स्वामी देवों के लिये, पितृगण के लिये, अतिथियों के लिये अभ्यर्चन और सत्क्रिया किया करता है उस सब सत्कर्म का आधा भाग केवल अनन्य चित्त वाली नारी स्वामी की शुश्रूषा से ही प्राप्त किया करती है ॥६०॥ इस प्रकार से भर्त्ता की शुश्रूषा से नारी पति लोक में चिरकाल तक निवास किया करती है और जब तक ये चन्द्र और सूर्य स्थित रहा करते हैं तब तक वह दिवलोक में देवता के समान रहती है ॥६१॥ इसके अनन्तर फिर चिरायु होकर वे दोनों किसी विशाल कुल में जन्म ग्रहण करते हैं। वह पतिव्रता नारी कभी भी अपने स्वामी के दुःख को प्राप्त नहीं किया करती है ॥६२॥ हे खगेश्वर ! यह सभी कुछ मैंने तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया है। अब आगे मृत को सुख प्रदान करने वाला विशेष मैं बतलाऊँगा ॥६३॥ बारहवें दिन में किया हुआ सब जब तक वर्ष का सपिण्ड न हो उसे पुन करे। नित्य घटान्न और प्रतिमासिक करे। ॥६४॥ प्रेतकार्य के बिना किये हुए को पुन नहीं किया जाता है। यदि पुनः भली-भाँति किया करता है तो पूर्व कृत्य सब नष्ट हो जाता है ॥६५॥ मृत का ही पुन इस प्रकार से करना चाहिये। इससे प्रेत अक्षय को प्राप्त हुआ करता है। हे पक्षिराज ! वृद्धि के करने में अर्वाक् (पश्चात्) सपिण्डना करे। पूर्व में वर्णित सम्पूर्ण विधि को यथोचित रूप से सपिण्डीकरण जो पुत्र किया करता है सो भी प्रति मास में एक पिण्ड, अन्न, जल से परिपूर्ण कुम्भ आदि देना चाहिए ॥६६।६७॥

१७—प्रेतत्व से मुक्ति

कथं प्रेता वसन्त्यत्र कीदृग्रूपा भवन्ति च ।
महाप्रेताः पिशाचाश्च कैः कैः कर्मफलैः प्रभो ॥१
सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन ।
प्रेतत्वान्मुच्यते येन दानेन सुकृतेन हि ।
सर्वं कथय मे देव मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥२
साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वच्मि प्रेतलक्षणम् ॥३
गुह्याद्गुह्यतरं ह्येतन्नाख्येयं यस्य कस्यचित्
भक्तस्त्वं हि महाबाहो तेन ते कथयाम्यहम् ॥४
पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य राजासीद्बभ्रुवाहनः ।
महोदयपुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः ॥५
यज्वा दानपतिः श्रीमान्ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः ।
शीलोदारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः ॥६
प्रजाः पालयते नित्यं पुत्रानिव महाबलः ।
स कदाचिन्महाबाहुर्मृगयां गन्तुमुद्यतः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे प्रभो ! प्रेत यहाँ पर कैसे निवास किया करते हैं और उनके किस प्रकार के स्वरूप होते हैं ? महा प्रेत और पिशाच किन-किन कर्मों के फलों से हुआ करते हैं ? ॥१॥ हे मधुसूदन ! सभी प्राणियों के ऊपर अनुकम्पा करने के लिये यह मेरे सामने वर्णन कीजिये । इस भीषण प्रेतत्व से, कौनसा दान तथा सुकृत है, जिसके करने से मुक्ति हुआ करती है ? हे देव ! यदि मेरे प्रिय करने की आपकी इच्छा हो तो यह सभी मुझे बताने की कृपा कीजिये ॥२। श्रीकृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! तुमने यह प्रश्न तो बहुत सुन्दर किया है । इससे मनुष्यों का परम हित होगा । अब तुम अत्यन्त सावधान होकर श्रवण करो, मैं प्रेत के सम्पूर्ण लक्षण बतलाता हूँ ॥३॥ किन्तु यह बहुत ही गोपनीय से भी गोपनीय विषय है, इसे च हे जिस किसी के सामने नहीं कहना

चाहिए। हे महाबाहो ! क्योंकि तुम मेरे भक्त हो, इसीलिये मैं तुमको यह सब बतलाता हूँ ॥४॥ हे तार्क्ष्य ! पहिले त्रेता युग में एक बभ्रुवाहन नाम वाला राजा था। वह परम सुन्दर महोदय पुर में रहता था और बहुत ही धर्म में निष्ठा रखने वाला था तथा महान् बलवान् था ॥५॥ वह यजन करने वाला, दानपति श्रीमान्, ब्रह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले और साधु-सम्मत था। शील और उदारता के गुणों से युक्त था तथा दया एवं दाक्षिण्य (कौशल) से समन्वित था ॥६॥ वह महान् बलवान् राजा अपनी प्रजा का पालन पुत्रों की भाँति ही किया करता था। किसी समय में वह बड़ी-बड़ी भुजाओं वाला राजा शिकार खेलने के लिए जाने को तैयार हुआ था ॥७॥

वन विवेश गहन नानावृक्षसमन्वितम् ।
शार्दूलशतसजुष्ट नानापक्षिनिनादितम् ॥८
वनमध्ये तदा राजा मृग दूरादहश्यत ।
तेन विद्धो मृगस्तीव्रो बाणेन सुदृढेन च ॥९
बाणमादाय त तस्य स वनेऽदर्शन ययौ ।
शोणितस्रावमार्गेण स राजाऽनुजगाम ह ॥१०
ततो मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद्विवेश स ।
क्षुत्क्षामकण्ठोनृपति श्रमसन्तापमूर्च्छित ॥११
जलस्थान समासाद्य साश्व एव व्यगाहत ।
पीत्वा तदुदक शीत पद्मदन्धाधिवासितम् ॥१२
ततोऽवतीर्य्य सलिलाद्विमलाद्बभ्रुवाहन ।
न्यग्रोधवृक्षमासाद्य शीतच्छाय मनोहरम् ॥१३
महाविटपिन घूर्णपक्षिसघातनादितम् ।
वनस्पतीना सर्वेषा केतुभूतमवस्थितम् ॥१४

वह राजा एक अत्यन्त घने जङ्गल में प्रवेश कर गया था जो कि अनेक तरह के विशाल वृक्षों से समन्वित था और जिस वन में सैकड़ों शार्दूल रहा करते थे। वहाँ पर विविध भाँति के पक्षियों की मधुर ध्वनि हो रही थी ॥८॥ उस वन के मध्य में उस बभ्रुवाहन राजा ने दूर से ही एक मृग को देखा था।

उस राजा ने सुदृढ़ तीक्ष्ण बाण के द्वारा उस तीव्र मृग को बेध दिया था। वह स्वयं विद्ध होकर उस बाण के साथ ऐसा अदृष्ट हो गया कि कहीं भी फिर दिखलाई नहीं दिया था। बाण के लगने से जो उसके शरीर से रक्त का स्राव हुआ था उसे देखते हुए उसी मार्ग से वह राजा भी उसके पीछे चला गया था। ॥६।१०॥ इसके अनन्तर उस मृग की तलाश करने के प्रसङ्ग से वह अन्य एक वन में प्रवेश कर गया था। उस समय में राजा से अत्यन्त पीड़ित हो गया था। उसका गला एक दम सूख गया था और श्रम के सन्ताप से मूर्छित-सा हो गया था ॥११॥ इसके पश्चात् उसे एक जलाशय मिला। वहाँ पर उसने अपने अश्व के सहित उस जल का अवगाहन किया था। उस जलाशय का परम शीतल और पद्मों की गन्ध से अधिवासित जल का पान करके वह बभ्रूवाहन उस विमल जल से अवतीर्ण होकर एक वट का वृक्ष वहाँ था उसके नीचे आ गया था। उस परम मनोहर वृक्ष की बहुत ही शीतल छाया थी। वह वट महान् विशाल था और पूर्ण पक्षियों के समूह की ध्वनि हो रही थी। वह वट वृक्ष वहाँ पर ऐसा स्थित हो रहा था मानो समस्त वनस्पतियों का वह केतु भूत हो ॥१२।१३।१४॥

तं महातरुमासाद्य निषसाद महीपतिः।
अथ प्रेतं ददर्शासौ क्षुत्पिपासाकुलेन्द्रियम् ॥१५
उत्कचं मलिनं रूक्षं निर्मासं भीमदर्शनम्।
स्नायुबद्धास्थिचरणं धावमानमितस्ततः ॥१६
अन्यैश्च बहुभिः प्रेतैः समन्तात्परिवारितम्।
तं दृष्ट्वा चागतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः ॥१७
प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नृपम्।
तदा हृष्टमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागमत् ॥१८
अब्रवीत्स तदा तार्क्ष्य प्रेतराजो नृपं वचः।
प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्।
त्वत्संयोगान्महाबाहो नास्ति धन्यतरो मम ॥१९

कृष्णरूप करालाक्ष त्वं प्रेत इव दृश्यसे ।
कथयस्व मम प्रीत्या यथार्थमतितत्त्वत ॥२०
कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव ।
प्रेतत्वे कारणं श्रुत्वा दया कर्तुं ममार्हसि ॥२१

उस परम विशाल वृक्ष के पास पहुंच कर वह राजा वहाँ पर बैठकर विश्राम लेने लगा था। इसके अनन्तर उसने वहाँ पर एक प्रेत को देखा था जो कि भूख और प्यास से व्याकुल इन्द्रियों वाला हो रहा था ॥१५॥ ऊपर की ओर उसके केश खड़े हो रहे थे, अत्यन्त मैला-कुचैला उसका रूप था, बहुत ही रूखा, बिना माँस वाला, भयानक दिखलाई देने वाला, स्नायुओं से बद्ध अस्थि-नगण वाला और इधर उधर दौड़ लगाता हुआ था। उसके चारों ओर अन्य भी बहुत से प्रेत उसे घेरे हुए थे। ऐसे उसे आते हुए राजा ने देखा जो कि घोर रूप वाला था। उसे देखकर राजा को बड़ा विस्मय हुआ था ॥१६।१७॥ प्रेत को भी उस अति घोर जङ्गल मे आये हुए राजा को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी और प्रसन्न चित्त होकर वह प्रेत उस राजा के समीप मे उपस्थित हो गया था ॥१८॥ हे तार्क्ष्य ! उस समय में वह प्रेतराज राजा से बोला—हे महाबाहो ! मैंने आज आपके सम्पर्क को पाकर अपना प्रेत भाव त्याग दिया है और मैं परम गति को प्राप्त हो गया हूँ। मेरे समान कोई भी अन्य धन्यतर नही है ॥१९॥ राजा ने कहा—काले स्वरूप वाले तथा विकराल नेत्रों वाले तुम तो प्रेत की भाँति ही दिखलाई दे रहे हो। मेरी प्रीति के लिये आप जो भी यथार्थ बात हो उसे अत्यन्त तत्त्व पूर्वक बतलाओ ॥२०॥ प्रेत ने कहा—हे नृप श्रेष्ठ ! अब मैं सब कहता हूँ। आपको यह सब कुछ विदित ही नहीं है। इस प्रेतत्व प्राप्त होने के कारण को सुनकर आप मेरे ऊपर दया करने के योग्य होते हैं ॥२१॥

वैदिश नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम् ।
नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम् ॥२२
नानापुण्यसमायुक्तं नानावृक्षसमाकुलम् ।
तत्राहं न्यवसं भूप देवार्चनरतस्तथा ॥२३

वैश्यजात्यां सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते ।
हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरो मया ॥२४
विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः सन्तर्पितास्तथा ।
आहाराश्च विहाराश्च मया वै सुनिवेशिताः ॥२५
दीनानाथविशिष्टेभ्यो मया दत्तमनेकधा ।
तत्सर्वं विफलं तात मम दैवादुपागतम् ॥२६
न मेऽस्ति सन्ततिस्तात न सुहृन्न च बान्धवः ।
न च मित्रं हि मे तादृग्यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ॥२७
प्रेतत्वं सुस्थिरं तेन मम जातं नृपोत्तम ।
एकादश त्रिपक्षश्च षाण्मासिकमथाब्दिकम् ॥२८
प्रतिमास्यानि चान्यानि एवं श्राद्धानि षोडश ।
यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि षोडश ॥२९
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ।
एवं ज्ञात्वा महाराज प्रेतत्वादुद्धरस्व माम् ॥३०

एक वैदिश नाम वाला नगर है जो कि सब तरह की सम्पत्ति से परिपूर्ण और नाना प्रकार के रत्नों से समाकुल है तथा अनेक जनवादों से घिरा हुआ है। बहुत पुण्यों से समन्वित तथा अनेक वृक्षों से समाकुल है। हे राजन्! वहाँ पर मैं देवों की अर्चना में परायण होकर निवास किया करता था ॥२२॥ ॥२३॥ मैं वैश्य जाति में उत्पन्न हुआ था और मेरा नाम सुदेव था—यह आपको विदित होवे। मैंने हव्य के द्वारा खूब देवों को तृप्त किया था और कव्य से पितृगण की तृप्ति भी की थी ॥२४॥ अनेक प्रकार के दानों के योग से मैंने विप्रों को भी सन्तृप्त किया था। मैंने आहार और विहार भी सुनिवेशित किये थे ॥ ॥२५॥ दीन और अनाथ लोगों को विशेष रूप से मैंने अनेक भाँति के दान आदि दिये थे। हे तात! मेरे भाग्य से वह सभी कुछ विफल हो गया है ॥२६॥ हे तात! मेरे कोई सन्तति नहीं है, न मेरा कोई सुहृत् है और न कोई मेरा बान्धव ही है। मेरा कोई मित्र नहीं है और न कोई मेरा ऐसा ही है जो कि मेरी और्ध्व दैहिक क्रिया करे अर्थात् मरने के पश्चात् होने वाले श्राद्ध-पिण्डदान

आदि कर्म करे। हे नृपोत्तम ! इससे मुझे यह प्रेतत्व प्राप्त हुआ है और अब यह प्रेतत्व सुस्थिर हो गया है। एकादश, त्रिपक्ष, छै मास का और वार्षिक तथा अन्य प्रति मास में होने वाले श्राद्ध जो कुल सोलह होते हैं जिस मृत जन्तु को ये षोडश श्राद्ध नहीं दिये जाते हैं जो कि प्रेतत्व के मुक्ति के लिये होने के कारण प्रेतश्राद्ध कहे जाते हैं, उसका प्रेतत्व सुस्थिर हो जाया करता है चाहे फिर सैकड़ों ही श्राद्ध क्यों नहीं दिये जावें, उसका प्रेतत्व नहीं जाता है। हे महाराज ! इस प्रकार से आप मेरी दशा को जानकर अब इस प्रेतत्व से मुझे छुड़वाइये और मेरा उद्धार आप करिये ॥२७ से ३०॥

वर्णानाञ्चापि सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते ।
तन्मां तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते ॥३१
यथा मम शुभावाप्तिर्भवेन्नृपवरोत्तम ।
तथा कार्य्यं महावीर्य्य कृपा यदि ममोपरि ।
आत्मनश्च कुरु क्षिप्रं सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥३२
अप्र प्रेता भवन्तीह कृतंरप्यौर्ध्वदैहिकैः ।
पिशाचाश्च भवन्तीह कर्मभि कैश्च तद्वद ॥३३
ब्रह्मस्व देवद्रव्यञ्च स्त्रीणां बालधनं तथा ।
ये हरन्ति नृपश्रेष्ठ प्रेतयोनिं लभन्ति ते ॥३४
तापसीञ्च स्वगोत्राञ्च अगम्याञ्च भजन्ति ये ।
भवन्ति ते महाप्रेता अम्बुजानि हरन्ति ये ॥३५
प्रवालवज्रहर्त्तारो ये च वस्त्रापहारकाः ।
तथा हिरण्यहर्तारः सयुगेऽसम्मुखे हता ॥३६
कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास्तथा साहसिका शठाः ।
पञ्चयज्ञविनिर्मुक्ता महादानरताश्च ये ।
एवमाद्यं महाराज जायन्ते प्रेतयोनय. ॥३७

राजा तो सभी वर्णों का बन्धु होता है—ऐसा इस लोक में कहा जाता है। हे राजेन्द्र ! आप मुझे तार दो—मैं आपको एक परमोत्तम मणिरत्न समर्पित करूँगा ॥३१॥ हे नृपवरोत्तम ! जिस प्रकार से मुझे शुभ गति की प्राप्ति

हो जावे वैसा ही आपको करना चाहिये। हे महावीर्य ! यदि आप मुझ पर कृपा करें तो बहुत ही अच्छा होगा। आप मेरे और्ध्व दैहिक कर्म के साथ अपना भी और्ध्व दैहिक सब कर्म शीघ्र ही करिये ।।३२।। राजा ने कहा— यहाँ पर और्ध्व दैहिक कर्मों के किये जाने पर भी प्रेत कैसे हो जाते हैं और किन कर्मों से पिशाच इस मही मण्डल में हो जाया करते है ? यह सब मुझे आप बतलाइये ।।३३।। प्रेतराज ने कहा—जो ब्राह्मण का धन, देवोत्तर सम्पत्ति स्त्रियों का धन तथा बालकों का धन हरण किया करते हैं, हे नृपश्रेष्ठ ! वे लोग प्रेत की योनि को प्राप्त किया करते हैं ।।३४।। जो लोग किसी तापसी नारी— अपने गोत्र वाली स्त्री और जो गमन करने के अयोग्य नारी हो इनका सेवन किया करता है वे महा प्रेत हो जाते हैं। जो पुरुष कमलों का हरण करते हैं तथा प्रवाल और हीरों का अपहरण किया करते है, वस्त्रों का हरण करते हैं तथा सुवर्ण का हरण करते हैं, जो युद्ध में असंमुख होते हुए हत हो जाते हैं। ।।३५।३६।। किये हुए को नहीं मानने वाले, ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करने वाले, रौद्र, साहसिक, शठ, पाँचों प्रकार के यज्ञों से रहित होकर महादान में रति रखने वाले जो होते हैं वे इन तथा ऐसे ही अन्य कारणों से प्रेत की योनि में उत्पन्न हुआ करते हैं ।।३७।।

कथं मुक्ता भवन्तीह प्रेतत्वात्कृपया वद ।
कथं चापि मया कार्य्यमौर्ध्वदैहिकमात्मनः ।
विधिना केन तत्कार्य्यं सर्वमेतद्वदस्व मे ।।३८
शृणु राजेन्द्र संक्षेपाद्विधि नारायणात्मकम् ।
सुवर्णद्वयमाहृत्य मूर्त्ति तत्र प्रकल्पयेत् ।।३९
नारायणस्य देवस्य सर्वाभरणभूषिताम् ।
पीतवस्त्रयुगच्छन्नां चन्दनागुरुचर्चिताम् ।।४०
स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य प्रयत्नतः ।
पूर्वे च श्रीधरं देवं दक्षिणे मधुसूदनम् ।।४१
पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम् ।
मध्ये पितामहं पूज्य तथा देवं महेश्वरम् ।।४२

राजा ने कहा—यहाँ पर इस प्रेतत्व से कैसे मुक्त हुआ करते हैं ? कृपा कर यह भी मुझे आप बतलाइये। मुझे अपनी और्ध्व दैहिकी क्रिया कैसे, किस विधि से करनी चाहिए—यह भी आप मुझे सभी कुछ बतलाने की कृपा करें॥ ॥३८॥ प्रेतराज ने कहा—हे राजेन्द्र ! आप अब नारायणात्म विधि को सक्षेप से श्रवण करिये। सुवर्ण हय लाकर वहाँ पर दो सोने की मूर्तियों का निर्माण करावे॥ ३९। वे मूर्तियाँ भगवान् नारायण की हैं और इनको समस्त अलङ्कारों से भूषित करे। दो पीत वर्ण के वस्त्र इनको धारण करावे और उस वस्त्र से उन प्रतिमाओं का समाच्छन्न कर देवे तथा फिर चन्दन और अगुरु से उन्हें भली-भाँति चर्चित कर देना चाहिए॥ ४०॥ अनेक प्रकार के तीर्थ जलों से उनका स्नान करावे और प्रयत्न पूर्वक फिर इन प्रतिमाओं का अधिवास करे। पूर्व दिशा में श्रीधर देव को, दक्षिण में मधुसूदन को, पश्चिम में वामनदेव को, उत्तर मे गदाधर देव को, मध्य में पितामह को तथा महेश्वर देव को विराजमान कर अर्चा करनी चाहिए॥४१॥४२।

तत प्रदक्षिणीकृत्य अग्नौ सन्तर्प्य देवता।
घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवास्तथा नृप ॥४३
तत स्नातो विनीतात्मा जपमान समाहित।
नारायणाग्रे विधिवत्स्वा क्रियामौर्ध्वदैहिकीम् ॥४४
आरभेत विनीतात्मा क्रोधलोभविवर्जित.।
कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जन तथा ॥४५
त्रयोदशाना विप्राणा दद्याच्छत्रमुपानहौ।
अगुलीयकरत्नानि भाजनासनभोजनैः ॥४६
सान्नाश्च मोदका देया घटा प्रेतहिताय वै।
शय्यादानमथो दत्त्वा घट प्रेतस्य निर्वपेत् ॥४७
नारायणेति स्व नाम सपुटस्थ समुच्चरेत्।
एव कृत्वाथ विधिवत्तदा शुभफल लभेत् ॥४८
एव मङ्गलपतस्तस्य प्रेतस्य विनतात्मज।
सेनाऽजगामानुपद हस्त्यश्वरथसकुला ॥४९

ततो बले समायाते प्रेतोऽदर्शनतां ययौ ।
तस्माद्वनाद्विनिःसृत्य राजापि स्वपुरं ययौ ॥५०
स्वपुरं स समासाद्य सर्वं तत्प्रेतभाषितम् ।
चकार विधिवच्चैव ऊर्ध्वदेहादिकं विधिम् ॥५१

इसके अनन्तर प्रदक्षिणा करके और अग्नि में देवों को संतृप्त करके अर्थात् घृत, दधि, क्षीर के द्वारा अग्नि में देव प्रीति एवं तृप्ति के निमित्त आहूतियाँ देकर उन्हें भली-भाँति तृप्त करे। हे नृप ! फिर विश्वेदेवाओं को सतृप्त करे ॥४३॥ इसके पश्चात् विनीतात्मा होता हुआ स्नान करे और पूर्णतया सावधान होकर भगवान् नारायण के आगे जाप करता हुआ अपनी विधि पूर्वक और्ध्व दैहिकी क्रिया को अर्थात् देह के त्याग करने के बाद में होने वाली क्रिया को करे। इस कर्म को जब आरम्भ करे तो बहुत ही विनयशील रहे और क्रोध तथा लोभ से रहित होकर रहे। ब्राह्मणों को छत्र (छाता), उपानह (पादत्राण) अँगुलीयक (अँगूठी), रत्न, पात्र (बरतन), आसन और भोजन आदि के द्वारा तृप्त करे और ये विप्र संख्या में तेरह होने चाहिए। प्रेत के हितार्थ अन्न के तथा जल के सहित घट देवे। इसके अनन्तर शय्या का दान देकर प्रेत के घट का निर्वपन करे ॥४४।४५।४६।४७॥ नारायण—यह अपने नाम का उच्चारण करे जो कि सपुटस्थ हो। इस प्रकार से सम्पूर्ण कर्म विधि-विधान पूर्वक करके सदा शुभ फल को प्राप्त करे॥४८॥ हे विनिता के पुत्र ! इस प्रकार से उस प्रेत के द्वारा कहने पर हाथी, रथ और अश्वादि परिपूर्ण सेना वहाँ पर पीछे से आ गई थी ॥४ ॥ इसके अनन्तर उस सेना के वहाँ आते ही वह प्रेत अदृष्ट हो गया था। उस वन से निकल कर वह राजा बभ्रुवाहन भी अपने पुर को चला आया था। अपने नगर में आकर उस राजा ने वह समस्त क्रिया विधिपूर्वक सम्पन्न की थी जो राजा को उस प्रेत ने बतलाई थी और देह के पश्चात् होने वाली क्रिया विधिपूर्वक की थी ॥५०।५१॥

१८-प्रेतत्त्व मोचनार्थ घटादि दान

सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन ।
प्रेतत्वान्मुच्यते येन दानेन सुकृतेन वा ॥१

शृणु दान प्रवक्ष्यामि सर्वाशुभविनाशनम् ॥२
सन्तप्तहाटकमयं घटकं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतं किमन्यैः ॥३
किमेतत्कथितं देव विस्तरेण वदस्व मे ।
भूम्यां प्रक्षिप्यते कस्मात्पञ्चरत्नं कुतो मुखे ॥४
अधस्तादास्तृतदर्भा पादौ याम्यां व्यवस्थितौ ।
किमर्थं मण्डलं भूम्यां गोमयेनोपलिप्यते ॥५

गरुड ने कहा—हे मधुसूदन ! समस्त प्राणियों के हित करने के लिये जिस दान के करने से तथा सुकृत से प्रेतत्व से मुक्ति होती है वह कृपा करके बतलाइये ॥ १ ॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे गरुड ! मैं अब सब अशुभों के विनाश करने वाला दान बतलाता हूँ उसका शुभ श्रवण करो ॥ २ ॥ भली-भाँति तपाये हुए सुवर्ण के घट की रचना करा कर लोक पालो के सहित ब्रह्मा—ईश और भगवान् केशव से युक्त घट को क्षीर—घृत से भरकर और भक्ति-भाव से प्रणाम करके ब्राह्मण को दान करे। यह एक ही बहुत बड़ा दान है फिर अन्य सैकड़ों दानों का कोई भी प्रयोजन ही नहीं रहता है ॥ ३ ॥ गरुड ने कहा—हे देव ! आपने यह कैसा दान अभी मुझे बतलाया है ? इसे आप विस्तार पूर्वक कहिए। किस लिये भूमि में और मुख में पाँच रत्नों का प्रक्षेप किया जाता है ॥ ४ ॥ भूमि पर नीचे दर्भों का आस्तरण तथा याम्य दिशा में शव के पैरों का व्यवस्थित किया जाना तथा भूमि को गोमय से लीपना और मण्डल की रचना आदि का करना यह सब किस लिये किया जाया करता है ? ॥५॥

किमर्थं स्मर्यते विष्णुर्विष्णुसूक्तञ्च पठ्यते ।
किमर्थं पुत्रपौत्राश्च तिष्ठन्ति तस्य चाग्रतः ॥६
किमर्थं दीपदानं स्यात्किमर्थं विष्णुपूजनम् ।
किमर्थमातुरे दानं ददाति द्विजपुङ्गवे ॥७

बन्धुमित्राण्यमित्राणि क्षमापयति तत्कथम् ।
तिला लोहं सुवर्णञ्च कार्पासं लवणं तथा ॥८
सप्तधान्यं क्षितिर्गावो दीयन्ते केन हेतुना ।
कथञ्च म्रियते जन्तुमृ`ते तस्य कुतो गतिः ॥९
अतिवाहं शरीरञ्च कथं विश्रमते तदा ।
सर्वमेतन्मया पृष्टो ब्रूहि लोकहिताय वै ॥१०

उस समय में भगवान् विष्णु का स्मरण तथा विष्णुसूक्त का पाठ किस के लिये किया जाता है। उसके आगे सभी पुत्र और पौत्र क्यों स्थित होते हैं ? ॥ ६ ॥ दीपों का दान और विष्णु का पूजन किस के निमित्त उस समय में किया जाता है ? आतुर द्विज पुङ्गव को किस की प्राप्ति के लिये दान दिया जाया करता है ? ॥ ७ ॥ बन्धु, मित्र और अमित्र सभी किस लिये और क्यों क्षमापन किया करते हैं तिल-लोह—सुवर्ण—कार्पास—लवण—सात धान्य—भूमि—गौ इन सबका दान किस लिये उस समय में किया जाता है। यह जन्तु किस तरह से मृत होता है और उसके देह को त्याग कर मर जाने पर कैसे गति हुआ करती है ? ॥ ८ ॥ ९ ॥ अति वाहन किये हुए उस शरीर को उस समय में क्यों विश्राम दिया जाता है ? हे भगवन् ! मैंने जो ये सब बातें आपसे पूछी हैं इन सबका उत्तर आप कृपा करके समस्त लोक की भलाई के लिये प्रदान करें ॥१०॥

१९-पुत्रोत्पादन फल और मुक्ति के उपाय

साधु पृष्टं त्वया भद्र मानुषाणां हिताय वै ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥१
सम्यग्विभेदरहितं श्रुतिस्मृतिसमुद्धृतम् ।
यन्न दृष्टं सुरैः सेन्द्रैर्योगिभिर्योगचिन्तकैः ॥२
गुह्याद्गुह्यतरं वत्स नाख्यातं कस्यचित्क्वचित् ।
भक्तस्त्वं हि महाभाग तेन ते कथयाम्यहम् ॥३
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे नैव च नैव च ।
येन केनाप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्य च ॥४

तारयेन्नरकात्पुत्रो यदि मोक्षो न विद्यते ।
दाह पुत्रेण कर्त्तव्यो ह्यग्निदाता च पौत्रक ॥५

तिलैर्दर्भैश्च भूम्या वैकुण्ठे तत्र मतिर्भवेत् ।
पञ्चरत्नानि वक्त्रे तु तेन जीव प्ररोहति ॥६

सुलेप्या गोमयंभूमिरितिलान्दर्भांश्च निक्षिपेत् ।
तस्यामेवातुरो मुक्त सर्वं दहति दुष्कृतम् ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे भद्र ! तुमने ये सब बातें बहुत ही ठीक पूछी हैं। इनसे मनुष्यों का बड़ा हित होगा ? अब तुम बहुत ही सावधान होकर श्रवण करो। मैं और्ध्व दैहिक सभी कर्म बतलाता हूँ ॥ १ ॥ भली-भाँति विशेष भेदों से रहित और श्रुति तथा स्मृति से समुद्धृत विषय जिसको इन्द्र के सहित देवों ने तथा योग के चिन्तन करने वाले योगियों ने भी कभी नहीं देखा है। हे वत्स ! यह परम गोपनीय से भी अत्यन्त गोपनीय है। इसे अब तक कभी भी कहीं किसी को नहीं बतलाया गया है। हे महाभाग ! तुम मेरे परम भक्त हो इसीलिये आज मैं तुमको यह सब बतलाता हूँ ॥ २ ॥ ३ ॥ जिसके कोई पुत्र नहीं होता है उसकी स्वर्ग में कोई भी गति किसी भी भाँति नहीं हुआ करती है—यह बिल्कुल पूर्णतया सत्य कथन है। इसलिये जिस किसी भी उपाय से पुत्र के जन्म होने का उपाय अवश्य ही करना चाहिए ॥ ४ ॥ यदि मोक्ष नहीं होती है तो पुत्र नरक से उद्धार कर दिया करता है। दाह का दाह पुत्र को करना चाहिए और पौत्र भी अग्नि देने वाला होता है ॥ ५ ॥ भूमि में तिल और दर्भों के विकरण करने से उस समय वैकुण्ठ में मृतात्मा की बुद्धि हो जाया करती है। पाँच रत्न जो मुख में डाले जाते हैं इससे जीव का प्ररोहण होता है ॥ ६ ॥ गोमय (गोबर) के द्वारा भली-भाँति लीपी हुई भूमि होनी चाहिए फिर उस पर तिल तथा डाभों (कुशा) का निक्षेपण करे। उसी भूमि पर जो सन्निकट मृत्यु वाला आतुर प्राणी है उसको लिटा देना चाहिए। इससे उसके समस्त दुष्कृतों का दाह हो जाता है। अर्थात् सब पाप एवं बुरे कर्म जोकि अपने जीवन में उसने किये हैं दग्ध हो जाया करते हैं ॥७॥

दर्भतूली नयेत्स्वर्ग आतुरं तु न संशयः ।
तिलांस्तत्र क्षिपेद्वाथ दर्भे पूलिकमध्यतः ॥८
सर्वत्र वसुधा पूता यत्र लेपो न विद्यते ।
यत्र लेपः स्थितस्तत्र पुनर्लेपेन शुध्यति ॥९
यातुधानाः पिशाचाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मणाः ।
अलिप्ते ह्यातुरं मुक्तं विशन्त्येते वियोनयः ॥१०
नित्यहोमं तथा श्राद्धं पादशौचं द्विजे तथा ।
मण्डलेन विना भूम्यां कृतमप्यकृत भवेत् ॥११
आतुरो मुच्यते नैव मण्डलेन विना भुवि ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च श्रीर्हुताशन एव च ॥१२
मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात्कुर्वीत मण्डलम् ।
अन्यथा म्रियते यस्तु वृद्धो बालो युवापि वा ॥१३
योन्यन्तरं न गच्छेत् स क्रीड़ते वायुना सह ।
तस्यैव वायुभूतस्य नो श्राद्धं नोदकक्रिया ॥१४

उस आतुर प्राणी को अर्थात् मृत्यु गत जन्तु को वह दर्भ की तूली स्वर्ग में ले जाया करती है—इसमें रञ्च मात्र भी संशय नहीं है। वहाँ पर दर्भों के पुलिकाओं के मध्य में तिलों का भी क्षेपण करे ॥ ८ ॥ जहाँ पर कभी लेपन नहीं हुआ है वह तो सभी भूमि शुद्ध मानी जाती है और जहाँ पर पहिले से भूमि लिपी हुई है वहाँ पर वह पुनः गोमय के द्वारा लेपन करने से ही पूत एवं शुद्ध हुआ करती है ॥ ९ ॥ यातु ध्यान (राक्षस)—पिशाच और राक्षस जोकि क्रूर कर्मों के करने वाले हुआ करते हैं वे बिना लिपे हुए स्थान पर पड़े रहने वाले आतुर के अन्दर प्रवेश कर जाया करते हैं और ये वियोनि हो जाते हैं ॥ १० ॥ नित्य होम—श्राद्ध—द्विज के पादों का शौच बिना मण्डल के भूमि में किया हुआ भी न किया हुआ अर्थात् व्यर्थ हो जाया करता है ॥ ११ ॥ इसलिये आतुर (मृत्युगत) प्राणी को मंडल के बिना भूमि में कभी नहीं छोड़ना चाहिए। ब्रह्मा—विष्णु—रुद्र—श्री और हुताशन (अग्नि देवता) ये सब मंडन में उपस्थित हुआ करते हैं। इसलिये मंडल अवश्य ही करना

चाहिए। बिना मङ्गल के तो जो भी वृद्ध-युवा और बालक मर जाता है वो अन्य तर को नहीं जाता है वहीं पर वायु के साथ क्रीडा करता रहता है। इस प्रकार से उस वायुभूत के लिये न तो कोई श्राद्ध का ही विधान है और न उदक क्रिया ही होती है ॥१२।१३।१४॥

मम स्वेदसमुत्पन्नास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रका ।
असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैं स्थितैं ॥१५
एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणतिलै सम ।
तर्पणे च तथा होमे दत्तो भवति चाक्षय ॥१६
दर्भा रोमसमुत्पन्ना तिला स्वेदेषु नान्यथा ।
प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्व वाप्युपजीवनात् ॥१७
सव्ययज्ञोपवीतेन ब्रह्माद्यास्तृप्तिमाप्नुयु ।
अपसव्येन तृप्यन्ति पितरो देवदवता ॥१८
दर्भमूले स्थिता ब्रह्मा दर्भमध्ये तु केशव ।
दर्भाग्रे शङ्कर विद्यात्त्रयो देवा कुशे स्थिता ॥१९
विप्रा मन्त्रा कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर।
नैते निर्माल्यता यान्ति भोग्यमाना पुन पुन ॥२०
कुशा पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणा प्रेतभाजने ।
मन्त्रा शूद्रे पु पतिताश्चितायाञ्च हुताशन ॥२१

हे तार्क्ष्य ! ये तिल मेरे देह से समुत्पन्न हुए हैं अतएव ये पवित्र करने वाले होते हैं। इन तिलो के वहाँ पर स्थित रहने से सब असुर—दानव और दैत्य वहाँ से भाग जाया करते हैं ॥ १५ ॥ एक ही दिया हुआ तिल सुवर्ण के एक द्रोण परिमाण वाले तिलो के समान होता है। तर्पण तथा होम में दिया हुआ तिल तो अक्षय हो जाया करता है ॥ १६ ॥ ये दर्भ रोमों से समुत्पन्न होने वाले हैं। तिल स्वेदो में होते हैं—इसमें अन्यथा कुछ भी नहीं है। इनके प्रयोग करने की विधि के द्वारा ब्रह्मा ने विश्व का उपजीवन किया था ॥ १७ ॥ सव्य यज्ञोपवीत वाला होकर कर्म करने से ब्रह्माद्य सब तृप्ति को प्राप्त होते हैं। अपसव्य यज्ञोपवीत करके तर्पण—श्राद्ध करने से पितृगण और देव देवता

तृति को प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ दर्भ के मूल में ब्रह्मा स्थित रहा करते हैं और दर्भ के मध्य भाग में भगवान् केशव रहते हैं। दर्भ के अग्र भाग में शङ्कर रहते हैं। इस भाँति कुशा में तीनों देवताओं की स्थिति समझनी चाहिए ॥ १९ ॥ हे खगेश्वर ! कुशा में एक विशेषता और है और वह यह है कि—कुशा—विप्र—मन्त्र—वह्नि और तुलसी ये सब कभी भी निर्माल्य नहीं होते हैं चाहे इनका बार-बार भी भोग्य क्यों न किया जावे ॥ २० ॥ कुशा जब पिंडों पर रख दी जाती है तो वह निर्माल्य हो जाती है और ब्राह्मण प्रेत के भोजन से निर्माल्यता को प्राप्त हो जाया करते हैं। शूद्र के अन्दर पड़े हुए मन्त्र तथा चिता में डाली हुई अग्नि भी निर्माल्य हो जाते हैं ॥२१॥

तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग ।
पञ्चप्रवाहणान्येवं भवाब्धौ मज्जतां सताम् ॥२२
विष्णुरेकादशी गङ्गातुलसीविप्रधेनवः ।
असारे दुर्ग संसारे षट्पदी मुक्तिदायनी ॥२३
तिलाः पवित्रमतुलं दर्भाश्चापि तुलस्यपि ।
निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं प्राप्तमातुरम् ॥२४
हस्ताभ्याञ्च धृतैर्दर्भैस्तोयेन प्रोक्षयेद्भुवम् ।
मृत्युकाले क्षिपेद्दर्भान्कारयेदातुरस्य च ॥२५
दर्भेषु क्षिप्यते योऽसौ दर्भैस्तु परिवेष्टितः ।
विष्णुलोकं स वै याति मन्त्रहीनोऽपि मानवः ॥२६

हे खग ! तुलसी—ब्राह्मण—गौ—विष्णु और एकादशी ये पाँच इस संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए सत्य पुरुषों के प्रवहण (तारक) हुआ करते हैं ॥ २२ ॥ भगवान् विष्णु—एकादशी तिथि—गङ्गा—तुलसी—विप्र और धेनु ये इस सार हीन दुर्ग रूप संसार में षट् पदी अर्थात् छै नामों का समुदाय मुक्ति के देने वाली होती है ॥ २३ ॥ तिल अनुपम पवित्र होते हैं—इसी प्रकार से दर्भ और तुलसी भी परम पवित्र हैं। ये सब दुर्गति को प्राप्त होने वाले आतुर अर्थात् मृत प्राणी को दुर्गति से निवारण कर दिया करते हैं ॥ २४ ॥ हाथों में रक्खे हुए दर्भो से जल लेकर भूमि का प्रोक्षण करना चाहिए। मृत्यु

के समय में आतुर के निकट उन दर्भों को क्षिप्त कर देना चाहिए या आतुर को उन पर डाल देवे ॥ २५ ॥ जो दर्भों पर प्रक्षिप्त कर दिया जाता है और दर्भों से परिवेष्टित होता है वह मानव मन्त्रों से हीन होकर भी सीधा विष्णु लोक को जाया करता है ॥२६॥

दर्भतूलीगत प्राणी संस्थितो भूमिपृष्ठतः ।
प्रायश्चित्तविशुद्धोऽसौ ससारे सारसागरे ॥२७
गोमयेनोपलिप्ते च दर्भस्यास्तरणे स्थिते ।
तत्र दत्तेन दानेन सर्वं पाप व्यपोहति ॥२८
लवण सदृश दिव्य सर्वकामप्रद नृणाम् ।
यस्मादन्नरसा सर्वे नोत्कटा लवण विना ॥२९
पितृणाञ्च प्रिय भाव्य तस्मात्सर्व प्रद भवेत् ।
विष्णुदेहसमुत्पन्नो यतोऽय लवणो रस ॥३०
एतत्सलवण दान तेन शसन्ति योगिन. ।
ब्राह्मण. क्षत्रियो वैश्य· स्त्रीणा शूद्रजनस्य च ॥३१
आतुरस्य यदा प्राणान्नयन्ति वसुधातले ।
लवण तु तदा देय द्वारस्योद्घाटन दिव ॥३२

दर्भों की तूली पर रहने वाला प्राणी जोकि भूमि के पृष्ठ भाग पर स्थित रहता है वह इस सारों के सागर ससार में प्रायश्चित्त से पूर्ण तथा विशुद्ध हो जाता है ॥ २७ ॥ गोमय से लिपे हुए दर्भ के आस्तरण पर स्थित होने पर वहाँ जो भी दान दिया जाता है उससे सम्पूर्ण पापों का व्यपोह (नाश) हो जाता है ॥ २८ ॥ लवण (नमक) के सदृश मनुष्यों का सब कामों के प्रदान करने वाला अन्य दिव्य रस नहीं है । लवण के बिना सब अन्नों के रस उत्कट नहीं हुआ करते हैं ॥ २९ ॥ यह पितृगण को भी परम प्रिय होना चाहिए । इससे यह सर्वप्रद होता है क्योंकि यह लवण रस भगवान् विष्णु के देह से समुत्पन्न होने वाला रस है ॥ ३० ॥ योगी गण लवण के सहित यह दान परम प्रशस्त कहा करते हैं । ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र जन आतुर के जब वसुधा तल में प्राणों को ले जाते हैं उस समय में दिवलोक के द्वार को उद्घाटित करने के लिए लवण देना चाहिए ॥३१।३२॥

२०–प्रेतसौख्यकर दान

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि दानानां दानमुत्तमम् ।
येन दत्तेन प्रीणन्ति भूर्भुवःस्वरिति क्रमात् ॥१
ब्रह्माद्या ऋषयः सर्वे शङ्कराद्यमरास्तथा ।
इन्द्राद्या देवताः सर्वे दानाद्‌ प्रीतिमाप्नुयुः ॥२
देयमेतन्महादानं प्रेतोद्धरणहेतवे ।
रुद्रलोके चिरं वासस्ततो राजा भवेदिह ॥३
रूपवान्सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः ।
विहाय यमलोकं सः स्वर्गं तार्क्ष्य प्रगच्छति ॥४
तिलांश्च गां क्षितिं हेम यो ददाति द्विजोत्तमे ।
तस्य जन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥५
तिला गावो महादानं महापातकनाशनम् ।
तद्द्वयं दीयते विप्रे नान्यवर्णे कदाचन ॥६
कल्पितं दीयते विप्रे तिला गावश्च मेदिनी ।
अन्येषु नैव वर्णेषु पोष्यवर्गे कदाचन ॥७

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! अब मैं सब दानों में उत्तम दान बतलाता हूँ तुम उसका श्रवण करो । जिस के देने से भूः—भुवः—स्वः—ये क्रम से प्रसन्न एवं संतृप्त होते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मादि सब ऋषिगण—शङ्करादि समस्त अमरगण और इन्द्र आदि सब देवता ये सभी दान से प्रीति को प्राप्त हुआ करते हैं ॥ २ ॥ प्रेतत्व के उद्धार के लिये यह महा दान अवश्य ही देना चाहिए । इससे रुद्र लोक में चिर काल पर्यन्त निवास होता है और इसके पश्चात् संसार में राजा हुआ करता है ॥ ३ ॥ हे तार्क्ष्य ! परम रूप—लावण्य वाला—सुन्दर भाग्य से समन्वित—वाग्मी (बोलने वाला)—श्री सम्पन्न और अतुल विक्रम वाला वह यमलोक का त्याग करके सीधा स्वर्ग को जाता है। ॥ ४ ॥ जो किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को तिल—गौ—भूमि—सुवर्ण का दान करता है उसके जन्म जन्मान्तर के इकट्ठे हुए पाप उसी क्षण में नष्ट हो जाया

करते हैं ॥ ५ ॥ तिल और गौ—ये महादान होते हैं जोकि साधारण ही पाप नहीं प्रत्युत महान् पातकों के पापों को नाश कर दिया करते हैं। ये दोनों पदार्थों का दान केवल ब्राह्मण को ही देने चाहिए। अन्य वर्ण वाले को कभी भी न देवे ॥ ६ ॥ तिल–गौ—पृथिवी इनका सङ्कल्प करके विप्र को दान करे। अन्य वर्णों वालों को तथा अपने पोषण के साथ किसी वर्ग को कभी भी इन उपर्युक्त वस्तुओं का दान नहीं देवे ॥७॥

पोष्यवर्गे तथा स्त्रीषु दान देयमकल्पितम् ।
आतुरे चोपरागे तु दान देयमशेषत ॥८
आतुरे दीयते दान यावद्देहावतिष्ठति ।
जीवता च पुनर्दत्तमुपतिष्ठत्यसवृतम् ॥९
सत्य सत्य पुन सत्य तद्दत्त विकलेन्द्रिये ।
अनुज्ञातुमोदते पुत्र तस्तु दातस्यनन्तकम् ॥१०
अतो दद्यात्सुपुत्रेण यावज्जीवत्यसौ चिरम् ।
अतिवाहस्तथा प्रेतो भोगाश्च लभते यत ॥११
अस्वस्थातुरकाले तु देहपाते क्षितिस्थिते ।
देहे तथातिवाहस्य परस' प्रीणन भवेत् ॥१२
तिल लोह हिरण्यञ्च कार्पासं लवण तथा ।
सप्तधान्य क्षितिर्गाव एकैक पावन स्मृतम् ॥१३
तारयन्ति नर गावस्त्रिविधाच्चैव पातकात् ।
हेमदानात्सुख स्वर्गे भूमिदानान्नृपो भवेत् ।
हेमभूमिप्रदानाच्च न पीडा नरके भवेत् ॥१४

पोष्य वर्ग को और स्त्रियों को जोभी कुछ दान देवे वह कल्पित न करके ही देना चाहिए। आतुर को और ग्रहण के समय में तो सभी को पूर्ण दान दे देने चाहिए ॥ ८ ॥ आतुर में जो दान दिया जावे वह तभी तक देवे जब तक यह देह उपस्थित रहे। जीवित रहते हुए के द्वारा पुन दिया हुआ असवृत होकर उपस्थित होता है ॥ ९ ॥ यह सर्वथा सत्य है और पूर्णतया सत्य है कि विकलेन्द्रिय को वह दिया हुआ जोकि अनुमोदित किया जाता है अनन्त

दान होता है ॥ १० ॥ इसलिये सत्पुत्र के द्वारा जब तक वह जीवित रहा करता है तभी तक दान देना चाहिए जिससे कि अतिवाह प्रेत भोगों को प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ अस्वस्थ और आतुर के समय में—देह के पात हो जाने पर तथा देह के भूमि पर उतार लेने पर अतिवाह का आगे प्रीणन (संतृप्ति) होता है ॥ १२ ॥ तिल—लोह—सुवर्ण—कार्पास (वस्त्र)—लवण—सातों प्रकार के धान्य—भूमि—गौ ये सब एक से एक अधिक पावन दान होते हैं। ऐसा कहा गया है ॥ १३ ॥ गौ तीन प्रकार के पातक से मनुष्य को तार दिया करती है। हेम (सोना) के दान से स्वर्ग में सुख प्राप्त होता है और भूमि के दान से नृप होता है। हेम—भूमि के दान देने से नरक में कोई पीड़ा नहीं होती है ॥१४॥

सर्वेऽपि यमदूताश्च यमरूपातिभीषणाः ।
सर्वे ते वरदा यान्ति सप्तधान्येन प्रीणिताः ॥१५
विष्णोः स्मरणमात्रेण प्राप्यते परमाङ्गतिम् ।
भूमिस्थं पितरं दृष्ट्वा अर्द्धोन्मीलितलोचनम् ॥१६
तस्मिन्काले सुतो यस्तु सर्वदानानि दापयेत् ।
स्वस्थानाच्चलिते श्वासे दानं यच्चातुरे ददेत् ॥१७
अश्वमेधो महायज्ञो कलां नार्हति षोडशीम् ।
धर्मात्मा स च पुत्रोऽपि देवताभिः प्रपूज्यते ॥१८
दापयेद्यस्तु दानानि ह्यातुरं पितरं प्रति ।
लोहदानञ्च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना ॥१९
यम भीमं स नाप्नोति न गच्छेत्तस्य वेश्मनि ।
कुठारं मुसलं दण्डः खड्गश्च छुरिका तथा ॥२०
एतानि यमहस्तेषु निग्रहे पापकर्मणाम् ।
तस्माल्लोहस्य दानं तु आतुरे सततं ददेत् ॥२१

स्वर्ग में भी यम के दूत यम के जैसे स्वरूप वाले और महान् भीषण होते हैं किन्तु वे सब सात प्रकार के धान्य के दान से परम प्रसन्न होकर वर देने वाले हो जाया करते हैं ॥ १५ ॥ भगवान् विष्णु के स्मरण मात्र कर लेने

से परम गति की प्राप्ति को जाया करती है। भूमि पर स्थित आधी आँखें मुँदी हुई और आधी खुली हुई आँखों वाले अपने पिता को देखकर उस समय में जो पुत्र उपर्युक्त सभी दानों को दिलाता है तथा श्वास के अपने स्थान को छोड़कर वहाँ चल देने पर जो उस आतुर को दशा में दान देता है या उस समय किसी आतुर (दुखिया) को दान देता है उस दान की बराबरी क्या उसकी सोलहवीं कला को भी महान् अश्वमेध यज्ञ भी प्राप्त करने के योग्य नहीं होता है। वह पुत्र भी परम धर्मात्मा है और देवों के द्वारा पूजित होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ जो अपने आतुर (मरणासन्न) पिता के प्रति दानों को दिलवाता है लोह का दान भूमि युक्त हाथ से देना चाहिए ॥ १६ ॥ वह अति भीम यम को प्राप्त नहीं होता है और उसके घर में अर्थात् यमपुरी में भी नहीं जाया करता है। कुठार—मुसल—दण्ड—खड्ग—छुरिका ये सब आयुध यमराज के हाथों में पाप कर्म करने वालों के निग्रह करने के लिये रहा करते हैं। इसलिये आतुर के प्रति लोह का दान निरन्तर देना चाहिए ॥२०॥२१॥

यमायुधानां सन्तुष्टयै दानमेतदुदीरितम् ।
गर्भस्था शिशवो ये तु युवानः स्थविरास्तथा ॥२२
एभिर्दानविशेषैस्तु निर्दहेयुः स्वपातकम् ।
कुरिणा सावसूश्यापा शण्डा मर्कास्त्वनुर्वरा ॥
शबला श्यामदूताश्च लोहदानेन प्रीणिता ॥२३
पुत्रा पौत्रास्तथा बन्धु सगोत्र सुहृद स्त्रियः ।
ददन्ति नातुरे दानं ब्रह्मघ्ना सुसमाहितम् ॥२४
पञ्चत्वे भूमियुक्तस्य शृणु तस्य च या गतिः ।
प्रतिवाह पुनः प्रेतो वर्षस्य सुकृतं लभेत् ॥२५
पादादूर्ध्वं कटी यावद् तावद् ब्रह्माधितिष्ठति ।
ग्रीवा यावद्धरिर्नाभि शरीरे मनुजस्य तु ॥२६
मस्तके तिष्ठते रुद्रो व्यक्ताव्यक्तो महेश्वर ।
एकमूर्तेस्त्रयो भेदा ब्रह्मविष्णु महेश्वरा ॥२७
अहं प्राणिशरीरस्थो भूतग्रामचतुष्टये ।
धर्माधर्म मतिं दद्यात्सुखदुःखे कृताकृते ॥२८

जन्तोर्बुद्धिं समास्थाय पूर्वकर्माधिवासिताम् ।
अहमेव तथा जीवान्प्रेरयामि च कर्मसु ॥२९
स्वर्गं मोक्षञ्च नरकं यान्ति च प्राणिनस्तथा ।
स्वर्ग स्थनरकस्थानां श्राद्धं राप्यायनं भवेत् ॥
तस्माच्छ्राद्धानि कुर्वीत विविधानि विचक्षणः ॥३०

यमराज के आयुधों की सन्तुष्टि के लिये यह दान बताया गया है। गर्भ में स्थित रहने वाले बच्चे—शिशु—युवा तथा वृद्ध इनके द्वारा विशेष दानों से अपने पातकों का निर्दहन करना चाहिए। कुरिणा—सार्व सूत्राप—शण्ड—मर्क—अनुर्वर—शवल और श्याम दूत लोह के दान से परम प्रसन्न होते हैं॥ २२ । २३ ॥ पुत्र—पौत्र—बन्धु—सगोत्र—सुहृद और स्त्रियाँ जो भी इनमें से आतुर के लिये धन नहीं दिया करते है वे ब्रह्मघ्न होते है। यह दान भी सुखमाहित होना चाहिए अर्थात् विधिवत् सावधानी से दिये जावे ॥ २४ ॥ पञ्चत्व प्राप्त होने पर अर्थात् मर जाने पर उस भूमि से युक्त की जो गति होती है उसका श्रवण करो वह अतिवाह प्रेत एक वर्ष के सुकृत को प्राप्त किया करता है ॥ २५ ॥ पैरों से ऊपर कटि पर्यन्त ब्रह्मा अधिष्ठित रहते हैं। कमर से ऊपर ग्रीवा तक अर्थात् नाभि से लेकर गरदन पर्यन्त मनुष्य के शरीर में हरि अधिष्ठित रहा करते हैं॥ २६ ॥ व्यक्त और अव्यक्त महेश्वर रुद्र मस्तक में स्थित रहते हैं। सिद्धान्ततः इन तीनों की प्रतिमाऐं ही पृथक् २ हैं वैसे ये तीनों ही एक हैं। तीन मूर्त्तियों के स्वरूप में जब ये अलग २ होते है तो ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर ये इनके तीन नाम हो जाते हैं ॥ २७ ॥ मैं प्राणियों के शरीर में स्थित रहता हूँ। भूत ग्राम चतुष्टय में अर्थात् चार प्रकार के भूतों के समुदाय में मैं धर्म—अधर्म में—सुख-दुःख में और कृत-अकृत में मति देता हूँ॥ २८ ॥ पूर्व कर्मों के द्वारा अधिवासित जन्तु की बुद्धि की समास्थित करके मैं ही स्वयं कर्मों के करने में उस भाँति से जीवों को प्रेरणा दिया करता हूँ ॥ २९ ॥ इससे प्राणी वर्ग फिर स्वर्ग—मोक्ष और नरक में प्राप्त हुआ करते हैं। जो स्वर्ग में स्थित रहते हैं अथवा नरकों में वेदना सहन किया करते हैं उन सबको श्राद्धों के द्वारा सन्तृप्ति हुआ करती है। अतएव विचक्षण पुरुष को विविध भाँति के शास्त्रोक्त श्राद्ध अवश्य ही करने चाहिए ॥३०॥

मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामन ।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्ध कल्किस्तथैव च ॥३१
एतानि दश नामानि स्मर्त्तव्यानि सदा बुधै ।
स्वर्गं व स वै याति च्युत स्वर्गाच्च मानव ॥३२
लब्ध्वा सुखञ्च वित्तञ्च दयादाक्षिण्यसयुत ।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो जीवेत् स शरदा शतम् ॥३३
आतुरे च ददेन्न्यास विष्णुपूजाञ्च कारयेत् ।
अष्टाक्षर महामन्त्र जपेद्वा द्वादशाक्षरम् ॥३४
पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च नैवेद्यैर्घृतपाचितै ।
तथा गन्धैश्च धूपैश्च श्रुतिसूक्तैरनेकश ॥३५
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णु स्वजनबान्धवा ।
यत्र विष्णु न पश्यामि तत्र मे किं प्रयोजनम् ॥३६
जले विष्णु स्थले विष्णुर्विष्णु पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णु सर्वं विष्णुमय जगत् ॥३७
वयमापो वय पृथ्वी वय दर्भा वय तिला ।
वय गावो वय राजा वय वायुर्वय प्रजा. ॥३८

मत्स्य—कूर्म-वराह—नरसिंह—वामन-राम-श्रीराम-कृष्ण-बुद्ध और कल्कि ये दशावतारों के दश नामो का बुधों को सदा स्मरण करना चाहिए। वह मानव स्वर्ग से च्युत होता हुआ भी पुन स्वर्ग को ही जाया करता है। ॥ ३१ । ३२ ॥ वह पुरुष सुख और सम्पत्ति को प्राप्त करके दया एव दाक्षिण्य से युक्त होता हुआ पुत्र एव पौत्र आदि से समन्वित होकर सौ वर्ष की पूर्ण आयु का भोग करके जीवित रहा करता है ॥ ३३ ॥ आतुर मे न्यास देवे और श्री विष्णु का पूजन करावे । अष्टाक्षर मन्त्र अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) का जाप करे ॥ ३४ ॥ घृत मे परिपाचित नैवेद्यो के द्वारा और शुक्ल वर्ण के सुगन्धित पुष्पो से-गन्ध-धूप और अनेक श्रुतयुक्त सूक्तो के द्वारा पूजनार्चन करना चाहिए ॥ ३५ ॥ विष्णु भगवान् ही माता हैं और विष्णु ही पिता हैं तथा स्वजन एव बान्धव भी विष्णु ही हैं। जहाँ पर विष्णु

का दर्शन मैं नहीं करता हूँ वहाँ मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥ ३६ ॥ जल में—स्थल में—पर्वतों की चोटियों में—ज्वाला माला कुल में सर्वत्र भगवान् विष्णु विद्यमान हैं और यह समस्त जगत् ही पूर्ण विष्णुमय है अर्थात् विष्णु के ही स्वरूप वाला है। हमही जल-पृथ्वी-दर्भ-तिल—गौ-राजा—वायु और प्रजा हैं अर्थात् ये विभिन्न स्वरूप में हम ही विद्यमान हैं ॥३७॥३८॥

वयं हेम वयं धान्यं वयं मधु वयं घृतम् ।
वयं विप्रा वयं देवा वयश्चैव स्वभूर्भुवः ॥३६

अहं दाता अहं ग्राही अहं याजी अहं क्रतुः ।
अहं कर्त्ता ह्यहं हर्त्ता अहं धर्मो अहंगुरुः ॥४०

धर्माधर्मे मतिं दद्यां कर्मभिस्तु शुभाशुभैः ।
यत्कर्म कुरुते क्वापि पूर्वजन्मार्जितं खग ॥४१

धर्मे चिन्तामहं कर्त्ता ह्यधर्मे यम एव च ।
यतीनां कुरुते सोऽपि धर्मे मुक्तिं ददाम्यहम् ॥४२

मनुजानां हितं तार्क्ष्य अन्ते वैतरणी नदी ।
तया निहत्य पापौघं विष्णुलोकं स गच्छति ॥४३

यह सुवर्ण के स्वरूप में भी हम हैं-धान्य-मधु-घृत-विप्र—देवगण और भूः—भुवः—और स्वः—यह सब भी हम ही हैं। अर्थात् इन विभिन्न स्वरूपों में स्थित होकर हम ही दिखलाई दिया करते हैं। दान देने वाला—दानों का ग्रहण करने वाला—यज्ञों का यजन कर्त्ता—यज्ञ—कर्त्ता—हर्त्ता—धर्म और गुरु ये सभी मैं ही हूँ। इस सब कुछ कथन का तात्पर्य यही है कि इस जगत् में जो भी कुछ जिस रूप में स्थित है वह सभी मेरा ही स्वरूप है ॥ ३६ ॥ ४० ॥ हे खग ! जीवों के शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार मैं ही धर्म और अधर्म में बुद्धि को प्रेरित किया करता हूँ। जो भी कोई कुछ कर्म किया करता है वह अपने पूर्व जन्म में जो अर्जित करता है उसी के अनुसार करता है। धर्म में मैं चिन्ता का कर्त्ता हूँ और अधर्म में यमराज करता है। वह भी यतियों का करता है। मैं धर्म में मुक्ति देता हूँ ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे

तार्क्ष्य ! अन्त में मनुष्यों का हित वैतरणी नहीं है। उसके द्वारा पापों का निहन न करके वह विष्णु लोक को प्राप्त हुआ करता है ॥४३॥

बालत्वे यच्च कौमारे वय परिणतौ तथा।
पूर्वावस्थाकृत यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि ॥४४
यन्निशाया तथा प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः।
सन्ध्ययोर्यत्कृत पाप कर्मणा मनसा गिरा ॥४५
दत्त्वा वर मकृदपि कपिला सर्वकामिकाम्।
उद्धरेदन्तकाले सा ह्यात्मान पापसञ्चयात् ॥४६
गावो ममाग्रत. सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठत।
गावो मे हृदये नित्य गवा मध्ये वसाम्यहम् ॥४७
या लक्ष्मी सर्वभूताना या च देवे व्यवस्थिता।
धेनुरूपेग सा देवी मम पाप व्यपोहतु ॥४८

बाल भाव मे जो कुछ किया है तथा कौमारावस्था मे और अवस्था के परिपाक होने की दशा मे अर्थात् वृद्धावस्था मे जो कुछ किया है। पूर्व अवस्था मे और अन्य पहिले जन्म जन्मान्तरों में जो भी कुछ किया है। रात्रि मे—प्रात काल मे—मध्याह्न और अपराह्न मे जो भी कुछ किया है तथा दोनो सन्धि कालो मे जो भी कुछ मन-वाणी और कर्मों के द्वारा किया है इन सभी प्रकार के पापो के सञ्चय से मनुष्य उद्धार की प्राप्ति कर लेता है यदि उसने अन्तकाल मे परम श्रेष्ठ समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली कपिला गौ का दान कर दिया है। वह अपनी आत्मा का सब पाप कर्मों से उद्धार कर लिया करता है। वही गौ वैतरणी से उद्धार कर देती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ गौऐं मेरे आगे रहा करती हैं और गौऐं ही मेरे पीठ पीछे होवें। गौऐं मेरे सदा हृदय में नित्य ही निवास करती हैं और मैं गौओं के ही मध्य में निवास करता हूँ। जो लक्ष्मी समस्त प्राणियों की है और जो देव में व्यवस्थित है वही धेनुरूप से देवी मेरे सम्पूर्ण पापो का व्यपोहन करे। इस प्रकार से गौ के दान के समय मे चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से परम श्रेय होता है। ॥४७॥४८॥

२१—शारीरिक स्थान निर्णय और चतुर्विध शरीर

ये नराः पापसयुक्तास्ते गच्छन्ति यमालयम् ।
अन्तकाले च गौर्दत्ता ह्यनन्तफलदा भवेत् ॥१
पादक्रमप्रमाणाब्दं स्वर्गे वसति भूमिदः ।
अश्वारूढाश्च ते यान्ति ददते ये ह्युपानहौ ॥२
अत्यातपश्रमयुता दह्यन्ते यत्र मानवाः ।
छत्रदानेन वै प्रेता विचरन्ति यथासुखम् ॥३
तमुद्दिश्य ददेदन्न तेन चाप्यायितो भवेत् ।
अन्धकारे महाघोरे अमूर्त्ते लक्ष्यवर्जिते ॥
उद्योतेनैव ते यान्ति दीपदानेन मानवाः ॥४
आश्विने कार्त्तिके मासि माघे मासि मृताश्च ये ।
चतुर्दश्याञ्च दीयेत दीपदान सुखाय वै ॥५
प्रत्यहञ्च प्रदातव्य मार्गेषु विषमे नरैः ।
यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥६
कुले मार्गे च शुद्धात्मा प्रकाशत्वञ्च गच्छति ।
ज्योतिषामपि पूज्योऽसौ दीपदानरतो नरः ॥७

श्री भगवान् ने कहा—जो मनुष्य पाप कर्मो से युक्त हुआ करते हैं वे यमालय को जाते हैं। अन्तकाल में दान की हुई गौ अनन्त फल प्रदान करने वाली होती है ॥ १ ॥ भूमि के दान करने वाला पुरुष पैरों के क्रम के प्रमाण वाले वर्षो तक स्वर्ग में निवास किया करता है। जो उपानहों का दान करते हैं वे जन्तु अश्व पर आरूढ़ होते हुए परलोक में जाया करते हैं ॥ २ ॥ जिस मार्ग में अत्यन्त उग्र आतप से मानव दाह को प्राप्त किया करते हैं और श्रम से अति श्रान्त हो जाते है उसमें छत्र के दान करने से प्रेत गण सुखपूर्वक विचरण किया करते हैं ॥ ३ ॥ उसका उद्देश्य करके अन्न का दान करना चाहिए उससे प्रेत आप्यायित (सन्तृप्त) होता है। दीपों के दान करने से मनुष्य उस महान् घोर लक्ष्य से हीन अमूर्त्त अन्धकार में प्रकाश से युक्त होकर यात्रा किया

करते हैं ॥ ४ ॥ जो आश्विन—कार्त्तिक और माघ मास में मृत्युगत होते हैं उनके सुख प्राप्त करने के लिये चतुर्दशी के दिन में दीप दान करना चाहिए ॥ ५ ॥ विषम मे मनुष्यों के द्वारा मार्गों में दानादि। प्रेत के सुख की चाह से जब तक वर्ष पूर्ण हो दीप दान करना चाहिए ॥ ६ ॥ कुल में और मार्ग में जो शुद्ध आत्मा वाला होता है, जो मनुष्य दीपों के दान में रति रखने वाला है वह ज्योतियों में भी परम पूज्य हुआ करता है ॥७॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो दीपो देवागारे द्विजालये ।
यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे ॥
स गच्छति महामार्गं सर्वक्लेशविवर्जितः ॥८
आसनं भाजनं भोज्यं दीयते च द्विजातये ।
सुखेन भुञ्जन् तन्नु सुखं गच्छति वै पथि ॥९
कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम् ।
भाजनं चान्नदानञ्च कुसुमं चाङ्गुलीयकम् ॥१०
एकादशाह दातव्यं प्रेतो याति पराङ्गतिम् ।
त्रयोदशपदानीत्थं प्रेतस्य शुभमिच्छता ॥११
दातव्यानि यथाशक्ति प्रेतोऽसौ प्रोणितो भवेत् ।
भाजनानि पदञ्चैव कुम्भांश्चैव त्रयोदश ॥१२
मुद्रिका वस्त्रयुग्मञ्च तथा छत्रमुपानहौ ।
एतावन्तः पदार्था हि प्रेतोद्देशेन दापयेत् ॥१३
वृषोत्सर्गे कृते तार्क्ष्य प्रेतो याति पराङ्गतिम् ।
योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे यदि दापयेत् ॥१४
स्वमहिम्नोऽनुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात् ।
नानालोकान्विचरति महिषीं यो ददाति च ॥१५

इस लोक में जो कोई मनुष्य पूर्व की ओर मुख वाला या उत्तर की ओर मुख वाला दीप किसी देवालय में या द्विजालय में दिया करता है चाहे वह मृत के उद्देश्य से हो या जीवित रहते हुए अपने ही कल्याण के लिये हो वह उस महामार्ग की यात्रा में सब प्रकार के क्लेशों से रहित होता हुआ यात्रा

किया करता है ।। ८ ।। आसन—भोजन—भाजन द्विजाति के लिये दानों में दिये जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है। कि सुख से खाता हुआ मार्ग में जाया करता है ।। ९ ।। कमण्डलु के दान करने से तृषित होकर जल पीया करता है। भाजन (पात्र) और अन्न का दान—कुसुम तथा अँगूठी का दान—ग्यारहवें दिन में करना चाहिए। इससे प्रेत परम गति को प्राप्त किया करता है। तेरह पद इस प्रकार से प्रेत के कल्पना की इच्छा से देने चाहिए और इन पदों को अपनी शक्ति के अनुसार ठीक विधि से देवे। इनके देने से प्रेत परम प्रसन्न होता है। भाजन—पद और तेरह कुम्भ मुद्रिका—दो वस्त्र—छत्र—उपानह (पदत्राण) ये इतने पदार्थ हैं जो कि प्रेत के उद्देश्य से दिलाने चाहिए ।। १० ।। ११ ।। १२ ।। १३ ।। हे तार्क्ष्य ! वृषोत्सर्ग के करने पर प्रेत परम गति को प्राप्त होता है जो अश्व—रथ अथवा गज ब्राह्मण को दान में देता है वह अपनी महिमा के अनुरूप उस-उसी सुख की प्राप्ति किया करता है। जो महिषी को देता है वह नाना लोकों में विचरण किया करता है ।।१४।।१५।।

यमवाहस्य जननी महिषी सुगतिप्रदा ।
ताम्बूलं पुष्पदानेन याम्यानां प्रीतिवर्द्धनम् ।।१६

तेन संप्रीणिताः सर्वे तस्मिन्क्लेशं न कुर्वते ।
गोभूतिलहिरण्यादिदानानि निजशक्तितः ।।१७

मृतोद्देशेन यो दद्याज्जलपात्रञ्च मृण्मयम् ।
उदपात्रसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ।।१८

यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः ।
न भीषयन्ति तं तार्क्ष्य वस्त्रदाने कृते सति ।।१९

मार्गे वै गम्यमानस्तु तृषार्त्तः श्रमपीड़ितः ।
घटान्न दानयोगेन सुखी भवति निश्चितम् ।।२०

शय्यातूलीपट्टयुता दद्याद्वै द्विजातये ।
तया प्रेतत्वमुक्तोऽसौ मोदते सह दैवतैः ।।२१

यमराज के वाहन (महिष) भैंसा की महिषी (भैंस) माता होती है अतएव यह सुगति के प्रदान करने वाली होती है। ताम्बूल और पुष्पों के दान से यमल व के यात्रियों के सुख की वृद्धि होती है तथा वे परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥ १६ ॥ इससे वे सभी प्रोणित अर्थात् प्रसन्न होकर उस मार्ग में कोई भी क्लेश प्राप्त नहीं किया करते हैं। गौ—भूमि-तिल-सुवर्ण आदि के दान अपनी पूर्ण शक्ति से मृतक के उद्देश्य से दिया करता है और मिट्टी का सुन्दर पात्र जल से पूर्ण करके दान किया करता है वह एक सहस्र जल के पात्रों के फल को प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ यमराज के दूत महान् रौद्र अर्थात् भयानक स्वरूप वाले होते हैं-कराल और कृष्ण एवं पिङ्गल वर्ण वाले हुआ करते हैं। हे तार्क्ष्य ! वस्त्रों के दान करने पर वे महान् भीषण यम के दूत उसको नहीं डराया करते हैं ॥ १६ ॥ उस यम पुरी के महान् विशाल मार्ग में गम्यमान (जाता हुआ) प्यास से दुःखित और श्रम से पीडित होता है उसके लिये जो घट और अन्न का दान किया जाता है उससे वह निश्चित रूप से सुखी होता है ॥ २० ॥ तूली और पट्ट से युक्त शय्या देव द्विजाति के लिये दान में देनी चाहिए उससे यह प्रेतत्व की योनि से मुक्त होकर देवों के साथ आनन्द का लाभ किया करता है ॥२१॥

एतत्ते कथितं तार्क्ष्य दानमन्त्येष्टिकर्मजम् ।
अधुना कथयिष्येऽह देहे मृत्युप्रवेशनम् ॥२२
जातस्य मर्त्यलोकेऽस्मिन्प्राणिनो मरणं ध्रुवम् ।
पूर्वकाले मृतानां तु प्राणिनाञ्च खगेश्वर ॥२३
सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छत्यस्य तद्गलात् ।
नवद्वारै रोमभिश्च जातानां तालुरन्ध्रकात् ॥२४
पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम् ।
कुणपं पतते पश्चान्निर्गते मरुदीश्वरे ॥२५
कालाहतं पतत्येव निराधारो यथा द्रुमः ।
पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव तथाप्सु च ॥२६

तेजस्तेजसि लीयेत समीरे च समीरणः।
आकाशे च तथाकाशं सर्वव्यापी तु शङ्करे ॥२७
तत्र कामादयः पञ्च काये पञ्चेन्द्रियाणि च।
एते तार्क्ष्य समाख्याता देहे तिष्ठन्ति तस्कराः ॥२८

हे तार्क्ष्य ! यह तुम्हारे सामने अन्त्येष्टि कर्म में उत्पन्न दान का वर्णन सब कर दिया है। अब इसके अनन्तर देह में मृत्यु के प्रवेश को बतलाता हूँ। ॥ २२ ॥ यह अटल सिद्धान्त है कि जो मनुष्य लोक में उत्पन्न हुआ है उसकी मौत निश्चित रूप से होती है। हे खगेश्वर ! पूर्व काल में मृत प्राणियों का यह वायु सूक्ष्म होकर उसके कण्ठ से निकल जाया करता है। जिन्होंने जन्म ग्रहण किया है उनके प्राण वायु निकलने के अन्य भी मार्ग हैं। इस देह में जो द्वार हैं—रोम हैं और तालु रन्ध्र है—इनसे भी प्राण प्रयाण किया करते हैं ॥२३॥ ॥ २४ ॥ जो पापी होते हैं और घोर पाप कर्मों के करने वाले हैं उनका जीव अपान मार्ग से निश्चय ही निकलता है। इस वायु के स्वामी अर्थात् प्राण के निकल जाने पर पीछे यह कुणप (मृत देह—शव) पड़ा रहा करता है ॥ २५ ॥ काल से आहत होकर अर्थात् काल का कवलित होता हुआ यह मृत देह बिना आधार वाले वृक्ष की भाँति गिर जाता है। इस पाँच भौतिक शरीर का पृथिवी तत्व का भाग तो इस पृथ्वी में लीन हो जाता है—जल का भाग जाकर जल में लय होता है। तेज-तेज में—वायु-वायु में और आकाश-आकाश में लीन हो जाता है। सर्व व्यापी शङ्कर में लीन होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस शरीर में कामादि पाँच और पाँच इन्द्रियाँ हैं। हे तार्क्ष्य ! ये इस देह में तस्कर बताये गये हैं ॥२८॥

कामक्रोधौ ह्यहङ्कारो मनस्तत्रैव नायकः।
संहारकश्च कालोऽसौ पुण्यपापेन संयुतः ॥२९
जगतश्च स्वरूपञ्च निर्मितं स्वेन कर्मणा।
गच्छेद्देहं पुनः सोऽपि सुकृतैर्दुष्कृतैर्युतम् ॥३०
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं सकलैर्विषयैः सह।
प्रविवेश नवे गेहे गृहे दग्धे यथा गृही ॥३१

शरीरे ये समासीना सम्भवे सर्वधातवः ।
मूत्र पुरीष तद्योगाद्ये चान्ये धातवस्तथा ॥३२
पित्त श्लेष्मा तथा मज्जा मास मेदस्तथैव च ।
अस्थि शुक्रञ्च स्नायुश्च देहेन सह दह्यते ॥३३
एतेषा कथिता तार्क्ष्य सस्थिति सर्वदेहिनाम् ।
वक्ष्यामि पुनस्तेषा शरीरञ्च यथा भवेत् ॥३४
एकस्तम्भस्नायुबद्ध स्थूणाद्वयविभूषितम् ।
इन्द्रियैश्च समायुक्त नवद्वार शरीरकम् ॥३५

काम–क्रोध और अहङ्कार इनमे यह मन इन सबका नायक (मुखिया) होता है। यह काल सबका सहारक होता है जो पुण्य और पाप से सयुत होता है ॥ २९ ॥ इस सम्पूर्ण जगत् का स्वरूप अपने ही कर्म के द्वारा निर्मित हुआ है। इसके पश्चात् यह जीवात्मा इस शरीर को त्याग कर पुन यह सुकृत तथा दुष्कृतो युक्त अन्य देह को प्राप्त किया करता है ॥ ३० ॥ जिस तरह कोई गृही अपने पहिले घर के जल जाने पर तथा अग्नि से दग्ध हो जाने पर रहने के लिये किसी नवीन घर में प्रवेश किया करता है वैसे ही समस्त विषयो के सहित पाँचो इन्द्रियों स युक्त यह जीवात्मा भी नूतन देह मे प्रवेश किया करता है ॥ ३१ ॥ समुत्पन्न शरीर मे समस्त धातुऐं समास्थित रहा करती हैं—मूत्र और मल भी रहता है तथा उसके योग से अन्य जो धातु हैं वे भी रहा करती हैं ॥ ३२ ॥ पित्त-श्लेष्मा (कफ)—मज्जा—मास—मेद—अस्थि—शुक्र और स्नायु ये सभी इस देह के साथ ही दग्ध हो जाया करते हैं ॥ ३३ ॥ हे तार्क्ष्य ! इन सब देह धारियों की ऐसी ही सस्थिति हुआ करती है जो कि तुमको सब बतलादी है। अब मैं तुमको यह बतलाता हूँ कि इनको शरीर कैसे प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ एक स्तम्भ वाला जो कि स्नायुओ के जाल से भली भाँति सबद्ध हो रहा है और स्थूणाद्वय से अलकृत है। यह शरीर सब इन्द्रियों से युक्त और नौ द्वारो वाला होता है ॥ ३५ ॥

विषयैश्च समाक्रान्त कामक्रोधसमाकुलम् ।
रागद्वेषसमाकीर्णं तृष्णादुर्गं तिमयुतम् ॥३६

लोभजालपरिच्छिन्नं मोहवस्त्रेण वेष्टितम् ।
सुबद्धं मायया चैव चेतनाधिष्ठितं पुरम् ॥३७
षाट्कौशिकसमुत्पन्नं पुरं पुरुषसंश्रितम् ।
एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं सर्वदेहिनाम् ॥३८
तिष्ठन्ति देवताः सर्वा भुवनानि चतुर्दश ।
आत्मानं ये न जानन्ति ते नराः पशवः स्मृताः ॥३९
एवमेव समाख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम् ।
चतुरशीतिलक्षाणि निर्मितानि मया पुरा ॥४०
स्वेदजा उद्भिज्जाश्चैव अण्डजाश्च जरायुजाः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥४१

यह मानव का शरीर विभिन्न विषयों से समाक्रान्त और काम—क्रोध आदि से घिरा हुआ होता है अर्थात् इसमें काम तथा क्रोध पूर्णतया भरे रहा करते हैं। इस शरीर में किसी के प्रति राग और किसी के प्रति द्वेष भरा रहा करता है। इस शरीर में एक तृष्णा अर्थात् विषयों के भोगों की पिपासा ऐसी भरी हुई रहा करती है कि उसकी दुर्गति से यह समन्वित रहता है ॥३६॥ इस मानव के शरीर में लोभ का बहुत विशाल जाल बिछा हुआ है जिससे यह परिच्छिन्न रहता है तथा मोह रूपी वस्त्र से यह ढका लिपटा रहा करता है। संसार की वस्तुओं में अपने पन का मिथ्या ज्ञान इसे लपेटे हुए रहता है। इसी को मोह कहते हैं। यह शरीर माया से अर्थात् "मैं मेरा—तू तेरा"—इस प्रकार के प्रपञ्च से अच्छी तरह बँधा हुआ है। यह शरीर रूपी नगर एक चेतन तत्त्व के द्वारा अधिष्ठित होता है ॥ ३७ ॥ षाट् कौशिक समुत्पन्न अर्थात् छै कुशाओं से उत्पन्न होने वाला यह पुर पुरुष के संश्रय से युक्त होता है। इस प्रकार के गुणगण से समायुक्त शरीर सभी देह धारियों का हुआ करता है। समस्त देवता स्थित हैं और चौदह भुवन हैं। जो मनुष्य अपनी आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते हैं वे निरे पशु ही कहे गये हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इसी प्रकार से चार प्रकार के शरीरों का वर्णन तुमको बता दिया है। ये चौरासी लाख शरीर होते हैं जिनका निर्माण मैंने पहिले ही कर दिया है ॥४०॥

चार प्रकार के शरीरों में स्वेदज होने हैं जो पसीने से ही उत्पन्न हुआ करते हैं। उद्भिज्ज होते हैं जो जमीन का भेदन करके वृक्षादि जड़ जीव पैदा होते हैं। स्वेदजो में जूँआ आदि आते हैं। तीसरे अण्डज होते हैं जो अण्डे के रूप में उत्पन्न होकर फिर उनमें से शरीर प्राप्त किया करते हैं जैसे पक्षी आदि हैं। चतुर्थ प्रकार के शरीर जरायुज होते हैं जो जेर में लिपटे हुए माता के उदर से उत्पन्न होते हैं जैसे मनुष्य आदि हैं। हे खगेश ! तुम्हारे सामने यह सभी बतला दिया है जो कि तुमने मुझसे पूछा था ॥४१॥

२२-देहनिर्णय और उत्पत्ति

कथमुत्पद्यते जन्तुर्भूतग्रामचतुष्टये ।
त्वचा रक्त तथा मास मेदो मज्जास्थि जीवितम् ॥१
पाणिपादौ तथा जिह्वा गुह्य केशा नखास्तथा ।
सन्धिमार्गाश्च बहुशो रेखानानाविधा तथा ॥२
कामक्रोधौ भय लज्जा मनो हर्ष सुखासुखम् ।
चिनित छिद्रित वापि वसाजालेन वेष्टितम् ॥३
इन्द्रजालमहं मन्ये ससारेऽस्मिन्सागरे ।
कर्त्ता कोऽत्र महाबाहो सर्वं वद मम प्रभो ॥४
कथयामि परं गुह्यं कालोद्धारविनिर्णयम् ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्व प्रजायते ॥५
साधु पृष्टं त्वया लोके यदिदं जीवकारणम् ।
वैनतेय शृणुष्व त्वमेकाग्रकृतमानस ॥६
ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम् ।
तिष्ठत्यस्मिन्ब्रह्महत्या पुराकृतसमुद्भवा ॥७

गरुड ने कहा—हे भगवन् ! इस भूत समुदाय के चतुष्टय में यह जन्तु कैसे समुत्पन्न हुआ करता है ? त्वचा—रक्त—मास—मेद—मज्जा—अस्थि और जीवित—हाथ—पैर—जिह्वा—गुह्य—केश—नख—जोड़ो के मार्ग तथा अनेक प्रकार की रेखाएँ—काम—क्रोध—भय—लज्जा—मन—हर्ष—सुख—दुःख यह सब चिनित तथा छिद्रित है और वसा के जाल से वेष्टित है ॥ १ ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ इस सार शून्य संसार के सागर में मैं तो शरीर की रचना को एक इन्द्रजाल (जादू) जैसा ही मानता हूँ । हे प्रभो ! हे महान् बाहुओं वाले ! इस शरीर के निर्माण करने वाला कौन है—यह सब आप बतलाने की कृपा करें ॥ ४ ॥ श्री भगवान् ने कहा—अब मैं तुमको काल के उद्धार का विनिर्णय कहता हूँ जोकि परम गोपनीय है । इसके ज्ञान प्राप्त कर लेने मात्र से ही मनुष्य को सर्वज्ञत्व हो जाया करता है । अर्थात् इसके जानने से फिर वह सभी कुछ का ज्ञाता हो जाता है ॥ ५ ॥ हे गरुड़ ! तुमने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है कि लोक में यह जो जीव का कारण है । हे वैनतेय ! अब तुम एकाग्र मन वाले होकर इसका श्रवण करो ॥ ६ ॥ नारियों को जब मास मे ऋतुकाल हो तो चार दिन आरम्भ के त्याग देने चाहिए । इन चार दिनों में नारियों पर पहिले उत्पन्न की हुई ब्रह्म हत्या स्थित रहा करती है ॥७॥

वेधाः शक्रात्समुत्साय्यं चतुर्थांशेन दत्तवान् ।
तावन्नालोक्यते वक्त्रं यावत्पापञ्चतिष्ठति ॥८
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ॥९
सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने ।
सप्ताहमध्ये यो गर्भस्तत्सम्भूतिर्मलिम्लुचा ॥१०
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
पूर्वसप्तकमुत्सृज्य ततो युग्मेषु संविशेत् ॥११
षोडशर्तु निशाः स्त्रीणां सामान्यात्समुदाहृताः ।
या चतुर्दशमी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र चेत् ॥१२
गुणभाग्यनिधिस्तत्र पुत्रो जायेत धार्मिकः ।
सा निशा तत्र सामान्यैर्न लभ्येत कदाचन ॥१३
प्रायशः सम्भवन्त्यत्र गर्भास्त्वष्टाहमध्यतः ।
पञ्चमेऽहनि नारीणां गौल्ममाधुर्य्य भोजनम् ॥१४

वेधा अर्थात् ब्रह्मा ने इन्द्र से इस ब्रह्म हत्या को हटा कर इसका चौथा भाग नारियों को दे दिया था । इसीलिये तब तक इन नारियों का ऋतु काल

में मुख भी नहीं देखा जाता है जब तक कि वह ब्रह्म हत्या का पाप इनमें स्थित रहा करता है ॥ ८ ॥ ऋतु काल में प्रथम दिन में यह चाण्डाली के समान होती है—दूसरे दिन में ब्रह्म घातिनी हुआ करती है—तीसरे दिन में यह नारी धोबिन के तुल्य हुआ करती है इन तीन दिन के समाप्त हो जाने पर चौथे दिन में नारी स्नान करके शुद्ध हुआ करती है ॥ ९ ॥ एक सप्ताह से यह नारी व्रत तथा अर्चन में पितृगण और देवों के निमित्त कर्म के योग्य हुआ करती है । इस सप्ताह के बीच में जो गर्भ होता है उसकी समुत्पत्ति मलिम्लुचा हुआ करती है । अर्थात् चोह कर्म से युक्त होती है ॥ १० ॥ युग्म रात्रियों में जो गर्भ स्थिति होती है उससे पुत्र की उत्पत्ति होती है और अयुग्म रात्रियों में जो गर्भ का आधान होता है उसमें कन्या उत्पन्न हुआ करती है । ऋतुकाल के प्रथम दिन से युग्म और अयुग्म की गणना मानी जाया करती है । अतएव ऋतुकाल के प्रथम सप्ताह का त्याग करके दूसरे सप्ताह में युग्म रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिए ॥ ११ ॥ साधारण रूप से नारियों के गर्भ धारण करने की सोलह ऋतु-निशा बनाई गई हैं । जो यदि चौदहवीं रात्रि में गर्भ की स्थिति हो जाती है तो उस गर्भ से गुण और सौभाग्य से समायुक्त परम धार्मिक पुत्र हुआ करता है । वह रात्रि सामान्य पुरुषों के द्वारा कभी प्राप्त ही नहीं हुआ करती है ॥१२॥१३॥ बहुधा जितने भी गर्भ होते हैं वे आठ दिन के ही मध्य में हुआ करते हैं । पाँचवें दिन में नारियों को गौल्म माधुर्य भोजन होना चाहिए ॥१४॥

कटुकारञ्च तीक्ष्णञ्च साज्य युवतिभोजनम् ।
स्त्री क्षेत्रमोषधी पात्रं बीजं वाप्यमृताशनम् ॥१५
तत्र वप्ता नरः सम्यग्जन्तुस्तत्र निषिच्यते ।
तस्याश्चैवातपो वर्ज्यं शीतलं केवलं चरेत् ॥१६
ताम्बूलगन्धश्रीखण्डैः समं सङ्गः शुभेऽह्नि ।
निषेकसमये यादृङ् नरचित्ते विकल्पना ॥१७
तादृक्स्वभावसम्भूतिर्जन्तुर्वसति कुक्षिगः ।
शुक्रशोणितसंयोगे पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते ॥१८

वर्द्धते जठरे जन्तुस्तारापतिरिवाम्बरे ।
चैतन्यं बीजरूपे हि शुक्रे नित्यं व्यवस्थितम् ।।१९
कामं चित्तञ्च शुक्रञ्च यदा ह्येकत्वमाप्नुयुः ।
तदा द्रवमवाप्नोति योषागर्भाशये नरः ।।२०
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेन्नरः ।
शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भः षण्डत्वमाप्नुयात् ।।२१

स्त्रियों में युवतियों का भोजन कटुकार—तीक्ष्ण और घृत सहित होता है। स्त्री क्षेत्र है—ओषधी पात्र है और अमृताधान बीज होता है ।। १५ ।। वहाँ पर पुरुष उस बीज का वपन करने वाला है। वहाँ पर भली-भाँति जन्तु का निषेक होता है। उसको आतप का वर्जन है। केवल शीतल का चरण करे । १६ ।। ताम्बूल—गन्ध और श्री खण्ड के साथ का शुभ दिन में सङ्ग करे। निषेक के समय में पुरुष के चित्त में जिस प्रकार विशेष कल्पना होती है उसी प्रकार के स्वभाव से युक्त जन्तु की समुत्पत्ति होती है जो कि कुक्षि में स्थित रह कर निवास किया करता है। पुरुष के वीर्य और स्त्री के शोणित (रज) के संयोग से ही गर्भ-पिण्ड की उत्पत्ति हुआ करती है ।। १७ ।। १८ ।। आकाश में चन्द्रमा की भाँति वह जन्तु नित्य ही पेट में बढ़ता रहता है। बीज रूप वीर्य में यह चैतन्य नित्य ही व्यवस्थित रहा करता है ।। १९ ।। काम—चित्त और शुक्र (वीर्य) जब ये तीनों एकत्व रूप को प्राप्त हो जाते हैं उस समय में नर स्त्री के गर्भाशय में द्रवरूप को प्राप्त हुआ करता है।२०। रक्त अर्थात् स्त्री के रज की अधिकता होती है तब नारी होती है और शुक्र अर्थात् पुरुष के वीर्य की अधिकता होती है तो पुत्र होता है। शुक्र और शोणित दोनों ही जब समान होते हैं तो गर्भ षण्डत्व को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ऐसी दशा में स्त्री तथा पुरुष न होकर नपुंसक उत्पन्न हुआ करता है ।।२१।।

अहोरात्रेण कलिलं बुद्बुदं पञ्चभिर्दिनैः ।
दशमेऽह्नि भवेन्मांसमिश्रधातुसमन्वितम् ।।२२
घनमांसञ्च विंशाहे गर्भस्थो वर्द्धते क्रमात् ।
पञ्चविंशतिपूर्णाहे बल पुष्टिश्च जायते ।।२३

तथा मासे तु सम्पूर्णो पञ्च तत्वानि धारयेत् ।
मासद्वये तु सम्पूर्णे त्वचा मेदश्च जायते ॥२४
मज्जास्थीनि त्रिभिर्मासैः केशा गुल्फश्चतुर्थके ।
कर्णौ च नासिकाकुक्षी जायेते मासि पञ्चके ॥२५
कण्ठरन्ध्र तथा पृष्ठ गुह्यास्य मासि सप्तमे ।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णो गर्भो मासेऽथाष्टमे ॥२६
नवमे मासि सम्प्राप्ते गर्भस्थस्य रतिः स्वयम् ।
इच्छा सञ्जायते तस्य गर्भवासविनिःसृतौ ॥२७
नारी वाथ नरो वाथ नपुंसको वाभिजायते ।
नवमे दशमे वापि जायते यश्च भौतिकः ॥२८
प्रसूतवायुनाऽऽकृष्ट पीडया विह्वलीकृतः ।
क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता पवनाकाशमेव च ॥२९
एभिर्भूतैः पीडितस्तु निबद्धः स्नायुबन्धनैः ।
त्वचास्थिनाड्या रामाणि मासश्चैवात्र पञ्चमम् ॥३०
एते पञ्च गुणा प्रोक्ता मया भूमेः खगेश्वर ।
यथा पञ्च गुणा आपस्तथा शृणु च काश्यप ॥३१

एक दिन और रात्रि में वह गर्भ आरम्भ से कलिल के स्वरूप में होता है। पाँच दिन में वह बुल बुला बन जाता है। दशमे दिन में वह माम से मिला हुआ धातु से युक्त लोथडा जैसा हो जाया करता है ॥ २२ ॥ बीस दिन में घने मास वाला गर्भ में स्थित क्रम से बढता है। पच्चीस दिन में उसमें कुछ बल और पुष्टि होती है ॥ २३ ॥ इसी प्रकार से एक मास के पूर्ण हो जाने पर वह पाँचों तत्वों को धारण कर लेता है। दो मास का समय पूरा हो जाने पर उस गर्भस्थ में त्वचा तथा मेद समुत्पन्न हो जाया करते हैं ॥ २४ ॥ तीन मास में मज्जा और अस्थियाँ एवं चौथे मास में केश और गुल्फ पैदा हो जाते हैं। पाँचवें मास में दोनों कान, कुक्षि, नाक उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ कण्ठ का छिद्र-पीठ—गुह्येन्द्रिय ये सब सप्तम मास में होते हैं। शरीर सम्पूर्ण अङ्ग और प्रत्यङ्ग आठवें मास में उत्पन्न होकर गर्भ पूर्ण हो जाया करता है ॥२६॥

नवम मास के सम्प्राप्त हो जाने पर गर्भस्थ की स्वयं रति और इच्छा समुत्पन्न हो जाती है कि वह गर्भ के वास से विनि:सृत हो जावे ।। २७ ।। इसके अनन्तर वह नर हो या नारी अथवा नपुंसक हो उत्पन्न हो जाया करता है। नवम मास में अथवा दशवें मास में वह उत्पन्न हुआ करता है और जो भौतिक शरीर होता है वह प्रसून की वायु से आकृष्ट होता हुआ पीड़ा से विह्वल होता है। भूमि—वारि—हवि भोक्ता (अग्नि)—वायु और आकाश ये पाँच भूत हैं इनसे पीड़ित और स्नायुओं से बँधा हुआ तथा त्वचा–नाड़ियाँ—रोम और माँस ये पाँच इसमें गुण बताये गये हैं और हे खगेश्वर ! ये पाँच गुण भूमि के हैं इसी प्रकार से पाँच गुण जल के भी होते हैं उन्हें भी हे काश्यप ! तुम मुझसे श्रवण करलो ।।२८।।२९।।३०।।३१।।

लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तञ्च पञ्चमम् ।
अपां पञ्च गुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः ।।३२
क्षुधा निद्रा च तृष्णा च आलस्यं कान्तिरेव च ।
तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः ।।३३
धावनं श्वसनञ्चैव आकुञ्चनप्रसारणम् ।
निरोधः पञ्चमः प्रोक्तो वायोः पञ्च गुणाः स्मृताः ।३४
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस्तथैव च ।
इत्येतत्कथितं तार्क्ष्य वायुजं गुणपञ्चकम् ।।३५
घोषश्छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सर्वसंश्रयः ।
आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास्तार्क्ष्य यत्नतः । ३६
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासा बुद्धीन्द्रियाणि च ।
पाणिपादौ गुदं वाक्चोपस्थं कर्मेन्द्रियाणि च ।।३७
इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ।
गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशः तथा ।।३८
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी तथा ।
पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाड़यः ।।३९

लाला (लार)-मूत्र-शुक्र (वीर्य)—मज्जा और पाँचवें रक्त ये पाँच गुण इस भौतिक शरीर में जल के हुआ करते हैं सो इन्हें भी भली भाँति समझ लेना चाहिए ॥ ३२ ॥ क्षुधा (भूख)-नींद-प्यास—आलस्य और कान्ति तथा तेज ये पाँच गुण हे तार्क्ष्य ! योगियों ने सर्वत्र अग्नि या तेज के बताये हैं ॥ ३३ ॥ धावन (दौड़ना)-श्वास लेना—आकुञ्चन (सिकुड़ जाना)-प्रसारण (फैल जाना) और निरोध (एक जगह रुक जाना) ये पाँच गुण इस शरीर में वायु के होते हैं जो कि ज्ञाता पुरुषों के द्वारा बताये गये हैं ॥ ३४ ॥ राग (किसी से प्रेम करना)-द्वेष-लज्जा-भय और मोह हे तार्क्ष्य ! ये पाँच गुण भी वायु से ही उत्पन्न होने वाले होते हैं ॥ ३५ ॥ ध्वनि करना-छिद्रों का होना गम्भीरता-सुनना और सबका सश्रय हे तार्क्ष्य ! ये पाँच गुण आकाश तत्त्व के इस शरीर में जान लेने चाहिए ॥ ३६ ॥ इस शरीर में पाँच ज्ञान प्राप्त करने वाली इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें बुद्धीन्द्रिय-इस नाम से कहा जाया करता है और वे श्रोत्र—त्वचा—चक्षु—जिह्वा और नासिका ये हैं। इनके अतिरिक्त इस मानस के शरीर में पाँच कर्मेन्द्रिय अर्थात् काम करने वाली इन्द्रियाँ होती हैं उनके नाम हाथ—पैर—गुदा—वाक् और उपस्थ (गुह्येन्द्रिय) ये होते हैं ॥ ३७ ॥ इस शरीर में दश प्रधान नाड़ियाँ होती हैं उनके नाम इडा—पिङ्गल-सुषुम्ना—गान्धारी—गजा जिह्वा—पूषा—यशा—अलम्बुषा-कुहू और शङ्खिनी ये होते हैं जोकि इस मनुष्य के पिंड के मध्य में स्थित रहा करती हैं ॥ ३८ ॥ ॥ ३९ ॥

> प्राणोऽपान समानश्च उदानो व्यान एव च ।
> नाग कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥४०
> इत्येते वायव प्रोक्ता दश देहेषु सस्थिता ।
> केवल भुक्तमन्नञ्च पुष्टिद सर्वदेहिनाम् ॥४१
> नयति प्राणदो वायु शरीरे सर्वसन्धिषु ।
> आहारो भुक्तमात्रस्तु वायुना क्रियते द्विधा ॥४२
> सम्प्रविश्य गुदे याति पृथगन्न पृथग्जलम् ।
> ऊर्ध्वमग्नेर्जल कृत्वा तदन्नञ्च जलोपरि ॥४३

अग्नेश्चाधः स्थितः प्राणो ह्यग्निं तं तु धमेच्छनैः।
वायुना धम्यमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम् ॥४४
मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहात्पृथग्भवेत् ।
कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्गुदं वपुः ॥४५
नखा मलाश्रयश्चेदं विण्मूत्रं वेत्यनन्तरम् ।
शुक्रशोणितसंयोगाद्देहः षाट्कौशिकः स्मृतः ॥४६

इस शरीर में दश प्रकार की वायु स्थित रहा करती है उनके नाम ये हैं–प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ॥४०॥ इतनी ये दश प्रकार की वायु देह में स्थित रहने वाली बताई गई हैं। खाये हुए अन्न को जो समस्त देहधारियों को पुष्टि का देने वाला है उसे केवल प्राण देने वाला वायु सब सन्धियों में ले जाया करता है। जो आहार खाया जाता है उसको यह वायु दो भागों में कर दिया करता है ॥४१।४२॥ गुदा में प्रवेश करके अन्न पृथक् और जल पृथक् हो जाया करता है। अग्नि के ऊपर जल को करके उसके ऊपर उस खाये हुए अन्न को कर देता है और उस आग्न के नीचे स्थित प्राण वायु धीरे-धीरे उस अग्नि का धमन किया करता है। प्राण वायु के द्वारा धमन किया हुआ जठराग्नि उस भुक्त अन्नादि पदार्थ के रस को अलग कर देता है और उसका किट्ट भाग (फुजला) है उसे अलग कर दिया करता है। बारह प्रकार के मल होते हैं। वह किट्ट भाग (फुजला) इस शरीर से भिन्न होकर निकला करता है। भोजन का सार भाग तो रस ही होता है जिससे इस देह की पुष्टि एवं वृद्धि होती है। वे बारह मल कान, आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि, गुदा, वपु (शरीर), नख, मलाश्रय, विष्ठा और मूत्र ये होते हैं अर्थात् इनसे बाहिर हुआ करते हैं। शुक्र और शोणित के संयोग से विरचित यह देह "षाट् कोषिक"–इस नाम से कहा गया है ॥ ४३ से ४६ ॥

रोमकोटिस्तथा तिस्रो ह्यर्द्धकोटिसमन्विता ।
द्वात्रिंशद्दशनास्तत्र सामान्याद्विनतासुत ॥४७
विंशतिस्तु नखाः केशास्त्रिलक्षं मुखमूर्ध्वजाः ।
मांसं पलसहस्रैकं सामान्याद्देहसंस्थितम् ॥४८

रक्त पलशतं तार्क्ष्य वदमेतत्पुरातनं ।
पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समं ॥४९
पलं द्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम् ।
शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं शोणितं कुडवं स्मृतम् ॥५०
श्लेष्मणश्च षडर्द्धञ्च विण्मूत्रं तत्प्रमाणतः ।
एष पिण्डः समाख्यातो वैभवं सम्प्रचक्ष्महे ॥५१
ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति शरीरे ते व्यवस्थिताः ।
पातालभूधरा लोकास्तथा द्वीपाः ससागराः ।
आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः ॥५२
पादाधस्तु तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा ।
जानुभ्यां सुतलं विद्धि जङ्घासु च तलातलम् ॥५३
तथा रसातलञ्चोर्वोर्गुह्यदेशे महातलम् ।
पातालं कटिसंस्थं तु पादतो लक्षयेद्बुधः ॥५४

इस शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोमों की श्रेणी होती है । इसमें बत्तीस दाँत हुआ करते हैं । हे विनिता के पुत्र ! ये सामान्य रूप से सभी के शरीरों में इनकी संख्या बताई गई है ॥४७॥ बीस इसमें नख होते हैं और मुख तथा मस्तक में होने वाले केश तीन लाख हुआ करते हैं । सामान्य तथा इस शरीर में एक सहस्र पल माँस हुआ करता है जो कि इसमें स्थित रहता है ॥४८॥ एक सौ पल इस देह में रक्त होता है, ऐसा हे तार्क्ष्य ! पुरातन पुरुषों ने यह सब बताया है । दस पल इसमें मेद होता है और त्वचा भी मेद के ही समान हुआ करती है ॥४९॥ बारह पल मज्जा होती है । महा रक्त तीन पल हुआ करता है । दो कुडव शुक्र होते हैं और शोणित एक कुडव होता है ॥५०॥ श्लेष्मा छै पल होता है और उसका आधा विट और मूत्र होता है जो उसके प्रमाण से हुआ करता है । इस प्रकार का यह पिण्ड कहा गया है । अब इसका वैभव बतलाते हैं ॥५१॥ इस समस्त ब्रह्माण्ड में जो भी गुण होते हैं वे सब इस मानव के शरीर में स्थित हुआ करते हैं । पाताल, भूधर, लोक, द्वीप और सागर, आदित्य से आदि लेकर समस्त ग्रह इस पिण्ड के मध्य में स्थित रहा

करते हैं ॥५२॥ पादों से नीचे तल जानना चाहिए और पैरों से ऊपर वितल, जानुओं से सुतल समझो तथा जाँघों में तलातल है ॥५३॥ ऊरुओं में रसातल और गुह्य देश में महातल, कटि प्रदेश में स्थित पाताल है। इस प्रकार से बुध पुरुष को देखना चाहिए ॥५४॥

भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्द्ध्वतः ।
स्वर्लोकं हृदये विन्द्यात्कण्ठदेशे महस्तथा ॥५५
जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके ।
सत्यलोकं महारन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश ॥५६
त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधःकोणे च मन्दरः ।
दक्षिणे चैव कैलासो वामकोणे हिमाचलः ॥५७
निषधश्चोर्ध्वभागे तु दक्षिणे गन्धमादनः ।
रमणो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः ॥५८
अस्थिस्थाने स्थितो जम्बुः शाकं मज्जासु संस्थितम् ।
कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरःस्थितः ॥५९
त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये ।
नखस्थं पुष्करद्वीपं सागरास्तदनन्तरम् ॥६०

नाभि के मध्य में भूर्लोक है। उसके ऊपर भुवर्लोक है। हृदय में स्वर्लोक है तथा कण्ठ देश में महर्लोक है ॥५५॥ मुख प्रदेश में जनलोक है और ललाट में तपोलोक है। महारन्ध्र में सत्यलोक स्थित रहता है। इस तरह से इस देह में चौदह भुवन विद्यमान रहा करते है ॥५६॥ त्रिकोण में मेरु और अधःकोण में मन्दर स्थित है। दक्षिण में कैलास है तथा वाम कोण में हिमाचल महागिरि है ॥५७॥ ऊर्ध्व भाग में निषध है और दक्षिण भाग में गन्धमादन है। वाम रेखा में रमणगिरि है। इस प्रकार से ये सातों कुल पर्वत इस देह में स्थित रहते हैं ॥५८। अस्थियों के स्थान में जम्बु द्वीप होता है और मज्जाओं में शाक द्वीप है। मांस में कुश द्वीप है और शिर में क्रौञ्च द्वीप स्थित रहा करता है। ॥५९॥ त्वचा में शाल्मली द्वीप है तथा रोमों के सञ्चय में गोमेद है। नखों में

स्थित पुष्कर द्वीप है । इसके अनन्तर इस देह में सागरों की स्थिति बताई जाती है ॥६०॥

क्षीरोदश्च तथा मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागर ।
सुरोदधि श्लेष्मसस्थो मज्जाया घृतसागर ॥६१
रसोदधि रसे विन्द्याच्छोणिते दधिसागरम् ।
स्वादूदकश्च विट्स्थाने गर्भोद शुक्रसस्थितम् ॥६२
नादचक्रे स्थित सूर्य्यो विन्दुचक्रे तु चन्द्रमा ।
लोचनाभ्या कुजा ज्ञेयो हृदये च बुध स्मृत ॥६३
विष्णुस्थाने गुरु विन्द्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थित ॥६४
नाभिस्थाने स्मृतो मन्दो मुखे राहु स्मृत सदा ।
पादस्थाने स्मृत केतु शरीरे ग्रहमण्डलम् ॥६५
विभक्तश्च ममारुरात ग्रापादतलमस्तका ।
उत्पन्ना ये हि ससारे म्रियन्ते ते न सशय ॥६६
बुभुक्षा च तृपा रौद्रादाद्योद्भूता च मूर्च्छना ।
यत्र पीडास्त्विमा रौद्रा सपवृश्चिकदशजा ॥६७
तप्तवालुकमध्येन प्रज्वलद्वह्निमध्यत ।
केशग्राहै समाक्रान्ता नीयन्ते यमकिङ्करै ॥६८

मूत्र म क्षीरोद है और क्षीर मे क्षीरोद सागर है । श्लेष्मा में स्थित सुरोदधि है तथा मज्जा मे घृत सागर स्थित रहा करता है ॥६१॥ रस म रसोदधि और शोणित मे दधि सागर जान लेना चाहिए । विट् स्थान मे स्वादूदक एव शुक्र मे सस्थित गर्भोद है । इस तरह मे सब सागर इस शरीर में स्थित रहा करते हैं ॥६२॥ अब आदित्य आदि सब ग्रहो की स्थिति बताते हैं—नाद चक्र मे सूर्य स्थित रहते हैं और विन्दु चक्र में चन्द्र ग्रह की स्थिति है । दोनों नेत्रों मङ्गल तथा हृदय म बुध स्थित रहा करता है ॥६३॥ विष्णु के स्थान मे गुरु रहते हैं और शुक्र म शुक्र ग्रह की स्थिति रहती है ॥६४॥ नाभि के स्थान में शनि का निवास है तथा मुख म सदा राहु विराजमान रहा करता है । पैरो के स्थान में केतु ग्रह की स्थिति रहती है । इस प्रकार इस शरीर मे ग्रह मण्डल

विराजमान रहा करता है। पाद तल से मस्तक पर्यन्त विभक्त इस शरीर का वर्णन किया गया है। जो इस संसार में जन्म ग्रहण करके उत्पन्न हुए हैं वे सभी अवश्य ही मृत्यु के ग्रास हुआ करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। ॥६५।६६॥ भूख और प्यास आदि में होने वाली मूर्च्छना रौद्र से होती हैं। जहाँ ये पीड़ायें हैं वहाँ सर्प, बिच्छुओं के दंशन से उत्पन्न रौद्र हैं ॥६७॥ तपी हुई बालू के मध्य में और जलती हुई आग के बीच में होकर यम के दूत चोटी पकड़ कर घेरे हुए वहाँ ले जाया करते हैं ॥६८॥

पापिष्ठास्त्वधमास्तार्क्ष्य दयाधर्मविवर्जिताः ।
यमलोके वसन्त्येव कुट्यां जन्म च विद्यते ॥६६
एवं सञ्जायते तार्क्ष्य मर्त्ये जन्तुः स्वकर्मभिः ।
आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥७०
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥७१
अधोमुखं चोर्ध्वपादं गर्भाद्वायु प्रकर्षति ।
जन्मतो वैष्णवी माया सम्मोहयति सत्वरम् ॥७२
स्वकर्मकृतसम्बन्धो जन्तुर्जन्म प्रपद्यते ।
सुकृतादुत्तमो भोगी भाग्यवान्सुकुले भवेत् ॥७३
यथा दुष्कृतकर्मा हि कुले हीने प्रजायते ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः पापकृद्दुःखभाजनः ।
उत्पत्तेर्लक्षणं जन्तोः कथितं ऋषिपुत्रक ॥७४

हे तार्क्ष्य ! जो बड़े भारी-पापिष्ठ पुरुष होते हैं और महान् अधम होते है जिनके दया और धर्म नाम मात्र को भी नहीं हुआ करते हैं वे उस यमराज के लोक में निवास किया करते हैं और उनका जन्म कुटी में हुआ करता है। ॥६६॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार से इस मनुष्य लोक में यह जन्तु अपने ही किये हुए कर्मो के विपाक के वशीभूत होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं। मनुष्य की आयु, उसका कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये कब-कितना और किस प्रकार के

होवे ?—इन सब पाँचों बातों को जब यह जीवात्मा गर्भ में स्थित रहा करता है तभी सृजन हो जाता है ॥७०॥ कर्म के अनुसार ही जन्तु का जन्म होता है और कर्मों के अनुरूप ही उसका लय अर्थात् मृत्यु हुआ करती है। सुख, दुःख, भय, क्षेम ये सभी कर्मों के अनुकूल ही हुआ करते हैं ॥७१॥ नीचे की ओर मुख वाले तथा ऊपर की तरफ पैरों वाले इसको वायु गर्भाशय से खींचकर लाता है। जन्म होते ही यह वैष्णवी माया इसको बहुत ही शीघ्र सम्मोहित कर दिया करती है ॥७२॥ अपने कर्मों के अनुसार सम्बन्ध वाला यह जन्तु जन्म ग्रहण किया करते हैं। यदि उसके कुछ सुकृत होते हैं तो वह उत्तम कुल में जन्म लेकर भोगों के भोगने वाला होता है और बड़ा भाग्यवान् हुआ करता है ॥७३॥ यदि दुष्कृत से युक्त कर्म होते हैं तो वह हीन कुल में जन्म लेता है और सदा दरिद्र तथा व्याधियों से ग्रसित, महान् मूर्ख एवं पापों के करने वाला और पूर्ण दुःखों का पात्र हुआ करता है। हे ऋषि के पुत्र! मैंने यह सब इस प्राणी की उत्पत्ति का लक्षण तुमको बता दिया है ॥७४॥

२३—यमलोक विवरण

यमलोकं कियन्मात्रं त्रैलोक्ये सचराचरे।
विस्तारं तस्य मे ब्रूहि अध्वा चैव कियान्स्मृतः ॥१
कैः कैः पापैः कृतैर्देव केन वा शुभकर्मणा।
गच्छन्ति मानवास्तत्र कथयस्व जनार्दन ॥२
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः।
यमलोकस्य चाध्वानं ह्यन्तरा मानुषस्य च ॥३
प्मातप्ताम्रमिवातप्तो ज्वलन्दुर्गो महापथः।
तत्र गच्छन्ति पापिष्ठा मानवा मूढचेतसः ॥४
कण्टकास्तीक्ष्णकाश्चैव विविधा घोरदारुणा।
तत्तु वर्त्म क्षितिर्व्याप्ता हुताशश्च तथोल्वणः ॥५
वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः।
गृहीतकालपाशैस्तु कृतैः कर्मभिरुल्वणैः ॥६

तस्मिन्मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान्प्रपोषयेत् ।
जलं न दृश्यते तत्र तृषा येन विलीयते ॥७

गरुड़ ने कहा—हे भगवन् ! इस चर और अचर से युक्त त्रैलोक्य में यमलोक कितना विस्तृत है और उसका पूर्ण स्वरूप तथा विस्तार बतलाइये और यह भी बताने की कृपा करें कि उसका मार्ग कितना कहा गया है ? ॥१॥ हे जनार्दन देव ! किये हुए किन-किन पापों के द्वारा अथवा शुभ कर्मों से मनुष्य वहाँ जाया करते हैं यह भी वर्णन कीजिए ॥२॥ श्री भगवान् बोले—इस मनुष्य लोक और यमलोक के बीच का अन्तर छयासी हजार योजन का है। इतना ही लम्बा यमपुरी का मार्ग होता है ॥३॥ बनाये हुए ताम्र के समान तप्त जलता हुआ दुर्ग कठिन वह महा पथ होता है। वहाँ पर इस महा मार्ग में अत्यन्त पापी मूढ़ चित्त वाले मानव जाया करते हैं ॥४॥ वे मार्ग ऐसे भीषण हैं कि उनमें बहुत तीक्ष्ण काँटे होते हैं और वे भी अनेक प्रकार के घोर एवं दारुण हुआ करते हैं। इन कण्टकों से उस मार्ग की भूमि व्याप्त रहती है तथा उसमें महान् उल्वण अग्नि रहा करती है ॥५॥ उस मार्ग में वृक्षों का बिल्कुल अभाव है। वहाँ ऐसी कोई छाया नहीं है जहाँ पर मनुष्य विश्राम कर लेवे। किये हुए अत्यन्त तीव्र एवं उल्वण कर्मों के द्वारा मनुष्य कालपाश से बँधे हुए रहा करते हैं ॥६॥ उस मार्ग में भोजन के योग्य अन्न आदि कुछ भी नहीं होता है जिसके द्वारा मनुष्य अपने प्राणों का पोषण कर सके। वहाँ उस महा विशाल मार्ग में कहीं भी जल दिखलाई नहीं देता है जिसे पान कर प्यास को शान्त किया जा सके ॥७॥

क्षुधया पीडितो याति तृषया च महापथि ।
शीतेन कम्पितः क्वापि यममार्गेऽतिदुर्गमे ॥८
यद्यस्य यादृशं पापं स पन्थास्तस्य तादृशः ।
सुदीनाः कृपणा मूढ़ा दुखैर्व्याप्तास्तरन्ति वै ॥९
रुदन्ति करुणं केचित्केचिद्रौद्रं वदन्ति वै ।
आत्मकर्मकृतैर्दोषैस्तप्यमाना मुहुर्मुहुः ॥१०

ईदृग्विध स वै पन्था विज्ञेयो दारुण खग ।
वितृष्णा ये नरा लोके सुख तस्मिन्व्रजन्ति ते ॥११
यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवै. ।
तानि तान्युपतिष्ठन्ति यमलोके पुरःसरम् ॥१२
पापिना नापतिष्ठन्ति दत्ता श्राद्धजलाञ्जलि ।
भ्रमन्ति वायुभूताश्च ये क्षुद्रा पापकर्मिण ॥१३
ईदृश वर्त्म वै रौद्र कथित तव सुव्रत ।
पुनश्च कथयिष्यामि यमलोकस्य या गति ॥१४

उस महापथ मे मनुष्य क्षुधा और प्यास से पीडित होकर गमन किया करता है। वहाँ पर इतना अधिक शीत उस मार्ग मे होता है कि उसके कारण काँपने लगता है और उस दुर्गम यमपुरी की यात्रा करता रहता है ॥८॥ वह महामार्ग सभी के लिये समान नहीं हुआ करता है। वह तो जिसका जैसा पाप होता है उस जन्तु के लिए उसी प्रकार का मार्ग हो जाया करता है। जो अत्य त दीन, कृपण और मूढ होते हैं व दु खों से व्याप्त होकर उसे पार किया करते है ॥९॥ कुछ लोग मार्ग की असह्य वेदना से रुदन किया करते हैं—कुछ ऐसे लोग भी हैं जो रौद्र भाषण किया करते हैं और अपने किये हुए पाप कर्मों का स्मरण करके बार बार म-लान होते रहते हैं ॥१०॥ हे खग ! वह मार्ग इस प्रकार का बहुत ही दारुण होता है। जो मनुष्य बिना तृष्णा वाले होते हैं वे उस मार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करते है ॥११॥ इस भू-लोक मे मनुष्यों के द्वारा जो-जो भी दान दिये जाते हैं वे-वे सब यमलोक में आगे ही मिला करते हैं ॥१२॥ दी हुई श्राद्ध की जलाञ्जलि पापियो का वहाँ नहीं उपस्थित हुआ करती है। जो क्षुद्र पाप कर्मों के करने वाले होते हैं वे वायुभूत होकर इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं ॥१३॥ हे सु दर व्रत वाले ! यमलोक का मार्ग इस तरह का महान् रौद्र स्वरूप वाला होता है जिसका वर्णन हमने तुम्हारे सामने कर दिया है। अब मैं फिर यमलोक की जो गति होती है उसे तुमको बतलाता हूँ ॥१४॥

याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुर वैवस्वतस्य च ।
सर्वं वज्रमय दिव्यमभेद्य यत्सुरासुरैं ॥१५

चतुरस्रं चतुर्द्वारं सप्तप्राकारतोरणम् ।
स्वयं तिष्ठति तस्यान्तर्यमो दूतैः समन्वितः ॥१६
योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तु दृश्यते ।
सर्वं रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम् ॥१७
तद् गृहं धर्मराजस्य विस्तीर्णं काञ्चनप्रभम् ।
पञ्चविंशप्रमाणेन योजनानि समुच्छ्रितम् ॥१८
वृतं स्तम्भसहस्रैस्तु वैदूर्य्यमणिमण्डितम् ।
मुक्ताजालगवाक्षं तु पताकाशतभूषितम् ॥१९
घण्टाशतनिनादाढ्यं तोरणानां शतैर्वृतम् ।
एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भूषितं सदा ॥२०
तत्रस्थो भगवान्धर्म आसने नियमे शुभे ।
दशयोजनविस्तीर्णे नीलजीमूतसन्निभे ॥२१

याम्य और नैर्ऋत्य दिशाओं के मध्य मे यमराज का पुर है । वह पूरा नगर वज्रमय, अत्यन्त दिव्य और सुर तथा असुरों के द्वारा भी भेदन न करने के योग्य है ॥१५॥ वह नगर चौकोर, चार द्वारों वाला और सात प्राकार और तोरणों से युक्त है । उस पुर में यमराज स्वयं भीतर अपने दूतों से समन्वित होकर रहा करते हैं ॥१६॥ वह यमराज का पुर एक सहस्र योजनों के प्रमाण वाला है और वह सब परम दिव्य रत्नों से पूर्ण है तथा विद्युत् की ज्वाला एवं सूर्य के वर्चस के सदृश देदीप्यमान है ॥१७॥ वह धर्मराज का घर अति विस्तीर्ण तथा सुवर्ण की प्रभा के समान प्रभा वाला है । पच्चीस योजन प्रमाण की उसकी ऊँचाई है ॥१८॥ सहस्रों स्तम्भों से युक्त एवं वैदूर्य मणियों से मण्डित है । उस नगर मे मोतियों की लड़ियों के जाल लगे हुए है—सुन्दर गवाक्ष (झरोके) है और सैकड़ों पताकाओं से वह विभूषित है ॥१९॥ यमराज के नगर में सैकड़ों घण्टे लगे हुए है जिनकी 'टन-टन" की घोर ध्वनि से सारा पुर निनादित रहा करता है । सैकड़ों तोरणों से वह युक्त है । एवमादि तथा अन्य विविध भूषणों से वह सदा विभूषित रहता है ॥२०॥ वहाँ पर भगवान् धर्मराज स्थित रहा करते हैं । उनका आसन परम शुभ है और वे नियमों में समास्थित रहते है ।

वह उनका आसन दश योजन विस्तार वाला और नील जीमूत (मेघ) के तुल्य है ॥२१॥

धर्मज्ञो धर्मशीलश्च धर्मयुक्तहितो यमः ।
भयद पापयुक्ताना धर्मिणाञ्च सुखप्रद ॥२२
मन्दमारुतसयोगैर्विविधैरुत्सवैस्तथा ।
व्याख्याभिर्बहुभिर्युक्तः शङ्खवादित्रनिस्वनैः ॥२३
पुरमध्ये प्रवेशे तु चित्रगुप्तस्य वै गृहम् ।
पञ्चविंशतिसख्याना योजनाना प्रमाणतः ॥२४
दशोच्छ्रित महादिव्य लोहप्राकारवेष्टितम् ।
प्रतोलीशतसञ्चार पताकाशतशोभितम् ॥२५
दीपिकाशतसकीर्णं गीतध्वनिसमाकुलम् ।
चित्रित चित्रकुशलैश्चित्रगुप्तस्य व गृहम् ॥२६
मणिमुक्तामये दिव्ये आसने परमाद्भुते ।
तत्रस्थो गणयत्यायुर्मानुषेष्वितरेषु च ॥२७
न मुह्यति कथञ्चित्स सुकृते दुष्कृतेऽपि च ।
जन्मनोपार्जित यावत्सदसद्वेत्ति तस्य तत् ॥२८

धर्मराज धर्म के पूर्ण ज्ञाता हैं और उनका स्वभाव भी धर्म से युक्त होता है। धर्मराज धर्म से युक्त हित वाले हैं। जो पाप कर्मों से युक्त प्राणी होते हैं उनको भय देने वाले हैं और जो धर्म से युक्त जन्तु होते हैं उनको वे सुख प्रदान करने वाले हुआ करते हैं ॥२२॥ मन्द वायु के सयोग से युक्त तथा अनेक तरह के उत्सवों से परिपूर्ण, बहुत तरह की व्याख्याओं से सम्पन्न और शङ्ख तथा बहुत से वादित्रों की ध्वनि से पूर्ण वह पुर होता है ॥२३॥ यमराज के पुर में प्रवेश करने में चित्रगुप्त का गृह आता है जो पच्चीस योजनों के प्रमाण वाला है ॥२४॥ चित्रगुप्त के गृह की ऊँचाई दश योजन है और यह महान् दिव्य है तथा लोह के प्राकार (परकोटा) से वेष्टित है अर्थात् चारो ओर लोहे की दीवार बनी हुई है। इस गृह में एक सौ प्रतोली (गली) हैं जिनमे सञ्चार होता है और सौ पताकाओं से शोभा युक्त है ॥२५॥ सैंकडों दीपिकाओं से यह गृह सङ्कीर्ण

है तथा चारों ओर इसमें गीतों की ध्वनि भरी रहा करती है। बड़े कुशल चित्र-कारों के द्वारा चित्रगुप्त का गृह चित्रित किया हुआ है ॥२६॥ उस गृह में एक अत्यन्त अद्भुत मणियों और मोतियों के द्वारा निर्मित परम दिव्य आसन है उस पर विराजमान चित्रगुप्त मनुष्यों तथा इतर प्राणियों की आयु की गणना किया करते हैं ॥२७॥ वह सुकृत और दुष्कृत में भी किसी समय में किसी भी प्रकार से मोह को प्राप्त नहीं होते हैं। जन्मों में उपार्जित उसका कर्म सद् हो या असद् हो जितना भी होता है उस पर भली-भाँति विचार किया करते हैं। जो कर्म अठारह दोषों से रहित इसका किया हुआ होता है उसे यह लिख लेते हैं। चित्रगुप्त के घर से पूर्व दिशा में ज्वर का महान् गृह होता है ॥२८।२६॥

दशाष्टदोषरहितं कृतं कर्म लिखत्यसौ ।
चित्रगुप्तगृहात्प्राच्यां ज्वरस्यास्ति महागृहम् ॥२६
दक्षिणे चापि शूलस्य लूताविस्फोटकस्य च ।
पश्चिमे कालपाशस्य अजीर्णस्यारुचेस्तथा ॥३०
मध्यपीठोत्तरे ज्ञेया तथा चान्या विसूचिका ।
ऐशान्यां वै शिरोऽर्त्तिः स्यादाग्नेय्यां चैव मूर्च्छना ॥३१
अतिसारस्तु नैऋ त्यां वायव्यां दाहसंज्ञकः ।
एभिः परिवृतो नित्यं चित्रगुप्तः स तिष्ठति ।
यत्कर्म क्रियते यैश्च तत्सर्वं तु लिखत्यसौ ॥३२
धर्मराजगृहद्वारि दूतास्ताक्ष्यं तथा दिशि ।
तिष्ठन्ति पापकर्माणः पीड़यन्तो नराधमान् ॥३३
यमदूतैर्महापाशैस्ताड्यमानाश्च मुद्गरैः ।
बध्यन्ते विविधैः पाशैः पूर्वकर्मकृतैर्नराः ॥३४
नानाप्रहरणैश्चैव नानायन्त्रैस्तथापरैः ।
पीडयन्ते पापकर्माणः क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा ॥३५

चित्रगुप्त के गृह से दक्षिण में शूल और लूता विस्फोटक का गृह है। पश्चिम दिशा में कालपाश, अजीर्ण और अरुचि का गृह है ॥३०॥ मध्य-पीठ के उत्तर में विसूचिका (हैजा) की स्थिति जाननी चाहिए। ऐशानी दिशा में शिरो-

वेदना और आग्नेयी दिशा म मूच्छना स्थित है ॥३१॥ नैऋत्य दिशा म प्रतिमार और वायव्य उपदिशा म दाह सज्ञा वाली व्याधि रक्षा करती है । इस प्रकार से इन सब रोगो से निरय ही परिवृत रहने वाले चित्रगुप्त वहाँ समास्थित होते हैं । जिन्होंने जो भी कर्म किया है या किया करते हैं उन सबको यह चित्रगुप्त लिखा करते हैं । ३२ । हे तार्क्ष्य ! यमराज के गृह के द्वार पर दिशाओं में दूत स्थित रहा करते हैं और जो अधम नर पाप कर्म करने वाले होते हैं उन्हें वे दूत बराबर पीड़ा दिया करते हैं ॥३३॥ मनुष्य अपने पहिले किये हुए कर्मों के कारण से उन दूतों के द्वारा अनेक प्रकार के पाशों से बाँध दिये जाया करते हैं तथा महापाशों से और मुद्गरों से वे अच्छी तरह ताड्यमान (पीटे हुए) हुआ करते हैं ॥३४॥ अनेक प्रहरणों से तथा दूसरे प्रकार के विविध यन्त्रों से और क्रकचों से पाप कर्म करने वाले प्रताडित एवं दो भागों में काष्ठ की भाँति कर दिये जाते हैं ॥३५॥

> अन्ये च ज्वलमानैस्तु अङ्गारैः परितो भृशम् ।
> पूर्वकर्मविपाकेन ध्माय ते लोहपिण्डवत् ॥३६
> क्षिप्ताश्चान्ये धरापृष्ठे कुठारेण च कर्त्तिता ।
> क्रन्दमानाश्च दृश्य ते पूर्वकर्मविपाकत ॥३७
> केचिन्निगडपाशैश्च तैलपाकैस्तथापरे ।
> हन्यन्ते यमदूतैश्च पापिष्ठा सुभृश नरा ॥३८
> ऋणानि प्रार्थयन्त्यन्ये देहि देहीति कोटिश ।
> यमलोके मया दृष्टा स्वमास भक्षयन्ति हि ॥३९
> इत्येव बहवस्तार्क्ष्य नरका पापिना स्मृता ।
> किमेभिर्विस्तरप्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः ।
> दानोपकार वक्ष्यामि यथा तत्र सुख भवेत् ॥४०

अन्य पापी लोग जलते हुए अङ्गारों से चारों ओर पूर्वकृत कर्मों के विपाक से लोहे के पिण्ड की भाँति अत्यन्त तपाये एवं गर्म करके सताये जाते हैं ॥३६॥ कुछ दूसरे पाप कर्मों के करने वाले भूमि के ऊपर फेंके गये कुठार के द्वारा विच्छिन्न (काटे हुए) किये जाते हैं और वे अपने पहिले कर्मों के विपाक से

रुदन करते हुए वहाँ दिखलाई देते हैं ॥३७॥ कुछ पापिष्ठ लोग निगड़ पाशों से बद्ध होते हैं और कुछ दूसरे लोग तैल में पाकों के द्वारा हनन किये जाते हैं। यम के दूत अधिक पापियों को इस प्रकार से बहुत ही ज्यादा ताड़ित करते हैं ॥३८॥ अन्य लोग 'हमको कुछ दो-हमको कर्ज दे दो"—इस तरह कहकर करोड़ों की संख्या में ऋण की प्रार्थना किया करते हैं। यमलोक में मैंने स्वयं देखा है कि लोग वहाँ माँस का भक्षण किया करते हैं ॥३९॥ हे ताक्ष्य ! इस तरह से पापियों को अपने किये हुए बुरे कर्मों का फल भोगने के लिये बहुत से नरक बतलाये गये हैं। इन सबका बहुत अधिक विस्तार पूर्वक वर्णन करने से क्या प्रयोजन है ? क्योंकि ये सब तो सभी शास्त्रों में बताये गये हैं। अब हम दानोपकार के विषय में वर्णन करते हैं जिससे कि वहाँ पर प्राणियों को सुख प्राप्त हो सके ॥४०॥

२४–धर्माधर्म लक्षण

शृणु ताक्ष्यं यथान्यायं धर्माधर्मस्य लक्षणम्।
सुकृत दुष्कृतं नृणामग्रे धावति धावति ॥१
कृते तपः प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानसाधनम्।
द्वापरे यज्ञदानञ्च दानमेकं कलौ युगे ॥२
गृहस्थानां स्मृतौ प्रोक्तान्धर्मानालपतां तथा।
इष्टापूर्त्ते स्वया शक्त्या कुर्वतां नास्ति पातकम् ॥३
वृक्षास्तु रोपिता येन तड़ागादि जलाशयाः।
कृता येन हि मार्गेऽस्मिन्सुखं याति स मानवः ॥४
हिमे तुषारशीताभ्यां पीड्यते न यमालये।
तप्यमानः सुखं याति इन्धनानि ददाति यः ॥५
गृहा विभूषिताश्चैव गन्धपुष्पसमन्विताः।
भूमिदानैः सुखं यान्ति सर्वकामैश्च पूरिताः ॥६
सुवर्णमणिमुक्तादिवस्त्राण्याभरणानि च।
तेन सर्वमिदं दत्तं येन दत्ता वसुन्धरा ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! अब तुम न्याय के अनुसार धर्म और अधर्म का लक्षण श्रवण करो। मनुष्यों का सुकृत और दुष्कृत आगे दौड़ लगाया करता है ॥१॥ पृथक्-पृथक् युगों में पृथक् पृथक् साधन हुआ करते हैं। कृतयुग में तपश्चर्या करने की प्रशंसा की जाती थी—त्रेता में ज्ञान ही कल्याण का साधन माना जाता था। द्वापर युग में यज्ञ—दानादि का करना तथा दान देना आत्म कल्याण का साधन होता था और कलियुग में केवल एक दान ही धर्म का साधन माना गया है ॥२॥ स्मृति में बनाये हुए धर्मों का आचरण करने वाले गृहस्थों को अपनी शक्ति से इष्टापूर्ति करने वालों को कोई पातक नहीं होता है ॥ ३ ॥ जिसने वृक्ष आदि का आरोपण किया है, तडाग आदि जलाशयों का निर्माण कराया है। इसके पुण्य का यह फल होता है कि मनुष्य इस यमपुरी के महामार्ग में सुख पूर्वक गमन किया करता है ॥४॥ जो ईंधन का दान किया करता है वह हिम में तुषार और शीत से यमालय में कभी पीडित नहीं होता है, वह तपता हुआ उस शीतकाल में भी बहुत ही सुख पूर्वक जाया करता है ॥५॥ भूमि के दान के द्वारा अति तृप्त एवं गन्ध तथा पुष्पों से संयुत होते हुए परम समलङ्कृत होकर समस्त कामनाओं से परिपूर्ण हो सुख के साथ गमन किया करते हैं ॥६॥ भूमि के दान का बहुत अधिक महत्त्व होता है जिसने इस वसुन्धरा (पृथ्वी) का दान दिया है उसने सोना, मणि, मोती आदि सब प्रकार के रत्न तथा वस्त्र और आभरण इन सभी का दान कर दिया है ॥७॥

यानि यानि च दानानि कृतानि भुवि मानवैः ।
यमलोकपथे तानि तिष्ठन्त्यग्रे समीपतः ॥८
व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ।
विधिना ददते पुत्रः पित्रे तदुपतिष्ठति ॥९
आत्मा वै पुत्रनामा हि पुत्रस्त्राता यमालये ।
नरकात्पितरं त्रायेत्तेन पुत्र इति स्मृतः ॥१०
अतो देयञ्च पुत्रेण श्राद्धमाजीवितावधि ।
अतिवाहस्तदा प्रेतो भोगांश्च लभते हि स ॥११

दह्यमानस्य प्रेतस्य स्वजनैर्यैर्जलाञ्जलिः ।
दीयते प्रीतरूपोऽसौ प्रेतो याति यमालयम् ॥१२
आपक्वे मृण्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम् ।
काष्ठत्रयं गुणैर्बद्ध्वा प्रेतप्रीत्यै चतुष्पथे ॥१३
प्रथमेऽह्नि द्वितीये च तृतीये च तथा खग ।
आकाशस्थः पिबेद्दुग्धं प्रेतो वायुवपुर्धरः ॥१४

इस भू-मण्डल में मनुष्यों के द्वारा जो-जो भी दान किये जाते है वे सभी यमलोक के उस महा मार्ग में पहिले से ही पहुँच कर समीप में उपस्थित हो जाया करते हैं ॥ ८ ॥ विविध भाँति के अद्भुत व्यञ्जन तथा भक्षण करने के योग्य पदार्थ और भोज्य वस्तुऐं जो भी पुत्रों के द्वारा पिता के हितार्थ विधि पूर्वक दान किये जाते हैं वे भी सब यहाँ समुपस्थित हुआ करते हैं ॥ ९ ॥ आत्मा ही पुत्र के नाम वाला होता है अर्थात् स्वयं ही पुत्र के स्वरूप में हुआ करता है । पुत्र जो भी दानादिक करता है वह भी मानों स्वयं ही किया करता है । अतएव यमालय में पुत्र त्राण करने वाला होता है । पु नाम नरक का है उससे जो त्राण किया करता है इसी से 'पुत्र'—यह नाम कहा गया है ॥१०॥ इसी लिये पुत्र के द्वारा जब तक वह जीवित रहे पिता के निमित्त में श्राद्ध देना चाहिए । अतिवाह वह प्रेत उस समय में भोगों का लाभ किया करता है ॥ ११ ॥ दाह किये गये प्रेत के अपने जनों के द्वारा जो जल की अञ्जलि दी जाती है वह प्रेत परम प्रसन्न होता हुआ उससे यमालय को गमन किया करता है ॥ १२ ॥ बिना पकाये गये मिट्टी के पात्र में तीन दिन तक दूध देना चाहिए और तीन काष्ठों डोरी से बाँधकर प्रेत की प्रीति के लिये चौराहे पर रख कर उस पर वह दुग्ध पात्र रखना चाहिए । प्रथम-द्वितीय और तीसरे दिन में उसे इसी प्रकार से रख देवे । हे खग ! आकाश में स्थित वायु के शरीर को धारण करने वाला वह प्रेत उस दूध का पान किया करता है और प्रसन्न होता है ॥१३॥१४॥

चतुर्थे सञ्चयः कार्य्यः सर्वैस्तु सह गोत्रजैः ।
ततः सञ्चयनादूर्ध्वं गङ्गास्पर्शो विधीयते ॥१५

द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे वापि साग्निकैः।
अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दद्याज्जलाञ्जलिं तत ॥१६
न पूर्वाह्णे न मध्याह्ने नापराह्णे च सन्धिषु।
प्रात प्रथमयामेषु दद्यादाद्यजलाञ्जलिम् ॥१७
पुत्रेण दत्तस्ते सर्वैर्गोत्रजै सह बान्धवैः।
स्वजात्यैं परजात्यैश्च देय आद्यजलाञ्जलिः ॥१८
गन्तव्यं नैव विप्रेण दातु शूद्रे जलाञ्जलिम्।
निवृत्ताश्च यदा तीरात्लोकाचारस्ततो भवेत्॥१९
पश्चत्वञ्च गत शूद्रे य काष्ठ नयते चिताम्।
अनुव्रजेत्तया विप्रस्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२०
त्रिरात्रे तु तत पूर्णे नदी गत्वा समुद्रगाम्।
प्राणायामशत कृत्वा घृत प्राश्य विशुध्यति ॥२१

चौथे दिन में सबके द्वारा जिनमें गोत्र में उत्पन्न होने वाले भी सब सम्मिलित होवें सञ्चय करना चाहिए अर्थात् अस्थियों का सञ्चय करे। इसके अनन्तर सञ्चयन के पश्चात् गङ्गा का स्पर्श किया जाता है। अर्थात् गङ्गा में उनका प्रवाह किया जाता है ॥ १५ ॥ दूसरे-तीसरे और चौथे दिन में भी साग्निकों के द्वारा अस्थि—सञ्चयन से ऊपर फिर जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥ १६ ॥ पूर्वाह्न में—मध्याह्न में—अपराह्न में और सन्धिकालों में नहीं देवे वल्क प्रात काल के प्रथम प्रहरों में ही जलाञ्जलि दे देनी चाहिए ॥ १७ ॥ आद्य जलाञ्जलि पुत्र के द्वारा ही देनी चाहिए। इसके अनन्तर उन सबके द्वारा जो गोत्रज हों—बान्धव हों और अपनी जाति के हों तथा पर जाति के हों जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥ १८ ॥ शूद्र को जलाञ्जलि देने के लिये विप्र को कभी नहीं जाना चाहिए। जब तीर से निवृत्त होते हैं तो इसके अनन्तर लोकाचार हुआ करता है ॥ १९ ॥ किसी शूद्र वर्ण वाले व्यक्ति के पश्चत्व प्राप्त हो जाने पर अर्थात् मर जाने पर जो चिता के लिये काष्ठ ले जाता है तथा विप्र उसके पीछे पीछे जाता है तो वह तीन रात्रि तक अशुचि हो जाया करता है ॥ २० ॥ और रात्रियों के पूर्ण जाने पर समुद्र गामिनी नदी

मे जाकर एक सौ बार प्राणायाम करे और घृत का प्राशन करे तब वह विशुद्ध हुआ करता है ॥२१॥

शूद्रो गच्छति सर्वेषु वैश्यस्त्रिषु द्वयेऽपरः ।
गच्छति स्वेषु वर्णेषु विप्रो दातुं जलाञ्जलिम् ॥२२
अधरोत्तरवस्त्राभ्यां वस्त्रग्रन्थिश्च दापयेत् ।
एकवस्त्रः प्रदद्यात्तु सदर्भञ्च तिलाञ्जलिम् ॥२३
यदा दातुञ्च गच्छन्ति दन्तधावनपूर्वकम् ।
त्यजन्ति गोत्रजाः सर्वे दिनानि नव काश्यप ॥२४
जलाञ्जलिं यदा दातुं गच्छति द्विजसत्तम ।
यस्मिन्स्थाने मिलेद्वस्तु अध्वन्यपि गृहेऽपि वा ॥२५
विश्लेषस्तु ततः स्थानादादाहाद्विहितो बुधैः ।
स्त्रीजनश्चाग्रतो गच्छेत्पृष्ठतो नरसञ्चयः ॥२६
तत आचमनं कार्य्यं पाषाणोपरि संस्थितैः ।
यावांश्च सर्षपान्दूर्वा पूर्णपात्रे विलोकयेत् ॥२७
प्राशयेन्निम्बपत्राणि स्नेहस्नानं समाचरेत् ।
गोत्रजेन च कर्त्तव्यं गृहान्नं नैव भोजयेत् ॥२८

शूद्र सभी वर्णो में जाता है—वैश्य तीन वर्णों मे जाया करता है—क्षत्रिय दो में और विप्र अपने ही वर्णो में जलाञ्जलि देने को जाया करता है ॥ २२ ॥ अधो वस्त्र और उपरि वस्त्रों से वस्त्र की ग्रन्थि दिलावे । एक ही वस्त्र वाला दर्भो के सहित तिलाञ्जलि देवे ॥ २३ ॥ जिस समय में जलाञ्जलि देने के लिये जावें तो दाँतुन आदि करके ही जाना चाहिए । हे काश्यप ! गोत्रज सब नौ दिन को त्याग दिया करते हैं ॥ २४ ॥ द्विज श्रेष्ठ जिस समय में जलाञ्जलि देने के लिये जाता है तो जिस स्थान मे जो भी मिले—मार्ग में और गृह में भी उस स्थान से दाह से लेकर बुध जनों के द्वारा विश्लेष बताया गया है । स्त्री जनों को आगे अर्थात् पहिले जाना चाहिए और उनके पृष्ठ (पीछे) में पुरुषों के समुदाय को जाना चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर पाषाण के ऊपर संस्थित होते हुए पहुँचने वालों को आचमन करना चाहिए ।

और जितनी भी मर्यादा हो उन्हें तथा दूर्वा (दूभ) को पूर्ण पात्र में विलोकन करे ॥ २७ ॥ नीम के पत्र मबको खाने चाहिए फिर स्नेह स्नान करे। इसके पश्चात् किसी गोत्रज के द्वारा खाने की व्यवस्था करनी चाहिए। उस दिन घर का अन्न नहीं खाना चाहिए ॥२८॥

भुञ्जीत मृण्मये पात्रे उत्तानञ्च विवर्जयेत् ।
मृतकस्य गुणा ग्राह्या यमगाथा समुद्गिरेत् ॥२९
शुभाशुभौ च ध्यायन्त' पूर्वकर्मोपसञ्चितौ ।
अलब्धेन च देहेन भुङ्क्ते सुकृतदुष्कृते ॥३०
वायुरूपो भ्रमत्येव वायु कुटया स गच्छति ।
दशाहे कर्म क्रियते जायते तेन सा कुटी ॥३१
क्षुधाविभ्रममापन्नो दशाहे यो न तर्पित ।
पिण्डैस्तस्य तदाऽन्नश्च आकाशे भ्रमते तु स ॥३२
दिनत्रय वसेत्तोये अग्नौ चापि दिनत्रयम् ।
आकाशे च वसेत्त्रीणि दिनमेकञ्च वासवे ॥३३
गृहद्वारे श्मशाने वा तीर्थे देवालये तथा ।
यत्रादौ दीयते पिण्डस्तत्र सर्वान्समापयेत् ॥३४
एकादशाहे यच्छ्राद्ध तत्सामान्यमुदाहृतम् ।
चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धये स्नानमिष्यते ॥३५

मिट्टी के बरतन में ही भोजन करे और उत्तान का विशेष रूप से वर्जन कर देवे। उत्तान यह जल को कहते हैं। जो पुरुष मृत्युगत हुआ है उसके गुणों को ग्रहण करे अर्थात् गुणों का बखान करना चाहिए। तथा यमराज की गाथा को कहना चाहिए ॥ २९ ॥ मृतात्मा के पूर्व कर्मों के द्वारा उप सञ्चित किये गये शुभ और अशुभ का ध्यान करे। अप्राप्त देह के द्वारा अपने सुकृत तथा दुष्कृतों का भोग किया करता है ॥ ३० ॥ मृत प्राणी वायु स्वरूप होकर भ्रमण किया करता है और वह वायु कुटी में जाती है। दशवें दिन में जो दश गात्र का कर्म किया जाता है उससे वह कुटी उत्पन्न हुआ करती है ॥३१॥ क्षुधा के विभ्रम को प्राप्त होने वाला दशवें दिन में जो तृप्त नहीं किया जाता

है उस समय में वह उसके पिण्डों के साथ और वह अन्न आकाश में भ्रमण किया करता है ॥ ३२ ॥ तीन दिन तक जल में निवास करता है और फिर अग्नि में तीन दिन तक रहता है। आकाश में तीन दिन पर्यन्त वास करता है और एक दिन वासव में रहता है ॥ ३३ ॥ घर के द्वार पर—श्मशान में—तीर्थ में और देवालय में जहाँ पर भी आदि में पिण्ड दिया जाता है वहाँ पर वह सब को समापित किया करता है ॥ ३४ ॥ ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध किया जाता है वह सामान्य बताया गया है। चारों वर्णों की शुद्धि के लिये स्नान करना ही अभीष्ट होता है ॥३५॥

कृत्वा चैकादशाहं तु पुनः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ।
न भवेच्च यदा गोत्री परोऽपि विधिमाचरेत् ॥३६
स्त्री वापि पुरुषः कश्चिदिष्टये कुरुते क्रियाम् ।
श्राद्धं कृतं तु यैर्वस्त्रैस्तानि त्यक्त्वा गृहं विशेत् ॥३७
अगोत्रश्च सगोत्रो वा नरो नार्य्यप्यथापि च ।
प्रथमेऽह्नि यः कुर्य्यात् स दशाहं समापयेत् ॥३८
अशौचं यावदेव स्यात्तावत्पिण्डोदकक्रिया ।
चतुर्णामपि वर्णानामेष एव विधिः स्मृतः ॥३९
एकादशाहे प्रेतस्य दद्यात्पिण्डं समन्त्रकम् ।
सिद्धान्नं तस्य दातव्यं शर्करापूपकादयः ॥४०
द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा ।
त्रिपक्षं सञ्चयश्चैव द्वे रिक्ते खग षोडश ॥४१
मासं प्रति प्रदातव्यं मृताहे या तिथिः स्मृता ।
स मासः प्रथमो ज्ञेय अहरेकादशं तु यः ॥४२

एकादशाह करके पुनः स्नान करे तो शुद्ध होता है। जब कोई गोत्र वाला न हो तो पर को भी यह सब विधि करनी चाहिए स्त्री हो या कोई पुरुष हो वह इष्टि के लिये अर्थात् कल्याण के लिये क्रिया को किया करता है। जिन वस्त्रों को धारण कर श्राद्ध किया है उनका त्याग करके ही घर में प्रवेश करना चाहिए ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ बिना गोत्र वाला हो या सगोत्र हो—स्त्री हो

या पुन्य हो, प्रथम दिन मे जो वर्ण वा प्रारम्भ करे उसी को दशाह वर्म समाप्त करना चाहिए ॥ ३८ ॥ जब तक पिण्डादक क्रिया चलती है तभी तक आशौच भी रहता है। चारों वर्णों की यही एक विधि बताई गई है ॥ ३९ ॥ ग्यारहवे दिन में प्रेत के लिये जो पिण्ड देवे वह मन्त्रों के सहित ही देने चाहिए। उनको सर्वंग अपूप आदि मिष्टान्न ही देना चाहिए ॥ ४० ॥ बारह प्रति मास मे होने वाले श्राद्ध तथा एकादश—तीन पक्ष वाला—मध्वय और दो दिन—इस तरह हे खग ! कुल सोलह श्राद्ध होते हैं ॥ ४१ ॥ मृत्यु होने की जो तिथि होती है उस में प्रति मास मे श्राद्ध देना चाहिए। जो एकादश दिन है वह प्रथम मास जानना चाहिए ॥४२॥

या तिथिर्मासिके श्राद्धे मृतो यस्मिन्दिने नरः
रिक्तासु च त्रिपक्षे च ता तिथि नाचरेद्बुधः ॥४३
पूर्णमास्या मृतो योऽसौ चतुर्थी तस्य ऊनका ।
चतुर्थ्याञ्च मृतो योऽसौ तिथिरूना चतुर्दशी ॥४४
नवम्याञ्च मृतो योऽसौ तिथिरूना चतुर्दशी ।
एता रिक्ताश्च विज्ञेया ग्रन्थेष्टो कुशलेन च ॥४५
एकादशाहाद्दश्ति प्रेतोद्देशेन पायिनम् ।
चतुष्पथे त्यजेदन्न पुनः स्नान समाचरेत् ॥४६
मध्यादान प्रशमन्ति सर्वे देवा द्विजोत्तम ।
अनित्य जीवित यस्मात्पश्चात्कोऽनु प्रदास्यति ॥४७
तावद्बन्धु पिता तावद्यावज्जीवति मानवः ।
मृतानामन्तर ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्तते ॥४८
आत्मा वै ह्यात्मनो बन्धुरात्मा चैवात्मनो रिपु ।
जीवन्नपीति सञ्चिन्त्य पूर्वं धर्ममनुस्मरेत् ॥४९

मासिक श्राद्ध में वही तिथि ली जाती है जिस दिन मनुष्य की मृत्यु हुई है। रिक्ताओं में और त्रिपक्ष मे बुध को उस तिथि का आचरण नहीं करना चाहिए ॥ ४३ ॥ पूर्णमासी तिथि में जिसकी मृत्यु हुई है उसकी चतुर्थी तिथि ऊनका होती है और जो चतुर्थी तिथि में मृत्यु गत हुआ है उसकी चतु

देशी तिथि ऊनका होती है। और नवमी में जो मृत हुआ है उसकी भी चतुर्दशी तिथि ऊनका होती है। यह शिक्षा जाननी चाहिए। कुशल पुरुष के द्वारा अन्त्येष्टि कर्म में इनका विचार आवश्यक है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ एकादशाह में जो नद्धरित हो और प्रेत के उद्देश्य से पाक किया गया हो उस अन्न को चौराहे पर त्याग देवे और फिर स्नान करना चाहिए ॥ ४६ ॥ हे द्विजोत्तम ! समस्त देवगण शय्या के दान की प्रशंसा किया करते हैं। यह जीवित तो अनित्य है फिर पीछे कौन देगा ? समस्त बन्धु गण और पिता आदि तभी तक हैं जब तक यह मनुष्य जीवित रहा करता है। मरने के पश्चात् मृतों के अन्तर को जान कर एक ही क्षण में सारा स्नेह निवृत्त हो जाया करता है। मृत पुरुष इतनी दूर कहीं का कहीं हो जाता है कि फिर उससे भेंट ही नहीं हो सकती है—यह अन्तर समझ कर फिर गहरा स्नेह भी एक दम जरा सी देर में श्वास निकलने के साथ समाप्त हो जाया करता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अपनी मदद करने वाला अपना ही आत्मा होता है अर्थात् अपना कल्याण स्वयं अपने ही द्वारा किया जा सकता है। अपनी आत्मा का अधः पतन भी हम अपने ही द्वारा असत्कर्म करके किया करते हैं अतएव अपने हम आप ही रिपु बन जाते हैं। अतएव जीवित रहते हुए ही पुण्यों का सञ्चय करना चाहिए—यही सोच विचार कर धर्म का स्मरण करे ॥४९॥

मृतानां कः सुतो यच्छेच्छुभशय्यां सतूलिकाम् ।
एव जीवति सर्वस्वं स्वहस्तेनैव दापयेत् ॥५०
तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं शुभाम् ।
दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ॥५१
रक्ततूलिप्रतिच्छन्नां शुभशीर्षोपधानकाम् ।
प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपाधिवासिताम् ॥५२
तस्यां संस्थाप्य हैमञ्च हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् ।
घृतपूर्णञ्च कलशं तत्रैव परिकल्पयेत् ॥५३
ताम्बूलं कुंकुमाक्षोदं कर्पूरागुरुचन्दनम् ।
दीपकोपानहौ छत्रं चामरासनभाजनम् ॥५४

पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि ।
शयनस्थस्य भवति यच्च स्यादुपकारकम् ॥५५
भृङ्गारकादर्शपञ्चवर्णवितानशोभितम् ।
शय्यामेवविधा कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥५६
सपत्नीकाय सम्पूज्य स्वर्लोकसुखदायिनी ।
वस्त्रैः सुशोभनैः पूज्य चोलक परिधापयेत् ॥५७

मृत पुरुषों के निमित्त कौन सा ऐसा सत्पुत्र है जो तूलिकाओं से युक्त बहुत अच्छी शय्या का दान किया करता है ? तात्पर्य अच्छी शय्या का दान विरला ही कोई सपूत किया करता है अन्यथा खाना पूरी मात्र सब करते हैं। इस प्रकार से जीवित दशा में ही सर्वस्व का दान अपने ही हाथ से सविधि अच्छी तरह से कर लेना चाहिए ॥ ५० ॥ अतएव साल की लकड़ी की बनी हुई बहुत ही अच्छी शय्या बनवा कर जाति दन्त पत्रों से चित हो—परम सुन्दर हो और सोने के पट्टों से स्वलङ्कृत हो। तथा रक्त तूलि से प्रतिच्छिन्न की हुई और बहुत अच्छे तकिये वाली दोवने के वस्त्र से युक्त करावे और उसे गन्ध धूप से अधिवासित करावे। उस पर सुवर्ण की निर्मित श्री हरि की तथा लक्ष्मी की प्रतिमा को विराजमान करें। वहाँ पर ही एक घृत से भरा हुआ कलश भी परि कल्पित कर ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ताम्बूल—कुंकुमा क्षोद—कर्पूर—अगुरु चन्दन—दीपक—उपानह—छत्र (छाता)—चमर—आसन—भाजन (पात्र) आदि समस्त साहित्य—सामग्री उस शय्या के पास में स्थापित करें तथा पूर्ण भक्ति भाव के साथ सातों धान्य भी वहीं पर स्थित करने चाहिए। ये सब शय्या पर शयन करने वाले के उपकारक पदार्थ होंगे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ भृङ्गारक (झारी)—आदर्श (शीशा) और पाँच वर्णों से युक्त वितान से उसे शोभित करावे। इस प्रकार की शय्या को सुसम्पन्न कराके फिर ब्राह्मण के लिये दान में देवे ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण को उसकी पत्नी के सहित समादर कर उसका भली भाँति पूजन करे। इस तरह करने से यह शय्या स्वर्ग लोक में सुख प्रदान करने वाली होती है। ब्राह्मण की पूजा परम सुन्दर वस्त्र आदि से करे और चोलक उसे धारण करावे ॥५७॥

ततोऽर्घ्यश्च प्रदातव्यः पञ्चरत्नजलाक्षतैः ।
यथा कृष्ण त्वदीया हि अशून्या क्षीरसागरे ॥५८
शय्या भूयान्ममापीयं तथा जन्मनि जन्मनि ।
एवं तल्पं तथा कृष्णं क्षमाप्य च विसर्जयेत् ॥५९
एकादशाहे सम्प्राप्ते विधिरेषः प्रकीर्त्तितः ।
ददाति यदि धर्मार्थे बान्धवो बान्धवे मृते ॥६०
तैस्तैराप्यायितः प्रेतः परलोके सुखी भवेत् ।
विशेषमत्र पक्षीन्द्र कथ्यमानं मया शृणु ॥६१
उपयुक्तं तु तस्यासीद्यत्किञ्चिद्धि गृहे पुरा ।
तस्या गात्रे च यल्लग्नं वस्त्रं भाजनवाहनम् ॥६२
अभीष्टं यच्च तस्यासीत् तत्सर्वं परिकल्पयेत् ।
पुरन्दरपुरे चैव सूर्यपुत्रालये तथा ॥६३
उपतिष्ठेत्सुखं जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ।
पीडयन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः ॥६४

इसके अनन्तर अर्घ्य देवे जो कि पाँचों प्रकार के रत्न, जल और अक्षतों से युक्त हो । इसके अनन्तर निवेदन करे, हे कृष्ण ! जिस प्रकार से क्षीर सागर में आपकी शय्या अशून्य रहा करती है वैसे ही यह मेरी शय्या भी जन्म-जन्मान्तरों में होवे, इस प्रकार से तल्प और श्रीकृष्ण से क्षमा याचना करके फिर उसे विसर्जित करना चाहिए ॥५८।५९॥ एकादशाह के प्राप्त होने पर यह विधि बताई गई है यदि कोई बन्धु अपने बान्धव के मृत हो जाने पर धर्मार्थ ऐसा दान किया करता है ॥६०॥ उन-उन दानों से परम आप्यायित (तृप्त) प्रेत परलोक में सुखी हुआ करता है । हे पक्षीन्द्र ! इसमें जो विशेष तत्त्व की बात है उसे मैं कहता हूँ तुम उसका श्रवण करो ॥६१॥ उस मृत पुरुष के जो कुछ भी पदार्थ पहिले घर में उपयोग में होने वाले हों और उसके गात्र से जो भी सलग्न हुए हों जैसे कोई वस्त्र, भाजन और वाहन आदि होते हैं । उस मृत पुरुष को जो भी कुछ प्रिय और अभीष्ट हो उस सबको परिकल्पित कर देना चाहिए अर्थात् दान में दे देवे । इससे इन्द्रदेव की पुरी में तथा यमराज के नगर में वह जन्तु

शय्या के दान के प्रभाव से सुख पूर्वक रहा करता है। वहाँ पर यमराज के महा भीषण दूत उसको पीड़ित नहीं किया करते हैं ॥६२।६३।६४॥

न घर्मेण न शीतेन वाध्यते स नरः क्वचित् ।
शय्यादानप्रभावेण प्रेतो मुच्येत बन्धनात् ॥६५
अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोकं स गच्छति ।
विमानवरमारूढ सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥६६
आभूतसम्प्लवं यावत्तिष्ठेत्पातकवर्जितः ।
नवकं षोडशश्राद्धं शय्या संवत्सरक्रियाम् ॥६७
भर्तुर्या कुरुते नारी तस्या श्रेयो भवेदिह ।
उपकाराय सा भर्तुर्जीवन्ती च मृता तथा ॥६८
उद्धरेज्जीवमाना सा पति सत्यवती सती ।
स्त्रियोदद्याद्व शयने पुंसा वापि गुणान्वित ॥६९
प्रेतस्य प्रतिमां हैमीं कुंकुमभ्र्चवमञ्जनम् ।
वस्त्रं भूषां तथा शय्यामिव कृत्वा च दापयेत् ॥७०
उपकारकरं स्त्रीणां यद्भवेदिह किञ्चन ।
भूषणं तत्र सतम्न वस्त्रभाण्डादिकञ्च यत् ॥७१
तत्सर्वं मेलयित्वा तु स्वे स्वे स्थाने निधापयेत् ।
पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहदेवान्विनायकम् ॥७२

इस दान के प्रभाव से वहाँ प्राणी घाम और शीत से कभी बाधित नहीं होता है। शय्या के दान का ऐसा विशेष प्रभाव होता है कि वह प्रेत बन्धन से मुक्त हो जाया करता है ॥६५॥ चाहे पापों से भी युक्त क्यों न हो किन्तु इस दान का ऐसा प्रभाव होता है कि वह स्वर्ग लोक में गमन किया करता है। विमानों में अति श्रेष्ठ विमान पर समारूढ होता है और अप्सरायें उसकी सेवा करती हैं ॥६६॥ जब तक भूत सम्प्लव (प्रलय काल) होता है तब तक वह समस्त पातकों से रहित होकर वहाँ पर समास्थित रहा करता है। जो नारी अपने स्वामी के लिये नवक, षोडश श्राद्ध शय्या दान और सम्वत्सर की समस्त क्रिया किया करती है उस नारी का इस लोक में भी परम श्रेय हुआ करता है।

वह नारी जीवित रहती हुई अथवा मृत अपने स्वामी के उपकार के लिये ही होती है ॥६७।६८॥ वह नारी जीवित रहती हुई परम सत्य वाली और सती होने के कारण अपने पति का उद्धार किया करती है। स्त्री को शय्या का दान करना चाहिए अथवा गुणों से युक्त पुत्र हो तो उसे शय्या का दान करना चाहिए ॥६९॥ प्रेत की सुवर्ण की प्रतिमा निर्मित करा कर उसे कुंकुम अञ्जन, वस्त्र, भूषण इन सबसे संयुत करके शय्या का दान दिलाना चाहिए। ॥७०॥ यहाँ पर जो भी कुछ स्त्रियों के उपकार करने वाला होवे वह भूषण उसमें संलग्न करे और जो वस्त्र आदि भोग के योग्य पदार्थ हों वह सब मिला कर अपने-अपने स्थान पर रक्खे और सब लोकपालों को, ग्रहों को, देवगणों को तथा गणेश को पूजित करे ॥७१।७२॥

ततः शुक्लाम्बरः स्नात्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं विप्रस्य पुरतो बुधः ॥७३
प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर्युता ।
सवरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता ॥७४
आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्रः सुरगणैः सह ।
तस्माच्छय्या प्रदातव्या एप आत्मा प्रसीदतु ॥७५
आचार्याय प्रदातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
गृहीत्वा ब्राह्मणः शय्यां कोऽदादिति च कीर्त्तयेत् ॥७६
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ।
विभक्तदक्षिणा ह्येते दातारं पातयन्ति ते ॥७७

इसके अनन्तर शुक्ल वर्ण के वस्त्र धारण करके तथा स्नान करके हाथों में पुष्पों की अञ्जलि ग्रहण करके बुध को विप्र के सामने इस निम्न मन्त्र को उच्चारण करे ॥७३॥ यह प्रेत की प्रतिमा है जो सम्पूर्ण उपकरणों से युक्त है और समस्त रत्नों से समन्वित है। इसे हे विप्रदेव ! आपकी सेवा में समर्पित किया गया है ॥७४॥ आत्मा शम्भु, शिवा, गौरी और सुर समुदाय के साथ इन्द्रदेव इसलिये यह शय्या दी जाती है कि यह आत्मा प्रसन्न होवे ॥७५॥ कुटुम्ब वाले आचार्य ब्राह्मण के लिये शय्या का दान करे। ब्राह्मण शय्या का

दान ग्रहण करके किसने यह शय्या दी है—इसका वर्णन करे। गौ, गृह, शयन और स्त्री ये वस्तुएँ बहुतों को नहीं देनी चाहिए। विभक्त दक्षिणा वाले ये सब दान देने वाले का अध:पतन कराया करते हैं। इसका तात्पर्य यह होना है कि उपर्युक्त वस्तुओं का दान किसी एक ही सुयोग्य सत्पात्र के लिये करना चाहिये ॥७६।७७॥

एवं यो वितरेत्तार्क्ष्य शृणु तस्य च यत्फलम् ।
सात्र वर्षशतं दिव्यं स्वर्गलोके महीयते ॥७८
यत्पुण्यञ्च व्यतीपाते कार्त्तिक्यामयने तथा ।
द्वारकायाञ्च यत्पुण्यञ्चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ॥७९
प्रयागे नैमिषे यच्च कुरुक्षेत्रे तथार्बुदे ।
गङ्गाया यमुनायाञ्च सिन्धुसागरसङ्गमे ॥८०
शय्यादानप्रभावेण तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।
यत्रासौ जायते जन्तुर्भुङ्क्ते तत्रैव तत्फलम् ॥८१
कर्मक्षये क्षितौ जातो मानुषः शुभदर्शनः ।
महाधनी च धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥८२
पुनः स याति वैकुण्ठं मृतोऽसौ नरपुङ्गवः ।
दिव्यं विमानमारुह्य अप्सरोभिः समावृतः ।
अर्होऽसौ हव्यकव्येषु पितृभिः सह मोदते ॥८३

हे तार्क्ष्य! इस रीति से जो वितरण किया करता है उसके करने से जो फल होता है उसका तुम श्रवण करो। वह प्राणी यहाँ वाले दिव्य सौ वर्ष तक स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होकर सुखोपभोग करता है ॥७८॥ जो पुण्य व्यतीपात में, कार्तिकी पूर्णिमा में, अयन में, द्वारका में होता है तथा जो पुण्य चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय में होता है ॥७९॥ प्रयाग में, नैमिष क्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, अर्बुद में, गङ्गा में, यमुना में और सिन्धु तथा सागर के सङ्गम में जो पुण्य होता है वही पुण्य शय्या के दान के प्रभाव से प्राप्त हुआ करता है। जहाँ यह जन्तु उत्पन्न होता है वहाँ पर ही उसका फल भी भोगा करता है ॥८०।८१॥ कर्मों के क्षय हो जाने पर यह शुभ दर्शन मानव भूमि पर उत्पन्न

हुआ करता है। जब यह इस भूमि पर जन्म ग्रहण करके आता है तो बहुत बड़ा धनी, धर्म का पूर्ण ज्ञाता और सब शास्त्रों का महान् पण्डित होता है। यह मनुष्यों में परम श्रेष्ठ पुरुष यहाँ मनुष्य जीवन के सुखों का उपभोग करके पुनः मृत होकर बैकुण्ठ लोक में प्राप्त होता है। जब वह बैकुण्ठ को जाता है तो एक दिव्य पर समारूढ़ होकर अनेक अप्सराओं के द्वारा समावृत होकर जाया करता है। यह फिर हव्य और कव्यों में योग्यता प्राप्त करने वाला होकर पितृगण के साथ मोद प्राप्त किया करता है ॥८२।८३॥

२५—श्राद्ध विधान वर्णन

अपरं मम सन्देहं कथयस्व जनार्दन ।
पुरुषस्य च दृष्ट्वा वै मातरं मृतिमागताम् ॥१
पितामही जीवति च तथैव प्रपितामही ।
वृद्धप्रपितामही तद्वन्मातृसक्तः पिता तथा ॥२
पितामहप्रपितामहौ वृद्धश्च प्रपितामहः ।
केन सा मेलयते माता एतत्कथय मे प्रभो ॥३
पुनरुक्तं प्रवक्ष्यामि सपिण्डीकरणं खग ।
उमा लक्ष्मीर्महाराज्ञी सैवाभिर्मेलयेद्ध्रुवम् ॥४
त्रयः पिण्डभुजो ज्ञेयास्त्याजकाश्च त्रयः स्मृताः ।
त्रयः पिण्डानुलेपाश्च दशमः पंक्तिसंनिधौ ॥५
इत्येते पुरुषाः ख्याता पितृमातृकुलेषु च ।
तारयेद्यजमानस्तु दशपूर्वान्दिशापरान् ॥६
सपिंडः स भवेदादौ सपिंडीकरणे कृते ।
अन्त्यस्तु त्याजको ज्ञेयो वृद्धस्तत्प्रपितामहः ॥७

गरुड़ ने कहा—हे जनार्दन ! मुझे एक और सन्देह हो गया है उसे आप कृपया कहिए। यह सन्देह पुरुष की मृत्यु को प्राप्त माता को देखकर हो गया है ॥ १ ॥ हे प्रभो ! पितामही—प्रपितामही और वृद्ध प्रपितामही जीवित हैं तथा मातृ सक्त पिता—पितामह और वृद्ध प्रपितामह भी जीवित रहते हैं

तो ऐसी दशा में सपिण्डी करण कर्म में यह माता किसके साथ मेलित की जाती है ? इसे कृपा कर समझाइये ।। २ ।। ३ ।। भगवान् श्री कृष्ण ने कहा— हे खग ! पहिले कहे हुए इस सपिण्डी करण को फिर बतलाता हूँ। ऐसी माता को उमा—लक्ष्मी और सरस्वती के साथ सम्मिलित करना चाहिए ।। ४ ।। तीन पिंडों के उपभोग करने वाले जानने चाहिए और त्याजक भी तीन बताये गये हैं। तीन पिंडानुलेप होते हैं तथा दसवाँ पंक्ति सन्निधि में होता है ।। ५ ।। पिता और माता के कुलों में य इतने पुरुष ख्यात हैं। यजमान दश पूर्व के और दश आगे होने वाले पुरुषों (पीढ़ियों) को तार दिया करता है। ।। ६ ।। सपिंडी करण करने पर आदि से वह सपिंड होता है। जो अन्त्य होता है वह त्याजक होता है जैसे वृद्ध प्रपिता मह है ।।७।।

अन्त्यस्तु त्याजको यस्तु लेपक प्रथमो भवेत् ।
लेपकस्त्वन्तिमो यस्तु स भवेत्पक्तिसन्निधौ ।।८
यजमाना भवेदेको दशपूर्वे दशापरे ।
इत्येते पितरो ज्ञेया एकविंशतिशाश्वता ।।९
विधिना कुरुते यस्तु ससारे श्राद्धमुत्तमम् ।
ददते नात्र सन्देह शृणु तस्यापि तत्फलम् ।।१०
पिता ददाति पुत्रन्वै गोधनञ्च पितामह ।
हेमदाता भवेत्सोऽपि यस्तस्य प्रपितामह ।।११
कृते श्राद्धे गुणा ह्येते पितृणा तर्पणे स्मृता ।
दद्याद्विपुलमन्नाद्य वृद्धस्तु प्रपितामह ।।१२
यस्य पुत्रश्च मर्त्ये वै विच्छिन्ना सन्तति खग ।
स वसेन्नरके नित्य पङ्के मग्न. करी यथा ।।१३
योन्यन्तरे हि या जातो वृक्ष पक्षी सरीसृप ।
न सन्ततिविनाशेऽपि मुच्यते नरकाद्ध्रुवम् ।।१४

अन्त्य जो त्याजक होता है तो लेपक प्रथम होता है। जो लेपक अन्तिम होता है तो पंक्ति सन्निधि मे होता है ।। ८ ।। एक यजन करने वाला यजमान है और दश प्रथम पुरुष और दश आगे होने वाले पुरुष इस प्रकार से ये सब

कुल मिल कर इक्कीस शाश्वत पितृगण होते हैं उन्हें समझ लेना चाहिए ॥ ९ ॥ जो इस संसार में विधि के साथ उत्तम श्राद्ध किया करता है वह फल अवश्य ही देता है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं होता है उसका भी वह फल अवश्य करो ॥ १० ॥ पिता पुत्रों को देता है—पितामह गोधन देता है। जो उसका प्रपितामह होता है वह हेम (सुवर्ण) का देने वाला होता है ॥ ११ ॥ श्राद्ध के करने पर ये गुण होते हैं जो पितृगण के तर्पण होने पर हुआ करते हैं। जो वृद्ध प्रपितामह होता है वह सन्तृप्त होकर विपुल (बहुत) अन्न आदि दिया करते हैं ॥ १२ ॥ हे खग ! जिस पुरुष की इस मनुष्य लोक में सन्तति विच्छिन्न हो जाती है वह नित्य ही नरक में दल-दल में निमग्न हाथी के तरह निवास किया करता है ॥ १३ ॥ जो दूसरी योनि में जैसे वृक्ष-पक्षी और सरी सर्प आदि में उत्पन्न हो गया है वह सन्तति के विनाश होने पर भी निश्चय ही नरक से मुक्ति नहीं पाया करता है ॥१४॥

आचार्य्यस्तस्य शिष्यो वा दूरतोऽपि हि गोत्रजः।
नारायणबलिं कुर्य्यात्तस्योद्देशेन भक्तितः ॥१५

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मुक्तः स नरकाद्ध्रुवम्।
स्वर्गं च स व्रजेन्नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥१६

आदौ कृत्वा धनिष्ठाञ्च एतन्नक्षत्रपञ्चकम्।
रेवत्यन्तं सदा तस्य अशुभं सर्वदा भवेत् ॥१७

दाहस्तत्र न कर्त्तव्यो विप्रादिसर्वजातिषु।
दीयते न जलं तत्र अशुभं सर्वदा भवेत् ॥१८

लोकयात्रा न कर्त्तव्या दुःखार्त्तः स्वजनो यदि।
पञ्चकानन्तरं तस्य कर्त्तव्यं सर्वमन्यथा ॥१९

पुत्राणां गोत्रिणां तस्य सन्तापो ह्युपजायते।
गृहे हानिर्भवेत्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतस्य च ॥२०

तथापि ऋक्षमध्ये तु दाहश्च विधिपूर्वकः।
मानुषाणां हितार्थाय सद्य आहुतिकारणात् ॥२१

ऐसे पुरुष का आचार्य या उसका कोई शिष्य अथवा दूर मे रहने वाला कोई गोत्रज उसके उद्देश्य से भक्ति भाव के साथ नारायण बलि करता है तो वह सब तरह के पापो से विमुक्त होता हुआ निश्चय ही नरक से छुटकारा पा जाता है और फिर वह नित्य ही स्वर्ग में जाकर के निवास प्राप्त किया करता है—इसमे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ १५ ॥ १६ ॥ आदि मे धनिष्ठा और इस से लेकर रेवती के अन्त तक पाँच नक्षत्र सदा उसके लिये अशुभ होते हैं। इस पञ्चक म विप्र आदि सम्पूर्ण जातियो में दाह नहीं करना चाहिए। इन पाँचा नक्षत्रो मे जल भी नहीं दिया जाता है क्योंकि यह भी सर्वदा अशुभ होता है ॥ १७ । १८ ॥ इस समय म लोक यात्रा भी नहीं करनी चाहिए। यदि कोई स्वजन दुःख से ग्रस्त हो तो पञ्चक के पश्चात् उसका सभी कुछ करे। नहीं तो उसके पुत्रो को और गोत्र वालो को सन्ताप उत्पन्न हो जाता है। इन उक्त नक्षत्रो म मृत होने वाले के घर म भी हानि होती है ॥ १९ ॥ २० ॥ तो भी नक्षत्रो के मध्य म विधि पूर्वक दाह हो जाता है। तुरन्त आहुति के कारण से मनुष्यों के हित के लिए ही वह होता है ।२१।

सद्य आहुतिद पुण्य तीर्थं तद्दाह्यमुत्तमम् ।
विप्रैर्निमित्त कार्यो मन्त्रैस्तु विधिपूर्वकम् ॥२२
शवस्य तु समीपे च क्षिप्यन्ते पुत्तलास्तत ।
दर्भमयाश्च चत्वार ऋक्षमन्त्राभिपूजिता ॥२३
ततो दाहश्च कर्त्तव्य तैश्च पुत्तलकै सह ।
सूतकान्ते तत पुत्र कुर्याच्छान्तिकमुत्तमम् ॥२४
पञ्चकेषु मृतो योऽसौ न गति लभते नर ।
तिलान्गाश्च हिरण्यञ्च तमुद्दिश्य घृत ददेत् ॥२५
विप्राणा दीयते दान सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सूतकान्ते सुतैरेव स प्रेतो लभते गतिम् ॥२६
भोजनोपानहौ छत्र हेम मुद्रा च वाससी ।
दक्षिणा दीयते विप्रे भवपातकमोचनी ॥२७

यूनो वृद्धस्य बालस्य पञ्चकेपु मृतस्य च ।
विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते ॥२८

सद्य: आहुति के देने वाला पुण्य है। उसका दाह तीर्थ में परम उत्तम होता है। विप्रों के द्वारा मन्त्रों से विधि के सहित यह कार्य नियमित होता है। शव के समीप में इसके अनन्तर दर्भों से पूर्ण चार पुत्तल नक्षत्रों के मन्त्रों द्वारा अभिपूजित करके प्रक्षिप्त किये जाया करते हैं ॥२२।२३॥ इसके पश्चात् उन पुत्तलकों के सहित उस शव का दाह करना चाहिए। जब इस मृतक का आशौच समाप्त हो जाय तब पुत्र को उन पञ्चकों की उत्तम सविधि शान्ति भी करनी चाहिए ॥२४॥ पञ्चकों में जो मनुष्य मर जाता है सुगति को प्राप्त नहीं किया करता है। उस मृतक के उद्देश से तिल, गौ, सुवर्ण और घृत का दान करे ॥ ॥२५॥ विप्रों को जो दान दिया जाता है उससे सभी प्रकार के उपद्रवों का पूर्णतया विनाश हो जाया करता है। सूतक के अन्त में पुत्रों के द्वारा इस प्रकार पञ्चक शान्ति के लिये विप्रों को दान देने पर वह प्रेत सुगति को प्राप्त हो जाता है ॥२६॥ भोजन, उपानह (जूती), छाता, सुवर्ण, मुद्रा, वस्त्र, और दक्षिणा ये सब जिस समय विप्र को दिये जाते हैं तो इस संसार में होने वाले पातकों से मोचन (छुटकारा) हो जाया करता है ॥२७॥ चाहे कोई युवा हो या वृद्ध हो तथा बालक हो यदि धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में मर जाता है तो उसकी शान्ति अवश्य ही करानी चाहिए। यदि कोई पञ्चक-शान्ति के विधान को प्रमाद से, अश्रद्धा से या अन्य किसी भी कारण से नहीं करता है तो उसको विघ्न अवश्य ही हो जाया करते हैं ॥२८॥

अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ।
आशिषो द्विगुणा दर्भाः स्वस्त्यस्तु प्रणवस्तथा ॥२९
अग्नौकरणमुच्छिष्टं श्राद्धं वै वैश्वदैविकम् ।
विकिरश्च स्वधाकारः पितृशब्दो न चोच्यते ॥३०
अनुशब्दं न कुर्वीत नावाहनमथोल्मुकम् ।
आसीमान्तं न कुर्वीत प्रदक्षिणाविसर्जनम् ॥३१

न कुर्यात्तिलहोमञ्च द्विज पूर्णाहुतिं तथा ।
न कार्यो वैश्वदेवश्च कर्ता गच्छत्यधोगतिम् ।
मलिनश्राद्ध एतानि पूर्वं षोडश काश्यप ॥३२
स्थाने श्राद्धं वर्धेऽनीते विश्रामा मवहन्तके ।
श्मशानवासिभूतेभ्यः पञ्चमं प्रातिवेश्यक ॥३३
षष्ठं मञ्चयने प्रोक्तो दशपिण्डा दशाह्नि च ।
श्राद्धं षोडशकञ्चैव प्रथमं परिकीर्तितम् ॥३४
अन्यत् षोडशकं तत्र द्वितीयं तार्क्ष्य मे शृणु ।
यत्संख्यानीह विधिना श्राद्धान्येकादशैव तु ॥३५

प्रेत के निमित्त किए गये श्राद्ध में अग्राह्य वस्तुओं को वर्जित कर देना चाहिए। आशीर्वाद, द्विगुण दर्भ, स्वस्त्यस्तु, प्रणव, अग्नौकरण, उच्छिष्ट श्राद्ध, वैश्वदेविक विकिर, स्वधाकार पितृ शब्द का उच्चारण, अनुशब्द, आवाहन, उत्मुक, आसीम का प्रदक्षिण विसर्जन तिलों का होम, पूर्णाहुति और वैश्वदेव ये सब नहीं करने चाहिए। इनके करने वाला अधोगति को गमन किया करता है। हे कश्यप! षोडश के पूर्व ये सब मलिन श्राद्ध में होती हैं ॥२६ से ३२॥ दश दिन में दश पिण्ड होते हैं—पहले प्रथम स्थान पर, फिर आधा मार्ग समाप्त होने पर, चिता में, शव के हाथ में, पाँचवा प्रातिवेश्यक श्मशान में निवास करने वाले भूतों के लिये होता है ॥३३॥ छठा मञ्चयन में बताया गया है। सर्व प्रथम षोडश श्राद्ध परिकीर्तित किये गये हैं ॥३४॥ हे तार्क्ष्य! वहाँ पर दूसरे और षोडशक भी हैं, उन्हें तुम मुझसे श्रवण करो। यहाँ पर एकादश श्राद्ध विधि-विधान के साथ ही करने चाहिए ॥३५॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथान्यच्छ्राद्धपञ्चकम् ।
एवं षोडशश्राद्धानि विदुस्तत्त्वविदो जनाः ॥३६
द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा ।
त्रिपक्षमाससम्भवञ्चैव द्वे रिक्ते तथ षोडश ॥३७
आद्यं शवविशुद्ध्यर्थं कृत्वान्यच्च तु षोडश ।
पितृपंक्तिविशुद्ध्यर्थं यथार्द्धेन च याजयेत् ॥३८

शतार्द्धश्राद्धहीनश्च मेलितः पितृभाङ् न हि ।
चत्वारिंशद्भिरष्टाभिः श्राद्धैः प्रेतत्वसाधनम् ।।३९
सकृदूनशतार्द्धेन न भवेत् पितृसन्निधिः ।
मेलनीयः शतार्द्धेन सद्भिः श्राद्धेन तत्त्वतः ।।४०
शवस्य शिविकायाः करच्छेदेन सहितं करचरणयोर्बन्धनं तत्र कर्त्तव्यम् । ४१

ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अन्य पाँच श्राद्ध होते हैं, इस प्रकार से तत्त्ववेत्ता लोग षोड़श श्राद्धों को जाना करते है ।।३६।। हे खग ! बारह प्रति मास में होने वाले श्राद्ध, एकादश में, तीन पक्ष में होने वाला और दो रिक्त इस तरह से सोलह श्राद्ध है ।।३७।। आदि में होने वाला शव की विशुद्धि के लिए ही होता है । अन्य जो षोड़श श्राद्ध हैं वे पितृ-पंक्ति के विशुद्धि के लिये होते हैं । इस तरह शतार्द्ध से योजित करे ।।३८।। शतार्द्ध श्राद्ध से जो हीन होता है वह पितृभाक् मेलित होकर नहीं होता है । चालीस और आठ इष्टाओं से श्राद्धों के द्वारा प्रेतत्व का साधन होता है ।।३९।। एक बार उन शतार्द्ध से पितृगण की सन्निधि नहीं हुआ करती है । शतार्द्ध श्राद्ध के द्वारा सत्पुरुषों के साथ तत्त्वतः मेलन करना चाहिए ।।४०।। अथ शव-विधि—शव का शिविका से करच्छेद के सहित वहाँ पर कर और चरणों का बन्धन करना चाहिये ।।४१ ।

एवञ्चेन्न विधानं विधीयते तत्र पिशाचपरिभवम् ।
सञ्जायते रजन्यां शवनिर्गमने खेचरादिभयम् ।।४२
शून्यं शवं न मुञ्चेत सस्पर्शाद् दुर्गतिर्भवेत् ।।४३
ग्राममध्ये स्थिते प्रेते ह्यन्ने भुङ्क्ते यदिच्छया ।
तदन्नं मांसवत् ज्ञेयं तोयञ्च रुधिरोपमम् ।।४४
ताम्बूलं दन्तकाष्ठञ्च भोजनं ऋतुसेवनम् ।
ग्राममध्ये स्थिते प्रेते वर्जयेत् पिण्डपातनम् ।।४५
स्नानं दानं जपो होमस्तर्पणं सुरपूजनम् ।
ग्राममध्ये स्थिते प्रेते तद्वर्ज्यं जातिधर्मतः ।।४६

ज्ञातिसम्बन्धिनामेवं व्यवहार खगेश्वर ।
विलुप्य ज्ञातिधर्मश्च प्रेत पापेन लिप्यते ॥४७

इस भाँति से यदि शव का विधान नहीं किया जाता है तो वहाँ पर पिशाचों का परिभव उत्पन्न हो जाता है। रात्रि में शव के निर्गमन करने में खेचर आदि का भय होता है। किसी भी समय में शव को सूना नहीं छोड़ देना चाहिए। सस्पर्श करने से दुर्गति होती है ॥४२।४३॥ ग्राम के मध्य में प्रेत के स्थित रहने पर अर्थात् गाँव में किसी मृतक का शव रक्खा रहे और कोई अपनी इच्छा से अन्न को खा लेता है तो वह अन्न माँस की ही भाँति हुआ करता है। और जो जल पीता है वह जल खून के सदृश होता है ॥४४॥ ताम्बूल का चर्वण करना, दन्त धावन, भोजन और ऋतुकाल का सेवन करना ये काम ग्राम के मध्य में प्रेत के स्थित होने पर अर्थात् जब तक मृतक का देह ग्राम में रहे वर्जित कर देवें। इसी तरह पिण्डों का पातन भी न करे ॥४५॥ स्नान, दान, जप, होम तर्पण और देवों का पूजन करना ये भी सब ग्राम के मध्य में प्रेत के रहते हुए करना व्यर्थ अर्थात् फल शून्य हुआ करते हैं। ज्ञाति के धर्म से इनका करना निष्प्रयोजन होता है। हे खगेश्वर! ज्ञाति और सम्बन्धियों के व्यवहार को तथा ज्ञाति के धर्म को विलुप्त करके प्रेत पाप से लिप्त होना है ॥४६।४७।

२६—तीर्थ माहात्म्य और अनशन व्रत

कस्मादनशन पुण्यमक्षय गतिदायकम् ।
स्वगृहन्तु परित्यज्य तीर्थे वै म्रियते तु य ॥१
अप्राप्य तीर्थं म्रियेत गृहे मृत्युवशङ्गत ।
भूत्वा कुटीचरो यस्तु स का गतिमवाप्नुयात्॥२
सन्यास कुरुते यस्तु तीर्थे वापि गृहेऽपि वा ।
कथ तस्य प्रकर्त्तव्य अप्राप्ते निधने तथा ॥३
नियमे यत्कृते देव चित्तभङ्गो हि जायते ।
केन तस्य भवेत् सिद्धिर्यत्कृतैरन्यथाकृतैः ॥४

कृत्वा निरशनं यो वै मृत्युमाप्नोति कोऽपि चेत् ।
मानुषीं तनुमुत्सृज्य मया तुल्यो विराजते ॥५
यावन्त्यहानि जीवेत व्रते निरशने कृते ।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि समग्रवरदक्षिणैः ॥६
तीर्थे गृहे वा संन्यासं नीत्वा चेन्म्रियते यदि ।
प्रत्यहं लभते सोऽपि पूर्वोक्ताद्द्विगुणं फलम् ॥७

गरुड़ देव ने प्रश्न किया कि जो अपने गृह का परित्याग करके तीर्थ में जाकर मरता है उसका अनशन करना कैसे अक्षय पुण्य होता है और सुगति का प्रदान करने वाला भी हुआ करता है ॥ १ ॥ ? किसी तीर्थ में न पहुँच कर घर में ही मृत्यु के वशीभूत जो हो जाता है और कुटीचक संन्यासी होकर रहता है वह किस गति को प्राप्त हुआ करता है ॥ २ ॥ ? जो पुरुष किसी तीर्थ स्थल में या गृह में संन्यास धारण कर लेता है और निधन (मृत्यु) के अप्राप्त होने पर उसका किस प्रकार से करना चाहिए ।३। ? हे देव ! जिस नियम के करने पर चित्त का भङ्ग हो जाता है तो उसके होने पर किससे उसकी सिद्धि हुआ करती है । उन के किये जाने पर या अन्यथा किये जाने पर ? ॥ ४ ॥ श्री भगवान् ने कहा—यदि कोई भी निरशन करके मृत्यु को प्राप्त किया करता है वह इस मनुष्य का परित्याग करके मेरे तुल्य होकर विराजमान रहा करता है ॥ ५ ॥ निरशन व्रत करने पर जितने दिन तक जीवित रहता है वे दिन समस्त वर दक्षिण ऋतुओं के सदृश हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ यदि कोई पुरुष तीर्थ में या घर में सन्यास ग्रहण करके मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह भी प्रतिदिन पहिले बताये हुए से दुगना फल प्राप्त करता है ॥७॥

महारोगोपपत्तौ च गृहीतेऽनशने मृतः ।
पुनर्न जायते रोगी देववद्दिवि मोदते ॥८
आतुरः सन्स सन्यासं गृह्णाति यदि मानवः ।
पुनर्जातश्च संयुक्तो भवेद्रोगैश्च पातकैः ॥९
अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ।
तिलपात्रं यथाशक्ति दीपदानं सुरार्चनम् ॥१०

एव दत्तस्य दत्तान्ते पापान्युच्चावचानि च ।
मृतोऽमृतत्वमाप्नोति यथा सर्वे महर्षयः ॥११
तस्मादनशनं नृणां वैकुण्ठपददायकम् ।
स्वस्थावस्थेन देहेन साधन मोक्षलक्षणम् ॥१२
पुत्रद्रव्यादि सन्त्यज्य तीर्थं व्रजति यो नरः ।
ब्रह्माद्या देवतास्तस्य तुष्टिपुष्टिप्रदायकाः ॥१३
यस्तीर्थं सम्मुखो भूत्वा व्रते ह्यनशने कृते ।
स म्रियेदन्तरालेऽपि ऋषीणां मण्डले वसेत् ॥१४

किसी महान् रोग के उत्पन्न होने पर और अनशन के ग्रहण कर लेने पर मृत्यु को प्राप्त होना है तो उसे फिर वह रोग कभी नहीं होता है तथा फिर दिवलोक में वह देवों की भाँति आनन्द प्राप्त किया करता है ॥ ८ ॥ यदि वह आतुर होकर संन्यास ग्रहण करता है तो पुनः उत्पन्न होकर रोगों और पातकों से संयुक्त हो जाता है ॥ ९ ॥ दिन प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन देना चाहिए । अपनी शक्ति के अनुसार निल पात्र-दीप दान और सुरों का अर्चन करे ॥१०॥ इस प्रकार से दान वाले पुरुष के उच्चावच अर्थात् छोटे-मोटे समस्त पाप दग्ध हो जाया करते हैं और मृत हुआ भी प्राणी अमृत्व को प्राप्त हो जाया करता है जिस तरह से सब महर्षि गण हुआ करते हैं ॥ ११ ॥ इसलिये अनशन मनुष्यों को वैकुण्ठ के पद को प्रदान करने वाला होता है । स्वस्थता की दशा में रहने वाले देह के द्वारा ही मोक्ष के लक्षण वाला साधन होता है ॥ १२ ॥ अपने पुत्र—पौत्र और धन—सम्पत्ति सबका त्याग करके जो मनुष्य तीर्थों को गमन करता है उसके लिए ब्रह्मा आदि सब देव गण तुष्टि एवं पुष्टि के देने वाले हो जाते हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य तीर्थ के सम्मुख होकर अनशन के व्रत को करने पर अपने प्राणों का त्याग करता है वह अन्तराल में ही ऋषियों के मण्डल में निवास प्राप्त करता है ॥१४॥

व्रत निरशनं कृत्वा स्वगृहे म्रियते यदि ।
स्वकुलानि परित्यज्य एकाकी विचरेद्दिवि ॥१५

अन्नं चैव तथा तोयं परित्यज्य नरो यदा ।
पीत्वा मत्पादतोयं स न पुनर्जायते क्षितौ ॥१६
त्यक्ताशनं तीर्थगतं रक्षन्ति कुलदेवताः ।
यमदूता विशेषेण न याम्यास्तस्य यातनाः ॥१७
तीर्थसेवी सदा यस्तु सर्वकिल्विषनाशनः ।
म्रियते तत्र दह्येत स तीर्थफलभाग्भवेत् ॥१८
तीर्थसेवी सदा तीर्थादन्यत्र म्रियते यदि ।
शुभे देशे कुले धीमान्स भवेद्वेदविद्द्विजः ॥१९
कृत्वा निरशनं तार्क्ष्य पुनर्जीवति यः पुमान् ।
ब्राह्मणान्स समाहूय सर्वस्वञ्च परित्यजेत् ॥२०
चान्द्रायणञ्चरेत्कृच्छ्रमनुज्ञातश्च तैर्द्विजैः ।
अनृतं न वदेत्पश्चात्सर्वतो धर्ममाचरेत् ॥२१

अशन (भोजन) न करने वाला व्रत करके यदि अपने घर में ही कोई मरता है वह अपने कुलों का परित्याग करके अकेला ही दिवि लोक में विचरण किया करता है ॥ १५ ॥ अन्न तथा जल का त्याग करके जब मनुष्य केवल मेरा ही चरणामृत का पान करके प्राण त्याग करता है वह फिर इस मही मण्डल में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥ १६ ॥ अपने अशन का त्याग करने वाले और तीर्थों में जाकर निवास करने वाले पुरुष की रक्षा कुल देवता किया करते हैं ? यमदूत विशेष रूप से उसे यम द्वारा दी हुई यातनाऐं नहीं दिया करते हैं ॥ १७ ॥ जो पुरुष सदा—सर्वदा तीर्थों का सेवन करने वाला होता है उसके सभी किल्विषों का नाश हो जाया करता है । जब वह मरता है तो उसका जो दाह करता है वह तीर्थ के फल का भागी हो जाया करता है ॥ १८ ॥ जो सदा तीर्थों का सेवन करने वाला हो और यदि संयोग से वह तीर्थ से अन्य किसी स्थान में मर जाता है तो किसी शुभ देश और परम शुभ कुल में अत्यन्त बुद्धिमान् वेदों का वेत्ता द्विज होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥ १९ ॥ हे तार्क्ष्य ! जो पुरुष निरशन करके पुनः जीवित हो जाता है उसे ब्राह्मणों को बुला कर सर्वस्व का परित्याग कर देना चाहिए ॥ २० ॥ उसे द्विजों के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत को करना चाहिए

और पीछे कभी भी मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए और सब प्रकार से धर्म का आचरण करना चाहिए ॥२१॥

तीर्थं गत्वा त य कोऽपि पुनरायाति वै गृहे ।
अनुज्ञात गुर्भैर्विप्रै प्रायश्चित्तमथाचरेत् ॥२२
दत्त्वा सुवर्णदानानि गोमहीगजवाजिन ।
तीर्थं यदि लभेद्यस्तु मृत्युकाले स भाग्यभाक् ॥२३
गृहात्प्रचलितस्तीर्थं मरण ममुपस्थिते ।
पदे पदे तु गादान हिसा नो वर्त्तते यदि ॥२४
स्वगृहे यत्कृत पाप तीर्थस्नानेर्विशुध्यति ।
तत्र दद्यानि दानानि ह्यक्षयानि सदा खग ॥२५
कुरुत तत्र चेत्पाप वज्रलेपमम हि तत् ।
विलदयत्पापैर्न सदहो यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२६
आतुर मति देयानि निर्धनैरपि मानवै ।
गावस्तिला हिरण्यञ्च सप्तधान्य विशेषत ॥२७
क्षानगन्त नर दृष्ट्वा हृष्टा सर्वे दिवौकस ।
ऋषिभि सह धर्मेण चित्रगुप्तेन वै तथा ॥२८

तीर्थ मे जाकर जो कोई फिर घर म आता है तो उसे विप्र गण की आज्ञा प्राप्त करके प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥ २२ ॥ सुवर्ण का दान—गो—भूमि—हाथी और अश्व का दान देकर जो कोई मृत्यु के समय मे तीर्थ का लाभ प्राप्त करता है तो वह बड़ा भाग्यशाली होता है ॥ २३ ॥ मृत्यु काल के उपस्थित हो जाने पर जो अपने घर से किसी तीर्थ को चल दिया है और यदि कोई भी हिंसा का भाव विद्यमान नही होता है तो उसके एक एक कदम पर गोदान का पुण्य फल हुआ करता है। २४ ॥ अपने घर मे जो भी कुछ पापाचरण किया है वह सभी तीर्थ के स्नान करके विशुद्ध हो जाया करता है। हे खग ! तीर्थ म दिये हुए दान सदा अक्षय हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ यदि तीर्थ मे पहुँचकर कोई पापका कम किया जाता है तो वह वज्रलेप अर्थात् अ यन्त सुदृढ हो जाया करता है। उन पापों से जब तक सूर्य और चन्द्र स्थिर रहा करते

हैं तब तक उन तीर्थ में किये हुए पापों से यह जीवात्मा क्लेश भोगा करता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ आतुर की अवस्था प्राप्त होने पर दान हीन मनुष्यों को भी गौ—तिल—सुवर्ण और विशेष रूप से सात धान्यों का दान अवश्य ही करना चाहिए ॥ २७ ॥ दान शील नर को देख कर सब देवगण परम प्रसन्न होते हैं। समस्त ऋषीगण धर्मराज और चित्रगुप्त को भी बहुत हर्ष हुआ करता है ॥२८॥

स्वतन्त्रं हि धनं यावत्तावद्विप्रे समर्पयेत् ।
पराधीनं मृते सर्वं कृपया को हि दास्यति ॥२६
पित्रुद्देशेन यैः पुत्रैर्धनं विप्रकरेऽर्पितम् ।
आत्मनः साधनं तैस्तु कृतं पुत्रप्रपौत्रकैः ।३०
पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मातुरुच्यते ।
भगिन्यै शतसाहस्रं सोदर्य्ये दत्तमक्षयम् ॥३१
यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसंज्ञके ।
मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्य्याः पापिनस्तथा ॥३२
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च ।
गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥३३
मृत्युः शरीरगोप्तारं वसुरक्षं वसुन्धरा ।
दुश्चरित्रेव हसति स्वपतिं पुत्रवत्सलम् ॥३४
उदारो धार्मिकः सौम्यः प्राप्यापि विपुलं धनम् ।
तृणवन्मन्यते तार्क्ष्य आत्मानं वित्तमित्यपि ॥३५
न चैवोपद्रवस्तस्य मोहजालं न चैव हि ।
मृत्युकाले न च भयं यमदूतसमुद्भवम् ॥३६
समाः सहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ तपने च षोडश ।
महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके भारत चाक्षया गतिः ॥३७

जितना धन स्वतन्त्र है उतना सब विप्र की सेवा में समर्पित कर देना चाहिए। मृत्यु हो जाने पर तो सभी कुछ जो भी तुम्हारा है पराये अधीन हो जायगा फिर कृपा करके कौन देगा ॥ २६ ॥ अपने पिता के कल्याण होने

के उद्देश्य से जिन पुत्रों ने धन को विप्रों के हाथ में दान रूप में अर्पित किया है उन पुत्र—पौत्र ने अपनी आत्मा का साधन सम्पन्न कर लिया है ॥ ३० ॥ पिता के उद्देश्य से दिए हुए का शतगुण फल होता है। माता के लिये दिया हुआ हजार गुना होता है—भगिनी के लिए दिया हुआ सौ सहस्र गुना और सगे भाई के उद्देश्य से दिया हुआ अक्षय होता है ॥ ३१ ॥ यदि लोभ के वशीभूत होकर आतुर की मत्ता काल के समय में नहीं देते हैं तो मृत होकर वे सब कदम और पापात्मा सोचा करते हैं अर्थात् पश्चात्ताप ही किया करते हैं ॥ ३२ ॥ अत्यन्त क्लेश के द्वारा प्राप्त होने वाले और प्रकृति से चञ्चल इस धन की एक ही उत्तम गति दान करना है और अन्य सब विपत्तियाँ ही हैं। ॥ ३३ ॥ शरीर की रक्षा करने वाले पुरुष को मृत्यु और धन की रक्षा करने वाले को यह वसुन्धरा पुत्र पर प्रेम करने वाले अपने पति को दुष्ट चरित्र वाली स्त्री के समान हँसा करती है ॥ ३४ ॥ उदार—धार्मिक और सौम्य भी पुरुष विपुल धन प्राप्त करके हे तार्क्ष्य ! उस बहुत से धन को और अपने आपको भी एक तृण की भाँति समझा करता है ॥ ३५ ॥ ऐसे उस पुरुष को कोई भी उपद्रव नहीं होता है—न कोई मोह का जाल होता है और मृत्यु के समय आने पर उसे किसी भी प्रकार का भय भी नहीं होता है जो कि यमदूतों के द्वारा समुत्पन्न आम तौर पर सबको हुआ करता है ॥ ३६ ॥ एक हजार सात वर्ष जल में—एक सहस्र ग्यारह अग्नि में और एक सहस्र सोलह तपन में—साठ महाहव में और अस्सी अनाशक नाग्रह में हे भारत ! उसकी अक्षय गति होती है ॥३७॥

२७—उदकुम्भ प्रदान विधि

उदकुम्भप्रदान मे कथयस्व यथातथम्।
विधिना केन दातव्या कुम्भास्ते कतिसङ्ख्यया ॥१
किंलक्षणा केन पूर्णा कस्मै देया जनार्दन।
कस्मिन्काले प्रदातव्या प्रेततृप्तिप्रदायका ॥२
मध्य तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि उदकुम्भप्रदानकम्।
प्रेतोद्देशेन दातव्यमन्नपानीयसंयुतम् ॥३

मानुषस्य शरीरे तु अस्थ्नामेव तु सञ्चयः ।
संख्यातः-सर्वदेहेषु षष्ट्यधिकशतत्रयम् ॥४
उदकुम्भेन पुष्टानि तान्यस्थीनि भवन्ति हि ।
एतस्माद्दीयते कुम्भः प्रीतिः प्रेतस्य जायते ॥५
द्वादशाहे च षण्मासे त्रिपक्षे वाथ वत्सरे ।
उदकुम्भाः प्रदातव्या मार्गे तस्य सुखाय वै ॥६
सुलिप्ते भूमिभागे तु पक्वान्नजलपूरिताः ।
प्रेतस्य तत्र दातव्यं भोजनञ्च यहच्छया ॥७

श्री गरुड़ देव ने निवेदन किया—हे भगवन् ! जल कुम्भ के दान के विषय में ठीक-ठीक मुझको समझाइये । वे जल के कुम्भ संख्या में कितने होने चाहिए और किस विधि से उनका दान करना चाहिए ? ॥१॥ हे जनों की पीड़ा के अर्दन करने वाले ! वे कुम्भ किस स्वरूप के होते हैं और किससे पूर्ण किये जाते हैं तथा किसको वे दान में देने चाहिए ? कृपा कर यह भी बताइये—उनका दान किस समय में करना चाहिए जिससे वे प्रेत की तृप्ति के करने वाले होते हैं ? ॥२॥ श्री भगवान् ने उत्तर दिया—हे तार्क्ष्य ! यह सर्वथा तुम्हारा पूछना सत्य एवं यथार्थ है । मैं अब उद कुम्भ के प्रदान के सम्बन्ध में बतलाता हूँ । प्रेत के उद्देश्य से अन्न और जल से समन्वित करके ही दान करना चाहिए । ॥३॥ इस मानव के शरीर में अस्थियों (हड्डियों) के संचय को ही संख्यात किया जावे तो तीन सौ साठ होती हैं ॥४॥ उद कुम्भ से वे अस्थियाँ परिपुष्ट हुआ करती हैं । इसलिये ही कुम्भ दिया जाता है और इससे प्रेतात्मा को प्रसन्नता हुआ करती है ॥५॥ उस प्रेत को यमपुरी के महा मार्ग में सुख की प्राप्ति के लिये द्वादशाह में, षण्मास में, त्रिपक्ष में और उस दिन में उद कुम्भ देने चाहिए ॥६॥ भूमि के भाग को भली-भाँति लीपकर उस पर पक्वान्न और जल से पूरित करके उद कुम्भों का दान करे । वहाँ पर यहच्छा से प्रेतात्मा का भोजन भी देना चाहिए ॥७॥

सुप्रीतस्तेन दानेन प्रेतो याम्यैः सह व्रजेत् ।
द्वादशाहे विशेषेण घटान्द्वादशसंख्यकान् ॥८

तत्रापि वर्धनी तत्र पक्वान्नजलपूरिता ।
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सङ्कल्प्य ब्राह्मणाय वै ॥६
एका वै धर्मराजाय तेन दत्तेन मुक्तिभाक् ।
चित्रगुप्ताय चैका तु गतस्तत्र सुखी भवेत् ॥१०
षोडशार्घ्या प्रदातव्या माषान्नजलपूरिता ।
उत्क्रान्तिश्राद्धमारभ्य श्राद्धे षोडशके कृते ॥११
षोडश ब्राह्मणार्थं व एकैकं विनिवेदयेत् ।
एकादशाहात्प्रभृति देयो नित्यं घटाब्दकः ॥१२
पक्वान्नजलसम्पूर्णो यावत्संवत्सरं दिनम् ।
एकाश्च वर्द्धनी तत्र वंशपात्रोपरिस्थिताम् ॥१३
वस्त्रं गच्छादितान्चैव सयुक्ताश्च सुगन्धिभिः ।
ब्राह्मणाय विशेषेण जलपूर्णां प्रदापयेत् ॥१४
अहन्यहनि सङ्कल्प्य विधिपूर्वं घटं खग ।
ब्राह्मणाय कुलीनाय वेदव्रतयुताय च ॥१५
सत्पात्राय प्रदातव्या न मूर्खाय कदाचन ।
समर्थो वेदवित्ताढ्यस्तरणे तारणेऽपि च ॥१६

इस दान से परम प्रसन्न होता हुआ प्रेत यम के दूतों के साथ उस परलोक के महान् मार्ग में गमन किया करता है । बारहवें दिन में विशेष रूप से बारह घटों का दान करे ॥८॥ एक वर्धनी भी उस दिन में पक्व अन्न-जल से परिपूर्ण कर भगवान् विष्णु का उद्देश्य करके सङ्कल्प करके ब्राह्मण को देवे । ॥६॥ एक धर्मराज के लिये देवे । इसके देने से मुक्ति का भागी होता है । एक चित्रगुप्त का उद्देश्य करके भी देनी चाहिए जिससे वहाँ जाने पर वह सुख वाला होवे ॥१०॥ माष अन्न और जल से पूरित करके षोडश अर्घ्य देने चाहिए । उत्क्रान्ति श्राद्ध का आरम्भ करके षोडशक श्राद्ध करने पर सोलह ब्राह्मणों को एक-एक निवेदित करे । एकादशाह से लेकर वर्ष भर नित्य घट देवे ॥११॥१२॥ सम्वत्सर में जितने दिन हों उतने ही घट पक्व अन्न जल से पूरित करके देवे और एक वंशपात्र के ऊपर में स्थित करके देवे ॥१३॥ उस वर्धनी को वस्त्रों

से समाच्छादित करे और सुगन्धित पदार्थों से संयुत करे फिर विशेष रूप से जल से पूर्ण करके ब्राह्मण के लिये दान देवे ।।१४।। हे खग ! दिन प्रतिदिन सङ्कल्प करके विधि के साथ घट को किसी अच्छे कुल में उत्पन्न और वेद-व्रत से युक्त ब्राह्मण के लिये दान करना चाहिए। यह दान किसी सत्पात्र को ही देवे, मूर्ख ब्राह्मण को नहीं देना चाहिए। ऐसे किसी सुयोग्य विप्र को दान देवे जो वेद के धन से सम्पन्न हो और स्वयं तरण में तथा अन्य के तारण में समर्थ होवे ।।१५।१६।।

२८–दान तीर्थ और मोक्ष कथन

दानतीर्थाश्रितं मोक्षं स्वर्गञ्च वद मे प्रभो ।
केन मोक्षमवाप्नोति केन स्वर्गे वसेच्चिरम् ।
केनासौ च्यवते जन्तुः स्वर्लोकात्सप्तलोकतः ।।१
मानुष्य भारते वर्षे त्रयोदशसु जातिषु ।
सम्प्राप्य म्रियते तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ।।२
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।३
सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
मृतो विष्णुपुरं याति पुनर्जन्म न विद्यते ।।४
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।।५
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ।।६
शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा ।
तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिस्तत्र न संशयः ।।७

तार्क्ष्य ने कहा—हे प्रभो ! दानों तथा तीर्थों के आश्रित मोक्ष और स्वर्ग का वर्णन मेरे सामने करने की कृपा करिये। किससे मृतात्मा मोक्ष की प्राप्ति करता है और किससे स्वर्ग का निवास पाया करता है और किस कारण से यह

जन्तु स्वर्लोक और सत्यलोक से च्यवन किया करता है अर्थात् च्युत हो जाता है ? ॥१॥ श्री भगवान् बोले—भारतवर्ष में तेरह जातियों में मनुष्य जन्म पाकर जो तीर्थ में प्राण त्याग किया करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। ॥२॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारावती, पुरी ये सात पुरी मोक्ष प्रदान करने वाली बताई गई है ॥३॥ प्राणों के कण्ठगत होने पर भी जो "सन्न्यस्तम्" अर्थात् सन्यास किया है—ऐसा जो बोलता है वह मृत होकर विष्णुपुर को चला जाया करता है और फिर उसका जन्म ससार में नहीं होता है अर्थात् मोक्ष होकर आवागमन से छुटकारा पा जाता है ॥४॥ जिसने एक बार भी 'हरि' इस भगवन्नाम के दो अक्षरों का उच्चारण किया है। उसने मोक्ष प्राप्त करने के लिये परिकर बद्ध कर लिया है अर्थात् कमर कसकर वह पूरी तरह से तैयार हो ही गया है—ऐसा समझ लेना चाहिए ॥५॥ कृष्ण, कृष्ण कृष्ण—इस तरह मेरे नाम का बारम्बार उच्चारण करके जो नित्य ही मेरा स्मरण किया करता है उसका मैं जल का भेदन करके कमल जैसे बाहर निकल कर अपना सौरभ सौन्दर्य प्रदान किया करता हूँ वैसे ही उस पुरुष का नरक से उद्धार कर दिया करता हूँ ॥६॥ समस्त पापों के दोषों के क्षय करने वाली शालग्राम की शिला जहाँ पर विराजमान हो और उसकी सन्निधि में कोई अपने प्राणों का परित्याग करता है उसकी निश्चय ही मुक्ति हो जाती है इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है ॥७॥

> शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला ।
> उभयो सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशय ॥८
> रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनस्पर्शनकीर्त्तनात् ।
> तुलसी दहते पाप नृणा जन्मार्जित खग ॥९
> ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे ।
> य स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकै ॥१०
> न काष्ठे विद्यते देवा न शिलाया न मृत्सु च ।
> भावे हि वसते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥११
> प्रात. प्रात प्रपश्यन्ति नर्मदा मत्स्यघातिन ।
> न तेषा शुद्धिमायाति चित्तवृत्तिर्गरीयसी ॥१२

यादृशी चित्तवृत्तिः स्यात्तादृक्कर्मफलं नृणाम् ।
परलोके गतिस्तादृक्प्रतीतिः फलदायिका ॥१३
गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे च स्त्रीणां बालवधेषु च ।
प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥१४

तुलसी का बड़ा भारी माहात्म्य होता है। तुलसी के पौधे के रोपण करने से, तुलसी वृक्ष के सेचनादि से, पालन करने से, इसके केवल सींचने से तुलसी को नमस्कार करने से, इसके स्पर्श मात्र करने से और तुलसी के गुण तथा महिमा के कथन करने से हे खग ! यह तुलसी मनुष्यों के जन्म-जन्मान्तर के अर्जित पापों को जला दिया करती है ।।८।९।। ज्ञान रूपी ह्रद (जलाशय) में, सत्य रूपी जल में जो कि राग और द्वेष के मलों का अपहरण करने वाला है, ऐसे मानस स्वरूपी तीर्थ में जो स्नान करता है वह पातकों से कभी भी लिप्त नहीं हुआ करता है ।।१०।। देवता न तो काष्ठ में है न शिला में है, न मृत्तिका में ही रहता है। देव तो भावना में रहा करते है। मनुष्य की भावना जहाँ भी होगी वहीं देव साक्षात् स्वरूप में व्यक्त हो सकते है। अतएव भाव ही सबका मुख्य कारण होता है ।।११।। नित्य ही प्रातःकाल ही में मत्स्यों के घात करने वाले लोग नर्मदा का दर्शन किया करते हैं किन्तु उनके हृदय की दूषित भावना होने के कारण उनकी गरीयसी चित्त की वृत्ति कभी भी शुद्ध नहीं होती है ।। ।।१२।। जिस प्रकार की मनुष्यों की चित्त की वृत्ति होती है वैसा ही उनके कर्मों का फल भी हुआ करता है और फिर परलोक में उनकी गति भी उसी तरह की होती है क्योंकि प्रतीति ही फल देने वाली होती है ।।१३।। गुरु के लिये, ब्राह्मण के लिये, स्त्रियों के लिये और बाल वधों के लिये जो अपने प्राणों के त्याग करने को तत्पर हो जाता है वह प्राणी निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।।१४।।

अनशने मृतो यस्तु विमुक्तः सर्वबन्धनैः ।
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यः स वै मोक्षमवाप्नुयात् ।।१५
एते वै मोक्षमार्गाश्च स्वर्गमार्गास्तथैव च ।
गोग्रहे देशविध्वंसे देवतीर्थविपत्सु च ।।१६

जीवित मरणञ्चैव उभयो: श्रेष्ठमुच्यते ।
जीवितं दानभोगाभ्यां मरणं रणतीर्थयोः ।।१७
उत्तमाधममध्याश्च बध्यमानाश्च प्राणिनः ।
आत्मानं सम्परित्यज्य स्वर्गवासं लभन्ति ते ।।१८
हरिक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे भृगुक्षेत्रे तथैव च ।
प्रभासे श्रीफले चैव अर्बुदे च त्रिपुष्करे ।।१९
भूतेश्वरे मृतो यस्तु स्वर्गे वसति मानवः ।
ब्रह्मणो दिवसं यावत्ततः पतति भूतले ।।२०
वर्षवृत्तिञ्च या दद्याद्ब्राह्मणे व्रतसंयुते ।
स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ।।२१

अनशन करने में जिसकी मृत्यु हो जाती है वह सभी प्रकार के बन्धनों से विमुक्त हो जाया करता है। विप्रों को दान देकर वह मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।।१५।। ये सभी मोक्ष के प्राप्त करने के मार्ग हैं। इसी भाँति स्वर्ग प्राप्त करने के भी मार्ग होते हैं। गौओं के ग्रहण करने से, देश के विध्वस्त होने में, दैव, तीर्थ की विपत्तियों में जीवित रहना तथा मरण प्राप्त करना दोनों ही श्रेष्ठ होते हैं। दान और भोग से जीवित और रण भूमि तथा तीर्थ में मृत्यु का होना श्रेष्ठ होता है। बध्यमान प्राणी उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के हुआ करते हैं। वे आत्मा का त्याग करके स्वर्ग के निवास का लाभ किया करते हैं ।।१६।१७।१८।। हरिक्षेत्र कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, प्रभास क्षेत्र, श्रीफल, अर्बुद और त्रिपुष्कर क्षेत्र में तथा भूतेश्वर में जो मृत्युगत होता है वह मनुष्य स्वर्ग में वास किया करता है। और ब्रह्मा का जब तक एक दिन पूरा होता है तब तक उसको स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है। इस अवधि के समाप्त होने पर वह पुनः भूतल पर गिर कर आता है ।।१९।२०।। व्रत से संयुत ब्राह्मण को जो कोई एक वर्ष की पूरी वृत्ति का दान करता है अर्थात् पूरे वर्ष भर के खान-पीने का सामान देता है वह अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार करके अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित हो जाता है ।।२१।।

कन्यां विवाहयेद्यस्तु ब्राह्मणे वेदवित्तमे ।
इन्द्रलोके वसेत्सोऽपि स्वकुलैः परिवेष्टितः ।।२२

महादानानि दत्त्वा च नरस्तत्फलमाप्नुयात् ।
वापीकूपतडागानामारामसुरसद्मनाम् ॥२३
जीर्णोद्धारं प्रकुर्वाणः पूर्वकर्त्तुः फलं हि यत् ।
तस्यैव द्विगुणं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥२४
कर्णकण्ठाङ्गुलीबाहुं भूषणैश्चित्रवर्णकैः ।
गृहोपकरणैर्युक्तं गृहं धेनुसमन्वितम् ॥२५
शीतवातातपहरमपि यत्र कुटीरकम् ।
कृत्वा विप्राय विदुषे प्रददाति कुटुम्बिने ॥२६
तिस्रः कोटयर्द्धकोटीश्च समाः स्वर्गे महीयते ।
या स्त्री सवर्णा संशुद्धा मृतं पतिमनुव्रजेत् ।
सा मृता स्वर्गमाप्नोति वर्षाणां पूर्वसङ्ख्यया ॥२७
पुत्रपौत्रादिकं हित्वा स्वपतिं याधिरोहति ।
स्वर्गं लभते तौ चोभौ कुलैस्त्रिभिः समन्वितौ ॥२८

जो वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण को कन्या देकर उसका विवाह कर देता है वह भी अपने समस्त कुलों से परिवेष्टित अर्थात् समन्वित होकर इन्द्रलोक में निवास किया करता है ।।२२।। महादानों को देकर मनुष्य उनके फलों की प्राप्ति किया करता है । बावड़ी, कुआ, तालाब, उद्यान और देवालय इन सबका या इनमें से किसी एक का जीर्णोद्धार करने वाला मनुष्य, इनको जिसने पहिले बनाया था उसका जो पुण्य-फल होता है उससे द्विगुण पुण्य प्राप्त करता है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।।२४।। कण्ठ—कर्ण–अंगुलि और बाहु के चित्र-विचित्र भूषणों से युक्त—गृह में उपयोगी समस्त आवश्यक उपकरणों से समन्वित–दूध देने वाली धेनु से संयुत–शीत, वात और आतप के हरण करने वाले कुटीर वाले गृह का निर्माण कराकर किसी कुटुम्बी विद्वान् ब्राह्मण को जो दान में देता है वह पुरुष साढ़े तीन करोड़ वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में प्रतिष्ठित रहा करता है । जो सवर्णा एवं सम्यक् प्रकार से शुद्ध स्त्री मृत पति का अनुगमन किया करती है अर्थात् उसी के साथ सती हो जाती है वह मरकर पूर्वोक्त संख्या वाले साढ़े तीन करोड़ वर्षों तक स्वर्ग में निवास किया करती है ।।२५।२६।२७।।

जो पुत्र पौत्रादिक का त्याग कर अपने मृत पति की चिता में अधिरोहण करती है वे दानों ही स्त्री-पुरुष अपने तीन कुलों के सहित स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं ।।२८।।

कृत्वा पापन्यनकानि भर्तृद्रोहे मति सदा ।
प्रक्षालयति सर्वाणि या स्व पतिमनुव्रजत् ।।२६
महापापसमाचारो भर्त्ता चद्दुष्कृती भवत् ।
तस्याप्यनुव्रता नारी नाशयत्सर्वकिल्बिषम् ।।३०
ग्राममात्र तु यश्चान नित्यदान करोति य ।
छत्रचामरसंयुक्ते स विमानेऽधिगच्छति ।।३१
यत्कृत हि मनुष्यस्य पापञ्च मरणान्तिकम् ।
तत्सर्व नाशमायाति वषवृत्तिप्रदानत ।।३२
भूत भावि वर्त्तमान पाप जन्मत्रयार्जितम् ।
प्रक्षालयति तत्सर्वं विप्रकन्याविवाहनात् ।।३३

जो अनेक पापों को करके सर्वदा अपने पति के द्रोह में बुद्धि रखा करती थी वह भी यदि अपने मृत पति का अनुगमन कर लेती है तो अपने सम्पूर्ण पापों का प्रक्षालन कर लिया करती है ।।२६।। यदि उनका पति जो नारी अपने पति का अनुगमन करती है महान् पापों के आचरण करने वाला भी हो घोर पूर्णतया दुष्कर्मी हो तो भी वह अनुव्रता नारी उसके भी पापों का प्रक्षालन कर दिया करती है ।।३०।। जो ग्राम मात्र को ही नित्य अन्न का दान किया करता है वह छत्र और चमरों से समन्वित विमान में अधिरोहण कर स्वर्ग को जाया करता है। जो वर्ष भर की वृत्ति किसी को दिया करता है उसने आरम्भ से मृत्यु तक जो भी कुछ पाप किया है वह सब नाश को प्राप्त हो जाया करता है ।।३१।३२।। किसी विप्र की कन्या का विवाह करा देने से तीन जन्म का भूत-भवि और वर्त्तमान सम्पूर्ण पाप का मनुष्य प्रक्षालन कर दिया करता है ।।३३।।

दशकूपसमा वापी दशवापीसम सर ।
दशाना सरसा साम्य प्रश्रा तार्क्ष्य निर्जले ।।३४

प्रपापि निर्जले देशे यद्दानं निर्धने द्विजे ।
प्राणिनां यो दयां धत्ते स भवेल्लोकनायकः ॥३५
एवमादिभिरन्यैश्च सुकृतैः स्वर्गभाग्भवेत् ।
सर्वधर्मफलं प्राप्य प्रतिष्ठां परमां लभेत् ॥३६
फल्गु कार्य्यं परित्यज्य सततं धर्मवान्भवेत् ।
दानं सत्यं दया चेति सारमेतज्जगत्त्रये ॥३७
दानं साधु दरिद्रस्य शून्ये लिङ्गस्य पूजनम् ।
अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलं लभेत् ॥३८

दश कुओं के निर्माण करा देने के तुल्य पुण्य एक बावड़ी के निर्माण कराने का होता है। दश बावड़ियों के समान एक सर होता है और दश सरोवरों के समान किसी बिना जल वाले स्थान में एक प्याऊ के निर्माण का पुण्य होता है ॥३४॥ प्रपा (प्याऊ) वहाँ ही बनवानी चाहिए जहाँ जल का अभाव हो और दान उसी ब्राह्मण को देना चाहिए जो निर्धन हो। जो प्राणियों पर दया किया करता है वह लोक का नायक होता है ॥३५॥ एवमादि पुण्यों से तथा अन्य सुकृतों से मनुष्य स्वर्ग के निवास का अधिकारी हुआ करता है। सब धर्म के फल को प्राप्त कर परम प्रतिष्ठा को प्राप्त किया करता है ॥३४॥ फलशून्य व्यर्थ के कार्य का त्याग कर निरन्तर धर्म के करने वाला होना चाहिए। इस जगत् में दान–सत्य और दया ये तीन ही सार वस्तु हैं ॥३७॥ दरिद्र को दान देना, शून्य में लिङ्ग का पूजन करना और अनाथ व्यक्ति के प्रेत सस्कार का करना–इनसे एक करोड़ यज्ञों के करने का फल प्राप्त हुआ करता है ॥३८॥

२६—अशौच विधि कथनम्

सूतकानां विधिं ब्रूहि दयां कृत्वा ममोपरि ।
विवेकाय हि चित्तस्य मानवानां हिताय च ॥१
मृते जन्मनि पक्षीन्द्र सपिण्डानां हि सूतकम् ।
चतुर्णामपि वर्णानां सर्वकर्मविवर्जनम् ॥२
उभयत्र दशाहानि कुलस्याशु विवर्जयेत् ।
दानं प्रतिग्रहं होमं स्वाध्यायश्च निवर्त्तयेत् ॥३

देशकाल तथात्मान द्रव्य द्रव्यप्रयोजनम् ।
उपपत्तिमथावस्था ज्ञात्वा शौच प्रकल्पयेत् ॥४

मृत पतौ वनस्थे च दशान्तरमृतेषु च ।
स्नान सचैल कर्त्तव्य सद्य शौच विधीयते ॥५

स्रावगर्भाश्च ये जीवा ये च गर्भाद्विनि सृता ।
न तेषामग्निसस्कारो नाशौच नोदकक्रिया ॥६

कारव शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च ।
राजानो राजभृत्याश्च सद्य शौचानुकारिण ॥७

गरुड ने कहा—हे भगवन् ! अब मानवो के हित के लिये और चित्त के विवेक के वास्ते मुझ पर कृपा करके सूतको की विधि बताने की उदारता कीजिए । श्रीभगवान् ने कहा हे पक्षी द्र ! किसी की मृत्यु और जन्म होने पर जो सपिड पुरुष एव स्त्री होते हैं उनको सूतक हुआ करता है । इन जन्म का शौच और मृत का शौच की दशा मे चारो वर्णों मे सम्पूर्ण प्रकार के कर्मों का विशेष रूप से निषेध हुआ करता है ॥ १ ॥ २ ॥ दोनो प्रकार के सूतक में दश दिन कुल के दान प्रतिग्रह—होम और स्वाध्याय अर्थात् वेदो का अध्ययन इनका शीघ्र वर्जन कर देना चाहिए ॥ ३ ॥ देश—काल—आत्मा—द्रव्य प्रयोजन—उत्पत्ति और अवस्था इनका ज्ञान करके शौच की प्रकल्पित करे ॥ ४ ॥ वन मे स्थित पति के मृत हो जाने पर और अन्य देश मे मृत्यु गत होने पर वस्त्रो के सहित स्नान करना चाहिए । इसी से तुरन्त शुद्धि हो जाया करती है ॥ ५ ॥ जिन जीवो के गर्भ का स्राव हो गया है और जो गर्भ मे विनि सृत हो गये हैं उनका न तो कोई अग्नि सस्कार होता है और न उदक क्रिया ही की जाया करती है ॥ ६ ॥ कारु लोग (कारीगर)—शिल्पी (दस्तकार)—वैद्य—दासी-दास—राजा लोग और भृत्य वर्ग ये तुरन्त ही शौच के अनुकारी हो जाते हैं ॥ ७ ॥

सव्रतो मन्त्रपूतश्च आहिताग्निर्नृपस्तथा ।
एतेषा सूतक नास्ति यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणा ॥८

प्रसवेन गृहस्थानां न कुर्यात्सङ्करं द्विजः ।
दशाहाच्छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥९
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥१०
सर्वेषामेवमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥११
अन्तर्दशाहे चेत्स्यातां पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तस्य दशाह्निकम् ॥१२
क्षुधिते नियमादानं आर्त्ते विप्रे निवेदयेत् ।
तथैव ऋषिभिः प्रोक्तं यथाकालं न दुष्यति ॥१३
दानं परिषदे दद्यात्सुवर्णं गां वृषं द्विजः ।
क्षत्रियो द्विगुणं दद्याद्वैश्यस्तु त्रिगुणं तथा ॥१४

व्रत से युक्त—मन्त्रों से पवित्र—अहित अग्नि वाला—और नृप इनको सूतक नहीं होता है और जिनको ब्राह्मण चाहते हैं उनको भी सूतक नहीं होता है ॥ ८ ॥ द्विज को प्रसव के द्वारा सङ्कट नहीं करना चाहिए । माता की शुद्धि दश दिन में होती है और पिता अवगाहन करके शुचि हो जाता है ॥९॥ विवाह—उत्सव और यज्ञों में मध्य में मृतक के सूतक हो जाने पर पूर्व सङ्कल्पित जो द्रव्य है उसको उपभोग में ले आना चाहिए—ऐसा महर्षि मनु ने कहा है ॥ १० ॥ सबको आशौच होता है और माता–पिता को सूतक होता है । सूतक माता को ही होता है । पिता तो उपस्पर्शन करके शुद्ध हो जाया करता है ॥ ११ ॥ दशाह के मध्य में यदि अन्य किसी का मरण या जन्म हो जाता है तो विप्र तब तक अशुचि रहता है जब तक उसका दशाह्निक कर्म पूर्ण होता है ॥ १२ ॥ क्षुधा से युक्त को नियम से दान और आर्त्त को तथा विप्र को देवे । उसी प्रकार से ऋषियों ने कहा है तो काल के अनुसार दोष नहीं होता है ॥ १३ ॥ परिषद में दान देवे । द्विज को गौ–सुवर्ण और वृष का दान करना चाहिए । क्षत्रिय को दुगुना ब्राह्मण से दान देना चाहिए और वैश्य को तिगुना दान देना चाहिए ॥१४॥

चतुर्गुणं तु शूद्रेण दातव्यं ब्राह्मणे धनम् ।
एवञ्चानुक्रमेणैव चातुर्वर्ण्यं विशुध्यति ॥१५
सप्ताष्टमन्तरे क्षीणे व्रतसंस्कारवर्जिते ।
अहानि सूतकं तस्य अब्दानां सख्यया स्मृतम् ॥१६
ब्राह्मणार्थे विपन्ना ये नारीणां गोगृहेषु च ।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रं हि सूतकम् ॥१७
अनाथप्रेतसंस्कार ये कुर्वन्ति नरोत्तमा ।
न तेषामशुभं किञ्चिद्विप्रेण सहकारिणा ॥
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शुद्धिरुदाहृता ॥१८
विनिवृत्ता यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिता ।
तदा विप्रेण द्रष्टव्या इति वेदविदो विदुः ॥१९

शूद्र को चतुर्गुण ब्राह्मण को धन देना चाहिए। और इसी वर्णित क्रम के अनुसार चारो वर्ण शुद्ध हो जाया करते हैं ॥ १५ ॥ सातवें और आठवें मास में यदि गर्भ क्षीण हो जाता है जो कि व्रत संस्कार से रहित सात या आठवें वर्ष में मृत हो जाता है तो वर्षों की सख्या के अनुसार ही उसका उतने दिन का सूतक होता है ॥ १६ ॥ ब्राह्मणार्थ में अर्थात् ब्राह्मणों के हित में—नारियों की भलाई के लिए—गौओं के लिये और युद्धों में जो विपन्न हो जाते हैं अर्थात् मर जाया करते हैं उनका सूतक केवल एक रात्रि का ही होता है ॥ १७ ॥ जो श्रेष्ठ मनुष्य किसी अनाथ पुरुष के प्रेत-सस्कार को करते हैं उन को कुछ भी अशुभ नहीं होता है। सहकारी विप्र के द्वारा जल में अवगाहन (स्नान) करने से ही तुरन्त उनकी शुद्धि बतलाई गयी है ॥ १८ ॥ जब शूद्र विनिवृत्त होकर जल के समीप में उपस्थित हो जाते हैं उस समय में विप्र के द्वारा उन्हें देखना चाहिए—ऐसा वेदों के वेत्ता विद्वान् लोग कहते है ॥१९॥

३०—अपमृत्यु फल

भगवन् ब्राह्मणाः केचिदपमृत्युवशङ्गताः ।
कथं तेषां भवेन्मार्गः किं स्थानं का गतिर्भवेत् ॥१

किञ्च युक्तं भवेत्तेषां विधानञ्चापि कीदृशम् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे मधुसूदन ॥
प्रेतीभूते द्विजातीनां संभूते मृत्युवैकृते ॥२
तेषां मार्गं विधिं स्थानं विविधं कथयाम्यहम् ।
शृणु तार्क्ष्य परं गोप्यं कृतं दुर्मरणे तु यत् ॥३
लंघनैर्ये मृता विप्रा दंष्ट्रिभिर्घातिताश्च ये ।
कण्ठग्राहिविलग्नाश्च क्षीणाश्च गुरुघातिनः ॥४
वृकाग्निविषविप्रेभ्यो विसूच्या चात्मघातकाः ।
पतनोद्बन्धनजले मृताश्च शृणु सस्थितिम् ॥५
यान्ति ते नरके घोरे ये च म्लेच्छादिभिर्हताः ।
श्वशृगालादिभिः स्पृष्टा अदग्धाः कृमिसंकुलाः ॥६
उल्लङ्घितमृता ये च महारोगैश्च ये मृताः ।
लोकेऽसत्यास्तथा व्यङ्गा युक्ताः पापेन योषितः ॥७
चाण्डालादुदकात्सर्पाद् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च वृक्षादिपतनान्मृताः ॥८
उदक्यासूतकशूद्ररजकादिविदूषिताः ।
तेन पापेन नरकान्मुक्ताः प्रेतत्वभागिनः ॥९

तार्क्ष्य ने कहा—हे भगवन् ! कुछ ब्राह्मण यदि अप मृत्यु के वंशगत हो जाया करते हैं तो उनका मार्ग कैसे होता है—उनका क्या स्थान है और उनकी क्या गति हुआ करती है ? उनके लिये क्या युक्त होता है और उनका विधान भी कैसा हुआ करता है ? हे मधुसूदन ! मैं अब यह श्रवण करना चाहता हूँ । आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये । द्विजातियों के प्रेत हो जाने पर और मृत्यु से विकृत होने पर क्या होता है और उस दशा में क्या करना चाहिए ? ॥ १ ॥ २ ॥ श्री भगवान् ने कहा—उनका मार्ग—विधि और विविध स्थान मैं अब तुमको बतलाता हूँ । हे तार्क्ष्य ! तुम इसे सुनो, यह विषय बहुत ही गोपनीय है जो कि दुर्मरण करने पर होता है ॥ ३ ॥ जो विप्र लघन करके मृत हो जाते हैं और जो दाढ़ों वाले हिंस्र पशुओं के द्वारा मार दिये जाते

हैं—ग्रह ग्राही विलग्न अर्थात् फाँसी लग कर जो मरते हैं—जो क्षीण होकर मरते हैं—जो गुरुओं की घात करने वाले हैं—वृक (भेड़िया)—अग्नि और विप्रों से विमुख होते हैं तथा आत्म घात करने वाले हैं—गिर कर उद्बन्धन से और जल में जिनकी मृत्यु हो जाती है उनकी जो स्थिति होती है उसका श्रवण करो ॥ ४ ॥ ५ ॥ जो म्लेच्छ आदि के द्वारा हत होते हैं वे सब घोर नरक में जाया करते हैं। कुत्ता—शृगाल आदि के द्वारा स्पर्श किये हुए—अदन्ध और कृमियों से सकुल और कीड़ों से घिरे हुए जो उत्लंघित मृत हो जाते हैं और जो महा रोगों के द्वारा मृत्यु गत होते हैं। लोक में जो असत्य हैं—व्यङ्ग हैं अर्थात् विगत अङ्ग वाले हैं और स्त्रियों के पाप से युक्त हैं। चाण्डाल से—जल से—सर्प से—ब्राह्मण से—विद्युत् से—दाढ़ वाले जानवरों से—पशुओं से और वृक्षादि के ऊपर से गिर कर जो मृत होते हैं। उदक्या (रजस्वला स्त्री)—सूतक—शूद्र और रजक आदि से जो विदूषित हो जाते है। उस पाप से वे नरक से मुक्त होते हुए प्रेतत्व योनि के भागी हुआ करते हैं ॥६॥७॥८॥९॥

न तेषां कारयेद्दाहं सूतकं नोदकक्रियाम् ।
न विधानं मृताद्यञ्च न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥१०
तेषां तार्क्ष्य प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम् ।
सर्वलोकहितार्थाय शृणु पापभयापहाम् ॥११
षण्मासं ब्राह्मणस्याथ त्रिमासं क्षत्रियस्य च ।
सार्द्धमासं तु वैश्यस्य सद्यः शूद्रस्य सा भवेत् ॥१२
गङ्गाया यमुनायाञ्च नैमिषे पुष्करेषु च ।
तडागे जलपूर्णे वा ह्रदे वा विमले जले ॥१३
वाप्यां कूपे गवां गोष्ठे गृहे वा प्रतिमालये ।
कृष्णाग्रे कारयेद्विप्रं विधिं नारायणात्मकम् ॥१४

उनका दाह नहीं कराना चाहिए—उनका कोई सूतक नहीं होता है और न इनकी कोई उदक क्रिया ही होती है। इनका मृताद्य कोई विधान नहीं है और न और्ध्व दैहिक ही इनका कुछ कर्म करना चाहिए। हे तार्क्ष्य ! इनके लिये नारायण बलि की क्रिया करनी चाहिए। यह समस्त लोक के हित के लिये

होती है और प पों के सय को अपहरण करने वाली है। इसका तुम श्रवण करो ॥ ११ ॥ ब्राह्मण की छै मास तक—क्षत्रिय की तीन मास—वैश्य की डेढ़ मास और शूद्र की वह तुरन्त ही होती हैं। १२ ॥ गङ्गा में—यमुना में—नैमिष में—पुष्कर में—जल से पूर्ण तड़ाग में अथवा विमल जल वाले ह्रद में—वावड़ी में—कूप में—गौओं के गोष्ठ में अथवा देवालय में या श्री कृष्ण की प्रतिमा के आगे यह नारायणात्मक बलि की विधि विप्रों के द्वारा करानी चाहिए ॥१३॥१४॥

पूर्णे तु तर्पणं कार्य्यं मन्त्रैः पौराणवैदिकैः ।
सर्वौषधिकृतैश्चैव विष्णुमुद्दिश्य तर्पयेत् ॥१५
कार्य्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि ।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरेत् ॥१६
अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।
अव्यय पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत् ॥१७
तर्पणस्यावसाने तु वीतरागो विमत्सरः ।
जितेन्द्रियमना भूत्वा शुचिमान्धर्मतत्परः ॥१८
दानधर्मरतश्चैव प्रणम्य वाग्यतः शुचिः ।
यजमानो भवेत्तार्क्ष्य शुचिर्बन्धुसमन्वितः ॥१९
भक्त्या तत्र प्रकुर्वीत श्राद्धान्येकादशैव तु ।
सर्वकर्मविधानेन एककार्य्यसमाहितः ॥२०
तोयव्रीहिपदान्दद्याद्गोधूमांश्च प्रियङ्गवान् ।
हविष्यान्नं शुभां मुद्रां छत्रोष्णीषञ्च चेलकम् ॥२१
दापयेत्सर्वशस्यानि क्षीरक्षौद्रसमन्वितम् ।
वस्त्रोपानहसंयुक्तं दद्यादष्टविधं पदम् ॥२२

नारायण बलि के पूर्ण हो जाने पर पौराणिक और वैदिक मन्त्रों के द्वारा तर्पण करना चाहिए। सर्वौषधिकृत के द्वारा भगवान् विष्णु का उद्देश्य करके तर्पण करे ॥ १५ ॥ पुरुष सूक्त के द्वारा अथवा वैष्णव मन्त्रों के द्वारा दक्षिण की ओर मुख करके प्रेत विष्णु का स्मरण करे ॥ १६ ॥ जिसका

कभी आदि नहीं है और न कभी भी निधन ही होता है ऐसे शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले देव जो अव्यय हैं और पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले हैं वे भगवान् विष्णु प्रेत की मोक्ष के प्रदान करने वाले होवें ॥ १७ ॥ तर्पण के अन्त में वीतराग होने वाले अर्थात् वैराग्य युक्त—मात्सर्य से रहित—इन्द्रियों और मन के जीतने वाला होकर शुचिता से युक्त—धर्म में तत्पर होवे। दान और धर्म में रुचि रखने वाला होकर मौन व्रत वाला एवं शुद्ध हो प्रणाम करे। हे तार्क्ष्य ! यजमान बन्धुओं से युक्त शुचि होवे ॥ १८ ॥ १६ ॥ भक्ति-भाव से यहाँ पर एकादश श्राद्धों को करे। सम्पूर्ण वर्णों के विधान से एक ही कार्य्य में सावधान होकर रहे ॥ २० ॥ जल व्रीहि और यवों को देवे। गोधूम और प्रियङ्गु-हविष्माश-शुभ मुद्रा-छत्र-उष्णीव—चेलक दिखावे। सभी धान्यों को देवे। क्षीर-क्षौद्र से समन्वित वस्त्र और उपानह से युक्त आठ प्रकार का पद देना चाहिए ॥२१॥२२॥

दापयेत्तत्र विप्रेभ्यो न कुर्य्यात्पिक्तिवञ्चनम् ।
भूमौ स्थितेषु पिण्डेषु गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् ॥२३
दातव्यं सर्वविप्रेभ्यो वेदशास्त्रप्रमाणतः ।
ताम्रे पात्रेऽथवा ताम्रं तर्पणञ्च पृथक् पृथक् ॥२४
वामाधारेण संयुक्तो जानुभ्यामवनीं गत ।
स चादौ दापयेदर्घ्यं एकोद्दिष्टं पृथक् पृथक् ॥२५
आपो देवी मधुमती आदिपिण्डे प्रकल्पिता ।
उपयामगृह तोऽसि द्वितीये च निवेदयेत् ॥२६
येनापावकचामत्क तृतीये पिण्डकल्पना ।
ये देवा म चतुर्थे तु समुद्र गच्छ पञ्चमे ॥२७
अग्निर्ज्योतिस्तथा षष्ठे हिरण्यगर्भश्च सप्तमे ।
यमाय त्वष्टमे ज्ञेय मज्जाग्रसवमे तथा ॥२८
दशमे आ. फातिनीति पिण्डे चैकादशे ततः ।
भद्र कर्णेभिरिति च कुर्य्यात्पिण्डविसर्जनम् ॥२६

कृत्वैकादशदैवत्यं श्राद्धं कुर्यात्परेऽहनि ।
विप्रानावाहयेत्पश्चादर्घ्यं दद्याद्विशारदः ।।३०

सभी विप्रों को दिलवाना चाहिए । इनमें पंक्ति भेद नहीं करे । भूमि में स्थित पिण्डों में वेद शास्त्र के प्रमाण से गन्ध-पुष्प और अक्षत से युक्त सभी विप्रों को देना चाहिए । शङ्ख में-पात्र में अथवा ताम्र में पृथक्-पृथक् तर्पण करे ।। २३ ।। २४ ।। जलाधार से संयुक्त हो जानुओं (घुटनों) से भूमि पर गत होकर आदि में उसे अर्घ्य देना चाहिए । एकोद्दिष्ट में पृथक्-पृथक् अर्घ्य देवे ।। २५ ।। आदि पिण्ड में " आपो देवी मधुमती "—इससे प्रकल्पित करे और दूसरे पिण्ड में " उपयाम गृही तोऽसि "—इससे निवेदन करना चाहिए ।। २६ ।। " येना पावक चामक्त "—इससे तीसरे पिण्ड की कल्पना करे तथा " ये देवा स "—इससे चौथे पिंड को देवे । " समुद्रं गच्छ "—इससे पाँचवाँ पिंड देवे ।। २७ ।। " अग्नि ज्योतिः "—इससे छटवाँ पिंड और " हिरण्य-गर्भश्च "—इससे सातवाँ पिंड निवेदित करे । " यमाय "—इससे अष्टम पिंड और " यज्जाग्रन् "—इससे नवम पिंड देवे ।। २८ ।। " याः फलिनी "—इससे दशवाँ और " भद्रं कर्णेभिः "—इससे एकादश पिंड का विसर्जन करना चाहिए ।। २९ ।। इस प्रकार से एकादश करके दूसरे दिन में श्राद्ध करना चाहिए । विप्रों का आवाहन करना चाहिए और इसके पीछे विशारद को अर्घ्य देना चाहिए ।।३०।।

विद्याशीलगुणोपेतान्स्वकीयसुकुलोत्तमान् ।
अव्यङ्गांश्च प्रशस्तांश्च हि वर्ज्यान्कदाचन ।।३१
विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा ।
ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ।।३२
सीसकं तु भवेत्प्रेते अथवा दर्भकं तथा ।
यमाय त्वेति मन्त्रेण सहितं सामवेदिनम् ।।३३
अग्न आयाहि मन्त्रेण गोविन्दं पश्चिमे न्यसेत् ।
अग्निमीलेति मन्त्रेण पूर्वेणैव प्रजापतिम् ।।३४

इषेत्वा इति मन्त्रेण दक्षिणे स्थापयेद्यमम् ।
मध्ये च मण्डलं कृत्वा स्थाप्यो दर्भमयो नरः ॥३५
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो यमः प्रेतस्तु पञ्चमः ।
पृथक्कुम्भे ततः स्थाप्य पञ्चरत्नसमन्विते ॥३६
वस्त्रयज्ञोपवीतानि पृथङ्मुद्रायुतानि च ।
जपं कुर्य्यात्पृथक्तत्र ब्रह्मादौ देवतासु च ॥३७

जो विप्र विद्या-शील और गुण से युक्त हो और अपने कुल में उत्तम हो तथा अव्यङ्ग एवं प्रशस्त हो उनको कभी वर्जित न करे। विष्णु की प्रतिमा सुवर्ण की बनवावे तथा रुद्र की प्रतिमा ताम्रमय करावे और ब्रह्मा चाँदी के निर्मित करावे तथा यम लौह का बनवावे। प्रेत में सीसा हो या दर्भों का होवे। "यमायत्वा'—इस मन्त्र से साम वेदी को—'अग्न आयाहि"—इस मन्त्र से गोविन्द को पश्चिम में न्यस्त करे और "अग्नि मील"—इस मन्त्र से पूर्व दिशा में प्रजापति को स्थापित करना चाहिए ॥ ३१ ॥३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ 'इषेत्वा"—इस मन्त्र से दक्षिण दिशा में यम की स्थापना करे और मध्य में मण्डल करके दर्भमय नर की स्थापना करनी चाहिए ॥ ३५ ॥ ब्रह्मा—विष्णु—रुद्र—यम और पाँचवाँ प्रेत इनको इसके अनन्तर पाँच रत्नों से युक्त पृथक् कुम्भ में स्थापित करना चाहिए ॥ ३६ ॥ वस्त्र—यज्ञोपवीत मुद्रा से युक्त पृथक् रक्खे। वहाँ पर जप भी पृथक् करे जो कि ब्रह्मा आदि देवताओं के लिये है ॥ ३७ ॥

पञ्च श्राद्धानि कुर्वीत देवतानां यथाविधि ।
जलधारां ततः कुर्य्यात्पिण्डे पिण्डे पृथक् पृथक् ॥३८
ताम्रे वा ताम्रपात्रे वा अलाभे मृण्मयेऽपि वा ।
तिलोदकं समादाय सर्वौषधिसमन्वितम् ॥३९
आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिकाञ्च कमण्डलुम् ।
भाजनं भोज्यधान्यञ्च वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ॥४०
ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं सहिरण्यं सदक्षिणम् ।
दद्याद्ब्राह्मणमुख्याय विधियुक्तं खगेश्वर ॥४१

ऋग्वेदपाठके दद्याज्जातशस्यां वसुन्धराम् ।
यजुर्वेदमये विप्रे गाञ्च दद्यात्पयस्विनीम् ॥४२
सामगाय शिवोद्देशे प्रदद्याद्वस्त्रधौतकम् ।
यमोद्देशे तिलान् लोहं ततो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥४३
पश्चात्पुत्तलकः कार्य्यः सर्वौषधिसमन्वितः ।
पलाशस्य च वृन्ताना भागं कृत्वा च काश्यप ॥४४
कृष्णाजिनं समास्तीर्य्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम् ।
शतत्रयषष्टियुतैर्वृन्तैः प्रोक्तोऽस्थिसञ्चयः ॥४५
विन्यस्य तानि बध्नीयात् कुशैरङ्गे पृथक् पृथक् ।
चत्वारिंशच्छिरोभागे ग्रीवायाञ्च दश न्यसेत् ॥४६
विंशत्युरःस्थले देयं विंशतिर्जठरे तथा ।
ऊरुद्वये शतं दद्यात् कटिदेशे च विंशतिः ॥४७

विधि पूर्वक देवताओं के पाँच श्राद्ध करे । इसके अनन्तर पिंड पिंड पर पृथक् पृथक् जलधारा करनी चाहिए । शङ्ख पर या ताम्र पत्र पर और इन दोनों के लाभ न होने पर मृण्मय पर सर्वौषधि से समन्वित तिलोदक लाकर हे खगेश्वर ! फिर मुख्य ब्राह्मण के लिये आसन–उपानह—छत्र–मुद्रिका–कमण्डलु—भाजन–भोज्य, धान्य और वस्त्र इस तरह आठ प्रकार का पद तिलों से परिपूर्ण ताम्र का पात्र जिसमें सुवर्ण और दक्षिणा भी हो विधि पूर्वक दान देना चाहिए ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ जो ऋग्वेद का पाठक ब्राह्मण हो उसे शस्यों को समुत्पन्न करने वाली भूमि का दान करे । जो यजुर्वेद का ज्ञाता विप्र हो उसे दूध देने वाली गौ का दान करे ॥ ४२ ॥ सामवेद के विद्वान् द्विज को शिव के उद्देश्य से वस्त्रधौतक का दान देवे । यम के उद्देश्य से तिल–लोह और दक्षिणा का दान करना चाहिए ॥ ४३ ॥ हे काश्यप ! इसके अनन्तर सर्वौषधि से समन्वित पुत्तलक बनाना चाहिए । पलाश (ढाक) के वृन्तों का भाग करे । कृष्ण अजिन (मृग चर्म) को बिछाकर एक पुरुष की आकृति के तीन सौ साठ अस्थियाँ कुशों से सञ्चित करे । इतनी हड्डियों का सञ्चय बताया गया है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उनका विन्यास करके अङ्ग में कुशों से अलग-

मलग बांधे। चालीस शिरोभाग में—ग्रीवा में दशों न्यास करे ॥ ४६ ॥ उरः स्थल में बीस—उदर में बीस—दोनों ऊरुओं में सौ और कटि देश में बीस अस्थियों का बन्धन करे ॥४७॥

दद्याच्चतुष्टयं शिश्ने षड् दद्याद् वृषणद्वये ।
दश पादांगुलीभागे एवमस्थीनि विन्यसेत् ॥४८
नारिकेल शिरःस्थाने तारं दद्याच्च तालुके ।
पञ्चरत्नं मुखे दद्याज्जिह्वाया कदलीफलम् ॥४९
अन्त्रेषु वालुका दद्याद् वाह्लीकं घ्राणे चैव हि ।
वसाया मृत्तिका दद्याद्गोमूत्रं मूत्रके तथा ॥५०
गन्धकं धातवे देयं हरितालं मनःशिलाम् ।
यवपिष्टं तथा मांसे मधु शोणिते चैव हि ॥५१
केशेषु च जटाजूटं त्वचायाञ्च मृगत्वचम् ।
पारदं रेतसः स्थाने पुरीषे पित्तलं तथा ॥५२
मनःशिला तथा गात्रे तिलकल्कञ्च सन्धिषु ।
कर्णयोस्ताडपत्रञ्च स्तनयोश्चैव गुञ्जकौ ॥५३
नासायां शतपत्रञ्च कमलं नाभिमण्डले ।
वृन्ताकं वृषणे दद्याल्लिङ्गे स्याद्गृञ्जनं शुभम् ॥५४
घृतं नाभ्यां प्रदेयं स्यात् कौपीने च त्रपु स्मृतम् ।
मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुंकुमेन विलेपनम् ॥५५
कर्पूरागुरुधूपैश्च शुभैर्माल्यैः सुगन्धिभिः ।
परिधाने पट्टसूत्रं हृदये रुक्मकं न्यसेत् ॥५६

शिश्न में चार—वृषणों में छः—पैर की अंगुलियों के भाग में दश अस्थियों का विन्यास करना चाहिए। पुतला निर्माण करने के लिये शिरोभाग में नारियल देवे और तालु में तार देना चाहिए। मुख में पाँचों रत्न और जिह्वा में केले का फल देना चाहिए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अन्त्रों में बालु का देवे और घ्राण में वाह्लिक देना चाहिए। वसा के स्थान में मृत्तिका तथा मूत्र स्थान में गो मूत्र देवे ॥ ५० ॥ धातु के लिये गन्धक—हरिताल और मैनसिल देवे।

मांस के स्थान पर यवपिष्ट और शोणित में मधु देवे ।। ५१ ।। केशों के स्थान में जटाजूट और त्वचा में मृग की त्वचा देवे । वीर्य के स्थान में पारद देवे तथा पुरीष के स्थान में पित्तल देवे ।। ५२ ।। सम्पूर्ण गात्र में मैनसिल और सन्धियों में तिल का कल्क देना चाहिए । कानों के स्थान में ताड़ पत्र तथा स्तनों में गुञ्जा फल लगाना चाहिए ।। ५३ ।। नासिका में शत पत्र और नाभि मण्डल में कमल—वृषण के स्थान में वृन्ताक (बैंगन) और लिङ्ग के स्थान में गृञ्जन (गाजर) देवे ।। ५४ ।। नाभि में घृत देवे और कौपीन में त्रपु देवे । स्तनों मे मौक्तिक (मोती) तथा माथे में कुंकुम से विलेपन करना चाहिए । ।। ५५ । कपूर-अगुरु और धूप देवे तथा सुगन्ध युक्त सुन्दर मालाओं से सुसज्जित करे । परिधान के लिये यह सूत्र देवे और हृदय में रुक्मक देवे ।।५६।।

ऋद्धिवृद्धिभुजौ द्वौ च नेत्रयोश्च कपर्दिकाम् ।
सिन्दूर नेत्रकोणेषु ताम्बूलाद्युपहारकैः । ५७
सर्वौषधियुतां प्रेतपूजां कृत्वा यथोदिताम् ।
साग्निकैश्चापि विधिना यज्ञपात्राणि विन्यसेत् ।।५८
शन्नोदेवी पुनन्तु मे इमं मे वरुणेति च ।
प्रेतस्य पावन कृत्वा शालग्रामशिलोदकैः ।।५९
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सुशीला गौः पयस्विनी ।
महादानानि देयानि तिलपात्रं तथैव च ।।६०
ततो वैतरणी देया सर्वाभरणभूषिता ।
कर्त्तव्यं वैष्णवं श्राद्धं प्रेतमुक्त्यर्थमात्मना ।।६१
प्रेतमोक्षं ततः कुर्य्याद्धरिं विष्णुं प्रकल्पयेत् ।
त्वं विष्णुरिति संस्मृत्य प्रेतं तं मृतमेव च ।।६२
अग्निदाह ततः कुर्य्यात् सूतक तु दिनत्रयम् ।
दशाहं गतपिण्डाश्च कर्त्तव्या विधिपूर्वकम् ।
सर्वं वर्षावधि कुर्य्यादेवं प्रेतः स मुक्तिभाक् ।।६३

ऋद्धि—वृद्धि की दोनों भुजाऐं बनावे और नेत्रों में कपर्दिका (कौड़ी) लगावे । नेत्रों के कोणों में सिन्दूर लगावे । ताम्बूल आदि उपहारों के द्वारा

सर्वौषधि से युक्त यथोक्त प्रेत की पूजा करके सामिग्री के द्वारा विधि पूर्वक यश पात्रों का न्यास करना चाहिए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ "आपो देवी पुनन्तु मे," "इमं मे वरुण"—इन मन्त्रों से शालग्राम शिला के जल से प्रेत को पावन करके भगवान् विष्णु का उद्देश्य करके अत्यन्त सीधे स्वभाव वाली दुधारू गौ का दान करना चाहिए। महा दान भी देवे तथा तिल पात्र का दान करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ इसके अनन्तर वैतरणी का दान करे जो समस्त आभरणों से विभूषित होवे। पवन द्वारा प्रेत की मुक्ति के लिये वैष्णव श्राद्ध करना चाहिए ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर प्रेत की मोक्ष को करे और हरि एवं विष्णु को प्रकल्पित करे। आप विष्णु हैं—ऐसा सस्मरण करके उस मृत प्रेत को ही अग्नि दाह करे। इस दाह का तीन दिन तक सूतक होता है। दशाह और गत पिंड ये सब विधि पूर्वक करना चाहिए। एक वर्ष की अवधि में होने वाला जितना भी कर्म कलाप हुआ करता है वह सभी इस प्रकार से करना चाहिए तो वह प्रेत मुक्ति के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है ॥६२॥६३॥

३१—भूमि-स्वर्ण गोदान फल

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥१
आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः।
शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् ॥२
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥३
अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यं भूर्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गावः।
लोकत्रयं तेन भवेत्प्रदत्तं यः काञ्चनङ्गाञ्च मही प्रदद्यात् ॥४
त्रीण्याहुरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
नरकादुद्धरन्त्येते जपवापनदोहनात् ॥५
कृत्वा बहूनि पापानि रौद्राणि विपुलान्यपि।
अपि गोदानमात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥६

अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यमिति वेदविदो विदुः ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—जिस प्रकार से सहस्रों धेनुओं में बछड़ा छूटकर अपनी ही माता के पास जाकर लगता है और उसी का दूध पीने लगता है उसी भाँति पूर्व जन्म-जन्मान्तर में किया हुआ कर्म उसके करने वाले को ही प्राप्त होता है अर्थात् उसे ही और अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥१॥ आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, सोम, हुताशन और भगवान् शूलपाणि भूमि के दान करने वाले का अभिनन्दन करते हैं ॥२॥ भूमि के दान के समान और भूमि के तुल्य निधि कोई भी नहीं है। सत्य के समान कोई धर्म नहीं और असत्य से बड़ा कोई पातक नहीं है ॥३॥ प्रथम अग्नि का अपत्य हिरण्य, वैष्णवी भू, सूर्यसुता गौ उसने लोकत्रय का दान कर दिया है जो काञ्चन, गौ और मही का दान किया करता है ॥४॥ जो गौ, पृथ्वी और सरस्वती इन तीन दानों का आहरण करता है। ये जप, वापन और दोहन से नरक से उद्धार किया करते हैं ॥५॥ बहुत सारे महान् रौद्र एवं भीषण पापों को करके भी केवल एक गौ के दान से तथा भूमि के दान से मनुष्य शुद्ध हो जाया करता है ॥६॥ वेदों के विद्वान् लोगों का यही कथन है कि जो करने के योग्य कर्म नहीं है उस अकर्त्तव्य कर्म को प्राणों के कण्ठगत हो जाने पर भी कभी नहीं करना चाहिए और जो समुचित कर्त्तव्य है वही करना चाहिये ॥७॥

अधर्मप्रवर्त्तने वै पापं गोसहस्रवधतुल्यम् ।
वृत्तिच्छेदेऽपि तथा वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलम् ॥८
वरमेकापि सा दत्ता न तु दत्तं गवां शतम् ।
एकां हृत्वा शतं दत्त्वा न तेन समता भवेत् ॥९
स्वयमेव तु यो दद्यात्स्वयमेव तथा हरेत् ।
स पापी नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०
न चाश्वमेधेन तथा पूतः स्याद्दक्षिणावता ।
अवृत्तिकर्शिते दीने ब्राह्मणे रक्षिते यथा ॥११

न तद्भवति वेदेषु यज्ञे च बहुदक्षिणे ।
यत्पुण्यं दुर्बले विप्रे ब्राह्मणे परिरक्षिते ॥१२
ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च ।
युद्धकाले विशीर्य्यन्ति सिकतासेतवो यथा ॥१३
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठाया जायते कृमि ॥१४

प्रथम की ओर प्रवृत्ति के करने में ही एक सहस्र गौ के वध के समान पाप होता है। तथा वृत्ति के छेदन करने में भी ऐसा ही पाप होता है। वृत्ति के करने में एक लक्ष धेनु के दान का फल प्राप्त होता है ॥८॥ एक गौ का दिया हुआ दान भी परम श्रेष्ठ होता है और सौ गौ का दान भी उतना श्रेष्ठ नहीं होता है। एक का हरण करके सौ का दान देना भी उसकी समता नहीं करती है ॥९॥ जिस गौ का दान स्वयं करे और स्वयं ही उसका हरण कर लेवे तो वह ऐसा पापी हो जाता है कि जब तक भूत सम्प्लव होता है तब तक नरक में निवास करना पड़ता है। १०॥ बिना वृत्ति के कर्शित दीन ब्राह्मण के रक्षित करने पर जैसा जो महान् पुण्य होता है वह दक्षिणा से युक्त अश्वमेध यज्ञ के करने से भी पवित्र नहीं होता है ॥११॥ वेदों में बहुत अधिक दक्षिणा वाले यज्ञ में भी उतना पुण्य नहीं होता है जैसा कि किसी दुर्बल ब्राह्मण के परिरक्षण करने पर होता है ॥१२॥ ब्रह्म स्वरस से पुष्ट वाहन और बल युद्ध के काल में सिकता के सेतुओं के समान विशीर्ण हो जाया करते हैं ॥१३॥ अपने ही द्वारा दी हुई तथा किसी अन्य के द्वारा प्रदान की हुई भूमि का जो अपहरण किया करता है वह इस महापाप के प्रभाव से साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्ठा का कीड़ा रहा करता है अर्थात् मल के कृमि के रूप में जन्म ग्रहण किया करता है ॥१४॥

ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ।
तदेव चौर्य्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥१५
लोहचूर्णाश्मचूर्णञ्च विषञ्च जरयेद्बुधः ।
ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥१६

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।।१७
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे विद्याविवर्जिते ।
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य भस्मन्यपि न हूयते ।।१८
संक्रान्तौ यानि दानानि हव्यकव्यानि यानि च ।
सप्तकल्पक्षयं यावत्तावत्स्वर्गे महीयते ।।१९
प्रतिग्रहाध्यापनयाजनेषु प्रतिग्रहं श्रेष्ठतम वदन्ति ।
प्रतिग्रहाच्छुध्यति जाप्यहोमैर्न याजकं कर्म पुनन्ति वेदाः ।।२०
नित्यजापी सदा होमी परपाकविवर्जितः ।
रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्य न लिप्यते ।।२१

किसी भी ब्राह्मण के धन को जो बड़े प्रेम से उपभोग किया करता है वह अपने सात कुलों का दाह कर दिया करता है। वह ही ब्रह्मस्व (ब्राह्मण का धन) यदि चोरी के रूप में उपभोग करता है तो वह जब तक चन्द्र और तारागण विद्यमान रहते हैं तब तक दाह किया करता है ।।१५। लोहे का चूर्ण तथा पत्थर के चूर्ण और विष को बुध पुरुष पचा जाते हैं किन्तु ब्रह्मस्व इतना उग्र होता है कि इसको तीनों लोकों में कौन पुरुष पचा सकता है ? अर्थात् ऐसा कोई भी शक्तिशाली नहीं है ।।१६।। देवता के द्रव्य का विनाश कर देने से और ब्रह्मस्व के हरण करने से तथा ब्राह्मण का अतिक्रमण करने से कुल क कुल अकुलता अर्थात् विनाश को प्राप्त हो जाते हैं ।।१७।। विद्या से रहित विप्र में ब्राह्मणातिक्रम नहीं होता है। जलती हुई अग्नि का त्याग करके भस्म में हवन करने के समान ही विद्या-विहीन ब्राह्मण को दानादि करना होता है।१८। सक्रान्ति के अवसर पर जो दान होते हैं और जो हव्य-कव्य होते हैं उनका पुण्य-फल का ऐसा प्रभाव होता है कि सात कल्पों का जब तक क्षय होता है तब तक वह दान दाता स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित रहा करता है ।।१९।। प्रतिग्रह, अध्यापन और याजन इनमें प्रतिग्रह सबसे अधिक श्रेष्ठ होता है। प्रतिग्रह से शुद्धि होती है और जाप्य, होमों से वेद याजक कर्म को पुनीत नहीं किया करते है ।।

॥२०॥ नित्य जप करने वाला, सदा होम करने वाला परिवार से वर्जित रहती हुई परिपूर्ण पृथ्वी का भी प्रतिग्रह लेकर लिप्त नहीं होता है ॥२१॥

३२—विविध श्राद्ध कथन

जलाग्निविधिना भ्रष्टा प्रव्रज्यानाशकच्युता ।
इन्द्रियाणां विशुद्ध्यर्थं दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥१
ऊनद्वादशवर्षस्य चतुर्वर्षाधिकस्य च ।
प्रायश्चित्तं चरेन्माता तथान्योऽपि च बान्धवः ॥२
अतो बालतरस्यास्ति नापराधो न पातकम् ।
राजदण्डो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३
रजस्य दर्शने जाते आतुरा स्त्री भवेद्यदि ।
चतुर्थे हविष स्पृष्ट्वा वस्त्रं त्यक्त्वा विशुद्ध्यति ॥४
आतुरे स्नानमुत्पन्ने दश कृत्वा ह्यनातुरः ।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्धः स आतुरः ॥५
प्रत्यब्दं श्राद्धमथ ते कथयामि खगोत्तम ।
प्रत्यब्दं पावणेनैव कुर्य्यातां क्षेत्रजौरसौ ॥६
एकोद्दिष्टं प्रकुर्य्यातां प्रत्यब्दं प्रति केन तु ।
यदयं हि मृतः साग्निः पुत्रो वापि तथाविधः ॥७

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—जल अग्नि की विधि से भ्रष्ट और प्रव्रज्या नाशक से च्युत जो हैं उनकी इन्द्रियों की विशुद्धि के लिये धेनु का दान करके तथा वृष को दान करे ॥१॥ जो बारह वर्ष से कम हो और चार वर्ष से अधिक हो उसका प्रायश्चित्त उसकी माता को करना चाहिये या कोई उसका अन्य बान्धव भी कर सकता है ॥२॥ इससे छोटा जो बालक है उसका न तो कोई अपराध ही होता है और न कोई पातक ही हुआ करता है। ऐसे छोटे बालक को कोई भी राजा के द्वारा दिए जाने वाले दण्ड का विधान नहीं होता है और न कोई प्रायश्चित्त ही हुआ करता है ॥३॥ रज के दर्शन होने पर यदि स्त्री आतुर हो जाती है तो चतुर्थ दिन में हवि का स्पर्श करके वस्त्र का त्याग करके

वह शुद्ध हो जाया करती है ॥४॥ आतुर में उत्पन्न स्नान होता है । दश करके, अनातुर स्नान करके इसका स्पर्श करे । इसके अनन्तर वह आतुर शुद्ध हो जाता है ॥५॥ हे खगोत्तम ! अब हम प्रति वर्ष होने वाले श्राद्ध के विषय में तुमको बतला रहे हैं । प्रति वर्ष पार्वण के द्वारा ही क्षेत्रज और औरस पुत्रों को श्राद्ध करना चाहिए ॥६॥ प्रति वर्ष किसी के द्वारा एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए । यदि यह मृत हो गया हो तो साग्नि पुत्र अथवा उसी प्रकार का पुत्र श्राद्ध करे ॥७॥

प्रत्यब्दं पार्वणं तत्र कुर्य्यातां क्षेत्रजौरसौ ।
अनग्नयः साग्निका वा पितरोऽपि तथा मृताः ॥८
एकोद्दिष्टं तथा कार्य्यं क्षयाह इति केचन ।
दर्शकाले क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः ॥९
प्रत्यब्दं पार्वणं कार्य्यं तेषां सर्वैः सुतैरपि ।
एकोद्दिष्टमपुत्राणां पुंसां स्याद्योषितामपि ॥१०
कर्त्तव्ये पार्वणे श्राद्धे अशौचं जायते यदि ।
अशौचगमने प्राप्ते कुर्य्याच्छ्राद्धं ततः परम् ॥११
एकोद्दिष्टे च सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते ।
मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्यां कुर्य्याच्छ्राद्धं तथैव हि ॥१२
तूष्णीं श्राद्धञ्च शूद्राणां भार्य्यायास्तत्सुतेन वा ।
कन्यायाश्च द्विजातीनां मनुरेतद्विचक्षते ॥१३
एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः ।
मन्त्रेण स्नपनं कुर्य्याच्छ्राद्धं कुर्य्यात्पृथक् पृथक् ॥१४
पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ।
तृतीयस्य ततः पश्चात्सन्निपातेष्वयं क्रमः ॥१५

क्षेत्रज और औरस पुत्रों को प्रति वर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिए । चाहे पितर अनग्नि हों या साग्निक हों जो भी मृत हो गये हैं उनका श्राद्ध करना चाहिये ॥८॥ कुछ विद्वानों का मत है कि एकोद्दिष्ट क्षय दिन में करना चाहिए । दर्श काल में जिसका क्षय होता है, अथवा फिर प्रेत पक्ष में प्रतिवर्ष

उनके समस्त पुत्रों के द्वारा पावरण श्राद्ध करना चाहिए। जिनके कोई भी पुत्र न हो उनका चाहे वे पुरुष हों या स्त्री हो सबका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए। ॥६।१०॥ पार्वण श्राद्ध जो कि करणीय है उस समय में यदि दैवात् कोई भी किसी प्रकार का अशौच हो जाता है तो उस अशौच के दूर हो जाने पर शुद्धि करके फिर श्राद्ध करना चाहिए ॥११॥ और एकोद्दिष्ट श्राद्ध के सम्प्राप्त होने पर यदि कोई अशौच आदि का ऐसा ही विघ्न आ जाता है तो फिर दूसरे मास में उसी तिथि में श्राद्ध करे किन्तु किसी भी दशा में समय टल जाने पर श्राद्ध का लोप नहीं करना चाहिए ॥१२॥ शूद्रा का श्राद्ध, भार्या का श्राद्ध अथवा उसके पुत्र के द्वारा किया हुआ श्राद्ध कन्या का श्राद्ध और द्विजातियों का श्राद्ध तूष्णी भाव से ही करना चाहिए—ऐसा महर्षि मनु ने कहा है ॥१३॥ एक ही समय में जिन बहुत-से मनुष्यों का अथवा दो का देहान्त हुआ हो उनका मन्त्र के द्वारा स्वपन करे और पृथक् पृथक् श्राद्ध करना चाहिए ॥१४॥ पहिले जो मृतक हुआ हो उसका पहिले और फिर दूसरे का तीसरे का फिर एक साथ जिनका निपात हुआ हो उनका इसी क्रम से श्राद्ध करे ॥१५॥

३३—नित्य श्राद्ध कथन

नित्यश्राद्धे हि गन्धाद्यैर्द्विजानभ्यर्च्य शक्तितः ।
सर्वान्पितृगणान्सम्यक्सदैवाद्दिश्य पूजयेत् ॥१
आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौ करणादिकम् ।
ब्रह्मचर्यादिनियमान्विश्वेदेवास्तथैव च ॥२
नित्यश्राद्धे त्यजेदेतान्भोज्यमन्नञ्च कल्पयेत् ।
न दद्याद्दक्षिणाञ्चैव नमस्कारैर्विसर्जयेत् ॥३
देवानुद्दिश्य विश्वादीन्दद्याच्च द्विजभोजनम् ।
नित्यश्राद्धं तदेवेति देवश्राद्धं तदुच्यते ॥४
मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्कर्माहन्येव पैतृकम् ।
उत्तरेऽहनि वृद्धस्य मातामहगणस्य च ॥५

इसके अनन्तर नित्य श्राद्धों का विवेचन किया जाता है। श्री भगवान्

ने कहा—नित्य श्राद्ध में अपनी शक्ति के अनुसार गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा द्विजों का अभ्यर्चन करके समस्त पितृगणों का भली-भाँति उद्देश्य करके पूजन करना चाहिए ॥१॥ आवाहन, स्वधाकार, पिण्डाग्नि में करणादिक, ब्रह्मचर्यादि नियम तथा विश्वेदेवाओं को इन सबको नित्य श्राद्ध में त्याग देना चाहिए और भोज्य अन्न की कल्पना करनी चाहिए। दक्षिणा नहीं देनी चाहिए केवल नमस्कार करके ही विसर्जन कर देवे ॥२।३॥ विश्वादि देवों का उद्देश्य करके द्विजों को भोजन देवे। उसी को नित्य श्राद्ध कहा जाता है। अब देवश्राद्ध बतलाया जाता है ॥४॥ माता का श्राद्ध पहिले होता है। दिन में ही पैतृक कर्म होता है। उत्तर दिन में वृद्ध और मातामह गण का श्राद्ध होता है ॥५॥

पृथग्दिने न शक्तश्चेदेकस्मिन्नेव वासरे ।
श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवव्रतत्रिकम् ॥६
पितृभ्यः कल्पयेत्पूर्वं मातृभ्यस्तदनन्तरम् ।
मातामहेभ्यश्च ततो दद्यादित्थं क्रमेण तु ॥७
मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे तु कुलान्विताः ।
पतिपुत्रान्विताः साध्व्यो योषितोऽष्टौ च भोजयेत् ॥८
इष्टापूर्त्तादिकारम्भे तदा श्राद्धं समाचरेत् ।
उत्पातादिनिमित्तेषु नित्यश्राद्धवदेव तु ॥९
नित्यं दैवं तथा वृद्धं काम्यं नैमित्तिकं तथा ।
श्राद्धान्युक्तप्रकारेण कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥१०

अलग दिन में श्राद्ध करने की शक्ति न हो तो एक ही दिन में वैश्वदेव तीन व्रतों के तीनों श्राद्धों को कर देना चाहिए ॥६॥ पहिले पितृगण के लिए और फिर मातृ वर्ग के लिये कल्पित करना चाहिए। इसके अनन्तर मातामह आदि के लिये इसी क्रम से श्राद्ध देना चाहिए ॥७॥ माता के श्राद्ध में विप्रों के लाभ न होने पर कुलों से अन्वित तथा पति और पुत्रों से युक्त आठ परम साध्वी स्त्रियों को भोजन कराना चाहिए ॥८॥ जब इष्टापूर्त्त आदि का आरम्भ हो उस समय में श्राद्ध करना चाहिए। उत्पात आदि निमित्तों के होने पर नित्य श्राद्ध की भांति ही करना चाहिए ॥९॥ नित्य श्राद्ध, दैव, वृद्ध, काम्य तथा नैमित्तिक

श्राद्ध इतने प्रकार के होते हैं। इन सबको यथोक्त विधि-विधान से करने वाला मनुष्य अवश्य ही सिद्धि की प्राप्ति किया करता है ॥१०॥

३४—मनुष्यों के कर्म-विपाक कथन

सुकृतस्य प्रभावेण स्वर्गो नानाविधो नृणाम् ।
भोगसौख्यादिरूपश्च बल पुष्टि पराक्रम ॥१
सत्य पुण्यवता देव जायतेऽत्र परत्र च ।
सत्य सत्य पुन सत्य देववाक्य तु नान्यथा ॥२
धर्मो जयति नाधर्म. सत्य जयति नानृतम् ।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुर ॥३
एतत्सत्य मया ज्ञात सुकृताच्छोभन भवेत् ।
यथोत्कृष्टतम पुण्य तथा कृष्णपरो भवेत् ॥४
एकञ्च श्रोतुमिच्छामि पापयोनिश्च जायते ।
येन कर्मविपाकेन यथा निरयभाग्भवेत् ॥५
या या योनिमवाप्नोति यथारूप प्रजायते ।
तन्मे वद सुरश्रेष्ठ समासेनापि काङ्क्षितम् ॥६
शुभाशुभफलैस्तार्क्ष्य मुक्तभोगा नरास्त्विह ।
जायन्ते लक्षणैर्येस्तु तानि मे शृणु काश्यप ॥७

गरुड ने कहा—मनुष्यों को किये हुए सुकृत के प्रभाव से अनेक प्रकार का स्वर्ग प्राप्त होता है। हे देव ! इस लोक में और परलोक में पुण्य वाली लोगों को भोग—सौख्य आदि स्वरूप वाला—बल—पुष्टि—पराक्रम और सत्य उत्पन्न हो जाता है। यह सत्य है और सर्वथा सत्य है और पूर्ण रूप से सत्य है—क्योंकि देव वाक्य कभी भी अन्यथा नहीं हुआ करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ धर्म की जय होती है अधर्म की नहीं होती—सदा सत्य की विजय होती है मिथ्या की कभी नहीं होती—क्षमा जयशील है क्रोध नहीं—विष्णु विजयी होते हैं असुर नहीं ॥ ३ ॥ यह मैंने बिल्कुल जान लिया है कि सुकृत से भलाई होती है। जितना उत्कृष्ट तम अर्थात् सबसे उच्च कोटि का पुण्य होगा वैसा ही कृष्ण

परायण होगा ॥ ४ ॥ अब मैं केवल एक बात और सुनना चाहता हूँ कि जिस कर्म के विपाक से पाप योनि में उत्पन्न होता है और जिस प्रकार से वह नरक वास का अधिकारी बन जाता है ॥ ५ ॥ जिस-जिस योनि को वह प्राप्त किया करता है और जिस रूप वाला होता है। हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! यह मेरा अभीष्ट प्रश्न है इसका उत्तर कृपा कर मुझे देवें ? ॥ ६ ॥ भगवान् श्री कृष्ण ने कहा—हे तार्क्ष्य ! इस संसार में शुभ और अशुभ कर्मों के फलों के त्याग कर देने से मनुष्य भोगों से मुक्त होते हैं। हे काश्यप ! जिन लक्षणों से वे उत्पन्न हुआ करते हैं उन्हें तुम अब मुझसे श्रवण करलो ॥७॥

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥८
प्रायश्चित्तेष्वजीर्णेषु यमलोके ह्यनेकधा ।
यातनान्ते विमुक्तास्ते अनेकां जीवसन्ततिम् ॥६
गत्वा मानुषयोनौ तु पापचिह्ना भवन्ति ते ।
तान्यह तव चिह्नानि कथयिष्ये खगोत्तम ॥१०
गद्गदोऽनृतवादी स्यान्मूकश्चैव गवानृते ।
ब्रह्महा च क्षयी कुष्ठी श्यावदन्तस्तु मद्यपः ॥११
कुनखी स्वर्णहारी च दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ।
संयोगी हीनवर्णः स्यात्काकोऽनिमन्त्रभोजनात् ॥१२
दिगम्बरा दुराचारा सर्वदेवावनिन्दकाः ।
यान्ति ते नरके घोरे ये च मिथ्या वदन्ति हि ॥१३
अन्नं पर्युषितं विप्रे प्रयच्छन्कुब्जतां व्रजेत् ।
मात्सर्यादपि जात्यन्धो जन्मान्धः पुस्तकं हरन् ॥१४

आत्म वानों के लिये शासन करने वाला गुरु होता है और जो दुरात्मा दुष्ट लोग हैं उनके ऊपर राजा शासन किया करता है। इस संसार में जो छिप कर पाप कर्म करने वाले हैं या जिनके पाप कर्म प्रकट नहीं हो पाते हैं उनका शासक वैवश्वत यमराज हुआ करता है ॥ ८ ॥ प्रायश्चित्तों के अजीर्ण रहने पर यमलोक में अनेक प्रकार से यातनाओं को भोगने के अन्त में अनेक जीवों

की सन्तति से वे विमुक्त होते हैं। फिर उन्हें मानुष योनि मिलती है तो उसमें भी वे पूर्व कृत पापों के चिह्नों से युक्त हुआ करते हैं। हे खगोत्तम ! अब हम उन पापों के चिह्नों को तुमको बतलाते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ जो पहिले मिथ्या-भाषी होता है। गौओं के लिए अनृत बोलने वाला मूक (गूँगा) होता है। जो ब्राह्मण की हत्या करने वाला होता है वह क्षय रोग का शिकार होता है और काढी होता है। मद्य पीने वाला श्याव दन्त अर्थात् काले दाँतों वाला होता है ॥ ११ ॥ सुवर्ण के हरण करने वाला कुनखी (बुरे नाखूनों वाला) होता है। जो गुरु पत्नी गामी पहिले होता है वह दाग युक्त चर्म वाला हुआ करता है। जो संयोगी होता है वह हीन वर्ण वाला हुआ करता है। बिना निमन्त्रण के भोजन करने वाला काक (कौआ) होता है ॥ १२ ॥ दिगम्बर (नग्न)—बुरे आचार वाले और समस्त देवों की निन्दा करने वाले और जो मिथ्या भाषण किया करते हैं वे घोर नरक में जाया करते हैं ॥ १३ ॥ विप्र को पर्युषित (बासी) अन्न प्रदान करने वाले कुब्जता प्राप्त किया करते हैं। मात्सर्य (डाह) आदि से जात्यन्ध होता है और पुस्तकों का हरण करने वाला पुरुष जन्म से ही अन्धा होता है ॥१४॥

फलानि हि हरन्नित्यं म्रियते नात्र संशयः ।
मृतो वानरतां याति तन्मुक्तो गलगण्डवान् ॥१५
अदत्तभक्षमश्नाति अनपत्यो भवेन्नरः ।
वणिक्चैव महामूढः सर्वदर्शननिन्दकः ॥१६
न जानाति धर्मतत्त्वं स पतेद्घोरसागरे ।
हरन्स्वर्णं भवेद्नोधा गरदः पवनाशनः ॥१७
प्रव्रज्यागमनात्पक्षिन्भवेन्नरपिशाचकः ।
चातको जलहर्ता च धान्यहर्ता च मूषकः ॥१८
अप्राप्तयौवना सेव्य भवेत्सर्प इतिश्रुतिः ।
गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेद्ध्रुवम् ॥१९
जलप्रस्रवणं यस्तु भिन्द्यान्मत्स्यो भवेन्नरः ।
अविक्रेयाणिविक्रीयन्वै विकटाक्षो भवेन्नरः ॥२०

कुयोनिनिन्दको हि स्यादुलूकः स्त्रीप्रवञ्चनात् ।
मृतस्यैकादशाहे तु भुञ्जानः श्वाभिजायते ॥२१

जो नित्य ही फलों का हरण करता है वह मर जाता है—इसमें संशय नहीं है। मृत होकर वह बानर की योनि प्राप्त करता है और इससे मुक्त होकर गलगण्ड रोग वाला हुआ करता है ॥ १५ ॥ जो बिना दिये हुए भक्ष पदार्थों को खा जाता है वह मनुष्य सन्तान हीन हुआ करता है और महा मूढ़ बनिया होता है जो कि समस्त दर्शनों की निन्दा किया करता है ॥ १६ ॥ वह धर्म के तत्त्व को नहीं जानता है और उसका घोर सागर में पतन हो जाता है। सुवर्ण की चोरी करने वाला गोधा की योनि प्राप्त करता है और विष देने वाला सर्प होता है ॥ १७ ॥ प्रव्रज्या के गमन से हे पक्षिन् ! नर पिशाच होता है। जल के हरण करने से चातक और धान्य के हरण से मूषक होता है ॥ १८ ॥ जिस नारी को यौवन की प्राप्ति न हुई हो उसका सेवन करने से सर्प की योनि प्राप्त हुआ करती है—ऐसा श्रुति कहती है। जो गुरु की पत्नी के साथ गमन की इच्छा रखने वाला पुरुष निश्चय ही कृकलास होता है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य जल के प्रस्रवण का भेदन करता है वह मत्स्य होता है। जो विक्रय न करने के योग्य पदार्थों का विक्रय किया करता है वह नर विकट नेत्रों वाला होता है ॥ २० ॥ कुयोनि की निन्दा करने वाली स्त्री का प्रवञ्चन करने से उलूक (उल्लू) हुआ करता है। मृतक के ग्यारहवें दिन में भोजन करने वाला पुरुष कुत्ता की योनि प्राप्त किया करता है ॥२१॥

प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्योऽर्थमददज्जम्बुको भवेत् ।
सर्प हत्वा भवेद्दुष्टः शूकरो विड्वराहकः ॥२२
परिवादाद्द्विजातीनां लभते काच्छपीं तनुम् ।
लभेद्बलकस्तार्क्ष्य योनिं चाण्डालसंज्ञकाम् ॥२३
दुर्भगः फलविक्रेता वृषश्च वृषलीपतिः ।
मार्जारोऽग्निं पदा स्पृष्ट्वा रोगवान्परमांसभुक् ॥२४
सोदर्य्यागमनात्पण्ढो दुर्गन्धश्च सुगन्धहृत् ।
यद्वा तद्वापि पारक्यं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥

हृत्वा वै योनिमाप्नोति तैत्तिरी नात्र संशय ॥२५
एवमादीनि चिह्नानि अन्यान्यपि खगेश्वर ।
स्वकर्मविहितान्येव दृश्यन्ते मानवादिषु ॥२६
एवं दुष्कृतकर्त्ता हि भुक्त्वा च नरकान्क्रमात् ।
जायते कर्मशेषेण ह्य त्कास्वेतासु योनिषु ॥२७
ततो जन्मशतं मर्त्यः सर्वजन्तुषु काश्यप ।
जायते नात्र सन्देहः समीभूते शुभाशुभे ॥२८

वचन देकर अर्थात् प्रतिज्ञा करके द्विजो को धन आदि न देने वाला गीदड होता है। सर्व का हनन करके मल खाने वाला शूकर हुआ करता है ॥ २२ ॥ जो द्विजातियो की निन्दा किया करता है वह बछुआ का शरीर प्राप्त किया करता है। हे तार्क्ष्य ! जो देवलक (पुजारी) होता है वह चाण्डाल सज्ञा वाली योनि की प्राप्ति किया करता है ॥ २३ ॥ फलो के विक्रय का करने वाला दुर्भागी और वृषली (शूद्रा) का पति वृष हुआ करता है। अग्नि को पैर से स्पर्श करने वाला मनुष्य मार्जार (बिल्ली) होता है तथा पर माँस का खाने वाला रोगी होता है ॥ २४ ॥ सोदर्या अर्थात् सगी बहिन के साथ गमन करने से पुरुष षण्ढ (नपु सक) होता है और सुगन्धित पदार्थों के हरण करने से दुर्गन्ध वाला होता है। जो कुछ भी दूसरे का थोडा या बहुत हो हरण करने से तैत्तिरी योनि प्राप्त हुआ करती है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥ २५ ॥ हे खगेश्वर ! इस प्रकार के पूर्व जन्म मे किये हुए पापों के चिह्न होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी लक्षण होते हैं जो मानव आदि प्राणियों में अपने किये हुए कर्मों से ही हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार से दुष्कर्मों के करने वाला प्राणी भोग कर और क्रम से नरको की यातना सह कर शेष जो कुछ भी कर्म रह जाया करते हैं उनके भोगने के लिये इन निकृष्ट योनियों मे जीवात्मा जन्म धारण किया करता है ॥ २७ ॥ हे काश्यप ! इसके अनन्तर यह जन्तु सैकडो जन्म धारण करके जो कि समस्त जन्तुओ के होते हैं फिर शुभ अशुभ कर्मों के समान होने पर इसे मनुष्य योनि प्राप्त होती है—इसमें कुछ भी सशय नही है ॥२८॥

स्त्रीपुंसयोः प्रसङ्गे च विशुद्धे शुक्रशोणिते ।
पञ्चभूतसमोपेतः सुपुष्टः परमः पुमान् ॥२९
धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छा संहार एव च ।
प्रयत्नाकृतिवर्णश्च रागद्वेषौ भवाभवौ ॥३०
तस्येदमात्मानः सर्वमनादेरादिमिच्छतः ।
स्वकर्मबद्धस्य तदा गर्भे वृद्धिं हि विन्दति ॥३१
पुरा मया यथा प्रोक्तं तव जन्तोर्हि लक्षणम् ।
एवं प्रवर्त्तते चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे ॥३२
समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते तार्क्ष्य देहिनाम् ।
ऊर्ध्वा गतिस्तु धर्मेण नधर्मेण ह्यधोगतिः ॥३३
जायते सर्ववर्णानां स्वकर्माचरणात्खग ।
देवत्वे मानुषत्वे च दानभोगादिकाः क्रियाः ॥३४
यद्यद्दृश्य वैनतेय तत्सर्वं कर्मजं फलम् ।
कुकर्मविहितो घोरे कामक्रियार्जितेऽशुभे ॥
नरके पतितो भूयो यस्योत्तारो न विद्यते ॥३५

स्त्री और पुरुष के प्रसङ्ग होने पर तथा शुक्र (वीर्य) और शोणित (रक्त-रज) के विशुद्ध होने पर यह पाँच तत्वों से (पृथ्वी—आकाश—तेज—जल—वायु) समन्वित—परम पुष्ट पुरुष जन्म लिया करता है ॥ २९ ॥ धारणा—प्रेरणा—दुःख—इच्छा—संहार—प्रयत्न—आकृति—वर्ण—राग—द्वेष—भव—अभव—यह सब अनादि और आदि की इच्छा करने वाले अपने कर्म से बद्ध उसके समय गर्भ में वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पहिले मैंने जो तुमको जन्तु के लक्षण बतलाये हैं। इस प्रकार से चार प्रकार के भूत ग्राम में यह चक्र चलता है ॥ ३२ ॥ हे तार्क्ष्य ! देह धारियों की उत्पत्ति होती है और विनाश भी होता है। धर्म से गति ऊर्ध्व गामिनी होती है और अधर्म से अधोगति हुआ करती है ॥ ३३ ॥ हे खग ! समस्त वर्णों की देवत्व और मानुषत्व में अपने कर्मों के आचरण से दान एवं भोग आदि की क्रिया होती है ॥ ३४ ॥ हे वैनतेय ! जो-जो अदृश्य है वह सब कर्मों से जन्य फल होता

है। कुत्सित कर्मों से विहित काम किया से घर्षित अशुभ एवं घोर नरक में पतित होता है जिसका कि फिर कोई भी प्रतिकार नहीं होता है ॥३४॥

३५—विविध पाप कथन

भगवन्देवदेवेश कृपया परया वद।
दान दानस्य माहात्म्य वैतरण्या प्रमाणकम् ॥१
या सा वैतरणीनाम्नो यमद्वारे महासरित्।
यत्प्रमाणा च सा देवी शृणु तां मे भयावहाम् ॥२
शतोयोजनविस्तीर्णा पृथुत्वे सा महानदी।
दुर्गन्धा दुस्तरा पापैर्दृष्टमात्रभयावहा ॥३
पूयशोणिततोयाढ्या मांसकर्दमसङ्कुला।
पापिन ह्यागतं दृष्ट्वा नानाभयसमागतम् ॥४
दृश्यते सत्वरं तोयं पात्रमध्ये यथा धृतम्।
कृमिभि सङ्कुल पूय वज्रतुण्डैः समाहृतम् ॥५
शिशुमारैश्च मत्स्याद्यैर्वज्रवर्त्तैरिवावृतैः।
अन्यैश्च जलजीवैश्च हिंसकैर्मांसभेदिभि ॥६
तपन्ते द्वादशादित्या प्रलयान्ते यथा हि ते।
पतन्ति तत्र वै मर्त्या क्रन्दमानास्तु पापिन ॥७

गरुड ने कहा—हे देवों के भी देवेश्वर! हे भगवन्! आप अब परम कृपा करके दान और दान का माहात्म्य तथा वैतरणी का प्रमाण बतलाइये? ॥ १ ॥ श्री भगवान् ने कहा—जो वैतरणी नाम वाली एक महान् नदी है वह यमराज के द्वार पर है। उसका जितना प्रमाण है उसे तुम मुझसे श्रवण करो। वह वैतरणी देवी बहुत ही भय देने वाली है ॥ २ ॥ वह वैतरणी नदी सौ योजन के विस्तार वाली है पृथुत्व में वह एक सबसे बड़ी महा नदी है। उस नदी में बहुत अधिक दुर्गन्ध आती है और वह बहुत ही कठिनता से पार किये जाने वाली है। पापियों को उसे देखने मात्र से ही बड़ा भय लगा करता है ॥ ३ ॥ उस वैतरणी नदी में पूय (मवाद)—रक्त और जल भरा हुआ

रहता है तथा मांस की कीचड़ भरी हुई है। आये हुए पापी को देखकर नाना प्रकार के भय आ जाते है।। ४ ।। उसमे शीघ्र ही जल ऐसा दिखलाई दिया करता है जैसे किसी पात्र में रक्खा हुआ हो। पूय (मवाद) कृमियों से घिरा हुआ रहता है तथा वज्र तुण्डों के द्वारा समाहृत होता है ।। ५ ।। शिशुमार—मत्स्य आदि—वज्र कर्त्तरिका और अन्य मांस भेदी हिंसक जल के जीवों से वह वैतरणी परि पूर्ण रहती है ।। ६ ।। यहाँ पर बारह सूर्य जिस तरह प्रलय के अन्त में तपा करते है वैसे ही ताप देते हैं। वहाँ पापी लोग उसमें गिरते, रोते-चिल्लाते हैं और क्रन्दन करते हैं ।।७।।

हा भ्रातः पुत्र मातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः ।
प्रतरन्ति निमज्जन्ति तत्र गच्छन्ति जन्तवः ।।८
चतुर्विधैः प्राणिगणैर्द्रष्टव्या सा महानदी ।
तरन्ति तत्र दानेन चान्यथा ते पतन्ति वै ।।९
मातरं येऽवमन्यन्ते आचार्य्यं गुरुमेव च ।
अवमन्यन्ति ते मूढास्तेषां वासोऽत्र सन्ततम् ।।१०
पतिव्रतां धर्मशीलां व्यूढां धर्मे विनिश्चिताम् ।
परित्यजन्ति ये मूढास्तेषां वासोऽत्र सन्ततम् ।।११
विश्वासप्रतिपन्नानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ।
स्त्रीबालविकलादीनां छिद्रमन्वेषयन्ति हि ।।
पच्यन्ते पूयमध्ये तु क्रन्दमानास्तु पापिनः ।।१२
प्राप्तं बुभुक्षितं विप्रं यो विघ्नायोपसर्पति ।
कृमिभिर्भक्ष्यते तत्र यावदाभूतसम्प्लवम् ।।१३
ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः ।
यज्ञविध्वंसकश्चैव राज्ञीगामी च पैशुनी ।।१४
कथाभङ्गकरश्चैव कूटसाक्षी च मद्यपः ।
आहूय नास्ति यो ब्रूते तस्य वासोऽत्र सन्ततम् ।।१५

पापात्मा मनुष्य जिस समय वैतरणी में गिरते हैं तब वे ' हा भाई ! हा पुत्र ! हा माता ! "—इस तरह बार-बार बुरी तरह प्रलाप किया करते

है। उस नदी में प्रतरण करते हैं—डुबकियाँ लगाते हैं और रुदन करते हुए जन्तु उसमें जाया करते हैं ॥ ८ ॥ वह महानदी चार प्रकार के प्राणियों से युक्त देखी जाती है। वहाँ पर दान से ही लोग उसे पार किया करते हैं अन्यथा वे सब उसमें गिर जाया करते हैं ॥ ९ ॥ जो अपनी माता का तिरस्कार किया करते हैं और अपने आचार्य और गुरु का अपमान करते हैं उन महा मूढ मानवों का इस वैतरणी नदी में निरन्तर वास रहा करता है ॥१०॥ धर्म शीला-विवाहिता और धर्म में विशेष निश्चय वाली पतिव्रता पत्नी का जो त्याग कर देते हैं उन मूढों का निवास इस वैतरणी में सर्वदा रहा करता है ॥ ११ ॥ विश्वास से स्थित रहने वाले स्वामी-मित्र-तपस्वी-स्त्री—बालक और विकल आदि का जो छिद्र खोजा करते हैं वे महा पापी प्राणी क्रन्दन करते हुए पूय (मवाद) के बीच में पच्यमान होकर नारकीय यातनाऐं सहन किया करते हैं ॥ १२ ॥ किसी भूखे ब्राह्मण को प्राप्त हो जाने पर जो विघ्न उपस्थित करता है वह वहाँ पर जब तक भूत-सम्प्लव होता है अर्थात् महा लय होता है तब तक कृमियों के द्वारा खाया जाया करता है ॥ १३ ॥ जो किसी ब्राह्मण को प्रतिश्रुत करके फिर यथार्थ नहीं दिया करता है और जो यज्ञ का विध्वंस करता है तथा राज्ञी का गमन करता है और जो चुगली किया करता है—कथा का भङ्ग करने वाला है-झूँठी गवाही देता है-मद्य पान करता है तथा जो बुलाकर फिर भाषण नहीं करता है उस मनुष्य का वास भी इस वैतरणी में निरन्तर रहता है ॥१४॥१५॥

अग्निदो गरदश्चैव स्वयं दत्तापहारकः ।
क्षेत्रसेतुविभेदी च परदाराप्रधर्षकः ॥१६

ब्राह्मणो रसविक्रेता तथा च वृषलीपतिः ।
गोधनस्य तृषार्त्तस्य विभेदं कुरुते तु यः ॥१७

कन्याविदूषकश्चैव दानं दत्त्वा तु तापकः ।
शूद्रस्तु कपिलानां ब्राह्मणो मांसभोजकः ॥
एते वसन्ति सततं मा विचारं कृथा क्वचित् ॥१८

कृपणो नास्तिकः क्षुद्रः स तस्यां निवसेत्खग ।
सदामर्षी सदा क्रोधी निजवाक्यप्रमाणकृत् ॥१९
परोक्तच्छेदको नित्यं वैतरण्यां वसेच्चिरम् ।
यस्त्वहङ्कारवान्पापः स्वविकत्थनकारकः ॥
कृतघ्नो विश्वासघाती वैतरण्यां वसेच्चिरम् ॥२०
कदाचिद्भाग्ययोगेन तरणेच्छा भवेद्यदि ।
सानुकूला भवेद् येन तदाकर्णय काश्यप ॥२१

अग्नि लगाने वाला—विष देने वाला—स्वयं दान करके फिर उसका अपहरण करने वाला—क्षेत्र तथा सेतु (पुल) का भेदन करने वाला—पराई स्त्री के साथ प्रधर्षण (बलात्कार) करने वाला—ब्राह्मण होकर रस का विक्रय करने वाला—वृषली (शूद्रा) स्त्री का पति विप्र—जो गो धन का तथा प्यास से आर्त्त का विभेद करने वाला है—कन्या को विशेष रूप से दूषित करने वाला—दान देकर ताप देने वाला-शूद्र होकर कपिला गौ का पान करने वाला और ब्राह्मण होकर मांस खाने वाला—ये सब उस महा भयावह वैतरणी नदी में निरन्तर निवास किया करते हैं—इसमें कहीं भी कुछ अन्यथा विचार नहीं है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे खग ! जो कृपण है—नास्तिक है और क्षुद्र प्रकृति वाला है वह उस वैतरणी में वास किया करता है। जो सर्वदा क्रोध करने वाला है—अमर्ष करने वाला है और अपने ही वाक्य को प्रमाण मानने वाला है तथा जो दूसरे के कथन का छेदन करने वाला है वह नित्य ही वैतरणी में चिर काल तक निवास किया करता है। जो बहुत ही अहङ्कार वाला और अपना विकत्थन करने वाला पापी है तथा कृतघ्नी और विश्वासघाती पुरुष होता है वह वैतरणी में बहुत अधिक समय तक निवास किया करता है ॥१९॥ ॥ २० ॥ कदाचित् भाग्य के योग से यदि तरण करने की इच्छा होती है तो जिसके द्वारा वह सानुकूल होती है उसे हे काश्यप ! अब श्रवण करो ॥२१॥

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।
चन्द्रसूर्य्योपरागे च संक्रान्तौ दर्शवासरे ॥२२

अयने पुण्यकालेषु दीयते दानमुत्तमम् ।
यदा वदा भवेद्वापि श्रद्धा दानं प्रतिध्रुवम् ॥
तदैव दानकालः स्याज्जाता सम्पत्तिरस्थिरा ॥२३
अस्थिराणि शरीराणि विभवा नैव शाश्वत ।
नित्यं सन्निहिता मृत्यु कर्तव्यो धर्मसञ्चय ॥२४
कृष्णां वा पाटलां वापि दद्याद्वैतरणी शुभाम् ।
हेमशृङ्गीं रौप्यखुरीं कांस्यपात्रापदोहनीम् ॥२५
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्यसमन्विताम् ।
कार्पासद्रोणशिखरे आसीनं ताम्रभाजनं ॥२६
यमं हैमं प्रकुर्वीत लोहदण्डसमन्वितम् ।
इक्षुदण्डमयं बद्ध्वा तूडुपं दृढबन्धनैः ॥२७
उडुपोपरि तां धेनुं सूर्यदेहसमुद्भवाम् ।
कृत्वा वितल्पयेद्विद्वान्छत्रोपानत्समन्विताम् ॥२८

विषुव अयन में—पुण्य व्यतीपात में—दिनक्षय में—चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में—संक्रान्ति में—दर्शामर में—अयन में और पुण्य कालों में जो कुछ उत्तम दान दिया जाता है । अथवा जब कभी दान के प्रति श्रद्धा का भाव होता है वह ही दान का काल अस्थिर सम्पत्ति हो जाती है ॥ २२ ॥ २३ ॥ ये शरीर भी अस्थिर हैं और विभव भी सदा रहने वाले नहीं होते हैं । मृत्यु नित्य ही सन्निहित रहा करता है इसलिये धर्म का सञ्चय अवश्य ही करना चाहिए ॥ २४ ॥ इस महानदी वैतरणी से निस्तार पाने के लिये तारण कराने वाली वैतरणी गौ का दान करना चाहिए चाहे वह श्यामा गौ हो या पाटला हो । ऐसी किसी शुभ गौ का दान करे । गौ के सींग सुवर्ण से मण्डित हों और उसके खुर चाँदी से मढ़े हुए होने चाहिए । उसके दोहन के लिये काँसे का एक पात्र भी उसके साथ देना चाहिए ॥ २५ ॥ कृष्ण वर्ण के दो वस्त्रों से उसे आवृत करे । उसके साथ सात प्रकार के धान्य भी देवे । कार्पास द्रोण शिखर पर ताम्र पात्र में स्थित एक हैम (सोने का) यम बनावे जो लोह के दण्ड से युक्त हो । ईख के दण्डों से पूर्ण एक उडुप बनाकर उसे दृढ़ बन्धनों से बाँध

देवे। उस उडुप के ऊपर सूर्य देह से समुत्पन्न उस धेनु को करके जोकि छत्र और उपानह से समन्वित हो, इसका दान किसी विद्वान् को देवे ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥

अंगुरीयकवासांसि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं संगृह्य सजलान्कुशान् ॥२६
यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम् ।
तत्तु कामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीञ्च गाम् ॥३०
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव पङ्क्तिपावन ।
सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी च गौः ॥३१
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥३२
धर्मराजञ्च सर्वेशं वैतरण्याख्यकां तु गाम् ।
सर्व प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३३
पुच्छं संगृह्य धेनोश्च अग्रे कृत्वा तु व द्विजम् ।
धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये ॥३४
उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमो नमः ।
अनुव्रजेद्द्विज यातं सर्व तस्य गृहं नयेत् ॥३५

अंगुलीयक (अँगूठी) और वस्त्र जल के सहित कुशाऐं लेकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करता हुआ ब्राह्मण के लिये दान देवे ॥ २६ ॥ मन्त्र— यम के द्वार पर जो कि महान् घोर स्वरूप वाला है वैतरणी नदी का श्रवण करके मैं उससे पार होने की इच्छा वाला हूँ। इसीलिये इस वैतरणी गौ का दान तुमको करता हूँ ॥ ३० ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! आप विष्णु के स्वरूप वाले हैं। आप इस भू मण्डल के देवता है और पंक्ति के पावन करने वाले है। इसलिये दक्षिणा के सहित यह वैतरणी गौ मैंने आपको दान में दी है ॥ ३ ॥ मेरी अभिलाषा है कि ये गौऐं मेरे आगे और पीछे रहें। मेरे हृदय में भी गौऐं निवास करें और मैं गौओं के मध्य में ही निवास किया करूँ ॥ ३२ ॥ सबके ईश धर्मराज को और वैतरणी नाम वाली गौ को सबकी प्रदक्षिणा करके फिर

पीछे ब्राह्मण को दान में देवे ॥ ३३ ॥ फिर धेनु की पूँछ ग्रहण करके और ब्राह्मण को आगे करके निवेदन करना चाहिए—हे धेनुक ! उस महान् भयानक यमराज के द्वार पर तुम मेरी प्रतीक्षा करना ॥ ३४ ॥ हे देवेशि ! महानदी से उत्तरण प्राप्त करने के लिये वैतरणी आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है। उस द्विज के पीछे पीछे गमन कर और सब कुछ उनके घर में प्राप्त करा देवे ॥३५॥

> एवं कृते वैनतेय सा सरित्सुखदा भवेत् ।
> सर्वं कामानाप्नुवन्ति ददते ये च मानवाः ॥३६
> सुकृतस्य प्रभावेण सुखश्चेह परत्र च ।
> स्वस्थे सहस्रगुणितं चातुरे शतसम्मितम् ॥३७
> मृतस्यैव तु यद्दानं परोक्षे तत्समं स्मृतम् ।
> स्वहस्तेन ततो देयं मृते कः कस्य दास्यति ॥३८
> दानधर्मविहीनानां कृपणं जीवितं क्षितौ ।
> अस्थिरेण शरीरेण स्थिरं धर्मं समाचरेत् ॥
> अवश्यमेव यास्यन्ति प्राणाः प्राघूर्णिका इव ॥३९
> इतीदमुक्तं तव पक्षिराज विडम्बनं जन्तुगणस्य सर्वम् ।
> प्रेतस्य मोक्षाय तदौर्ध्वदेहिकं हिताय लोकस्य-
> शुभावबोधनम् ॥४०

हे वैनतेय ! इस प्रकार से करने पर वह महानदी सुख देने वाली हो जाती है। जो मनुष्य ऐसा दान करते हैं वे समस्त कामनाओं की प्राप्ति किया करते हैं ॥ ३६ ॥ सुकृत के प्रभाव से इस लोक में और परलोक में सुख होता है। स्वस्थ रहते हुए स्वयं जो भी कुछ सुकृत किया करता है उसका पुण्य फल सहस्र गुना होता है। आतुरावस्था में जो भी कुछ सुकृत कराया जाता है उसका पुण्य-फल सौ गुना होता है ॥ ३७ ॥ मृत हो जाने पर परोक्ष में जो दान पुण्य उसके निमित्त किया जाता है वह उसी के समान बतलाया गया है। अतएव अपने हाथ से ही सदा दान पुण्य करना या देना चाहिए—यही सबसे उत्तम है। मर जाने पर कौन किसके लिये दिया करता है? ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य

दान और धर्म से विहीन हुआ करते हैं उनका जीवन इस भू मण्डल में कृप-णता से पूर्ण होता है। यह शरीर तो सदा स्थिर रहने वाला नहीं है अतएव इस शरीर से स्थिर कर्म जो दान-पुण्य है वह अवश्य ही करना चाहिए। ये प्राण तो अवश्य ही एक दिन मेहमान की भांति चले ही जाँयगे ॥ ३६ ॥ हे पक्षिराज ! यह मैंने तुमको सब जन्तुगण की विडम्बना बतलादी है। प्रेत की मुक्ति के लिये उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया—कलाप लोक के हित के लिये भी है और यह शुभ अर्थ का ज्ञान कराने वाला है ॥४०॥

एवं विप्राः समादिष्टं विष्णुना प्रभविष्णुना।
गरुडः प्रेतचरितं श्रुत्वा सन्तुष्टमानसः ॥४१
व्रततीर्थादिकं पुण्यं पुनः पप्रच्छ केशवम्।
ध्यात्वा मनसि सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ॥४२
ऋषयः सर्वमेतत्तु जन्तूनां प्रभवादिकम्।
मया प्रोक्तं हि वै मुक्त्यै प्रेतस्य चौर्ध्वदैहिकम् ॥
निदानं वच्मि लोकानां हिताय परमौषधम् ॥४३
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥४४
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवः।
येषामेवं स्थिरा बुद्धिर्न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥४५
मङ्गलं भगवान्विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः ॥४६

सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! प्रभविष्णु भगवान् विष्णु ने इस प्रकार से समादेश किया था। गरुड़ इस सम्पूर्ण प्रेत के चरित्र को श्रवण कर परम सन्तुष्ट मन वाला हो गया था ॥ ४१ ॥ फिर मन में समस्त कारणों के भी कारण सब के स्वामी का मन में ध्यान करके व्रत और तीर्थ आदिक पुण्य कार्य के विषय में भगवान् केशव से पूछा था ॥ ४२ ॥ हे ऋषि गण ! जन्तुओं का यह सब प्रभव आदि मैंने बतला दिया है और प्रेत की मुक्ति के लिये देह के समाप्त हो जाने के बाद में होने वाला और्ध्वदैहिक कर्म भी बतला दिया

है। सब लोकों के हित के लिये जो निदान है और परम औषध स्वरूप है उसे बतलाता हूँ ॥ ४३ । जिनके हृदय तल में इन्दीवर के समान श्याम वर्ण वाले भगवान् जनार्दन विराजमान रहते हैं उनको ही लाभ होता है—उनकी विजय होती है। ऐसे लोगों का पराजय तो कभी हो ही नहीं सकता है ॥ ४४॥ भगवान् विष्णु वस्तुतः माता—पिता और स्वजन एवं बान्धव हैं। जिन मनुष्यों की बुद्धि इस प्रकार की स्थिर रहा करती है उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती है ॥ ४५ ॥ भगवान् विष्णु का स्वरूप मङ्गलमय है और गरुडध्वज मङ्गल रूप है। पुण्डरीकाक्ष भी मङ्गल रूप है हरि पूर्णतया मङ्गलों के आधार हैं। ॥ ४६ ॥

हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः ।
भागीरथी हरिर्विप्रा सारमेतज्जगत्त्रये ॥४७
सर्वेषां मङ्गलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥४८
इति गरुडपुराणे प्रेतकल्पे प्रजानां हितमभिहितमादौ सूतपुत्रेण पुण्यम् ।
श्रुत्वा नतानां नैमिषे सन्मुनीनां श्रवणगतमकुर्वन् किं विजानाति मर्त्यः ॥४९

हरि-भागीरथी और विप्र तथा विप्र-भागीरथी और एवं हरि भागीरथी-हरि और विप्र तीनों जगत् श्री हरि भगवान् ने कहा—हमने यह गरुड पुराण विधि के साथ तुमको भली भाँति समझा दिया है। इस परम पुण्यमय गरुड महा पुराण को जो भी कोई श्रद्धा—भक्ति के भाव से पढ़ता है और इसका श्रवण किया करता है वह पुरुष भी इस संसार के सर्वदा जन्म—मरण के आवागमन के बन्धन से मोक्ष प्राप्त कर भगवान् की सन्निधि में नित्य निवास किया करता है। १२॥

उपसंहार
परलोकवाद और स्वर्ग-नर्क

हिन्दू धर्म की विशेषताओं में से एक परलोकवाद भी है और वह भारतीय धर्म में प्रवाहित अध्यात्म धारा का एक सुदृढ़ प्रमाण है। हम सभी जानते हैं कि सामान्य मनुष्य का ध्यान मुख्य रूप से भोजन, वस्त्र, आवास, मनोरञ्जन आदि की तरफ जाता है और यदि उसकी ये आवश्यकताएँ इच्छानुकूल रूप में पूरी हो जाती हैं तो फिर उसे ईश्वर और परलोक आदि की याद कदाचित् ही आती है। यह हिन्दू धर्म के प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही महत्ता थी कि उन्होंने किसी प्रकार का भौतिक स्वार्थ न होने पर आत्म तत्त्व और उसके साथ ही परलोक तत्त्व को अच्छी तरह छान डाला और उसमें से ऐसे-ऐसे अमूल्य मणि-मुक्ता ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकाले जिनके बल पर आज भी अध्यात्म-क्षेत्र में हमारा गौरव स्थिर है।

परलोक का सिद्धान्त पुनर्जन्म से सम्बन्धित है। जो लोग आत्मा की अमरता और उसके भिन्न-भिन्न स्थूल रूपों में प्रकट होने के विधान को समझ सकने में असमर्थ होते हैं, वे परलोक के स्वरूप को भी नहीं जान सकते। इसीलिये संसार के दो बहु प्रचलित धर्म ईसाई और मुसलमान स्वर्ग और नर्क का नाम लेने पर भी उनके विषय में किसी तरह का स्पष्ट वर्णन नहीं कर पाये। उन्होंने मरने के बाद आत्मा का अस्तित्व स्वीकार किया, पर साथ में यह भी कहा कि शरीर से पृथक् होने के पश्चात् उसे एक शून्य स्थान में बन्द कर दिया जाता है। जब 'कयामत' आयेगी तो भगवान् सब मनुष्यों को अपने सामने खड़ा करके उनके कर्मानुसार दण्ड या पुरस्कार देंगे। सार रूप से यह बात सन्तोषजनक हो सकती है, पर इससे यह प्रकट नहीं होता कि इसके प्रचार करने वालों ने इस समस्या को ठीक तरह से समझा था। वास्तव में पुनजन्म को स्वीकार किये बिना आत्मा की अमरता और मरने के बाद शुभ तथा अशुभ कर्मो के फल भोगने की बात का कोई अर्थ ही नहीं है।

हिन्दू शास्त्रों में इस विषय का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। उनमें आत्मा की अमरता को एक अकाट्य तथ्य के रूप में स्वीकार किया गया है और बतलाया है कि वह विभिन्न योनियों में प्रकट होकर विकास की यात्रा को पूरा करती है। यह भारतीय मनीषियों की योग-दृष्टि की ही शक्ति थी कि उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि केवल मनुष्यों में ही नहीं पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तक में एक ही आत्म-तत्त्व व्याप्त है। उन्होंने जीवात्मा के रूप में उसकी पृथकता भी स्वीकार की और यह भी कहा कि शुभ और अशुभ कर्मों के फल स्वरूप उसका उत्थान और पतन भी होता है। उन्होंने बताया कि मनुष्य में वह शक्ति है कि जिससे वह शुभ कर्म करते हुए चाहे तो भगवान् के समकक्ष पदवी प्राप्त कर सकता है और साथ ही पाप-कर्म करके अपने को नालों के कीड़े की स्थिति तक भी गिरा सकता है। मनुष्य के हाथ में इतनी बड़ी शक्ति होने का विश्वास उसके लिए एक बहुत बड़ा सम्बल है और इसी के आधार पर यहाँ ऊँचे से ऊँचे अध्यात्म शक्ति सम्पन्न महापुरुषों का प्रादुर्भाव हो सका है।

मरणोपरान्त जीवन—

मरने के बाद आत्मा का क्या होता है और किस प्रकार वह उत्तम और नीच गति को प्राप्त होती है? इसके मूल सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भिन्न-भिन्न विद्वानों ने उसका वर्णन विविध प्रकार से किया है जिसमें प्रत्यक्षतः बड़ा अन्तर जान पड़ता है 'कठोपनिषद्' में नचिकेता ने आत्म ज्ञान की जिज्ञासा करते हुये यम से पूछा था—

> येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
> एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥

अर्थात्—"मृतकों के सम्बन्ध में जो यह संशय है कि कोई कहता है कि मरने के पश्चात् आत्मा जीवित रहती है और कोई कहता है कि आत्मा भी जीवित नहीं रहती। मैं इसका वास्तविक रहस्य जानना चाहता हूँ और यही तीसरा वर आपसे माँगता हूँ।"

इससे विदित होता है कि अब से हजारों वर्ष पूर्व आर्य सभ्यता के आरम्भिक काल में ही ऋषियों को इस समस्या का निर्णय करना आवश्यक जान पड़ा था कि आत्मा अमर है अथवा नाशवान है ? और यदि अमर है तो मरने के पश्चात् उसको किन परिस्थितियों में रहना पड़ता है ? 'कठोप-निषद्' के ऋषि ने इसका जो विवेचन किया है वह सर्वथा तर्क और बुद्धि सङ्गत है और इससे बढ़कर आत्मा के स्वरूप की व्याख्या करने में जो आज तक कोई समर्थ नहीं हो सका है। उन्होंने कहा—

> न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चन्नि बभूव कश्चित् ।
> अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
> अणोरणीयान्महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्निहिते गुहायाम् ।
> तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥
> (क० १-२-१८, २०)

अर्थात्—"आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, वह तो नित्य है। वह न किसी के द्वारा उत्पन्न हुआ है और न उसके द्वारा कोई उत्पन्न किया जाता है। वह तो अजन्मा, नित्य, सदा रहने वाला और सनातन है। शरीर के नष्ट किये जाने पर भी वह नहीं मरता ॥ १८ ॥ जो व्यक्ति प्राणी के हृदय के अन्तरतम भाग में निहित सूक्ष्मातिसूक्ष्म और विशाल परमेश्वर के अंश रूप इस जीवात्मा और उसकी महिमा को देख पाता है वही पूर्णतया कामना, दुःख और शोक से रहित होकर परमात्मा का कृपा पात्र होता है।"

वास्तव में आत्मतत्त्व इतना सूक्ष्म है कि मानवीय स्थूल इन्द्रियों अथवा यन्त्रों से उसको किसी प्रकार नहीं जाना जा सकता, न प्रमाणित किया जा सकता है। हमारे ऋषियों के कथनानुसार तो वह मानवीय विचार-क्षेत्र से भी बाहर का विषय है इसलिये उन्होंने उसके विषय में स्वमतानुसार कुछ कह कर अन्त में 'नेति नेति' कह दिया है। इसका आशय यही है कि आत्म तत्त्व इतना सूक्ष्म और साथ ही महान् है कि मानव बुद्धि उसे पूर्ण रूप से जानने का दावा कदापि नहीं कर सकती।

यही कारण है कि पुराणकारों ने इस विषय में तर्क, बुद्धि और प्रमाण के अतिरिक्त कल्पना से बहुत अधिक काम लिया है और उसे ऐसा रूप दिया है जिससे सामान्य व्यक्ति भी उसके सम्बन्ध में कुछ अनुमान कर सके और उसे अपने जीवन-व्यवहार में काम ला सके। जब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आत्मा अमर है और उसका लक्ष्य क्रमशः ऊँचा उठना है, तो उन्होंने लोगों को वही शिक्षा दी है जो इस लक्ष्य के अनुकूल और स्वाभाविक है। योगियों ने अनेक अवसरों पर अपनी दिव्य-दृष्टि से अनेक व्यक्तियों के भूत, वर्तमान और भविष्य की जानकारी प्राप्त करके उसे प्रकट भी किया है। इन सबके आधार पर ही पुराणों में आत्मा के उत्थान, पतन, शुभ-अशुभ कर्मों के परिणाम और स्वर्ग-नर्क के विषय में वर्णन किया है और उसी पर हमारे यहाँ की सामान्य जनता पूर्ण विश्वास रखती है।

'गरुड पुराण' की गणना परलोक वर्णन की दृष्टि से सर्व प्रथम है। यह मुख्य रूप से इसी के लिए प्रसिद्ध है और अनेक प्रदेशों की हिन्दू जनता द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसमें अधिकांश यमलोक में पापियों को मिलने वाले कष्टों का वर्णन किया गया है और उनसे बचने के लिये दान आदि का विधान बतलाया गया है। इसके आधार पर अनेक आलोचकों ने इसका महत्त्व घटाने की चेष्टा की है और कहा है कि ये बातें दान के लोभी ब्राह्मणों की गढ़ी हुई हैं इससे विश्वसनीय नहीं मानी जा सकती। यह तो हम भी जानते हैं कि पुराणों के वर्णन में अतिशयोक्ति की शैली से काम लिया गया है और अनेक स्थानों में कवि-कल्पना की बहार भी दिखाई गई है। पर इन कारणों से कोई तथ्य झूँठा या सच्चा नहीं हो सकता। विद्वान् लोग बिना किसी कठिनाई के यह समझ सकते हैं कि उनका कितना अंश वास्तविक है और कितना कवि कल्पना का। इस दृष्टि से विचार करके कितने ही आधुनिक विद्वानों ने मृत्यु की वास्तविकता और परलोक में जीव की स्थिति के सम्बन्ध में गहराई से विचार किया है और कितने ही ऐसे तथ्यों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जो थोड़े से हठधर्मी प्रवृत्ति वाले लोगों को छोड़ कर प्रायः सभी लोगों को उचित जान पड़ते हैं। यदि उनके विचारों का निष्पक्ष-

पात होकर मनन किया जाय तो मनुष्य की मृत्यु विषयक धारणा में बड़ा परिवर्तन हो जाता है और जो बात आज हमको एक बहुत बड़ी विपत्ति अथवा सर्वनाश की तरह जान पड़ती है वही एक स्वाभाविक और उपयोगी परिवर्तन की तरह प्रतीत होने लगती है। इसका विश्लेषण करते हुये एक विद्वान का कहना है—

"एक दृष्टिकोण से यह भी कहा जा सकता है कि मृत्यु वास्तव में शोक का अवसर न होकर आनन्द का विषय है। पर यह दृष्टिकोण तब प्राप्त हो सकेगा जब हम जीवन-मरण की समस्या को भौतिक देह की दृष्टि से नहीं, वरन् उसके भीतर निवास करने वाले 'देही' (आत्मा) की दृष्टि से देखने की कोशिश करेंगे। देही अथवा जीव का इस शरीर में रहना ऐसा है, जैसा किसी को चारों तरफ से खूब बाँध—छाँद देकर किसी अँधेरी कोठरी में बन्द कर देना इस शरीर रूपी कोठरी में जहाँ-तहाँ बहुत छोटी-छोटी, मैली-कुचैली खिड़कियाँ लगी हुई हैं। जब जीव शरीर को छोड़कर बाहर निकल जाता है तो वह अपने आपको इन बन्धनों से पृथक पाता है। यद्यपि इस शरीर के छूटने पर भी जीव के ऊपर और कई पर्दे (कोष) लगे रहते हैं, तो भी जो सबसे भद्दा स्थूल पर्दा है उससे उसकी रिहाई हो जाती है। इस प्रकार जीव की दृष्टि से इस शरीर का छूटना आनन्द का ही अवसर है।"

मनुष्य का पारलौकिक जीवन कैसा होता है, इसको समझने के लिये आवश्यकता है कि हम विभिन्न स्वरूपों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी हासिल करें। यह तो सभी जानते है कि हमारा स्थूल शरीर नाशवान है, पर उसके नष्ट हो जाने पर भी दो अंश बचे रहते हैं एक 'जीवात्मा' (ईगो) और दूसरा 'आत्मा' (मोनाड)। तीसरा देहात्मकजीव (परसनैलिटी) कहा जाता है जो परिवर्तनशील होता है। मनुष्य के मृत्यु काल और परलोक-जीवन का निर्णय बहुत कुछ इस बात द्वारा होता है कि वह अपने इन तीन रूपों में से किस रूप को प्रधानता देता है। इस सम्बन्ध में उपर्युक्त लेखक का मत है—

"यदि हम अपने आप अपनी आत्मा के स्वरूप में जानने लगें, जैसा कि आत्म ज्ञानी लोग करते हैं, तो उस हालत में हम अपने आपको जन्म-मरण

से बिल्कुल परे पायेंगे। उस स्थिति में हम भी भगवान् कृष्ण की तरह कह सकते हैं कि न तो हम जन्म लेते हैं, न मरते हैं।" पर यह अभी हम लोगों के लिए बहुत दूर की बात है। ऋषि, महात्मा और उच्च ज्ञानी पुरुषों को ही ऐसा अनुभव प्राप्त होता है। हम तो अभी अपने आपको भली-भाँति जीवन के स्वरूप से भी नहीं जानते। यदि हम जानते होते तो मृत्यु हम लोगों को ऐसे भयंकर स्वरूप में नहीं दीख पड़ती। उस समय हम पुनर्जन्म की वास्तविकता समझकर तथा मृत्यु को केवल एक परिवर्तन के रूप में समझते। आज जब हम इस सम्बन्ध में जो इतना अधिक दुःख अनुभव करते हैं उसका प्रधान कारण यही है कि अभी हम अपने को देहात्मक-जीव के रूप में ही जानते हैं।

पुनर्जन्म के प्रमाण—

इतना ही क्यों आज कल संसार में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जो 'जड़वाद' में ही विश्वास रखते हैं और पुनर्जन्म, परलोक आदि की बातों को 'भ्रम' अथवा 'निरर्थक' बतलाते हैं। इनमें से कुछ लोग तो 'विज्ञानवादी' बनने के लिए ऐसा भाव प्रकट करते हैं और कुछ विचार शून्यता के कारण इस विषय पर कुछ सोच समझ सकने की शक्ति ही नहीं रखते। पर इन दिनों एक तो नित्य ही भारत वर्ष तथा और विदेशों की पुनर्जन्म की ऐसी घटनाओं का प्रकाश होता है कि जिनकी सत्यता से कोई इनकार नहीं कर सकता। और दूसरा प्रमाण उन बच्चों का है जो तीन चार वर्ष की आयु में ही बड़े-बड़े ग्रन्थों अथवा विविध भाषाओं का ज्ञान रखते हैं। इस सम्बन्ध में हिन्दी के प्रसिद्ध दैनिक 'आज' के ८ मई १९४० के अङ्क में नीचे लिखा समाचार छपा था—

"कनारा जिला के एक गाँव का लड़का जिसकी आयु मुश्किल से ६ वर्ष की होगी, शेक्सपियर के समस्त (३६) नाटकों के अध्याय के अध्याय मुँह जबानी सुना देता है। इस लड़के का नाम 'वेंकप्पा सुब्ब' है। वह अँग्रेजी, फ्रैंच, मराठी, तेलगू, हिन्दी, कोंकणी आदि कई भाषाओं का विद्वान् है। जिन लोगों ने उसको देखा है उन सभी ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है

कि उसकी प्रतिभा बड़ी विलक्षण है। वह ईसा के ५५ वर्ष से पूर्व से लेकर अबतक की सभी ऐतिहासिक घटनाओं पर काफी प्रकाश डालता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक परिस्थिति पर जब लोग उससे वार्तालाप करते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि मानो वह राजनीति का कोई आचार्य हो। बुरुद स्वयं अपनी इस विलक्षण प्रतिभा के विषय में उदासीन है। उसका कहना है कि 'एम० ए० उसने बहुत पहले पास कर लिया है।' अधिकांश व्यक्तियों की सम्मति है कि वह पूर्व जन्म में अच्छा विद्वान् रहा होगा।"

इसी तरह अब से पचास-साठ वर्ष पूर्व जो 'मास्टर मदन' नाम का एक बालक हुआ था वह चार वर्ष की आयु में ही भारतीय सङ्गीत का उत्तम ज्ञाता बन गया था और बड़े-बड़े समारोहों में मन को मुग्ध करने वाला गायन करता था। वह राग-रागनियों और सङ्गीत-शास्त्र की अनेक बारीक बातों के सम्बन्ध में अन्य सङ्गीताचार्यो से बात-चीत भी करता था। जब कि हम देखते हैं कि अच्छे, समझदार बड़ी आयु के लड़के वर्षो तक अभ्यास करके 'सातों स्वरों' का ज्ञान और थोड़े से राग-रागनियों का अभ्यास कर पाते हैं, तब एक चार-पाँच वर्ष की आयु के बालक का सङ्गीत शास्त्र-मर्मज्ञ होना और इस क्षेत्र में बरसों तक नाम हासिल कर सकना सिवाय पूर्व जन्म की विद्या और प्रतिभा के और किसी तरह संभव नहीं जान पड़ता।

प्रेत-योनि का अस्तित्व—

'गरुड़-पुराण' का मुख्य विषय 'प्रेत-योनि' से सम्बन्धित है। अन्य पुराणों में भी प्रेतों के सैकड़ों उपाख्यान मिलते हैं। हम यह हर्गिज नहीं कहते हैं कि वे सब ज्यों के त्यों ठीक हैं या उस प्रकार की घटनायें अवश्य हुई हैं। वे तो सामान्य—जनता को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा देने के उद्देश्य से किसी भी छोटी या बड़ी घटना को उपदेशप्रद की कथाओं का रूप देकर प्रस्तुत किये गये हैं। पर अनेक लोग प्रेतों के अस्तित्व से ही इनकार करते हैं और उसे अनभिज्ञ व्यक्तियों का भ्रम अथवा कुछ लोगों की मनगढ़न्त बातें बतलाते हैं। ऐसे लोगों की सम्मति पर विचार करने के लिये यह आवश्यक है कि 'प्रेत-योनि' के विषय में तथ्यों और तर्कों के आधार पर विवेचना की जाय।

सबसे प्रथम विचारणीय बात तो यह है कि यदि हम आत्मा के अमरत्व में विश्वास रखते हैं और उसका पुनर्जन्म होना भी मानते हैं तो यह भी पता लगाना होगा कि क्या प्रत्येक मनुष्य मरने के पश्चात् उसी समय दूसरा जन्म ले लेता है। अभी तक जिन बालक—बालिकाओं ने अपने पूर्व जन्म की घटनायें बतलाई हैं उनकी जाँच करने से ज्ञात हुआ है कि प्राय सभी मृतात्माओं के जन्म लेने में गर्भकाल के नौ महीने से कुछ महीने या वर्षों का अधिक समय लगा है। इससे विदित होता है कि वे आत्माऐं बीच के समय में किसी अन्य स्थान में रहती हैं। यह कोई जरूरी बात नहीं कि उनके रहने के दूसरे स्थान पृथ्वी की तरह ठोस (स्थूल रूप वाले) हवा, पानी, वनस्पति, आवास गृह आदि से युक्त हो। मरने के बाद आत्मा जिस सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित रहती है वह स्वयं छाया की तरह वायु से भी हलका रहता है इसलिये उसे टिकने के लिये किसी स्थूल जगत् की तनिक भी आवश्यकता नहीं होती। ये स्थान किस तरह के होते हैं अथवा छाया शरीरी आत्माएं किस स्थिति में रहती हैं इस सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के अभिमत प्रकट किये हैं। उनमें से दो-तीन का सारांश नीचे दिया जाता है—

" परलोक-जीवन के रहस्य को समझने के लिये तीन विषयों का कुछ ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है—(१) स्वर्ग-नरक अर्थात् प्राकृतिक लोकों से क्या अभिप्राय है ? (२) मनुष्य की आध्यात्मिक रचना कैसी है ? (३) किस क्रम से मनुष्य का मृत्यु के पश्चात् जीवन व्यतीत करना पड़ता है ?

" मृत्यु के बाद के जीवन को समझने के लिये नीचे के तीन लोकों—भू भुव और स्व की स्थिति को कुछ अधिक स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है साधारणतः हमारे जीवन का विशेष सम्बन्ध इन्हीं तीन लोकों से रहता है। भू-लोक के दो प्रधान विभाग हैं—स्थूल और सूक्ष्म। इसके सूक्ष्म विभाग को 'ईथरिक विभाग' भी कहते हैं। भुव लोक के भी तीन प्रधान विभाग हैं, लेकिन उनके विस्तार में जाना आवश्यक नहीं है। इसी भुवर्लोक के कुछ भाग को 'नरक' कहते हैं। स्वर्लोक के भी दो विभाग हैं—सूक्ष्म और स्थूल। स्थूल विभाग

को रूप-विभाग या स्वर्ग कहते है और सूक्ष्म विभाग को ' अरूप विभाग ' कहते हैं।

" वैज्ञानिक दृष्टि से मृत्यु का तात्पर्य स्थूल तथा छाया–देह के सम्बन्ध विच्छेद से है। समस्त जीवन यह सम्बन्ध सदा लगा रहता है, केवल मृत्यु के द्वारा ही छूटता है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि मृत्यु का समय मनुष्य के लिये बहुत महत्त्व का होता है। भगवान् कहते है कि मरने के समय जिसका जैसा भाव होता है वह वैसी ही गति को प्राप्त करता है—

यं य वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद् भाव भावितः ॥

(गीता ८-६)

अर्थात् हे अर्जुन ! अन्त समय में जो जिसको स्मरण करता हुआ शरीर–त्याग करता है, उसी भाव से सदा भावित होने के कारण वह उसी के पास पहुँच जाता है।"

" आधुनिक अनुसंधान करने वाले मनीषियों ने पता लगाया है कि अन्त समय के महत्त्व का प्रधान कारण यह है कि मृत्यु के कुछ देर पहले प्राकृतिक रूप से मनुष्य में ऐसी शक्ति आ जाती है, जिसकी वजह से जन्म से लेकर मरने के दिन तक की अपनी सारी कार्यवाहियों और सारे सम्बन्धों को वह देख सकता है। इस लोक से प्रस्थान करने के पूर्व जीव मानो अपने इस जन्म-मरण के लेखे का हिसाब-किताब समझना है। अपनी कारवाईयों का महत्त्व पूर्ण सिंहावलोकन करता है। इस कारण अपने सभी जीवन–कृत्यों का निचोड़ उसके हृदय में बैठ जाता है और उसी के अनुसार उसकी गति होती है। इस लिये किसी की मृत्यु होते समय हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम मृतक के समीप हल्ला–गुल्ला और रोना-पीटना न कर उसके समीप शान्तिपूर्ण तथा उच्च भावों से पूर्ण वातावरण बनाये रखें।

"भगवत् वाणी" नामक पुस्तक के लेखक ने इस सम्बन्ध में कहा है— "इस पृथ्वी से एक करोड़ मील की दूरी पर सात नरक लोक हैं। इनमें पापियों

को दण्ड देने की व्यवस्था है। वे साधारण नहीं है और उनमें अत्यन्त तीव्र यन्त्रणा दी जाती है। मृत्यु के बाद मनुष्य का स्थूल शरीर यहीं छूट जाता है और वह सूक्ष्म शरीर से अन्तरिक्ष में पहुँच जाता है। इस सूक्ष्म-देह में उसके तीन धड़ और तीन ही मस्तक होते हैं, पर तीनों में पैर केवल दो ही होते हैं। कर्त्तव्यनिष्ठ और पवित्रात्मा सीधे स्वर्ग को चले जाते हैं। जिन्होंने संसार में सामान्य जीवन बिताया है और कोई बड़ा पाप नहीं किया है वे पुनः पृथ्वी पर ही जन्म ग्रहण करते हैं। पापियों को प्रेत योनि में लाखों वर्ष तक लुढ़कना पड़ता है और उसके बाद भी उसको तरह-तरह की योनियों में जन्म और मृत्यु की शृङ्खला में भ्रमण करना पड़ता है।"

प्रेतों का स्वरूप और कार्य—

'गरुड पुराण' में प्रेतों के बहुत से उपाख्यान दिये गये हैं जिनमें उनके वीभत्स स्वरूप और क्रूर कर्मों का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। पर उनमें अतिशयोक्ति का विशेष पुट होने के कारण हम एक आधुनिक विद्वान पं० रामदास गौड़ एम० ए० के लेख के आधार पर प्रेतों के स्वरूप का विवेचन करेंगे। पंडित जी विज्ञान के प्रोफेसर थे और बहुत वर्षों तक सुप्रसिद्ध 'विज्ञान' मासिक पत्र का सम्पादन करते रहे थे। उन्होंने अनेक प्रकार की परीक्षायें करके तथा अन्य विदेशी लेखकों के मत का विश्लेषण करके प्रेत के विषय में कुछ मुख्य बातें प्रकट की थीं—

"स्थूल देह धारियों की भाँति सूक्ष्म देहधारी प्रेत भी शब्द उच्चारण करते हैं, पर वे हमको सुनाई नहीं पड़ते। कारण जिस तरह उनका शरीर सूक्ष्म होता है उसी प्रकार उनका वायु-मण्डल भी सूक्ष्म होता है, जिसका स्पन्दन हमारे कानों तक नहीं पहुँचता। पर किसी-किसी व्यक्ति को प्रेत का शब्द सुनने और उसका रूप देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उस समय उनको जो सुनाई या दिखाई देता है, वह उन्हीं के पास बैठे दूसरे मनुष्य को कुछ भी मालूम नहीं देता।

प्रेत शरीर की स्पर्श शक्ति भी हमारी स्पर्श शक्ति से भिन्न है। हम

तो स्पर्श से ठण्डे-गरम और कड़े-नरम का पता लगाते हैं, पर किसी व्यक्ति पर प्रेतावेश होने की अवस्था में देखा जाता है कि आविष्ट शरीर के पास की वायु को मारने और काटने का भी प्रभाव पड़ता है। इससे यह अनुमान होता है कि प्रेत शरीर के सर्वाङ्ग में समाया रहता है तब उसका कुछ अंश त्वचा के बाहर भी फैला रहता है। पर यह भी देखा जाता है कि जब अंशावेश होता है तब मनुष्य स्थूल शरीर के किसी एक अङ्ग में ही प्रेत शरीर संकुचित हो जाता है। इससे यह जान पड़ता है कि साधारणतया प्रेत शरीर स्थूल शरीर से बड़ा और वायु की तरह फैलने और सिकुड़ने वाला होता होगा। प्रेत शरीर का विवेचन करते समय यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस प्रकार प्रेतावस्था का वायु मण्डल सूक्ष्म होता है उसी प्रकार उसके पृथ्वी, जल, अग्नि तथा प्रकाश आदि तत्त्व भी सूक्ष्म होते हैं।

परलोक-विज्ञान के ज्ञाताओं ने प्रेतों के रूप-दर्शन की विधि भी निकाली है और उनके फोटो लिये हैं। यातना-भोगी नीच-प्रेतों के रूप बड़े भयंकर होते हैं, परन्तु अच्छे प्रेत अधिक सौम्य रूप के होते हैं। यह सच है कि परलोकवादी-चक्रों में प्रेतों का रूप देखना सम्भव होता है, पर यह हर्गिज नहीं कहा जा सकता कि प्रेतों का जो रूप देखने में आता है वह उनका वास्तविक रूप ही होता है।

प्रेत अंधकार और उजाला—दोनों में बराबर देख सकते हैं, क्योंकि प्रेतों के विचरने का समय घनघोर अँधेरी रात्रि भी होती है और दिन की चिलचिलाती दोपहरी भी। पूर्ण और अल्प आवेश के अवसर पर प्रेतों ने यह प्रमाण दिया है कि वे मनुष्यों से कहीं अधिक देखने की शक्ति भी रखते हैं।

नीच प्रकृति के प्रेत गन्दी से गन्दी चीज खाने में भी घृणा नहीं करते। ऊँची प्रकृति वाले प्रेत शुद्ध, सात्त्विक पदार्थ पसन्द करते हैं। परन्तु यह नियम व्यापक नहीं है। आवेश के रूप में लगने वाले प्रेतों का कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। मानव-संसार में यदि झूँठा प्रदर्शन करने वाले सौ में से नब्बे होंगे तो प्रेत-संसार में निन्यानवे से भी अधिक होंगे। जो प्रेत रक्त,

मास, मज्जा के भीतर रहता है, वह भी अपनी जाति ब्राह्मण बताकर अपने लिये शुद्ध और पवित्र भोजन माँगता है। इस प्रकार वह यह दिखलाना चाहता है कि हम इस प्राणी के शरीर में रहते अवश्य हैं पर इसका खून नहीं चूसते और न इसको किसी प्रकार की हानि पहुँचाते हैं। परन्तु उनका कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रेत योनि अहङ्कार-प्रधान और अत्यन्त मक्कार होती है।

"किसी के स्थूल शरीर में आविष्ट होकर प्रेत तोल में अत्यधिक खा सकता है परन्तु अपने प्रेत शरीर से वह खाद्य-पदार्थ का केवल रस ग्रहण कर लेता है। यही कारण है कि प्रेतग्रस्त परिवार की रसोई स्वादिष्ट नहीं होती और उसकी पौष्टिकता भी नष्ट हो जाती है। कुछ लोगों का कहना है कि प्रेत केवल भोजन की गन्ध ग्रहण करते हैं, पर यह ठीक नहीं, वे भोजन का सार ग्रहण कर लेते हैं और सीठा छोड़ देते हैं, जिसमें फिर कोई तत्त्व नहीं रह जाता।

"वैज्ञानिकों ने प्रेतों की गति—सम्बन्धी परीक्षाएँ भी की हैं। उनका वेग प्रायः एक सेकेण्ड में ५०० से २००० मील तक होता है। प्रेत उड़ते हैं दौड़ते नहीं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके पैर नहीं होते। इसी प्रकार पङ्ख होना भी प्रत्येक प्रेत के लिये आवश्यक नहीं।

"क्रोध और अहङ्कार की मात्रा प्रेतों में अन्य सभी योनियों के प्राणियों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। मरने के बाद प्रेतयोनि में सभी वृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं। अतः जिस प्रकार अतृप्त वासना के कारण प्रेत, मनुष्य शरीर में आवेश करता है, उसी तरह जीवित—काल में उनका जिन व्यक्तियों से झगड़ा होता है, मरने के बाद भी वह उनको ढूँढना और हानि पहुँचाने की भरपूर चेष्टा करता है। प्रेत का प्रेम भी अच्छा नहीं होता। वह अपने प्रेम पात्र के शरीर में घर कर लेता है और निरन्तर उसके साथ रहता है। कभी-कभी उसका प्रेम इतना बढ़ जाता है कि उसे जीवित व्यक्ति को मार कर और प्रेत बनाकर साथ रखने की उत्कट कामना हो जाती है। इसलिये वह अपने प्रेम पात्र को मार डालने का प्रयत्न करने लगता है।

यद्यपि वैज्ञानिक बिना परीक्षा किये भूत—प्रेतों के सभी किस्मों को सत्य नहीं मानते, क्योंकि उनमें से बहुतों का कारण हमारे दिमाग की खराबी या भ्रम हुआ करता है, तो भी पहले जमाने की तरह अब वे कोरे ' जड़वादी ' नहीं रहे हैं। वे यह जान गये हैं कि जिस प्रकार स्थूल पदार्थों का कभी नाश नहीं होता केवल स्वरूप बदल जाता है, उसी प्रकार शक्ति का भी नाश नहीं होता। कोयला, तेल, भाप, बिजली आदि की जो शक्ति मशीनों को चलाती है, उसका उसी समय अन्त नहीं हो जाता, वरन् अपना काम पूरा कर देने के बाद भी वह किसी दूसरे रूप में बनी रहती है।

संसार में पाये जाने वाले सभी पदार्थों का निर्माण सूक्ष्म अणुओं से हुआ है। इनमें प्रत्येक अणु के दो भाग होते हैं—एक कोष (सेल) और दूसरा शक्ति (फोर्स)। जब किसी अणु का कोष जीर्ण होकर नष्ट हो जाता है तो उसकी शक्ति दूसरे कोष में प्रविष्ट हो जाती है। इस नये कोष को पुराना कोष अपनी जीवितावस्था में ही तैयार करता रहता है। उत्पत्ति और परिवर्तन का जो क्रम एक सूक्ष्म अणु में पाया जाता है वही हमारे शरीर और जीवात्मा का भी है। इस बात को यों भी समझाया जा सकता है कि हमारे शरीर में ही अणुओं के नष्ट होने और बनने के रूप में असंख्यों जन्म, मृत्यु और परिवर्तन नित्य प्रति होते रहते हैं। अन्त में एक दिन ऐसा आता है जब अणुओं के नष्ट होने का परिमाण बढ़ कर हमारा समस्त शरीर ही उसी प्रकार के रूपान्तर की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। प्रथम प्रकार का परिवर्तन अर्थात् अणुओं का जन्म-मरण अत्यन्त सूक्ष्म रूप में होता है और इसलिये हम उसे अनुभव नहीं कर पाते, पर दूसरे प्रकार का परिवर्तन अर्थात् प्राणी के शरीर का जन्म और मरण ऐसा स्थूल विषय है जिसे हम सहज में देख और समझ सकते हैं।

इस विवेचन से यह परिणाम निकलता है कि वस्तुओं का जो बाहरी स्वरूप हमको दिखलाई देता है वास्तविक नहीं है। हम किसी प्राणी को उत्पत्ति और उसके लय हो जाने को मरण या सर्वथा नाश होना समझते हैं वह भ्रम पूर्ण अथवा बहुत ही अपूर्ण ज्ञान का परिचायक है। वास्तव में हमारी शक्ति अथवा शरीर को बनाने वाले अणुओं का नाश जन्म काल से ही होने

लगता है। पर जब वह नष्ट होना चरम सीमा पर पहुँच जाता है और एक साथ होता दिखलाई पड़ता है तब हम उसे 'मृत्यु' कह देते हैं।

कर्मों के संस्कार और प्रारब्ध—

अब हम इस बात को समझ सकते हैं कि यह संसार मूल रूप से अविनाशी है और इसमें हमको जो छोटे या बड़े परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं उनका आशय किसी पदार्थ या शक्ति का पूर्णतया नष्ट होना नहीं है, वरन् एक प्रकार का रूपान्तर होना ही है। इसके पश्चात् स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि एक शरीर के नष्ट होने पर जो आत्मा किसी अन्य शरीर में जन्म लेती है उसका पूर्व जन्म के कर्मों से कुछ सम्बन्ध रहता है या नहीं? भारतीय शास्त्रों ने 'कर्मफल' के सिद्धान्त को अटल और अकाट्य रूप से स्वीकार किया है। 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा' की उक्ति में यहाँ के सभी लोगों का पूर्ण विश्वास है। यहाँ के ऋषि-मुनियों ने मानव-जीवन की भली-बुरी घटनाओं को केवल एक जन्म के ही कर्मों का फल नहीं बतलाया है वरन् वे उसका सम्बन्ध अनेक जन्मों के कर्मों से जोड़ते हैं। 'कर्म' और प्रारब्ध की समस्या पर विचार करते हुये लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीता रहस्य' में हिन्दू धर्म का सिद्धान्त इस प्रकार प्रकट किया है।

"यह सच है कि कर्म प्रवाह अनादि है और जब एक बार कर्म का चक्कर शुरू हो जाता है तब परमेश्वर भी हस्तक्षेप नहीं करता। तथापि अध्यात्म शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि दृश्य सृष्टि केवल नाम-रूप या कर्म ही नहीं है, किन्तु इन 'नाम रूपात्मक' आवरण के लिये आधारभूत एक आत्म रूपी स्वतन्त्र और अविनाशी ब्रह्म सृष्टि है तथा मनुष्य की आत्मा उस नित्य एवं स्वतन्त्र परब्रह्म का ही अंश है। मनुष्य जो भी अनुचित अथवा परपीड़ा दायक कार्य करता है उसी से वह अशुभ कर्म बन्धन में बँधता है। मनु भगवान् ने इनके तीन भेद किये हैं—कायिक, वाचिक और मानसिक। व्यभिचार, हिंसा, चोरी को 'कायिक' पाप कहा है, कटु मिथ्या, ताना मारना और असंगत बोलना—इन चारों को वाचिक पाप बतलाया है—परद्रव्याभिलाषा, दूसरों

का अहित चिन्तन और व्यर्थ आग्रह करना—इन तीनों को मानसिक पाप कहते हैं। सब मिलाकर दस प्रकार के अशुभ या पाप कर्म बतलाये गये हैं (मनु० १२—५,७)।

"परन्तु अन्य विद्वानोंने समस्त मानवीय कर्मोंको तीन अन्य विभागोंमें बाँटा है–(१) संचित (२) प्रारब्ध और (३) क्रियमाण। किसी मनुष्य द्वारा इसक्षण तक किया गया जो कर्म है–चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या पूर्व जन्म में, वह सब 'संचित' अर्थात् 'एकत्रित' कर्म कहाजाता है। इसी 'संचित' को कुछलोग 'अदृष्ट' भी कहते हैं। इन सब कर्मों का फल एक दम भोगना असम्भव है, क्योंकि फल की दृष्टि से ये परस्पर विरोधी अर्थात् भले और बुरे दोनों प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरणार्थ कोई संचित कर्म स्वर्गप्रद और कोई नरकप्रद भी होते हैं, इसलिये इन दोनों के फलों को एक साथ ही भोगना सम्भव नहीं है—इन्हें एक के बाद एक भोगना पड़ता है। अतएव 'संचित' में से जितने कर्मों का फल भोगना पहले शुरू होता है उतने ही को 'प्रारब्ध' कहते हैं। 'संचित' में से जिन कर्मों का फल भोगना अभी आरम्भ नहीं हुआ है उनको 'अनारब्ध–कर्म' का नाम दिया गया है।

"संचित में से जो कर्म 'प्रारब्ध' बन चुके हैं उनको भोगे बिना छुटकारा नहीं है—'प्रारब्ध कर्मणां भोगादेव क्षयः।' जब एक बार हाथ से बाण छूट जाता है, तब वह लौटकर नहीं आ सकता, अन्त तक चला ही जाता है। ठीक इसी तरह 'प्रारब्ध' कर्मों की अर्थात् जिनके फल का भोगना शुरू हो गया है, उनकी भी अवस्था होती है। जो शुरू हो गया है उसका अन्त होना ही चाहिए, इसके सिवा दूसरी गति नहीं है। परन्तु 'अनारब्ध' कार्य कर्म का ऐसा हाल नहीं है—इन सबका ज्ञान से पूर्णतया नाश किया जा सकता है।"

मीमांसा-शास्त्र वालों ने कर्मों के चार भेद माने हैं—नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध। इनमें से नित्य कर्म (संध्या आदि) के न करने से आत्मा का पतन होता है और नैमित्तिक कर्म तभी करने पड़ते हैं जब उनकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये मीमांसकों के मतानुसार इन दोनों को करना तो आवश्यक ही है। शेष रहे काम्य और निषिद्ध कर्म। इनमें से निषिद्ध कर्मों

के करने से पाप लगता है इसलिये उनको न करना चाहिए। काम्य कर्मों के करने से उनके फल भोगने के लिये फिर जन्म लेना पड़ता है, इसलिये इन्हें भी न करना चाहिए। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कर्मों के तारतम्य का विचार करके यदि मनुष्य कुछ कर्मों को छोड़ दे और कुछ को शास्त्रोक्त रीति से करता रहे, तो वह अपने आप मुक्त हो जायगा।

इस शास्त्रीय विवेचन द्वारा विदित होता है कि कर्म फल प्राकृतिक नियम के अनुसार स्वभावतः संस्कार रूप से आत्मा के साथ लिपटा रहता है और एक जन्म के कर्मों के प्रभाव से आगामी जन्म में भी नये नये कर्म होते रहते हैं और कर्म-शृङ्खला अनन्त काल तक चलती रहती है। केवल वे थोड़े से व्यक्ति जो भगवान्‌ योग और ज्ञान-साधन द्वारा कर्म—बन्धन को बिल्कुल काट देते हैं वे ही कर्मों के बन्धन से छुटकारा पा सकते हैं।

इस प्रकार जब हमने कर्मफल, परलोक और पुनर्जन्म को मान लिया और यह भी मालूम हो गया कि हम जैसा कृत्य करेंगे वैसा ही अच्छा या बुरा फल प्राप्त होगा तो इस दृष्टि से सृष्टि में स्वर्ग और नरक का मानना अनुचित नहीं है, फिर चाहे उनका स्थूल अथवा सूक्ष्म लोकों के रूप में माना जाय, अथवा भली या बुरी परिस्थितियों के रूप में, अथवा आनन्द या कष्टप्रद मानसिक स्थिति के रूप में। हमने अभी तक वैज्ञानिकों के द्वारा बुद्ध, मङ्गल, बृहस्पति आदि ग्रहों का जो प्राकृतिक वर्णन सुना है, उससे यह ख्याल किया जा सकता है कि शायद वहाँ किसी अन्य प्रकार के निकृष्ट जीवधारी हों जिनको अत्यधिक गर्मी, दम घोटने वाली विषाक्त वायु अथवा हड्डियों को कड़कड़ा देने वाली ठंड को सहन करना पड़ता हो। फिर यह भी आवश्यक नहीं कि जिन स्थानों को 'नरक' कहा गया है वे सब स्थूल रूप में ही हों। आत्मा का सूक्ष्म शरीर वायु से भी हलका होता है। वह विशाल अन्तरिक्ष के किसी भी कोने में रहता हुआ अपनी भावनानुसार तरह तरह के कष्टों और यन्त्रणाओं को अनुभव करता हो तो इसमें भी कुछ असम्भव नहीं है। यदि पृथ्वी के कुछ जीवात्माओं को वहाँ जाकर ऐसे कष्टदायक वातावरण में रहना पड़े तो यह पौराणिक नरकों के वर्णन के अनुसार ही होंगे।

इसके अतिरिक्त हम पृथ्वी पर भी पागलों, उन्मादियों, महाभ्रष्ट आचरण वालों की जो दशा देखते हैं वह भी नरक वास से कम नहीं है। हमने ऐसे नरतन धारियों को गन्दी नाली का पानी पीते, वहाँ पड़े हुए रोटी के टुकड़ों आदि को खाते देखा है। 'अघोरी' नामधारी कितने ही व्यक्ति मल-मूत्र और अन्य अत्यन्त घृणित पदार्थ खा जाते हैं और असह्य गन्दगी की हालत में बने रहते हैं। अन्य ऊपर से सामान्य श्रेणी के मनुष्य जान पड़ने वालों के भी आचरण ऐसे भ्रष्ट और गन्दे होते हैं कि वे गुप्त रूप से अत्यन्त गन्दे और घृणोत्पादक पदार्थों का सेवन करने में ही तृप्ति अनुभव करते हैं। ऐसे मस्तिकीय अथवा मानसिक विकृति वाले व्यक्तियोंकी संख्या पृथ्वी पर करोड़ों हैं और सज्जन तथा बुद्धिमान लोगों की दृष्टि में वे नारकीय जीवन ही व्यतीत करते हैं।

काम, क्रोध, मोह, अहङ्कार आदि के कारण भी अनेक व्यक्तियों की मानसिक दशा ऐसी अस्त-व्यस्त और यन्त्रणादायक बन जाती है कि प्रत्यक्ष में वैभवपूर्ण स्थिति में रहने पर भी वे अपने अन्तः क्षेत्र में महा अशान्ति और जलन का अनुभव करते हैं। यदि आपने राज्य-परिवारों से सम्बन्धित कहानी-उपन्यास आदि के रूप में लिखे गये वर्णनों को पढ़ा हो तो आप जान सकते है कि ऊपर से आमोद—प्रमोद में रहते हुये इन लोगों के हृदय में कितनी भयङ्कर अग्नि जलती रहती है और अनेक बार उसका दुष्परिणाम हत्या—आत्मघात आदि कैसे भयङ्कर कृत्यों और दृश्यों के रूप में प्रकट होता है। हमने एकाध लखपति को यह कहते सुना है कि महाशय, आपकी निगाह में तो हम बड़े साधन-सम्पन्न और सुखी हैं, पर विपरीत व्यावारिक और अन्य परिस्थितियों के कारण हमारे चित्त में तो प्रायः यह आता रहता है कि किसी प्रकार मर कर इन आपत्तियों से छुटकारा पा जायें। इस परिस्थिति का सब से प्रत्यक्ष उदाहरण अमरीका का देश है जो संसार में सब से अधिक मालदार आमोद-प्रमोद के साधनों से युक्त और विषय-भोग सम्बन्धी सब प्रकार बन्धनों से मुक्त माना जाता है। वहाँ करोड़ों स्त्री—पुरुष स्वच्छन्द भाव से व्यभिचार, मद्यपान, धूम्रपान आदि दोषों में लिप्त रहते हैं, पर सरकारी रिपोर्टों के अनुसार आत्म हत्याओं की संख्या भी वहीं पर सबसे ज्यादा है।'

इस तरह हम यदि समाज नीच मनोवृत्ति और विकृत मस्तिष्क वाले व्यक्तियों के बाह्य और अन्त जीवन में झाँकें तो स्पष्ट जान पड़ेगा कि वे 'नारकीय' जीवन ही व्यतीत कर रहे हैं और मरने के पश्चात् भी उनको 'सुगति' कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। वे वास्तव में 'नरक' के ही अधिकारी हैं और मरणोपरान्त वे कहीं भी क्यों न रहें उनको नारकीय कष्ट ही सहन करने पड़ेंगे। 'गरुड पुराण' के लेखक ने रूपक और अलङ्कार युक्त 'नरक वर्णन' द्वारा जो चेतावनी दी है, उस पर ध्यान देकर यदि वे दुराचरणों को त्याग कर सुमार्गगामी बन सकें तो यह उनके लिये कल्याणकारी ही होगा।